Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

आज़ादी का अमृत महोत्सव

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 44, 45 नवम्बर 2021-फरवरी 2022 संयुक्तांक

स्वाधीनता के 75 वर्ष: आजादी का अमृत महोत्सव विशेषांक

जयंती स्मरण

अटल बिहारी वाजपेयी

25 दिसम्बर 1924

भारत जमीन का टुकड़ा नहीं

"भारत जमीन का टुकड़ा नहीं,
जीता जागता राष्ट्रपुरुष है।
हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,
पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं।
पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघायें हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है।
यह चन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है,
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।
इसका कंकर-कंकर शंकर है,
इसका बिंदु-बिंदु गंगाजल है।
हम जिएंगे तो इसके लिए
मरेंगे तो इसके लिए।"

-अटल बिहारी वाजपेयी

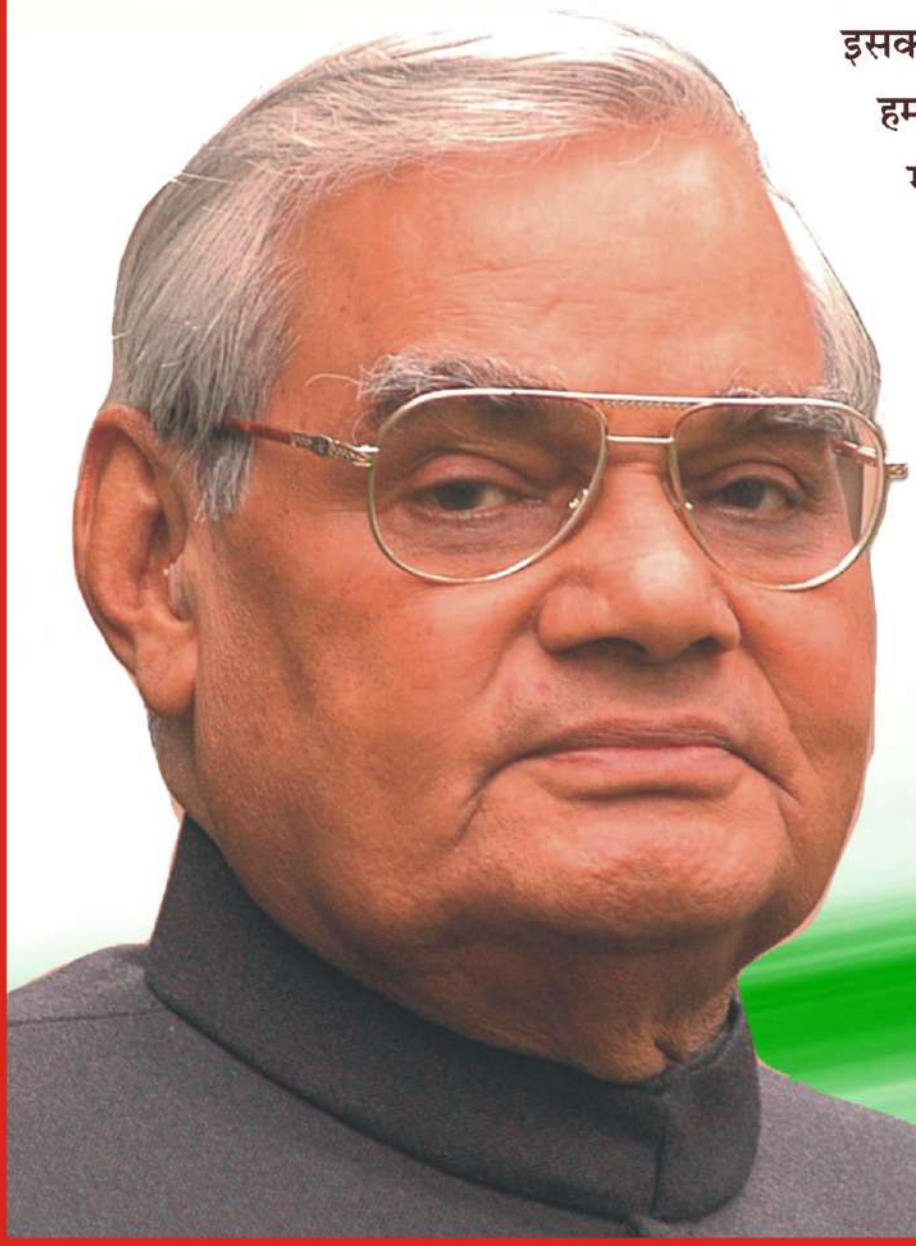

ISSN : 0971-1430

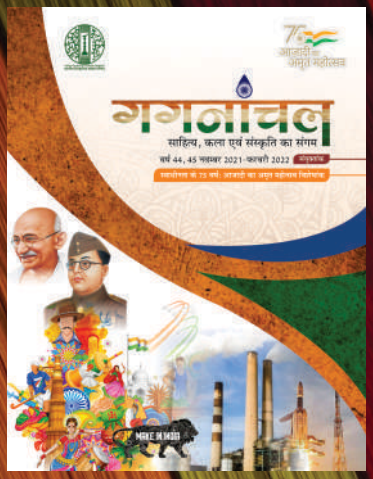

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

स्वाधीनता के 75 वर्ष: आजादी का अमृत महोत्सव विशेषांक

वर्ष 44, 45 नवम्बर 2021-फरवरी 2022 (संयुक्तांक)

प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
		यू.एस $ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
		यू.एस. $ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

हम कौन थे, क्या हो गए हैं

हिंदी क्षितिज का विस्तार और प्रौद्योगिकी

आजादी के अमृत वर्ष में संविधान और हम

भारतीयता की अंतरकथा और लोक संस्कृति

राष्ट्रभाषा चिंतन और पं. दीनदयाल उपाध्याय

स्वाधीनता संग्राम के साहित्यिक नायक: प्रेमचंद

वैदिक राष्ट्रवाद का अर्वाचीन दर्शन है 'राष्ट्रमेव जयते'

आज़ादी का अमृत महोत्सव और काशी की रंगमंच परंपरा

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 44, 45 नवम्बर (2021) - फरवरी (2022)

संयुक्तांक

प्रकाशकीय

4 कुमार तुहिन

संपादकीय

5 **स्वाधीनता का अमृत महोत्सव और औपनिवेशिक पृष्ठभूमि**
डॉ. आशीष कंधवे

आजादी का अमृत महोत्सव पर विशेष

8 **हम कौन थे, क्या हो गए हैं**
डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

12 **आजादी के अमृत वर्ष में संविधान और हम**
डॉ. साकेत सहाय

16 **तुलसी की लोकतात्विक दृष्टि**
प्रो. उमापति दीक्षित

19 **राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत और हिंदी**
प्रो. चंदन कुमार

25 **भारतीयता की अंतरकथा और लोक संस्कृति**
कोमल

33 **स्वाधीनता के 75 वर्ष और भविष्य के संकल्प**
डॉ. विजय कुमार मिश्र

37 **स्वाधीनता संग्राम के साहित्यिक नायक: प्रेमचंद**
डॉ. कमल किशोर गोयनका

43 **अमृत महोत्सव और राष्ट्रवाद की वैचारिकी**
प्रो. सत्यकेतु सांकृत

47 **वैदिक राष्ट्रवाद का अर्वाचीन दर्शन है 'राष्ट्रमेव जयते'**
अखिलेश आर्येन्दु

50 **स्वाधीन भारत का जटिल सुरक्षा परिदृश्य**
प्रो. करूणाशंकर उपाध्याय

56 **चाणक्य का राष्ट्र-दर्शन**
प्रो. लल्लन प्रसाद

60 **स्वराज, स्वदेशी और स्वभाषा की चेतना के उन्नायक ऋषि दयानंद**
डॉ. अजीत कुमार पुरी

63 **आज़ादी का अमृत महोत्सव और काशी की रंगमंच परंपरा**
डॉ. प्रभांशु ओझा

67 **मृदुला सिन्हा की कहानियाँ और भारत बोध**
डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा

72 **भारतीय ज्ञान-परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020**
प्रो. रचना बिमल

79 **राष्ट्रभाषा चिंतन और पं. दीनदयाल उपाध्याय**
डॉ. गायत्री सिंह

85 **स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना**
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

89 **ब्रज लोकगीतों में आजादी की गूँज**
डॉ. नृत्य गोपाल

93 **सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदी पत्रकारिता**
विजय यादव

96 **स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच की अवधारणा और हिंदी रंगमंच**
डॉ. प्रतिभा राणा

100 **हिंदी साहित्य में सरदार पटेल**
डॉ. नूतन पाण्डेय

104 **स्वाधीनता के बाद की हिंदी कहानी: परंपरा एवं प्रकृति**
डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

111 **स्वाधीन भारत और आर्थिक आत्मनिर्भरता का स्वप्न**
मिहिर कुमार मिश्र

114 **भारत की आजादी में साहित्यकारों का योगदान**
पूजा गुप्ता

117 **साहित्य, समाज और लोक संस्कृति**
डॉ. सविता डहेरिया

हिंदी-विश्व

121 **हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता**
डॉ. महेन्द्र प्रजापति

साहित्य चिंतन

124 **जयशंकर प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना**
डॉ. उदय प्रताप सिंह

129 **समकालीन कविता और लय-छंद का प्रश्न**
प्रो. वशिष्ठ अनूप

संस्कृति संवाद

133 **सांस्कृतिक समन्वय का श्रेष्ठ माध्यम होती हैं यात्राएँ**
डॉ. एस.डी. वैष्णव

भाषा चिंतन

138 **संविधान में हिंदी**
इंदुशेखर 'तत्पुरुष'

143 **हिंदी क्षितिज का विस्तार और प्रौद्योगिकी**
संजय कुमार

नाट्य-चिंतन

148 **नंदकिशोर आचार्य के नाटकों का रंगशिल्प**
डॉ. लहरी राम मीणा

153 **भरतमुनि, भारतेंदु की नींव पर खड़ा रंगमंच**
चित्रा देसाई

मीडिया-विमर्श

156 **मीडिया के बदलते प्रतिमान**
डॉ. ऐश्वर्या झा

160 **भारतेंदुयुगीन हिंदी पत्रकारिता की प्रकृति**
डॉ. शैलजा

कथा-सागर

165 **कोने वाला कमरा**
मुक्ता

172 **हाथी के दाँत**
आराधना झा श्रीवास्तव (सिंगापुर)

व्यंग्य-विथिका

178 **जनतंत्र**
नरेन्द्र कोहली

विविध

181 **प्रेमचंद और समाजवाद**
वीरेन्द्र कुमार यादव

पुस्तक-समीक्षा

184 **सितारों में सुराख़ करती बंदूक रखने का अधिकार**
रेनू यादव

काव्य-धरोहर

186 सुभद्रा कुमारी चौहान
186 श्यामनारायण पाण्डेय

काव्य-मधुवन

187 देवेन्द्र दीपक
188 शिवनारायण
189 अनिरुद्ध सिन्हा
190 सुभाष प्रसाद गुप्ता
191 प्रभांशु कुमार
192 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

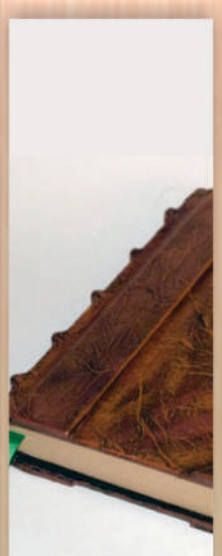

प्रकाशकीय

कुमार तुहिन
महानिदेशक

हम स्वतंत्र भारत के 75वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। स्वतंत्र भारत में इसे एक मील के पत्थर के रूप में देखा जा सकता है। अब वह समय आ गया है जब हम अपनी स्वतंत्रता का अवलोकन करें, मूल्यांकन करें और यह तय करें कि हम कहाँ से चले थे और कहाँ पहुँचे हैं। इतिहास साक्षी है कि भारत ने कभी भी अपने स्वाभिमान को नहीं खोया है। भारत का यही गुण उसे विश्व में सर्वश्रेष्ठ बना देता है। श्रेष्ठता के पोषक के रूप में हमारी संस्कृति का योगदान अप्रतिम है, अलौकिक है। हमारी भाषाई समृद्धि और साहित्यिक चेतना ने आजादी के पश्चात भी हमारे नैतिक मूल्यों को एक बड़े स्तर पर बनाए और बचाए रखा है।

हमारी सांस्कृतिक धारा ने सहिष्णुता का, सौहार्द का, संस्कार का, समन्वय का और शाँति का ऐसा संतुलन बनाया जो पूरी दुनिया के लिए विस्मयकारी है। असंख्य विविधताओं और विषमताओं के बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपनी गौरव गाथा को कम नहीं होने दिया। विश्व ने हमें स्वीकार किया और हमने विश्व को स्वीकार किया।

आज हम विश्व पटल पर दैदीप्यमान नक्षत्र के रूप में देखे जा रहे हैं, क्योंकि सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामरिक, राजनीतिक एवं आर्थिक, हर स्तर पर हमने विश्व में नए प्रतिमान को स्थापित किया है। विषम परिस्थितियों में संघर्ष करने की शक्ति के संबल से भारतीय संस्कृति चिर नूतन बनी रहती है। भारतीय संस्कृति की यही प्रवृत्ति विश्व भर के लिए कौतूहल का विषय होती है जिसके कारण पूरी दुनिया हमारी ओर आकर्षित होती है। साहित्य, संस्कृति और भाषा के स्तर पर हम इतने समृद्ध हैं कि दुनिया का कोई भी देश ऐसा नहीं है जो हम से प्रभावित न हो। कोई हमारी वैदिक संस्कृतियों की गौरव गाथा में खोया हुआ है, तो कोई योग और अध्यात्म में रत है।

हम जहाँ भी बसें उस भूमि को अपना बना लिया और वहाँ के स्थानीय निवासियों के साथ आत्मीय रिश्ता स्थापित कर लिया। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि यह उन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप संभव हुआ, जो उनकी धमनियों में हजारों वर्षों से संचारित हो रहे हैं और इसी कारण से भारतीय संस्कृति की पहुँच विश्व के सुदूर कोनों में दिखाई पड़ती है।

यही भारत की आंतरिक शक्ति है जो ध्वंस के बाद भी निर्माण कर लेती है।

गगनांचल के माध्यम से वैश्विक स्तर पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद भी अपनी सनातन संस्कृति, धर्म, कला, भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार करती है। आइए स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के इस पावन अवसर पर हम सब मिलकर अपने अपने क्षेत्र में राष्ट्र निर्माण के लिए योगदान करें, समर्पण करें ताकि भारत सुरक्षित रहे, समृद्ध रहे और विश्व भर में अपनी पताका को लहराता रहे।

कुमार तुहिन

संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

स्वाधीनता का अमृत महोत्सव और औपनिवेशिक पृष्ठभूमि

'गगनांचल' पत्रिका के स्वाधीनता के अमृत महोत्सव विशेषांक के अवसर पर मैं अपनी बात एक प्रश्न के साथ शुरू करना चाहता हूँ। क्या हम लोग अर्थात् भारतीय जनतंत्र औपनिवेशिक पृष्ठभूमि से बाहर निकल पाए हैं? क्या हम लोग उस परिवेश से बाहर निकल पाए हैं जो अंग्रेजों ने निर्मित किया और उसे हमने शहर से लेकर गांव तक स्थापित कर दिया? बात लोकतंत्र की हो, जनतंत्र की हो या प्रजातंत्र की इसकी परिकल्पना के मूल में क्या हमारी सनातन संस्कृति या प्रवृत्तियाँ हैं?

आज का प्रशासन तंत्र कमोबेश अंग्रेजों का बनाया हुआ है। उन्होंने क्रमशः इस तंत्र को खड़ा किया। हम उसका विस्तार करते चले गए। हम उस तंत्र का विस्तार ही नहीं कर रहे, वरन् उसके नए आयामों को ढूंढ कर उसका विकास भी कर रहे हैं। अंग्रेजों के परिवेश की मानसिकता के अंतर्गत ही तो हम-विकास और विश्वास को जनसाधारण तक पहुँचाने का कार्य कर रहे हैं । इसमें हमारी सनातन संस्कृति, हमारी प्रवृत्तियाँ क्या आने वाली पीढ़ियों में अपने स्वरूप को संभाल कर रख पाएंगी ?

स्वतंत्रता के पश्चात जो स्थितियां बनी विशेषकर राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर, मुझे इस संदर्भ में डॉ. लोहिया का एक वाक्य स्मरण आता है। अपनी शैली में वे कहते थे कि "कांग्रेस गवर्नमेंट इज इक्वल टु ब्रिटिश गवर्नमेंट माइनस एफिशिएंसी प्लस करप्शन।" उनकी कहने की अपनी शैली थी और उस शैली में वह कहते थे कि यह जो ब्रिटिश गवर्नमेंट की कार्य पद्धति है, यह उनका जो प्रशासन तंत्र है, वही हम जैसे का तैसा लेकर चल रहे हैं, उसमें हमने कोई परिवर्तन या संशोधन नहीं किया हैं, बस उसे और अधिक अक्षम एवं भ्रष्ट बना लिया है। क्या लोहिया जी की बात सच हो गई या लोहिया की बात सच ही थी, आज हमें इसका आकलन करना भी आवश्यक प्रतीत होता है? बात चाहे सांस्कृतिक चेतना की हो रही हो या फिर हमारी राष्ट्रीय भावना की हर क्षेत्र में हमने अंग्रेजी पैटर्न को स्वीकार कर लिया है जो कहीं-न-कहीं हमारी मूल संस्कृति का हिस्सा नहीं है। अर्थ से लेकर राष्ट्रीयता तक हमारे मनीषियों की एक अपनी दृष्टि रही है। उनका अपना एक वैशिष्ट्य रहा है। कहीं हम उस मार्ग से बहुत दूर तो नहीं निकल गए?

सनातन प्रवृत्ति और सनातन विकसित भारत राष्ट्र में आर्थिक विकास के संदर्भ में भी हमें मनीषियों से एक दृष्टि प्राप्त हुई थी। और इन्हीं भावनाओं को समझते हुए शायद गांधीजी ने 1909 में हिन्द स्वराज लिखा था। इसमें उन्होंने पश्चिम की सभ्यता को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह सभ्यता हमें नहीं चाहिए। वे 1945 में भी अपने उसी आग्रह पर अटल रहे। नेहरूजी के साथ अक्टूबर 1945 का जो पत्राचार है उसमें उन्होंने 'हिन्द स्वराज' के सपने को ही फिर से रेखांकित किया, फिर से दोहराया। लेकिन भारत उस रास्ते पर नहीं चला। गांधीजी का कहना था कि भारत शहरों में नहीं गाँवों में रहेगा, भारत महलों में नहीं झोपड़ों में रहेगा, लेकिन हम तो अब

केवल अट्टालिकाओं का निर्माण कर रहे हैं। केवल शहरों का विस्तार कर रहे हैं। ग्राम शहर बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। जिस स्वप्न को लेकर हमने स्वाधीनता आंदोलन में प्रवेश किया और विजयी हुए, उससे उलटी दिशा में हम जाते हुए दिखायी दे रहे हैं।

यहीं से वह प्रश्न खड़ा होता है कि हम औपनिवेशिक परिस्थितियों से कितना बाहर आएए स्वयं को कितना बाहर रख पाए या फिर संपूर्ण रूप से औपनिवेशिक परिस्थितियों में ही घुल मिलकर उसे अपने सार्वजनिक जीवन में अपनाने का काम किया ?

इसलिए प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इतिहास को टटोल कर हम इस बात को समझें कि अंग्रेज भारत को इतना क्यों बदल पाए ? स्वाधीनता के 75 वर्षों में हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी व्यवस्था का सूत्रपात क्यों नहीं कर पाए ? कुछ अपवादों को छोड़कर।

अगर किसी नयी व्यवस्था अथवा परिकल्पना का सूत्रपात हमनें किया होता तो हमें संतोष होता। हम तो इन 75 वर्षों में उन्हीं संस्थाओं का विस्तार करते गये है जो अंग्रेज यहाँ छोड़ गये थे। ऐसा तो है नहीं कि भारत पर विदेशी शासन पहली बार अंग्रेजों ने ही स्थापित किया हो। अंग्रेजों का राज्य तो बहुत कम समय रहा। इतिहास की दृष्टि से देखें तो 1757 से 1857 तक के जो सौ वर्ष अंग्रेजी काल के हैं, वे तो भारत पर राजनीतिक और सैनिक विजय को पूर्ण करने में समाप्त हुए। 1857 में जब वह राजनीतिक और सैनिक विजय पूर्णता पर पहुँची तो अगले 90 साल में उनकी भारत से विदाई भी हो गयी। इस प्रकार भारत में निष्कंटक एकछत्र राज्य करने का अवसर तो अंग्रेजों को केवल 90 वर्ष मिला और 100 वर्ष उस राज्य को खड़ा करने में उनके खर्च हुए। 190 वर्षों का यह काल अन्य आक्रमणकारियों की तुलना में बहुत कम है। वहीं दूसरी ओर इस्लाम का राज्य भारत में आठवीं शताब्दी से लेकर 1757 तक चला, कुछ लोग तो मानते हैं कि 1857 में भी बहादुरशाह जफर भारत के बादशाह थे। इस पूरे कालखंड में भारत के किसी-न-किसी भाग पर मुस्लिम शासकों ने अपना नियंत्रण बनाये रखा। उन्होंने भारतीय समाज के काफी बड़े हिस्से को तोड़ कर अपने साथ जोड़ लिया। इस्लाम के आधार पर अपनी एक अलग पहचान इस देश में बनायी, लेकिन फिर भी वे भारत की जो परम्परागत संस्थाएँ हैं, भारत की जो पारंपरिक सोच थी, भारत की जो सनातन प्रवृत्ति थी, भारतीयता का जो मूल स्वरूप था और भारत का जो परम्परागत जीवन था उसमें बहुत बड़ा परिवर्तन करने में सफल नहीं हुए। इतिहासकार मानते हैं कि यह मुस्लिम शासन एक प्रकार से शहरों तक सीमित सैनिक शासन था, छावनियों का शासन था और उसका गाँवों में, लोक मर्यादा में, लोक आस्थाओं में और लोकजीवन में प्रवेश नहीं था। अर्थात् भारत की जो आधारभूत संस्थाएँ है, ग्राम हैं, राजस्व की व्यवस्था है, उस सब को मुसलमान नहीं बदल पाए। मुसलमानों से पहले जो आक्रमणकारी आए, उनके बारे में तो कहा जाता है कि वे भारत में आकर भारत के समाज में ही विलीन हो गए। उनका कोई अलग अस्तित्व कहीं दिखायी नहीं देता।

आक्रमणकारियों की इतनी लम्बी शृंखला में केवल अंग्रेज ही भारत की मूल प्रवृत्तियों और परंपराओं को बदलने में सक्षम हो गए सक्षम से भी उपयुक्त रहेगा यह कहना कि सफल हो गए। अंग्रेज हमें हमारी जड़ों से काटने में सफल रहे। हमारी सनातन प्रवृत्ति और संस्कृति की एक तरह से उन्होंने काट ढूँढ़ ली। इसलिए अंग्रेज हमें जड़-मूल से बदलने में सफल हुए। उनके द्वारा निर्मित और उनकी परिकल्पना के अनुसार संचालित संस्थाओं को हम अब भी छाती से चिपका कर चल रहे हैं। हम कोई स्थाई विकल्प नहीं ढूँढ़ पाए, ना ही किसी ऐसी प्रवृत्ति की रचना कर पाए जो अंग्रेजो के द्वारा स्थापित परिकल्पनाओं को बदलने में सफल रहे। सबसे बुरा प्रभाव इसका शिक्षा तंत्र पर पड़ा। स्वाधीनता के 75 वर्ष गुजर जाने के बाद भी राष्ट्र उपयोगी शिक्षा। राष्ट्र निष्ठा से परिपूर्ण शिक्षा और व्यवस्था देने में असफल रहे। राष्ट्र के प्रति कर्तव्य और दायित्व का बोध आम जनता में हम उत्पन्न नहीं कर पाए। शायद इसके पीछे यही कारण रहा हो कि विकल्प के रूप में हम कोई नयी रचना जीवन के किसी क्षेत्र में खड़ी नहीं कर पाए। इसका हमें गहराई के साथ विश्लेषण करना पड़ेगा। क्या हम यह मान लें कि अंग्रेजी संस्थाएँ श्रेष्ठ हैं और इन्हीं के बल पर उन्होंने हमें बचाए रखा ? अगर ऐसा है तो फिर भौगोलिक आजादी तो हमें मिल गई। परंतु मानसिक आजादी के लिए हमें एक और स्वतंत्रता संग्राम चलाना पड़ेगा एवं जिसमें हमारी शैक्षणिक सामाजिक संस्थाएं शासन की कार्यप्रणाली और न्यायपालिका तक में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ेगा।

गांधी से भी पहले आयरलैंड से ऐनी बेसेंट भारत आयी थीं। उनका भी यही कहना था कि भारत को सभ्यता के क्षेत्र में पश्चिम से कुछ लेना नहीं है, अगर लेना है तो इंग्लैंड को भारत से लेना है, भारत को नहीं लेना है। ऐसा ही आत्मविश्वास महात्मा गांधी ने हमारे अंदर जगाया। स्वामी विवेकानन्द केवल सात वर्ष 1893 से 1900 तक, विदेश में रहे। 1900 के बाद अपने हर पत्र में उन्होंने यही लिखा है कि मेरा जीवनकार्य पूरा हो गया। अब कुछ करना शेष नहीं है। मुझे जो भी करना था वह मैं कर चुका हूँ, अब मैं वही नरेन्द्र हूँ जिसको ठाकुर बुला रहे हैं, उनकी वंशी की ध्वनि मुझे सुनायी पड़ रही है, मुझे उनके पास जाना है। इन सात वर्षों में उन्होंने पश्चिमी समाज का बहुत गहरा अध्ययन किया। उसने गुण-दोषों का विवेचन किया। अपनी पत्रावलि में तो भारत के गुण-दोषों का भी उन्होंने निर्ममता के साथ उल्लेख किया है। अंतत: उनका मानना था कि हमें पश्चिम से आर्थिक विकास की गरीबी को मिटाने की प्रेरणा जरूर प्राप्त करनी है, पर जीवनदर्शन के क्षेत्र में हमें उनसे कुछ प्राप्त नहीं करना है।

1909 में जब गांधीजी ने हिंद स्वराज की रचना की, लगभग तभी श्री अरविंद ने बंगाल में जेल से बाहर निकल कर उत्तरपाडा भाषण दिया और उस भाषण में उन्होंने एक ही बात कही कि भारत सनातन धर्म के लिए कार्य कर रहा है, सनातन धर्म के लिए उठ रहा है । स्वामी अरविंद का मानना था कि सनातन धर्म उठेगा तो विश्व उठेगा। हमारे सभी मनीषियों की बातों ने हमें एक ऐसा स्वप्न दिया जिसमें विश्व को कुछ देने की बात थी, विश्व से सब कुछ लेने की नहीं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक लेख में यही कहा है कि भारत के पास विश्व को देने के लिए अमृतमय संदेश है, उस अमृतमय संदेश को देने के लिए ही भारत पराधीनता की हजार वर्षों की कालरात्रियों से जूझता रहा है, उस संदेश को पहुँचाने के लिए ही भारत जीवित है।

हममें से प्रत्येक के मन में यह प्रश्न वर्षों से है कि हमारी यह स्थिति कैसे और क्यों हुई ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास हम सब ने अपने भीतर किया है, इसका उत्तर खोजने की दृष्टि से हम सब को एकाग्र चित्त होकर चिंतन करना पड़ेगा की अंग्रेजों के द्वारा बनाई गई मानसिकता और आदतों से हम बाहर कैसे आएं। वर्तमान सरकार इस दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठा रही हैं जिसमें सेंट्रल विस्टा निर्माण भारतीय सनातन प्रवृत्ति एवं संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के लिए संकल्पबद्ध सरकारी प्रयास सराहनीय हैं। उदाहरण स्वरुप काशी विश्वनाथ कॉरिडोर एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से भारतीयता एवं भारतीय भाषाओं को नई पीढ़ी में संप्रेषित करने के लिए सरकार संकल्पबद्ध दिखायी देती है। कहीं-ना-कहीं भवन से लेकर भूमि तक पर फैली अंग्रेजों की परंपराएं और शासन व्यवस्था ने हमें हमारी सोच से, हमारी परंपराओं से और हमारी आदतों से दूर कर दिया है। भारत का वैशिष्टय उसकी मूल प्रकृति और सनातन चेतना में ही है। भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय समृद्ध संस्कृति में वह सब कुछ है जो एक राष्ट्र को सुचारू रूप से चलाने में सक्षम है।

गगनांचल के इस अंक में हमने ऐसे ही कुछ विषयों पर पड़ताल करने की कोशिश की है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्य के शैक्षणिक विषयों पर गंभीर आलेखों का चयन किया है, ताकि भारत की मूल चेतना से पाठकों को अवगत कराया जा सके।

आइए हम सब मिलकर 'स्वाधीनता के अमृत महोत्सव' पर स्वयं को अपनी मूल प्रकृति में बदलने का संकल्प लें एवं भारत की भारतीयता को संरक्षित करें।

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

आजादी का अमृत महोत्सव

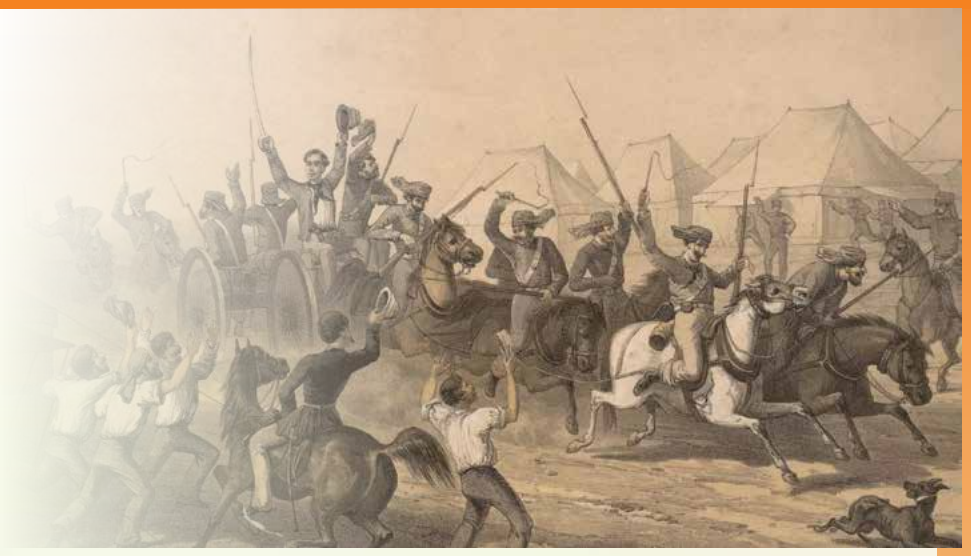

हम कौन थे, क्या हो गए हैं

– डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

भारत की स्वतंत्रता का अमृत जयंती वर्ष चल रहा है। यह एक अवसर है - स्वतंत्र भारत के 75 वर्ष के कार्यों, योजनाओं, सीमाओं, उपलब्धियों और शक्तियों पर दृष्टिपात करने का, साथ ही यह उपयुक्त समय है - भारतीय स्वतंत्रता के शताब्दी वर्ष अर्थात् 2047 के लक्ष्य निर्धारित करने का। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली पीढ़ी लगभग समाप्त हो चुकी है और यदि कोई जीवित भी हैं, तो वे सक्रिय योगदान देने की स्थिति में शायद नहीं हैं। स्वतंत्रता के समय पैदा हुई पीढ़ी भी अपने जन्म की 75 वीं वर्षगाँठ मना रही है। एक स्वतंत्र राष्ट्र के इतिहास में 75 वर्ष बहुत अधिक नहीं होते, फिर भी अतीत के मूल्यांकन और भविष्य के परिदृश्य को समझने के लिए पर्याप्त होते हैं।

आज अवसर है कि हम भारतवासी यह विचार करें कि अंग्रेज़ों के लगभग 200 वर्षों के शासन काल के वे कौन से दुष्परिणाम थे, जिन्होंने भारतवासियों को परतंत्रता की अनुभूति करायी, भारत माता की पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के लिए जोश से भर दिया। भारत माँ के वे हजारों लाखों ज्ञात-अज्ञात सपूत अपना सब कुछ लुटाकर भी हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर निछावर हो गये। प्रश्न यह है कि वे स्वतंत्रता सेनानी कैसे स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखते थे। 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र होने के पश्चात् क्या हम उस स्वप्न को साकार कर पाने में सफल हुए हैं? क्या वे समस्याएँ, शोषण-अत्याचार के बिंदु, जिन्होंने हमारे वीर स्वतंत्रता सेनानियों को विदेशी सत्ता का विरोध करने के लिए प्रेरित किया था, स्वतंत्र भारत में समाप्त हो गये हैं? क्या आज भारत तथा भारतवासी सच्चे अर्थों में स्वतंत्र हैं? क्या मानसिक और वैचारिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई महत्त्व है? क्या सच्ची राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्वतंत्रता हमें प्राप्त है? क्या एक ईस्ट इंडिया कंपनी से मुक्ति पाकर आज अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आमंत्रित करके, उन्हें यहाँ पैर जमाने का अवसर देकर हम ऐतिहासिक

"स्वतंत्रता का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार है - आर्थिक स्वतंत्रता। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत आर्थिक दृष्टि से पूर्ण दिवालिया हो चुका था। हमारे उद्योग-धंधे चौपट हो चुके थे। छोटी-से-छोटी वस्तु भी हमें आयात करनी पड़ती थी। भारत पूरी तरह परावलंबी था। स्वतंत्रता के पश्चात् देश की सरकार ने भारत के आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया। पंचवर्षीय योजनाएँ बनायीं गयीं। कृषि और औद्योगिक विकास के लिए व्यापक नीतियाँ बनाई गईं। सभी प्रकार की मशीनें, उनके कलपुर्जे देश में ही बनाए जाने लगे। हमारे वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, कृषकों और श्रमिकों ने एकजुट होकर कार्य किया, तो हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, पीली क्रांति, जैवक्रांति आदि की सहायता से भारत प्रगति पथ पर तीव्र गति से बढ़ने लगा। मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सरकारी और सार्वजनिक प्रतिष्ठान मिलकर काम करने लगे। स्वदेशी तकनीक और भारतीय कंपनियाँ फूलने-फलने लगीं। इसी बीच विश्व के आर्थिक परिदृश्य को देखते हुए सन् 1985 के आस-पास भारत सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाया। इसके परिणाम स्वरूप बहुराष्ट्रीय विदेशी कंपनियाँ भारत में आने लगीं। अर्थव्यवस्था खुलने लगी। अमेरिका तथा अन्य देशों को भारतीय बाजार आकर्षित करने लगा।"

भूलों को दोहरा तो नहीं रहे हैं?

ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जो आज सामान्य भारतवासी को आंदोलित कर रहे हैं। वह इन प्रश्नों का उत्तर चाहता है।आइए इन प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा करें, ताकि अतीत की आकांक्षाओं के आईने में वर्तमान स्वतंत्र भारत का चेहरा देख सकें।

किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र का अस्तित्व राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के चार स्तंभों पर टिका होता है। स्वतंत्र भारत के ये चारों स्तंभ कितने सुदृढ़ हैं, यह जानने के लिए इन चारों पर एक-एक करके दृष्टिपात करते हैं। सबसे पहले तो राजनीतिक स्वतंत्रता पर विचार किया जाए। 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र होने के पश्चात् 26 जनवरी, 1950 को अपना संविधान लागू करके भारत सही अर्थ में संप्रभु गणतंत्र राष्ट्र बना। हमारे संविधान में भारतीय लोकतंत्र का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कर्त्तव्य और शक्तियों का वर्णन किया गया और आवश्यकतानुसार संविधान में संशोधन की भी उपयुक्त व्यवस्था की गई। इन सब कारणों से भारत का लोकतंत्र पर्याप्त सफल रहा है।

भारत माँ की कोख से जन्मे पाकिस्तान की भाँति हमारे देश के लोकतंत्र पर कभी भी संकट के बादल नहीं मंडराए। तानाशाही शक्तियों ने जब भी सिर उठाने की कोशिश की, हमारी जनता ने उन्हें कुचल दिया। हमारी न्यायपालिका और लोकतंत्र का चौथा स्तंभ पत्रकारिता, अत्यंत निर्भीकता और कुशलता से अपने दायित्व का निर्वाह करते रहे हैं।

इस सबके बावजूद कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में लोकतंत्र का मज़ाक उड़ाया जा रहा है। केंद्र और राज्यों की राजनीति में प्रचलित वंशवाद, चुनावों में हिंसा, धाँधली तथा भ्रष्टाचार, धर्म, जाति आदि के नाम पर वोटों की राजनीति, चुनाव के समय राजनीतिक दलों और नेताओं द्वारा जनता को झूठे आश्वासन, वायदे और सब्जबाग दिखाना, विधानसभाओं और संसद में असामाजिक और अराजक तत्त्वों का चुना जाना, वहाँ होने वाला शोरगुल तथा गाली-गलौज, विधायकों-सांसदों का स्वयं को नियम-कानून से ऊपर मानना, भ्रष्टाचार और घोटाले में लिप्त किसी भी दल के नेता का सामने विरोध और पीठ पीछे सहयोग, कुर्सी पाने या बचाने के लिए सरेआम सांसदों-विधायकों की खरीद-फरोख्त ने पिछले सात दशक में भारतीय नेताओं की छवि को इतना धूमिल कर दिया कि आज प्रत्येक सभ्य-सुसंस्कृत व्यक्ति नेता बनने से कतराता है और इन्हीं नेताओं के कंधों पर टिके भारतीय लोकतंत्र और राजनीतिक स्वतंत्रता रूपी स्तंभ की स्थिति कितनी सुदृढ़ है, यह स्वयं स्पष्ट है।

स्वतंत्र राष्ट्र का दूसरा स्तंभ है - सांस्कृतिक स्वतंत्रता, क्योंकि किसी भी राष्ट्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग होती है - उसकी संस्कृति। सांस्कृतिक स्वतंत्रता अपने भीतर भाषा, भोजन, भूषा (वेशभूषा), भ्रातृत्व भावना अर्थात् समग्र जीवन को समाहित किए होती है। भारतीय संस्कृति की विश्व में पहचान जिन बातों से है, वे हैं - हमारे प्राचीन जीवन मूल्य। जैसे 'सत्यमेव जयते', 'अहिंसा परमो धर्मा', 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई', 'वसुधैव कुटुंबकम', 'अतिथि देवो भव;', 'जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी'. 'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया', ' प्राण जाए पर वचन न जाए' आदि।

भारत प्राचीन काल में सोने की चिड़िया था, फिर भी हमने कभी भौतिक उन्नति को अपना लक्ष्य नहीं बनाया; भौतिक सुख-सुविधा के साधनों को महत्त्वपूर्ण नहीं माना। हमारे सामने तो सदा 'सादा जीवन, उच्च विचार' का ही आदर्श रहा। सत्य-सरलता पर आधारित शुद्ध सात्विक जीवन ही हमें सदा प्रिय रहा। नश्वर संसार के माया मोह के स्थान पर, हमने आध्यात्मिक विकास, मानवता के उत्थान और मानव मात्र की प्रगति पर अपना ध्यान केंद्रित किया। हमारा संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन स्वदेशी और स्वभाषा पर टिका था। विदेशी वस्तुओं, विचारों और वासनाओं का हमने दृढ़तापूर्वक विरोध किया था, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जन्मी हमारी पीढ़ी धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति, सभ्यता और जीवन-दर्शन से दूर होती गई। हमारी कथनी और करनी में अंतर आने लगा। अंग्रेज़ तो चले गए, परंतु हमने अंग्रेज़ियत को कसकर पकड़ लिया। विदेशी भाषा, खान-पान, पहनावा, उनका समग्र जीवन दर्शन जो पूरी तरह भोग पर केंद्रित है, हमें आकर्षित करने लगा। हमने मुखोटे पहन लिए भारतीयता के, और भीतर से होते चले गए विदेशी, क्योंकि हममें इतना नैतिक बल नहीं था कि हम सरेआम विदेशी मानसिकता का समर्थन कर पाते या इसे खुलेआम स्वीकार कर पाते। यह कार्य हमारी अगली पीढ़ी ने किया। उदारीकरण के दौर में पैदा हुई पीढ़ी, जो पब्लिक स्कूलों

में पढ़कर आज जवान हो गई है, जो महानगरों से आगे बढ़कर आज नगरों, कस्बों और गाँवों तक पहुँच गई है, उस पीढ़ी को विदेशी वस्तुओं, विचारों और वासनाओं से कोई परहेज नहीं है, बल्कि उसे इस पर गर्व है। स्वदेशी, जो हमारे स्वतंत्रता संग्राम की धुरी थी, वह आज पूर्णत: उपेक्षित पड़ी कराह रही है। आज भौतिक विकास ही सच्चा विकास और भौतिक सुख-साधनों में ही सच्चा सुख माना जाने लगा है। आज सब धर्मों से ऊपर हो गया है - टका धर्म। सत्य, अहिंसा, परोपकार सब भौतिकता की चकाचौंध के नीचे अपनी चमक खोते जा रहे हैं। ये जीवन-मूल्य आज पुस्तकों, भाषणों या आदर्श वाक्यों की शोभा बनकर रह गए हैं। हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी दासी और अंग्रेजी महारानी बनी बैठी है। राष्ट्रगान के सम्मान में गर्व से सिर उठाकर, सीना तानकर, सावधान की मुद्रा में खड़े होना तक हम भूल गए हैं। कई बार तो ऐसा लगता है कि 1947 से पहले हम जितना परतंत्र थे, मानसिक रूप से आज हम उससे कहीं अधिक परतंत्र हो चुके हैं और हमें इसका अहसास तक नहीं है।

स्वतंत्र राष्ट्र का तीसरा आधार है - सामाजिक स्वतंत्रता। भिन्न-भिन्न वर्गों का समूह ही समाज कहलाता है। धर्म, जाति, रंग, भेष, भाषा, खान-पान, पर्व-त्योहार आदि की जितनी विविधता भारत में है, संभवत विश्व में कहीं नहीं है। अंग्रेज़ों ने हमारी इस विविधता को फूट रूपी अस्त्र के रूप में प्रयोग करके भारतीय समाज को जाति, धर्म, रंग, प्रदेश आदि के आधार पर बाँट दिया और आसानी से हम पर शासन किया। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं ने इन भेदभावों को समाप्त करने के लिए संविधान में अनेक प्रावधान रखे। समानता का अधिकार मौलिक अधिकार बनाया गया। सभी भारतीय नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के अनेक प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके सुखद परिणाम अब दिखाई देने लगे हैं। धर्म, जाति, रंग, लिंग आदि के आधार पर होने वाला भेदभाव काफी कम हो गया है। समाज के दबे-पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास के परिणामस्वरूप इन वर्गों की स्थिति सुधरी है। स्त्रियों की दशा में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। आज भारतीय स्त्रियाँ पढ़-लिखकर सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं, उच्च पद प्राप्त कर रही हैं, यश अर्जित कर रही हैं। भारतीय समाज आज कहीं अधिक स्वस्थ, समृद्धि, सफल और समर्थ दिखाई दे रहा है, परंतु स्त्रियों के साथ बढ़ते बलात्कार, बच्चियों का यौन शोषण, दलितों पर अत्याचार, बाल मजदूरी को विवश हमारे नौनिहाल, सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलसते अरमान, आत्महत्या करते किसान, बेरोजगारी से त्रस्त युवा, क्या हमारे स्वस्थ समाज के सुंदर चित्र पर बदनुमा दाग़ की तरह नहीं दिखते?

समाज संबंधों का ढाँचा है। परिवार हमारे समाज की सर्वाधिक सशक्त कड़ी रही है। उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाजारीकरण और आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में स्वतंत्र भारत का वर्तमान समाज भी अंधाधुंध दौड़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी परिवार व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने के कगार पर है। संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं। एकल परिवार और उनमें रहते – पति, पत्नी और बच्चे।संबंधों की आत्मीयता, मिठास और सहजता का स्थान ले लिया है - प्रदर्शन, स्वार्थ और कृत्रिमता ने। पैसा कमाने की धुन में लगे पति-पत्नी सुख-सुविधा के साधन तो जुटा लेते हैं, परंतु उनके संबंधों का स्नेह-रस सूख जाता है। वे मशीन की भाँति हो जाते हैं। सब अपने-अपने दायरों में कैद। इसी से उत्पन्न हो रहे हैं - कुंठा, तनाव, असुरक्षा, अवसाद जैसे महारोग। इन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति या समाज, बाहर से तो हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ दिखाई देते हैं, परंतु भीतर से अत्यंत दुर्बल और असहाय होते हैं। हमारा आज का स्वतंत्र भारत का समाज हँसना भूल गया है। आज हमारा समाज मस्तिष्क के नियंत्रण में फँसकर हानि-लाभ और स्वार्थ-साधना तक ही सीमित हो गया है। क्या आपको लगता है कि हम सामाजिक रूप से सचमुच स्वतंत्र हैं, स्वस्थ हैं, सफल हैं, सक्षम हैं?

स्वतंत्रता का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार है - आर्थिक स्वतंत्रता। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत आर्थिक दृष्टि से पूर्ण दिवालिया हो चुका था। हमारे उद्योग धंधे चौपट हो चुके थे। छोटी-से-छोटी वस्तु भी हमें आयात करनी पड़ती थी। भारत पूरी तरह परावलंबी था। स्वतंत्रता के पश्चात् देश की सरकार ने भारत के आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया। पंचवर्षीय योजनाएँ बनायीं गयीं। कृषि और औद्योगिक विकास के लिए व्यापक नीतियाँ बनायीं गयीं। सभी प्रकार की मशीनें, उनके कलपुर्जे देश में ही बनाए जाने लगे। हमारे वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, कृषकों और श्रमिकों ने एकजुट होकर कार्य किया, तो हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, पीली क्रांति, जैवक्रांति आदि की सहायता से भारत प्रगति पथ पर तीव्र गति से बढ़ने लगा। मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सरकारी और सार्वजनिक प्रतिष्ठान

मिलकर काम करने लगे। स्वदेशी तकनीक और भारतीय कंपनियाँ फूलने-फलने लगीं। इसी बीच विश्व के आर्थिक परिदृश्य को देखते हुए सन् 1985 के आसपास भारत सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाया। इसके परिणाम स्वरूप बहुराष्ट्रीय विदेशी कंपनियाँ भारत में आने लगीं। अर्थव्यवस्था खुलने लगी। अमेरिका तथा अन्य देशों को भारतीय बाजार आकर्षित करने लगा। बड़ी संख्या में विदेशी कंपनियों के भारत आगमन से विदेशी वस्तुएँ भारतीय बाजार में उपलब्ध होने लगीं। विदेशी वस्तु, विचार, व्यवहार, व्यक्ति सब कुछ को श्रेष्ठ मानने वाले 'स्वतंत्र' भारतीयों ने इन विदेशी वस्तुओं को हाथों-हाथ लिया। स्वदेशी वस्तुओं की माँग घटने लगी। स्वदेशी कंपनियाँ घाटे में जाने लगीं। विदेशी कंपनियों ने मौका पाकर उन्हें खरीदना शुरू कर दिया, मगर बहुत सावधानी और चालाकी से। ईस्ट इंडिया कंपनी को जो कार्य करने के लिए सन् 1611 से 1757 तक लगभग डेढ़ सौ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने मिलजुल कर यह कार्य मात्र 25 वर्षों में ही कर डाला। सुबह उठकर किए जाने वाले ब्रश से लेकर रात्रि में सोने तक इस्तेमाल होने वाले नाईट लैंप तक सभी छोटी-बड़ी वस्तुएँ, हमारे होली-दिवाली जैसे लोकप्रिय त्योहारों के लिए इस्तेमाल होने वाली पिचकारी, दीए, लड़ियाँ तक चीन से आने लगीं। खानपान, मनोरंजन, खरीददारी आदि पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का शिकंजा कसता गया। सामान्य भारतवासी अधिक सुख-सुविधा साधन-संपन्न होते गए। भारत एक आर्थिक महाशक्ति बनने लगा, वहीं दूसरी ओर विदेशी ऋण का बोझ बढ़ता गया। स्वदेशी कंपनियाँ उदारवाद की बाढ़ में डूबने लगीं। हमें क्या खाना है, क्या पहनना है, क्या देखना है, कहाँ घूमने जाना है, यह सब विदेशी कंपनियाँ तय करने लगीं। वे लगातार हमारी सोच और दृष्टि को दूषित करती रहीं। हमें उधार लेकर घी पीने का पाठ पढ़ाती रहीं। हर भारतवासी के मन में अनंत, असीम, अतृप्त इच्छाएँ जगाने लगीं। दिवास्वप्न दिखाए जाने लगे। लोग अपनी चादर से बाहर पाँव पसारने लगे।'यूज एँड थ्रो' की नीति वस्तुओं, व्यक्तियों, कर्मचारियों यहाँ तक कि संबंधों पर भी हावी होने लगी।

यह दौर जब अपने चरम की ओर बढ़ रहा था, तभी राष्ट्रवादी मूल्य एवं भारतीय दृष्टि से युक्त, भारतीय सांस्कृतिक चिंतन पर केंद्रित एक ऐसी सरकार ने देश की बागडोर संभाली, जिसने विदेशी और पाश्चात्य प्रभाव की आँधी को रोकने के प्रयास शुरू किए। दृढ़ संकल्प शक्ति से युक्त मजबूत नेतृत्व, ईमानदार नीयत और अभूतपूर्व कर्मठता, अनुशासन एवं समर्पण भावना किस प्रकार अल्प समय में सकारात्मक परिणाम ला सकती है, इसका साक्षात उदाहरण सन् 2014 में बनी केंद्र सरकार के रूप में देखा जा सकता है। इस सरकार ने आत्मनिर्भर भारत, स्वस्थ भारत, स्वच्छ भारत जैसे संकल्पों के साथ 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' पर जोर दिया। उदासीन, निराश और अन्यमनस्क होते जा रहे भारत में सहसा एक नवीन जागृति आई। युवा भारत अंगड़ाई लेकर अपने सामर्थ्य को पहचानकर खड़ा होने लगा और देखते-ही-देखते भारत के भीतर ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में भारतीय नेतृत्व क्षमता का प्रभाव दिखाई देने लगा। कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी के बीच भारतीय नेतृत्व की सूझ-बूझ और सही समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता ने पूरे विश्व में भारत का मान, सम्मान और गौरव बढ़ा दिया। आत्मविश्वास से भरपूर भारत अब सधे हुए कदमों से स्वतंत्रता के अमृत जयंती वर्ष से स्वतंत्रता के शताब्दी वर्ष की ओर पूरी आन-बान और शान से बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है।

अंत में, स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के इस पावन अवसर पर हम सभी सजग भारतवासियों को राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के मार्ग में आ रही समस्याओं, शेष बचे प्रश्नों पर गंभीरता से चिंतन करना चाहिए। अतीत से सीख लेकर, वर्तमान में पाँव जमाकर, भविष्य की चुनौतियों के समाधान सोचते हुए राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त जी की निम्नलिखित पंक्तियों को ध्यान में रखते हुए, हमें यह तय करना चाहिए कि सन् 2047 में जब हम भारत की स्वतंत्रता का शताब्दी वर्ष गर्व से मना रहे होंगे, तो उसे वहाँ तक पहुँचाने में हम क्या भूमिका निभा सकते हैं और कैसे –

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।। आओ मिल-बैठकर, विचारें ये समस्याएँ सभी।।

❖

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्री राम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली-7
मोबाइल 9811036140, ईमेल drrvshrma@gmail.com

आजादी के अमृत वर्ष में संविधान और हम

– डॉ. साकेत सहाय

आज़ादी का अमृत महोत्सव इस विषय पर हमें चिंतन, विमर्श, सीखने-समझने का अवसर प्रदान करता है। भारतीयता एवं मानवता की रक्षा हेतु यह जरूरी है कि हम दुनिया के इस सबसे बड़े एवं लचीले संविधान की व्यापकता को समझें। भारतीयता की मूल भावना हमें पंथ, सम्प्रदाय से इतर एक भारतीय नागरिक बनने को अभिप्रेत करती है जिसके लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि है। हमारा संविधान इसी मूल भावना की बात करता है। संविधान, हमारे लिए सबसे बड़ा और पवित्र ग्रंथ है। एक ऐसा ग्रंथ जिसमें हमारे समाज की, हमारी परंपराओं, मान्यताओं के समावेश के साथ ही हमारी जीवन–शैली को साकार करने का भी आख्यान है वहीं हमारी चुनौतियों का समाधान भी है। हमारा संविधान दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के नागरिकों को जहां अधिकारों के प्रति सजग रखता है, वहीं उसे कर्तव्यों के प्रति जागरूक भी बनाता है। संविधान की रक्षा के लिए यह जरूरी है कि हम अपने दायित्वों को समझें। अधिकारों और कर्तव्यों के बीच अटूट रिश्ता है। हम लोग ही संविधान की ताकत हैं, इसकी प्रेरणा हैं और हम ही इसका उद्देश्य हैं।

भारत ब्रिटिश पराधीनता से मुक्ति का अमृत महोत्सव मना रहा है। स्वतंत्रता अपने-आप में मन को प्रफुल्लित और उत्साहित कर देने वाला भाव है। गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरित मानस' में लिखते हैं –'पराधीन सपनेहू सुख नाही' तुलसीदास जी का यह वाक्य कितना भी प्रचलित क्यों न हो, इसका महत्व सदैव रहेगा। स्वाधीनता बिना सब व्यर्थ है। संविधान हमारी उसी आज़ादी का लिखित दस्तावेज है जो इस देश की सर्वोच्च विधि है। वास्तव में संविधान केवल विधान भर नहीं है, यह भारतीय परंपरा, संस्कृति, लोकतंत्र को भी परिभाषित करता है। भारतीय संस्कृति से जुड़ा जो दर्शन है, जो उदात्त जीवन परम्पराएं हैं, संविधान उनको एक तरह से व्याख्यायित करता है। भारत ने सम्पूर्ण विश्व को वसुधैव कुटुंबकम् के सूत्र के साथ अपना परिवार मानने का संदेश दिया है। हमारा संविधान इस उदात्त विचार का एक प्रकार से लिखित रूप है।

संविधान का मूल प्रारूप भारतीयता की मूल भावना को परिभाषित करता है। संविधान के मूल प्रारूप में भारतीय संस्कृति का कलात्मक चित्रण है। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आग्रह पर बिहार के महान सपूत शांति निकेतन के कलागुरु नन्दलाल बसु ने संविधान में कलात्मक चित्र उकेरे। राजस्थान के महान कलाकार कृपाल सिंह शेखावत ने भी संविधान प्रारूप के कलात्मक स्वरूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय संविधान के इस कलात्मक चित्रण में वैदिक काल से 20 वीं सदी तक की सनातन भारतीय परंपरा, भारतीय सभ्यता के आधारभूत ढांचे की समझ के साथ रामायण, महाभारत और भारतीय संस्कृति से महान परंपराओं का संविधान के प्रारूप में विशेष चित्रण किया गया है। भारतीय संविधान के इस कलात्मक स्वरूप से भारतवर्ष की अपूर्व सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत का गौरव-बोध

होता है। इस गौरव-बोध में देश के आदर्शों, उद्देश्यों व मूल्यों का संचित प्रतिबिंब हैं।

भारतीय संविधान के निर्माण में 15 विदुषी महिलाओं ने अहम भूमिका निभाई। 389 सदस्यीय संविधान सभा में 15 महिलाए शामिल थीं। यह स्वतंत्र भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में प्रगामी पथ सिद्ध हुआ। साथ ही इन 15 महान विदुषी महिलाओं में शामिल अम्मू स्वामीनाथन, बेगम एजाज रसूल, दुर्गाबाई देशमुख, रेणुका रे, कमला चौधरी, हंसा जीवराज मेहता, सरोजनी नायडू, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर, लीला रॉय, विजयलक्ष्मी पंडित, पूर्णिमा बनर्जी, एनी मसकैरिनी, दक्षायनी वेलायुधन, मालती चौधरी जैसे प्रतिष्ठित नाम शामिल रहे।

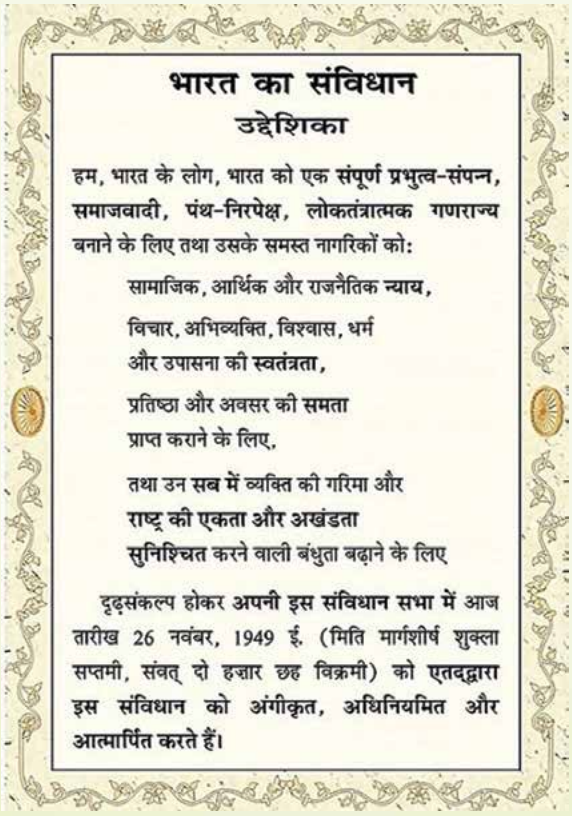

महान स्वतंत्रता सेनानी, सांसद तथा हिंदी के महान साहित्यकार सेठ गोविंददास 17 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में दिए गये भाषण के शुरुआती अंश में कहते हैं-

''हमारा देश संसार के छह प्राचीनतम देशों में एक है। वे प्राचीनतम देश हैं -भारत, चीन, यूनान, बेबीलोनिया और मैसोपोटामिया। इन छह प्राचीनतम देशों में से पाँच देशों में हमें उनकी प्राचीन संस्कृति दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल भारत ही संसार के प्राचीनतम छह देशों में से एक ऐसा देश है जिसमें आज भी हमें उसकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की परंपरा हर क्षेत्र में दिखाई देती है।''

(स्रोत -पुस्तक संस्कृति, अंक जनवरी-मार्च, 2017, लेख -सेठ गोविंददास-विदेशी भाषा में पारित संविधान)

भारत का संविधान इन सभी उदात्त परंपराओं को व्याख्यायित करता है। आजादी के इस अमृत वर्ष में देश की भावी समृद्धि हेतु यह आवश्यक है कि हम इस संचित प्रतिबिंब को जाग्रत रखें। भारतीय संविधान की उद्देशिका के 'हम भारत के लोग' शब्दों से लोकतंत्र का आदर्श स्वत: स्पष्ट होता है। संविधान की उद्देशिका के आदिवाक्य में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृ भाव का वर्णन है। चारों आदिवाक्य की उपस्थिति भारतीय संस्कृति के समृद्ध विरासत की झलक हैं। इन आदि वाक्यों की सशक्त उपस्थिति से भारत का संविधान अधिकारों और कर्तव्यों के संतुलन की सीख देता है। संविधान में बड़ी स्पष्टता से व्यवस्था के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को परिभाषित किया गया है। विधायिका विधि बनाती है, कार्यपालिका उन्हें लागू करती है और न्यायपालिका इन विधियों का निर्वचन करती है। संविधान यह अपेक्षा करता है कि सरकार के तीनों अंगों में सामंजस्यपूर्ण संबंध हो। संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को विशिष्ट स्थान दिया है। वह नागरिकों के मूल अधिकारों का सजग प्रहरी है। लोकतंत्र के सशक्तिकरण का दायित्व तीनों ही संस्थाओं पर है।

भारत में लोकतंत्र के भविष्य को लेकर बाबा साहब संविधान सभा की समापन सभा में कहा था- ''छब्बीस जनवरी, 1950 को देश सही अर्थों में आजाद हो जाएगा। उसकी आजादी का क्या होगा? आजादी बरकरार रख पाएगा या उसे खो देगा। यह पहला विचार है, जो मेरे दिमाग में आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी आजाद नहीं रहा, मुद्दा यह है कि पहले भी वह अपनी आजादी खो चुका है। क्या यह फिर अपनी आजादी खो देगा? यह ऐसा विचार है जो मुझे भविष्य को लेकर चिंतित कर देता है। जो चीज मुझे सबसे ज्यादा परेशान करती है, वह है भारत न सिर्फ एक बार पहले भी अपनी आजादी खो चुका है, बल्कि यह इसलिए हुआ कि इसके अपने ही कुछ लोगों ने गद्दारी की। जब मुहम्मद बिन कासिम की सेना ने हमला किया था, तो उसने धार के कुछ सेनापतियों को घूस दी थी। इन सेनापतियों ने बाद में धार के राजा की तरफ से लड़ने से इनकार कर दिया था। एक जयचंद था, जिसने पृथ्वीराज से लड़ने के लिए मुहम्मद गोरी

को आमंत्रित किया था। जब शिवाजी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, तो कई राजाओं ने मुगल सम्राट का साथ दिया था। जब ब्रिटिश सिख शासकों को परास्त करने की कोशिश कर रहे थे, तब प्रमुख सेनापति गुलाब सिंह चुप बैठ गया था, उस कठिन वक्त में उसने अपने राज्य की कोई मदद नहीं की।''

ये विचार मुझे इसलिए भी परेशान कर रहे हैं कि जाति और तरह-तरह के विश्वासों जैसे हमारे दुश्मन तो हैं ही, साथ ही हमारे यहाँ अब बहुत सारे राजनीतिक दल भी होंगे, जिनका नजरिया हर मुद्दे पर एक-दूसरे का विरोधी हो सकता है। क्या भारतीय अपने देश को इन विश्वासों और मतभेदों से ऊपर रख सकेंगे? मुझे नहीं पता, लेकिन अगर पार्टियां अपने विचार को अपने देश से ऊपर रखेंगी तो हमारी आजादी हमेशा के लिए खतरे में पड़ जाएगी । हमें इस खतरे से देश को बचाना होगा। हमें यह प्रण लेना चाहिए कि हम अपनी आजादी की रक्षा अपने खून की अंतिम बूंद तक करेंगे।

आजादी निश्चित तौर पर खुशी का कारण होती है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आजादी ने हमें बड़ी जिम्मेदारी भी सौंपी है। आजादी का अर्थ है उस मौके को खो देना, जब हर गलत चीज की जिम्मेदारी ब्रिटिश शासकों पर थोपी जा सकती थी। अगर अब कुछ गलत होता है, तो उसके लिए कोई और नहीं, हम खुद जिम्मेदार होंगे। अब गलत होने का खतरा बहुत बड़ा है।

(दैनिक हिंदुस्तान, दिल्ली, संपादकीय पृष्ठ, संविधान सभा के समापन भाषा का संपादित अंश, लेखक भीमराव अम्बेडकर, 26.01.2016 को प्रकाशित)

बाबा साहब के इस संबोधन अंश से निश्चित रूप से एक दिशा और सबक मिलती है। वास्तव में देश के निवासियों के लिए सबसे बड़ा संदेश है देश हित के लिए कार्य करना। यहीं सब कुछ है। अगर हम अपनी आजादी के 74 वर्षों के सफर को देखें तो एक हद तक हमने इस लक्ष्य को हासिल किया है, जिसमें इस देश की संविधान का बहुत बड़ा हाथ रहा है। एक व्यक्ति के लिए भले ही 74 वर्ष का समय बहुत ज्यादा हो, परन्तु एक राष्ट्र के लिए यह समय बहुत अधिक नहीं होता और वो भी भारत जैसे देश के लिए जो सदियों की दासता के बाद स्वाधीन हुआ हो और आजादी में उसे सदियों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से टूटे भारत की विरासत मिली हो। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत ने जो सफलता पाई है उसमें इस देश की संवैधानिक व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है। चाहे शिक्षा हो, खाद्यान्न हो या स्वास्थ्य सभी में भारत ने प्रगति दर्ज की है। आज भारत की 95 से 100 प्रतिशत परिवारों की पहुँच बिजली और पीने के पानी तक हैं। बैंक खाताधारी महिलाओं की संख्या बढ़ी है। उदाहरण के लिए तमिलनाडु में 92 प्रतिशत जबकि बिहार में 77 प्रतिशत महिलाओं के पास बैंक खाते है।

परंतु आज भी यह देश कई चुनौतियों के बीच जूझ रहा है। इस देश का आम नागरिक कई बार यह सोचता है कि क्या हमें आजादी मिली भी हैं अथवा नहीं ? हाल में जारी पांचवें राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के निष्कर्षों के अनुसार देश में अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी जैसी समस्यायें आज भी व्याप्त है। प्रति व्यक्ति आय की असमानता है। इन सभी के बावजूद देश सभी को समान अवसर देने के सिद्धांतवादी रुख में सफल रहा है। भारत का संविधान हमें लैंगिक समानता, न्यायिक समानता का अधिकार देता है। नागरिकों के अधिकार भी सुरक्षित रहने की गारंटी देता है। फिर भी काफी कमियां है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु तथा बिहार जैसे राज्यों में विकास की काफी असमानता मौजूद है।

ऐसे में राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ ही देश की जनता को आजादी के अमृत वर्ष में विशेष रूप से संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद के समापन भाषण की इन पंक्तियों को स्मरण करना होगा। संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष देशरत्न डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने समिति को संबोधित करते हुए कहा था "यदि लोग, जो चुनकर आएंगे योग्य, चरित्रवान और ईमानदार हुए तो वह दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना देंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव हुआ तो संविधान देश की कोई मदद नहीं कर सकता। आखिरकार एक मशीन की तरह संविधान भी निर्जीव है। हमारे में सांप्रदायिक, जातिगत, भाषागत और प्रांतीय अंतर है। इसके लिए दृढ़ चरित्र वाले और दूरदर्शी लोगों की जरूरत है जो छोटे छोटे समूह तथा क्षेत्रों के लिए देश के व्यापक हितों का बलिदान न दें।"

इस संबोधन से स्पष्ट है कि देश को एक सशक्त, पारदर्शी नेतृत्व की जरूरत प्रारंभ से ही रही है। ऐसा नेतृत्व जो देश के

व्यापक हितों को समझे। न कि छोटे-छोटे समूहों तथा क्षेत्रों के लिए देश के व्यापक हितों का बलिदान करें। यह सही है कि राष्ट्र की सफलता में नेतृत्व शक्ति का बहुत बडा हाथ होता है, परंतु इस नेतृत्व शक्ति की सशक्तता में सरकार के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में सामंजस्यपूर्ण संबंधों के साथ ही जनता की बड़ी भूमिका होती है। देश को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने में इनकी भूमिका स्पष्ट है और इनकी भूमिका को रेखांकित करने में संचार माध्यमों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि जनमत निर्माण में इनकी स्पष्ट भूमिका है।

हम सौभाग्यशाली है कि हमारा संविधान इनकी स्पष्ट व्याख्या करता है। पर कई दफा ईमानदार नेतृत्व के अभाव में हम इस व्याख्या को समझने में असफल रहे है ऐसे में संविधान कहाँ दोषी? यहीं पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद के उद्‌द्बोधन को समझने की आवश्यकता है।

आजादी का अमृत महोत्सव इस विषय पर हमें चिंतन, विमर्श, सीखने-समझने का अवसर प्रदान करता है। भारतीयता एवं मानवता की रक्षा हेतु यह जरूरी है कि हम दुनिया के इस सबसे बड़े एवं लचीले संविधान की व्यापकता को समझें। भारतीयता की मूल भावना हमें पंथ, सम्प्रदाय से इतर एक भारतीय नागरिक बनने को अभिप्रेत करता है जिसके लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि है। हमारा संविधान इसी मूल भावना की बात करता है। संविधान, हमारे लिए सबसे बड़ा और पवित्र ग्रंथ है। एक ऐसा ग्रंथ जिसमें हमारे समाज की, हमारी परंपराओं, मान्यताओं के समावेश के साथ ही हमारी जीवन-शैली को साकार करने का भी आख्यान है वहीं हमारी चुनौतियों का समाधान भी है। हमारा संविधान दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के नागरिकों को जहां अधिकारों के प्रति सजग रखता है वहीं उसे कर्तव्यों के प्रति जागरूक भी बनाता है। संविधान की रक्षा के लिए यह जरूरी है कि हम अपने दायित्वों को समझें। अधिकारों और कर्तव्यों के बीच अटूट रिश्ता है। हम लोग ही संविधान की ताकत हैं, इसकी प्रेरणा हैं और हम ही इसका उद्देश्य हैं।

भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार रहे भारतरत्न अंबेडकर ने समिति के अध्यक्ष को संविधान सौंपते वक्त देश को स्मरण कराते हुए कहा था- 'भारत पहली बार आजाद हुआ 1947 में, या गणतंत्र बना ऐसा नहीं है भारत पहले भी आजाद था। आज़ादी तो हो गई लेकिन क्या इसको बनाए रख सकते हैं?' बाबा साहब का चिंतन हम सभी को सोचने का, विमर्श करने का, जागरुक करने का अवसर प्रदान करता है।

प्रसंगत: भारत के सशक्त लोकतंत्र के लिए विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका का आदर्श समन्वय स्थापित हो इस हेतु भारत का संविधान महत्वपूर्ण अवसर देता है। इस हेतु यह जरूरी है कि सरकारों के साथ समाज के प्रत्येक वर्ग को संविधान के बारे में जागरुक किया जाए। आजादी का अमृत महोत्सव यह अवसर प्रदान करता है। जब भारतीय संविधान को सशक्त करने हेतु इसके समस्त निवासियों में भारतीय संविधान के आदिवाक्य में विद्यमान तत्त्व यथा, न्याय, स्वाधीनता, समानता एवं बंधुत्व की भावना के प्रसार में हम सभी अपना योगदान दें। आजादी के अमृत वर्ष का मूल उद्देश्य यही है।

यह भारत की विविधता, व्यापकता ही है कि संसार के प्राचीनतम छह देशों यथा, भारत, चीन, यूनान, बेबीलोनिया और मैसोपोटामिया में से भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें आज भी हमें उसकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की परंपरा हर क्षेत्र में दिखाई देती है। हालांकि उदारीकरण के बाद इस सशक्त एवं जीवंत संस्कृति और सभ्यता पर छींटे पड़े है। आजादी के अमृत वर्ष में हमारा यह संकल्प होना चाहिए कि आधुनिक भारत ऐसा भारत होना चाहिए जिसमें भारतीय दर्शन की भी झलक हो और आधुनिक परम्पराओं का समावेश हो। भारतीय संविधान इसे परिपुष्ट करता है।

आइए, आजादी के अमृत वर्ष में अपने विशाल गणतंत्र के लिए गौरव करें। अपनी भावी पीढ़ी की समृद्धि के लिए कार्य करें। यह देश सभी का है, एक नागरिक के रूप प्रतिबद्धता एवं ईमानदारी के साथ कार्य करें। इस देश की समृद्धि के लिए सरकार एवं व्यवस्था को समाजपरक दृष्टि एवं राष्ट्रभाव के साथ आगे बढ़ना होगा, आजादी के अमृत वर्ष का यही सच्चा संकल्प होगा।

❖

लेखक एवं शिक्षाविद, संप्रति -वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
मण्डल कार्यालय-पटना (दक्षिण), पंजाब नेशनल बैंक
बैंक रोड, चांदपुरा भवन, पटना-8000001
संपर्क – 08800556043, ई-मेल – hindisewi@gmail.com

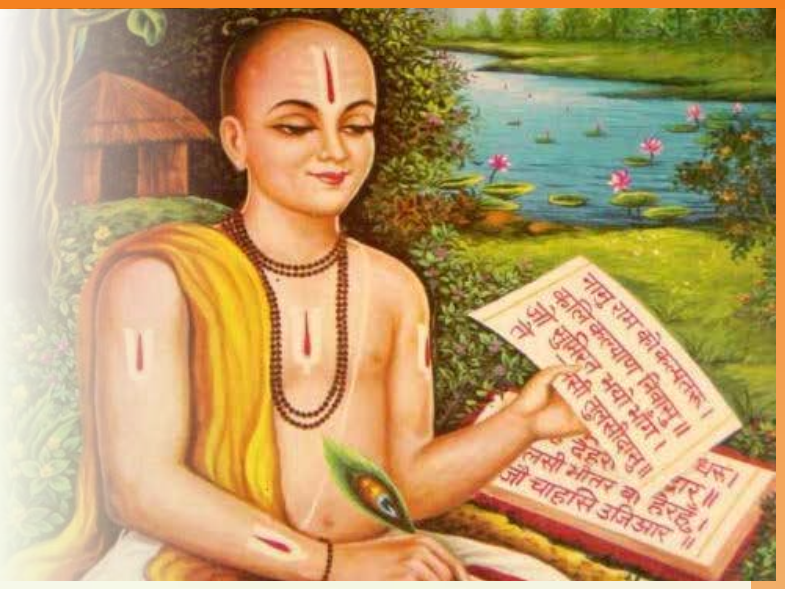

तुलसी की लोकतात्विक दृष्टि

– प्रो. उमापति दीक्षित

"गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत रामकथा ठीक वही नहीं है जो परंपरागत है। श्री रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में 'उन्होंने रामकथा का मध्यकालीनीकरण किया है। मध्यकालीनीकरण का तात्पर्य 'उन आदर्शों' तथा धारणाओं की स्वीकृति से है' जो पौराणिक चेतना से विकसित होने के बावजूद उनसे भी पृथक् तथा परवर्ती है और जो तत्कालीन समाज में परिव्याप्त हैं।' इस मध्यकालीनीकरण के द्वारा गोस्वामी जी ने अतीत को वर्तमान से जोड़ा है, वेदशास्त्र अनुप्राणित शिष्ट संस्कृति को लोकमानस की सहज व स्वाभाविक पद्धति में स्थानांतरित किया है। उनका 'रामचरितमानस' लोकमत-प्रधान ग्रंथ है, जिसमें जनसमुदाय की प्रवृत्तियों, रीति-रिवाजों, उत्सवों, त्योहारों आदि का सम्यक् समावेश मिलता है। उन्होंने मुनिमानस के साथ जनमानस को संपृक्त किया है। मानस में समाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि अपनाई गई है। कथानायक राम केवल परब्रह्म के अवतार अथवा राजपुत्र नहीं है"

'लोक' शब्द को स्पष्ट करना संगत होगा। शब्दकोशों में 'लोक' शब्द के अनके अर्थ मिलते हैं। यहाँ लोक से तात्पर्य है - जनसामान्य। लोकसाहित्य, लोकभाषा, लोकगीत, लोककथा आदि प्रयोगों में 'लोक' विशेषण दूसरे अभिप्राय का द्योतक है। भारतीय सहित्य में लोक और वेद के द्वारा लोक-रीति और वेद-रीति अथवा लोक-वेद-विधि में भेद बताया गया है महाभारत में लोक-वेद-विधि में विरोध को बताने वाले काव्यों का उल्लेख मिलता है - ''वेदाच्च वैदिकाः शब्दोः सिद्धा लोकाच्च लौकिकाः।'' इस दृष्टि से लोक का तात्पर्य है - जो वेद में नहीं है। तब वैदिक साहित्य के अतिरिक्त समस्त साहित्य चाहे वह वाल्मीकि का हो या कालिदास का, भारवि-माघ-भवभूति का हो या तुलसी-सूर-केशव का, सभी लौकिक कहलाएगा। किंतु आज जिस अर्थ में 'लोक' शब्द प्रयुक्त होता है, उसके अंतर्गत उपर्युक्त समस्त साहित्य लौकिक साहित्य नहीं कहलाएगा। यहाँ 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' के पर्याय के रूप में आया है। अपने संकुचित अर्थ में लोक शब्द बहुत कुछ नागर संस्कृति या शिष्ट संस्कृति से अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित जनसमुदाय में प्रचलित मान्यताओं और विश्वासों का प्रतीक बन गया है। इस दृष्टि से 'लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अंहकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं। सामान्य जन में उच्छवसित भावनाओं और विचारों तथा प्रचलित रीति-रिवाजों और संस्कारों का उद्घाटन लोकतत्व का केंद्र बिंदु है। जनमानस के सहज नैसर्गिक जीवन की अभिव्यक्ति 'लोकतत्व' की

विशेषता है। अतः वह केवल ग्राम्यता या मूढ़ विश्वासों का प्रतीक न होकर, उन समस्त विधि-विधानों का द्योतक है जो शास्त्रसम्मत नहीं हैं। तुलसी साहित्य में वेद के साथ लोक शब्द का प्रयोग, इस तथ्य का संकेत करता है कि गोस्वामी जी ने शास्त्रसम्मत नियमों और नीतियों के साथ लोकप्रचलित मान्यताओं और परंपराओं को भी महत्त्व दिया है अर्थात् वह केवल अतीत से बँधे नहीं हैं, बल्कि वर्तमान के प्रति सचेत हैं।

गोस्वामी जी के साहित्य के गंभीर अध्ययन से पता चलता है कि वह अपने समय के सर्वाधिक क्रांतिकारी और प्रगतिशील लोकनायक थे। उन्होंने निर्गुनियाँ संतो के समान समग्र व्यवस्था पर सीधे चोट भले न की हो, वर्गाश्रम व्यवस्था को ध्वस्त करने का नारा भले ही बुलंद न किया हो अर्थात् उनकी भूमिका ध्वंसात्मक भले ही न रही हो, किंतु उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के द्वारा समाज के सारे संबंधों को जोड़ा है, उत्तर-दक्षिण की धुरी को एकता के सूत्र में बाँधा है और 'बहुजन हिताय' की अपेक्षा 'सर्वजनहिताय' की कामना की है। संत निवृत्तिमार्गी थे और गोस्वामी जी निवृत्ति-प्रवृत्ति की अतिशयता से बचकर मध्यमार्ग पर चलने के पक्षधर। नाथ-सिद्धों और संतों ने जिस ढंग से समाज पर प्रहार किया था, वेदमार्ग को हेय बताया था, परिवार-व्यवस्था पर चोट की थी, उसका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा। प्रेम के उदात्त स्वरूप के विकास में बाधा पड़ी, और 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती' के स्थान पर कटुता और वैमनस्य की भावना बढ़ी। इसके विपरीत गोस्वामी जी ने उस प्रशस्त मार्ग को अपनाया जिसमें वेद और लोक का समन्वय था, जिसके द्वारा समाज के सारे संबंधों पिता-पुत्र, सेवक-स्वामी, पति-पत्नी, भाई-भाई को आदर्श रूप प्रदान किया। संतों ने संसार की नश्वरता पारिवारिक और सामाजिक संबंधों की क्षणभंगुरता दिखाकर लोकचित्त को भीरु और पलायनवादी बनाने का प्रयास किया, गोस्वामी जी ने कर्मक्षेत्र में निरंतर संघर्ष करते हुए, दृष्प्रवृत्तियों का दमन करते हुए परलोक के साथ इस लोक को भी समुन्नत बनाने का परामर्श दिया। उन्होंने कहा कि -

घर कीन्हें घर जात है, घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही, रहिय प्रेम पुर छाय।। (दोहावली)

गोस्वामी जी ने 'कहब बेदमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि', 'लोक बेदमत मंजुल कूला', आदि के द्वारा जिस विराट् समन्वयकारिणी भूमिका की उद्भावना की है, उसके मूल में उनकी लोक-कल्याण की भावना ही निहित थी। उनके काव्य में कथा और शिल्प, विधेय और विधान दोनों में शास्त्रीय परंपराओं और लोक धाराओं का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। उनकी काव्य परंपरा और प्रगतिशीलता के सह-अस्तित्व का अनुपम उदाहरण है। तुलसी काव्य की लोकप्रियता तथा आधुनिक परिपेरक्ष्य में सार्थकता का मुख्य कारण है, वैदिक परंपराओं की स्वीकृति के साथ सामान्यजन में उच्छ्वसित भावनाओं का प्रकाशन, संतमत और लोकमत के समन्वय से ही उनका काव्य काल और स्थिति की सतत परिवर्तनशीलता में भी शिक्षित और अशिक्षित, ग्रामीण और नागर, बुध और अबुध जनों में समान रूप से समादृत है। वस्तुतः जब युगद्रष्टा कलाकार लोकमंगल की उदात्त भावना से परिचालित होकर सर्जना करता है तो उसकी कृति में शिष्ट संस्कृति के साथ लोकसंस्कृति के तत्व स्वयमेव समाहित हो जाते हैं। जहाँ एक ओर शिष्ट संस्कृति से आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना होती है, वहीं लोकसंस्कृति जीवन को गहराई से समझने परखने का आधार प्रदान करती है।

गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत रामकथा ठीक वही नहीं है जो परंपरागत है। श्री रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में 'उन्होंने रामकथा का मध्यकालीनीकरण किया हैं। मध्यकालीनीकरण का तात्पर्य 'उन आदर्शों' तथा धारणाओं की स्वीकृति से है, जो पौराणिक चेतना से विकसित होने के बावजूद उनसे भी पृथक् तथा परवर्ती है और जो तत्कालीन समाज में परिव्याप्त है।' इस मध्यकालीनीकरण के द्वारा गोस्वामी जी ने अतीत को वर्तमान से जोड़ा है, वेदशास्त्र अनुप्राणित शिष्ट संस्कृति को लोकमानस की सहज व स्वाभाविक पद्धति में स्थानांतरित किया है। उनका 'रामचरितमानस' लोकमत-प्रधान ग्रंथ है, जिसमें जनसमुदाय की प्रवृत्तियों, रीति-रिवाजों, उत्सवों, त्योहारों आदि का सम्यक् समावेश मिलता है। उन्होंने मुनिमानस के साथ जनमानस को संपृक्त किया है। मानस में समाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि अपनाई गई है। कथानायक राम केवल परब्रह्म के अवतार अथवा राजपुत्र नहीं है, अपितु उनके प्रत्येक कर्म में लोकधर्म की छाप है। राम के जन्म,

नामकरण, यज्ञोपवीत, राज्याभिषेक, विवाहादि संस्कार के वर्णन में लोकमान्य रीतियों का अनुसरण हुआ है। तुलसीकाव्य में वर्णित वास्तुकला, चित्रकला, शोभायात्रा, अस्त्र-शस्त्र आदि समसामयिक हैं। जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामलला नहछू आदि लोकरीति संपन्न काव्य हैं।

मध्यकालीन धार्मिक आंदोलन की प्रमुख विशेषता है - वेदमत और लोकमत का समन्वय। आठवीं शताब्दी से प्रारंभ इस आंदोलन का न केवल धार्मिक, अपितु सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व है। भाषा और विचार दोनों दृष्टियों से संपूर्ण धार्मिक आंदोलन लोकाभिमुख हो रहा था। सामाजिक दृष्टि से यही न्याय और समता का आंदोलन है। यह वर्णाश्रम-व्यवस्था में पिसती, ऊँच-नीच की भेद-भावना में कराहती तथाकथित अस्पृश्य समझी जाने वाली जाति का आंदोलन है जो वर्गवैषम्य के अन्यायपूर्ण वातावरण को उतार फेंकने के लिए व्याकुल हो रही थी।

राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से यह युग अत्यंत कोलाहलपूर्ण और अशांत था। उत्तर भारत निरंतर आक्रमण का सामना कर रहा था। मुसलमान के रूप में जो नई जाति आई थी, वह पूर्ववर्ती आक्रमणकारियों से भिन्न थी। इसके पहले आने वाले शक, हूण, गुर्जर, मंगोल आदि सभी भारतीय वर्ण-व्यवस्था में हिल मिल गए थे। किंतु इस्लाम के रूप में एक ऐसी जाति का उदय हुआ था, जो किसी भी प्रकार यहाँ के मूल निवासियों से धार्मिक समझौता करने पर तैयार नहीं थी, अपितु उनके लिए बड़ी चुनौती बनी हुई थीं। यह चुनौती दो प्रकार के प्रभाव दिखा रही थी। 1. उच्च वर्ण रक्षा की भावना से संकीर्णता और पाखंड से घिरता जा रहा था तथा मुसलमानों से सताए जाने के कारण अपने से कमजोर निम्नवर्ग के प्रति अधिक कठोर हो गया था। 2. निम्नवर्ण के लोग मुसलमानों से सताए ही जाते थे, स्वधर्मियों के द्वारा भी हेय दृष्टि से देखे जाते थे। दूसरी ओर इस्लाम के रूप में उनके सामने एक ऐसा संप्रदाय था जो समता का संदेश दे रहा था। दक्षिण की स्थिति इससे कुछ भिन्न थी। वहाँ बाहरी आक्रमण का खतरा नहीं था। किंतु चिंतामुक्त सामंती व्यवस्था अपने पंजे अधिक मजबूत करती जा रही थी। ब्राह्मण और सामंत मिलकर अपनी प्रभुता और सामाजिक श्रेष्ठता को बनाए रखने में तत्पर थे। इसलिए अन्य जातियों पर उनका अत्याचार और शोषण बढ़ गया था। अन्य वर्गों को इन लोगों ने आर्थिक दृष्टि से पंगु और सामाजिक दृष्टि से हेय बना दिया था। अतएव स्वाभाविक था कि पिछड़ी हुई और शोषित जातियों में इनके प्रति आक्रोश उभरता। अतः दक्षिण के धार्मिक आंदोलन के मूल में ही समता और न्याय का स्तर प्रमुख रूप से सुनाई पड़ता है, वैदिक मान्यताओं के प्रति अनादर का भाव मिलता है, शास्त्रीय ज्ञान के प्रति उपेक्षा का व्यवहार मिलता है और उच्च वर्ण की भेदमूलक नीति के प्रति आक्रोश दिखाई पड़ता है। वैसे इस समता मूलक नए आंदोलन के जनक शंकराचार्य और रामानुजाचार्य जैसे ब्राह्मण ही थे, किंतु इसको बढ़ावा देने वाले अधिकांश संत तथाकथित पिछड़े वर्ग से ही आए थे। दक्षिण में अनके संत निम्न वर्ण के थे। महाराष्ट्र के संतों में राका कुम्हार, साँकता माली, नरहरि सुनार, जोगा तेली, शामा चूड़ीवाला, बंका और चोखा महार और कान्होपात्रा वेश्या थी। कश्मीर की संत लल्ला मेहतर जाति की थी। हिंदी के निर्गुनियाँ संतों में अनेक पिछड़ी जाति के थे। सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से उपेक्षित और हेय जातियों में उत्पन्न इन संतों में वैदिक परंपरा के प्रति न तो आस्था थी और न उसके अध्ययन के प्रति रुचि। इन संतों ने सामाजिक विसंगतियों पर प्रबल कुठाराघात किया है, धार्मिक रूढ़ियों को नकारा है और आर्थिक वैषम्य का विरोध किया है। अतः इन्हें सच्चे अर्थों में प्रगतिशील माना जाता है और आधुनिक संदर्भ में इनका काव्य अधिक सार्थक स्वीकारा जाता है। इस संदर्भ में कुछ विद्वान् तो यहाँ तक कह देते हैं कि इन संतों ने समाज को कम से कम चार सौ वर्ष आगे बढ़ाया है अर्थात् उनके विचार आधुनिक परिवेश में अधिक सार्थक और ग्राह्य हैं, जब कि तुलसीदास ने अपने प्रतिगामी विचारों से चार सौ वर्ष पीछे ढकेला है, वह प्रतिगामी थे। वस्तुतः ऐसे विचारक संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ न्याय नहीं कर सके हैं।

❖

विभागाध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) आगरा-282005
मो. 7355116538 ईमेल dr.umapati2011@gmail.com

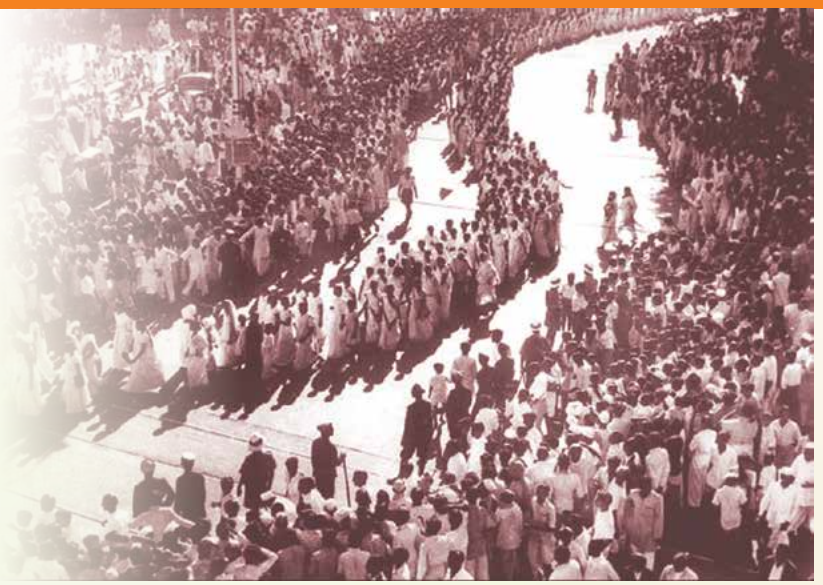

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत और हिंदी

– प्रो. चन्दन कुमार

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उर्दू का जन्म बारहवीं शताब्दी के बाद मुसलमानों के आने से हुआ। यह भाषा उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रीय अपभ्रंशों से संपर्क स्थापित करने के लिए उभर कर सामने आई। इस भाषा के पहले बड़े जन कवि, महान फ़ारसी कवि अमीर ख़ुसरो (1253-1325) हैं। जिनके बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने इस भाषा में दोहे, पहेलियां और कह मुकरिनयाँ कहीं। उस समय इस भाषा को हिन्दवी कहा जाता था। मध्यकालीन युग में इस मिली-जुली भाषा को कई नामों से जाना गया जैसे हिन्दवी, ज़बान-ए-हिन्द, हिंदी, ज़बान-ए-देहली, रेढ़ता, गुजरी, दक्कनी, ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला, ज़बान-ए-उर्दू और उर्दू। इस बात के सबूत मिलते हैं कि ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में इसका नाम 'हिन्दुस्तानी' प्रचलन में था जो बाद में उर्दू बन गया। शब्दकोश के अनुसार 'उर्दू' (तुर्की भाषा का एक शब्द है) का अर्थ छावनी या शाही पड़ाव है। यह शब्द दिल्ली शहर के लिए भी प्रयोग किया गया जो सदियों तक मुग़ल साम्राज्य की राजधानी रही। इसके बावजूद उर्दू के बड़े लेखक उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक अपनी भाषा/बोली को हिंदी या हिन्दवी कहते रहे।

विरासत पर बात करना उत्तरदायित्व पर भी बात करना है। विरासत दाय है। सातत्यता है। जीवन की लयात्मकता है।[1] अगर भारतीय ज्ञान के परंपरा के शब्द को उधार लूँ तो विरासत लास्य है। लास्य समझते हैं न? लास्य भारतीय परंपरा में माता पार्वती द्वारा किया गया नृत्य है। पार्वती लास्य करती हैं और शंकर तांडव करते हैं। भरतनाट्यम हो या केरल का मोहिनीअट्टम या मणिपुरी का लावण्य इस पर लास्य का ही प्रभाव है। लास्य कोमल है। यौवक है। ललित है। सतत है। विरासत है। हिंदी की विरासत को भारतीय बोध के लास्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। मैं जब ऐसा कह रहा हूँ तो मैं उस सातत्यता और उत्सवबोध की बात कर रहा हूँ जो भारत के जीवनराग को बनाते हैं। इस जीवनराग की व्याख्या भारतबोध की व्याख्या है। आइडिया ऑफ़ इंडिया की व्याख्या है। देश कैसा हो? देश किसके लिए हो? देश की अभिव्यक्ति के बिंदु क्या हों? यह समझना हमारे स्वतंत्रता संग्राम की विरासत को समझना है और हिंदी के चरित्र को समझना है। प्रश्न यह है कि इस समझ का पाठ क्या हो? टेक्स्ट क्या हो? पाठ से ही अवधारणा तय होगी। 1947 में मिली अंग्रेज राज से मुक्ति का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है, तो ऐसा माना जा सकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत से आशय उन घटनाओं, स्थितियों और कर्मों के दाय से है जिसकी निष्पत्ति 15 अगस्त 1947 को अंग्रेज़, शाह बहादुर की विदाई के रूप में हुई। यह भारतीय शौर्य की परंपरा के उत्सव से निकला हुआ भाव भी है और जब मैं ऐसा कह रहा हूँ तो मेरा संकेत इस ओर है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत और हिंदी पर संवाद अहिंसा, सविनय अवज्ञा, असहयोग, चरखा, खादी और गुलाब की शब्दावली मात्र में नहीं हो सकती है। देखिये न अभी हाल तक जिसे सिपाही विद्रोह कह कर पढ़ाया करते थे, वह अब हमारे विवेक में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम है। वहाँ सिर्फ लोकतंत्र बंद गले का कोट और गुलाब नहीं है

अपितु वहाँ लाचित बोड़फुकन, रानी गाडिल्यो, वीर जादवनांग, बिरसा मुंडा, राजा महेंद्र प्रताप सिंह, गोपाना, मोरोपंथपिंगले, पेशवा बाजीराव, चंद्रशेखर आजाद, बटुकेश्वरदत्त, सिंध के महाराजा दाहीर सब शामिल हैं। हिंदी को इन स्वातंत्र्यवीरों की सातत्यता में समझा जाना चाहिए। यह सातत्यता एक सभ्यताबोध है। इस सभ्यताबोध को जिन तत्वों ने संभव किया है वह संस्कृत है, संत हैं, मठ और सत्र हैं, मंदिर और नामघर हैं, परिव्राजक हैं, यायावर हैं। "तीर्थयात्रियों द्वारा सदियों से भारत में प्रत्येक कोने में हिंदी का प्रयोग अहिंदी भाषा-भाषियों द्वारा किया जाता था। दक्षिण के आचार्यों ने आदिकाल से ही अनुभव किया था कि इस भाषा के माध्यम से वे सारे देश के जन-जन तक अपना संदेश पहुँचा सकते हैं। वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानंद इसकी राष्ट्रीय महत्ता को समझकर इसे अपने व्यवहार में लाते रहे।"[2]

विलियम कैरे[3] को आप जानते ही होंगे! ये एक ईसाई धर्म प्रचारक थे। 19वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में भारत आये थे। सन् 1815 का उनका एक कथन है कि 'मैं इस भाषा में हिंदुस्तान को समझा सकता हूँ।' कैरे ने भारत में श्रीरामपुर मिशन और श्रीरामपुर कॉलेज के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार किया। उन्होंने बाइबिल का बांग्ला, संस्कृत और कई अन्य भारतीय भाषाओं और बोलियों में अनुवाद किया। भारत में बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी की स्थापना की। बंगाल के श्रीरामपुर के डेनिस कॉलोनी में डेरा जमाने वाले कैरी ने बांग्ला सीखी, लेकिन जिस उद्देश्य के लिए वो आये थे यानी धर्मान्तरण उसकी पूर्ति में वे तब तक असमर्थ रहे जब तक उन्होंने हिंदी माध्यम नहीं अपनाया। वे हिंदी की ताकत को जानते थे। जो लोग भारत में धर्मान्तरण के इतिहास से परिचित हैं उन्हें यह ज्ञात होगा कि विलियम कैरे आधुनिक ईसाई मिशनरी के जनक कहे जाते हैं। मैं ये जब आपसे प्रस्तावित कर रहा हूँ तो मेरा संकेत इस ओर है कि चाहे वह ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली द्वारा 10 जुलाई 1800 को कलकत्ता में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज और इसके प्राचार्य जॉन गिल क्राइस्ट हों या श्रीरामपुर कॉलेज के संस्थापक विलियम कैरे हों सभी हिंदी की ताकत से परिचित हैं। यही कारण है कि विदेशी होते हुए उन्होंने हिंदी को प्रश्रय दिया। भले ही यह प्रश्रय साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए दिया गया हो, या धर्मान्तरण के लिए दिया हो। यह इस देश की जनता का भाषा प्रेम है जो हिंदी को ताकतवर बनाता है। मैं खरी-खरी कहूँ तो हिंदी को राष्ट्रभाषा, राजभाषा या आप जो भी कहना चाहें उस स्थिति में लाने का कारण कोई महोदय नहीं हैं, अपितु वह कारण कोटि-कोटि हिंदी जन हैं जो हिंदी को आसेतु हिमालय सुख-दुःख की, प्रेम-घृणा की, जय-पराजय की, सपनों की और समृद्धि की भाषा के रूप में स्वीकारते हैं। इस स्वीकार से हिंदी का एक सामासिक और सर्वग्राही चरित्र विकसित होता है।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध को याद कीजिए। अंग्रेजी 'भद्रलोक' बना रही थी, भारतीय मध्यवर्ग अपने सत्ता में होने को और बने रहने को अंग्रेजी से तय कर रहा था। देश की आज़ादी के आंदोलन की चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए आई भाषाई जरूरत का उत्तर थी-हिंदी। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की जरूरत पर जिन लोगों ने बल दिया वे सभी अहिंदी-भाषी थे। महात्मा गाँधी, सुभाष चंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, किसी की मातृभाषा हिंदी नहीं थी, किन्तु सभी ने हिंदी को महत्वपूर्ण माना। "दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर गांधी जी ने पाया कि हिंदी के विरोध में अंग्रेजी सरकार, कांग्रेस के अधिकांश नेता तथा अंग्रेजी राज चलाने वाली नौकरशाही खड़ी थी। गांधीजी ने इन तीनों से मोर्चा लिया। गांधीजी ने दक्षिण के चार प्रान्तों आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक को हिंदी के अनुकूल बनाया। बाद में बाकी के प्रांत असम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और सिंध में हिंदी का प्रचार चलाकर यहाँ के लोगों को हिंदी के अनुकूल बनाया। उन्होंने अनेक प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के पक्ष में किया जो आसान काम नहीं था।"[4] देखते-ही-देखते हिंदी इस देश की इच्छा और भावना को अभिव्यक्त करने वाली भाषा बन गयी। अब यह सरकारी बाबूओं, खानसामों, मालियों और सरकारी स्कूलों के झोलाछाप विद्यार्थियों की भाषा नहीं है। इसमें तमाम रंग और स्वर आये हैं जो आकर्षक हैं और भविष्योन्मुखी हैं। इन तमाम रंगों और स्वरों के साथ संवाद करना हिंदी की ताकत के साथ संवाद करना है।

एक प्रश्न हिंदी-उर्दू का भी है। हम लोग जब विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे थे तो हमें राजा लक्ष्मण सिंह बनाम राजा शिव प्रसाद सितार-ए-हिन्द के उदाहरणों से हिंदी-उर्दू विवाद को समझाने की खूब कोशिश की गई। यह कोशिश भी सेलेक्टिव फैक्ट्स के आधार पर ही थी। मित्रों एक तथ्य तो समझ लिया जाए कि केवल लिपि भेद होने से कोई भाषा अलग नहीं हो जाती। ऐसे भी जिस भाषा में क्रिया पद नहीं होते उसे अलग भाषा नहीं माना जा सकता। इस आधार पर उर्दू, हिंदी से अलग कोई भाषा नहीं है। अगर मैं थोड़ी-सी छूट लूँ तो उर्दू हिंदी की अंदाज़-ए-बयाँ है। थोड़ा और प्यार बढ़े तो उर्दू को हिंदी की एक बोली माना जा सकता है।

यह जितना जल्दी हो देश हित में है। उर्दू का एक कवि है वली-मोहम्मद-वली जिसे वली दख्खनी भी कहा जाता है। उन्हें उर्दू कविता का पिता कहा जाता है। उनकी कविताओं को पढ़ लीजिए। वो अपनी ग़ज़लों में भारतीय विषय, मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। ये वली दख्खनी साहब उर्दू की परम्परा को हिंदी के प्रमाणिक पाठ में पढ़ने का तर्क बन सकते हैं। मीर को तो आप जानते ही होंगे- मीर-तकी-मीर। पूरा नाम था खुदा-ए-सुखन मोहम्मद तकी। 1723 में आगरा में पैदा हुए। अहमद-शाह-अब्दाली और नादिल साह के हमलों से कटी-फटी दिल्ली का उन्होंने वर्णन किया है। भारत पर पान्थिक अत्याचारों पर पढ़ना हो तो मेरी न सही, पर मीर की सुन लीजिएगा।

हमको शायर न कहो मीर कि साहिब हमने,

दर्दो ग़म कितने किये जमा तो दीवान किया!![5]

मैं मीर का उल्लेख उस विरासत को समझने के लिए कर रहा हूँ जो फारसी में हिन्दुस्तानी शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग की हिमायती है।

देख तो दिल कि जाँ से उठता है, ये धुआं सा कहाँ से उठता है!

यूँ उठे आह उस गली से हम जैसे कोई जहाँ से उठता है!![6]

मीर की मृत्यु 1810 में हो गयी। यह पंक्ति 18वीं शताब्दी की है। इसकी भाषा और शब्दावली देखिये। यह हिंदी है श्रीमान!! यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत से निकला हुआ वह भावबोध है जो हमें बताता है कि हिंदी-उर्दू का विवाद तार्किक और तथ्यात्मक नहीं है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उर्दू का जन्म बारहवीं शताब्दी के बाद मुसलमानों के आने से हुआ। यह भाषा उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रीय अपभ्रंशों से संपर्क स्थापित करने के लिए उभर कर सामने आई। इस भाषा के पहले बड़े जन कवि, महान फ़ारसी कवि अमीर ख़ुसरो (1253-1325) हैं। जिनके बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने इस भाषा में दोहे, पहेलियां और कहमुकरियाँ कहीं। उस समय इस भाषा को हिन्दवी कहा जाता था। मध्यकालीन युग में इस मिली-जुली भाषा को कई नामों से जाना गया जैसे हिन्दवी, ज़बान-ए-हिन्द, हिंदी, ज़बान-ए-देहली, रेढ़ता, गुजरी, दक्कनी, ज़बान-ए- उर्दू-ए-मुअल्ला, ज़बान-ए-उर्दू और उर्दू। इस बात के सबूत मिलते हैं कि ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में इसका नाम 'हिन्दुस्तानी' प्रचलन में था जो बाद में उर्दू बन गया। शब्दकोश के अनुसार 'उर्दू' (तुर्की भाषा का एक शब्द है) का अर्थ छावनी या शाही पड़ाव है। यह शब्द दिल्ली शहर के लिए भी प्रयोग किया गया जो सदियों तक मुग़ल साम्राज्य की राजधानी रही। इसके बावजूद उर्दू के बड़े लेखक उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक अपनी भाषा/बोली को हिंदी या हिन्दवी कहते रहे।

"ना जाने लोग कहते हैं किसको सुरूर-ए-क़ल्ब

आया नहीं ये लफ्ज़ तो हिंदी जबाँ के बीच"[7]

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत के संदर्भ में मैं हिंदी-उर्दू और मीर-तकी-मीर का उल्लेख क्यों कर रहा हूँ? सिर्फ यह बताने के लिए कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में हिंदी-उर्दू विवाद कि अवधारणा एक कंसट्रक्ट है, निर्मित है। यह भारतीय समाज को कमजोर देखने की इच्छा से प्रेरित है। इस संदर्भ में एक और तथ्य का मैं उल्लेख करता चलूँ कि भाषा को पांथिक आस्था का पर्याय मानना हमारी सांस्कृतिक विरासत के साथ अन्याय करना है। इतिहास इसका प्रमाण है।

एक पुस्तक है- अकबर एस. अहमद की 'जिन्ना पाकिस्तान एंड इस्लामिक आइडेंटिटि'। पुस्तक कोबो पर है। थोड़ी महंगी है। तीन हजार-पैंतीस सौ की है। पढ़िएगा। मुझे एक क्षेत्र प्रचारक महोदय ने जन्मदिन पर उपहार में दी थी। बड़े रोचक निष्कर्ष हैं इस पुस्तक में। पुस्तक के लेखक अकबर सलाउद्दीन अहमद ने पांथिक मान्यता, भाषाई चेतना और राष्ट्र के प्रश्नों पर अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया है। सलाउद्दीन अहमद SOAS यूनिवर्सिटी ऑफ़ लन्दन और यूनिवर्सिटी ऑफ़ बरमिंघम में पढ़े। सन् 1943 में प्रयागराज में पैदा हुए और वर्तमान में वाशिंगटन में पढ़ाते हैं। उनको पढ़ना यह जानने के लिए जरूरी है कि पांथिक मान्यताएं भाषाई चेतना का पर्याय नहीं होती। इस्लाम के नाम पर पाकिस्तान बन गया और भाषा के नाम पर पाकिस्तान टूट गया। 1952 में ढ़ाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और भाषा सम्बन्धी कार्यकर्ताओं ने उर्दू के वर्चस्व के विरोध में बांग्ला के अस्तित्व को बचाने के लिए प्रदर्शन किया। पश्चिमी पाकिस्तान की पुलिस से झड़प हुई। ख्वाजा नाजीमुद्दीन प्रधानमंत्री थे। गोली चली। सोलह लोग मारे गये। इन्हीं भाषा शहीदों की याद में 17 नवम्बर सन् 1999 को यूनेस्को ने अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाने की घोषणा की। "यूनेस्को द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की घोषणा से बांग्लादेश के भाषा आन्दोलन दिवस (बांग्ला: ভাষা আন্দোলন দিবস / भाषा आन्दोलोन दिबॉश) को अन्तरराष्ट्रीय स्वीकृति मिली, जो बांग्लादेश में सन 1952 से मनाया जाता रहा है। बांग्लादेश में इस दिन एक राष्ट्रीय अवकाश होता है।"

सलाम, बरकत, रफीक, जब्बार, सफीउर, इक़बाल साहब के 'मुस्लिम हैं हम वतन हैं' के खांचे में फिट नहीं बैठ पाए। मुझे धीरेन्द्र नाथ दत्त याद आ रहे हैं। वो पाकिस्तान के कांस्टीट्यूएंट असेंबली- संविधान सभा के सदस्य थे। 23 फरवरी 1948 को वे बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा 'ठीक है, पांथिक मान्यता के आधार पर देश बन गया, पर भाषा का प्रश्न इससे बड़ा प्रश्न है'। वे 1905 में बंग-भंग विरोधियों में भी रहे। आज उनको याद करना प्रासंगिक है। भाषाई प्रश्न पर अपनी दृष्टि के कारण पाकिस्तानी पांथिक शासकों को वे चुभते थे। बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में जब शेख मुजीब-उल-रहमान गिरफ्तार हुए, उसके तीन दिन बाद ही धीरेन्द्र नाथ दत्त को पाकिस्तान की पुलिस ने उनके बेटे दिलीप कुमार दत्त के साथ गिफ्तार कर लिया और यातना देकर मार डाला। बांग्लादेश के इतिहास में धीरेन्द्र नाथ दत्त शहीद के विशेषण से याद किये जाते हैं। यह पृष्ठभूमि उस इतिहासबोध की प्रस्तावना करती है कि भाषा के प्रश्न को पांथिक प्रश्न, राजनीतिक टुकड़खोरी के प्रश्न, फूलमालों और गुलदस्तों के प्रश्न से अलग करके व्याख्यायित किया जाए।

भाषाई विरासत न केवल संवाद, साहित्य और सृजन जैसे विषयों पर चलती है, अपितु जीवन के राग-रंग को कैसे अभिव्यक्त किया जाय? इस मुद्दे पर भी चलती है। भारत का विभाजन हुआ धर्म के आधार पर और पाकिस्तान का विभाजन हुआ भाषा के आधार पर।

स्वतंत्रता आंदोलन में जिन लोगों ने हिंदी पर बातचीत की और जिन लोगों ने हिंदी की वकालत की उनमें से अधिकांश लोगों की मातृभाषा हिंदी नहीं थी। मोहनदास करमचंद गांधी काठियावाड़ से थे और गुजराती मातृभाषा थी, सरदार वल्लभ भाई पटेल गुजराती मातृभाषी थे। यह जो पूरा-का-पूरा परिप्रेक्ष्य है यह उस सातत्यता में है जो सातत्यता इस देश को भाषाई सातत्यता के रूप में मिली। 1757 प्लासी का युद्ध, प्लासी के युद्ध के बाद बक्सर का युद्ध, फिर इस देश मे मुगलिया सल्तनत का पतन और पुनः अंग्रेजों का आगमन, इस पूरे के पूरे परिप्रेक्ष्य को देखेंगे तो एक ख़ास चीज दिखाई पड़ती है कि जो लोग हिंदी की वकालत कर रहे हैं, जो हिंदी की पक्षधरता कर रहे हैं उनमें से अधिकांश लोग ब्रिटिश सरकार के साथ संवाद में हैं। चाहे वो भारतेंदु मंडल के अधिकांश रचनाकार हों, वे सब-6666के-सब सेठ थे या राजे-राजवाड़ों से प्रत्यक्षतः-अप्रत्यक्षतः जुड़े हुए थे। इसे सत्ता बनाम समाज के रूप में देखें। भारतेंदु बाबू सेठ अमीचंद की परंपरा में थे। ठाकुर जगन्मोहन सिंह मध्यप्रदेश की विजय राघव गढ़ रियासत के राजकुमार थे। अम्बिका दत्त व्यास कविवर दुर्गा दास व्यास के पुत्र थे। इस परिवार की काशी मण्डली में अद्भुत प्रतिभा थी। राधा कृष्ण दास भारतेंदु के फुफेरे भाई थे। बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन मिर्जापुर के एक अभिजात्य परिवार में पैदा हुए थे। लाला श्रीनिवास दास के पिता लाला मंगनी लाल मथुरा के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचंद के मैनेजर थे। कार्तिक प्रसाद खत्री उद्योगपति थे। यह मैं आपको इसलिए बता रहा हूँ कि स्वतंत्रता आंदोलन के प्रारंभिक वर्षों में जिन महानुभावों ने हिंदी की पक्षधरता की वह किसी लाभ के लिए नहीं था। वह विकल्पहीनता में भी किया गया चयन नहीं था। वह सायास चयन था। इस सायास चयन का तर्क था कि यह देश हमारा है। हमारी भाषा में चलेगा। ध्यान होगा जिस वृत्ति को रामविलास जी ने हिंदी नवजागरण कहा वह अनिवार्यतः स्वभाषा के बोध के साथ आती है। "भाषा की उत्पत्ति का विवेचन भी मानव समाज के उद्भव और विकास के प्रसंग में ही संभव है। यदि आप मानते हैं कि मनुष्य का सृजन किसी आध्यात्मिक शक्ति ने किया है, तो संभवतः आपको यह भी विश्वास होगा कि भाषा की रचना ईश्वर ने की है।" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह वाक्य हम सभी के ध्यान में है कि 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नत्ति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को शूल' यह वाक्य हिंदी में आधुनिकता का बोध बनाता है। बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, अम्बिका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, केशवराम भट्ट से लेकर छायावाद और छायावादोत्तर हिंदी साहित्य का बोध भाषाई चेतना से संपन्न स्वतंत्रता और आधुनिकता का बोध है। ध्यान देने योग्य है कि इस भूमि की भाषाई चेतना आत्ममुग्धता की नहीं रही है अपितु सांस्कृतिक और बौद्धिक आत्मावलोकन के भाव से भी प्रेरित रही है। भारतेन्दु का बलिया वाला भाषण इस बात का प्रमाण है। आपको पता है बलिया के ददरी में मेला लगता है। कार्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। 1884 की कार्तिक पूर्णिमा को भारतेंदु ने यहाँ एक भाषण दिया। जो विद्वान कभी-कभार पढ़ते हैं उन्हें यह पढ़ना चाहिए। गंगा और घाघरा के मिलन स्थल पर स्थित पूर्वांचल के ददरी गाँव में दिया गया भारतेंदु का यह भाषण 19वीं-20वीं सदी की भारतीय भाषाई और सांस्कृतिक समझ का घोषणा पत्र है। 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? ' शीर्षक है इस भाषण का। रामविलास शर्मा जी ने, किस्टोफेर किंग ने, फ्रेंसिसिका आरसिनी ने इस भाषण के बहाने से भारत की भाषाई और सांस्कृतिक समझ को लेकर बहुत लिखा है। पढ़ना चाहिए। तत्कालीन

बलिया के अंग्रेज कलेक्टर डी.टी.रोबर्ट्स के सामने दिया गया भाषण था। इस भाषण के अंत में भारतेंदु आह्वान करते हैं 'भाइयों! अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार की उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताबें पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसे ही बातचीत करो। परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' ताकत के सामने अपनी बात को कहने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। भारतेंदु का यह भाषण बताता है कि परिस्थितियां कठिन हो सकती हैं किन्तु स्वाधीन चेतना का मतलब है- निजभाषा और निजदेश के हितों के पक्ष में बात करना।

सत्ता की भाषा मुगलिया सल्तनत में फ़ारसी हो सकती थी, अंग्रेजी सल्तनत में अंग्रेजी हो सकती थी, पर हिंदी भारतीय समाज का संवाद माध्यम बन कर आई थी। हिंदी भाषा की समाज केन्द्रीयता से विकसित होती है, इसलिए आप देखेंगे कि हिंदी को लेकर जितनी संस्थाएं हैं वो सब-के-सब समाज केंद्रीयता की संस्थाएं हैं। यह अलग बात है कि देश की आज़ादी के बाद जिन संस्थाओं को समाज की केन्द्रीयता में बनाया गया, हिंदी प्रचार के लिए, वह सब-के-सब सत्ता की केंद्रीयता की संस्थाएं बन गई हैं। वो अनुदान प्रेरित संस्थाएं बन गई है। मेरा निवेदन यह है कि 1757 से लेकर 1947 तक की हिंदी को भारतीय समाज की समाज केन्द्रीयता और समाज भाषा केन्द्रीयता के रूप में देखा जाए। दूसरा, सत्ता का प्रश्न और समाज का प्रश्न। स्वाधीनता किसकी ? स्वाधीनता हिंदी समाज की और यही कारण है हिंदी समाज से इतर जो लोग आते हैं वो एक ऐसी भाषा की वकालत कर रहे हैं जिसमें इस देश का मानस बनता और बढ़ता है। जब हिंदी की वकालत और हिंदी की बातचीत करें, 200 सालों में, 1757 से 1947 के बीच, तो अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसको प्रतिपक्ष में खड़ा करने की कोशिश न करें। दूसरा, हिंदी के प्रश्न पर जब भी बातचीत करें तो सत्ता बनाम समाज केन्द्रीयता में बात करें। और हिंदी पर जब भी बातचीत करें तो इस रूप में बातचीत करें कि देश के राग को, देश के रंग को, देश के मन को एक ऐसी भाषा में बोलने की बात है जो कच्छ से कटक तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक का व्यक्ति समझ सके। बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा यदि हिंदी है तो वह आपके सामने आ जाए।

यह चेतना आपको एक आत्मचिंतन का भाव देती है। इसीलिए आप देखेंगे कि हिंदी की पूरी परंपरा में विषमवादी स्वरों को भी उतना ही स्थान दिया गया, जितना समवादी स्वरों को दिया। और हो सकता है कि ऐसी चेतना इस देश के विभिन्न भाषा- भाषी साहित्य में हुई हो। हिंदी में नवजागरण की शुरूआत दो वाक्यों से होती है और दोनों ही वाक्य भारतेंदु की पत्रिकाओं के ध्येय वाक्य रहे हैं। 'होएं मनुष्य ही क्यों हुए हम गुलाम', 'नारी नर सम होई' ये दो वाक्य हिंदी नवजागरण में हिंदी की स्वातंत्र्य चेतना के साथ बराबरी के साथ जुड़े हुए बिंदु हैं। ये बराबरी के दो बिंदु एक लोकतांत्रिक सबल राष्ट्र के निर्माण के मूल बिंदु हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे जिस संविधान की हम कसमें खाते हैं उसके ये मूल बिंदु हैं जो हिंदी की आत्मचेतना से निकलते हैं। इसलिए हिंदी पर जब भी बात करें तो हिंदी आत्ममुग्धता की भाषा नहीं है, हिंदी आत्मचेतना की भी भाषा है। जिस राष्ट्र के निर्माण की बात करते हैं, वह राष्ट्र का निर्माण आत्मचेतस व्यक्ति के साथ आत्मालोचन की प्रक्रिया से निकला हुआ है।

स्वतंत्रता आंदोलन की यात्रा का एक गंभीर पक्ष है कि एक सबल राष्ट्र कैसे बनेगा ? उस राष्ट्र की भाषा क्या होगी ? जब देश बनेगा तो उस देश के लोगों की भाषा क्या होगी, किस भाषा में यहाँ के राग, दुःख देश अभिव्यक्त करेगा। दूसरा, हिंदी को कोई एकांकी पांथिक मान्यता के रूप में समझने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। हिंदी को ब्रजभाषा ने बनाया, हिंदी को अवधी ने बनाया, हिंदी को भोजपुरी ने बनाया। बैसवाड़ी से निराला आते हैं, जयशंकर प्रसाद भोजपुरी क्षेत्र से आते हैं। हिंदी अपनी चरित्र में सामासिक है। सर्वग्राही है। हिंदी एसिमिलेटिव है। बड़े होने की पहचान है कि आप- अपने से असहमत को भी सम्मान देंगे। हिंदी का स्वभाव यह है कि वह अन्य क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों से शब्दावली भी ग्रहण करती है और भावबोध भी ग्रहण करती है। और शायद इसलिए टिकाऊ है। तिलक जब हिंदी का समर्थन कर रहे हैं, कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी जब हिंदी का समर्थन कर रहे हैं, राजगोपालाचारी जब हिंदी का समर्थन कर रहे हैं तो इसी भावबोध के साथ समर्थन कर रहे हैं। अगर हिंदी को आप एक पांथिक, एकपक्षीय भावुकता के साथ बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्वीकारिएगा तो हिंदी की उस सांस्कृतिक सातत्यता के साथ आप न्याय नहीं कर पाइयेगा। स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत बताती है कि हिंदी सिर्फ रोने-धोने की भाषा नहीं है। सिर्फ इश्क करने की भाषा नहीं है। हिंदी शासन की भाषा है, हिंदी लोकतंत्र की भाषा है, हिंदी संविधान की भाषा है, हिंदी सबल राष्ट्र की भाषा है। जब आप हिंदी की बात करें तो कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कच्छ से कटक तक के लोगों की आवश्यकताओं,

सुशासन, स्वाभिमान और सत्ता की अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में बात करें। हिंदी को अगर समझना हो रामचरितमानस को, महाभारत को समझना होगा। महाभारत एक ऐसे स्थल पर खड़ा है जहाँ भाई, भाई के लिए कहता है : सूच्याग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव। एक इंच भी बिना युद्ध के नहीं दूंगा। और दूसरा सब कुछ छोड़ रहा है, राज त्याग कर के चला जा रहा है- तापसवेश विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी। हिंदी इन दो विरोधी भावबोधों के बीच से रास्ता निकालती हुई भाषा है वह इसलिए बची रही है। अगर इसमें लोहिया हैं तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय के होने की भी संभावना है। लोहिया और दीनदयाल उपाध्याय दोनों के भावबोध को जिस हिंदी में अभिव्यक्त किया जाएगा, वह इस देश के साथ संवाद की भाषा होगी। सिर्फ सत्ता संस्थानों की भाषा, विश्वविद्यालयों की भाषा, पाठ्यक्रम की भाषा, कविताओं की भाषा, एकेडमी की भाषा, कमीटीज की भाषा बनाकर हिंदी को रखना स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत के साथ अन्याय करना है। हिंदी का सौभाग्य है कि वह गली- मोहल्लों की भाषा है, हिंदी का सौभाग्य है कि वह मालियों की भाषा है, हिंदी का सौभाग्य है कि वह नागरी है, वह बाजार की भाषा है। इसलिए हिंदी बची रहे इस देश के स्वप्न बचे रहेंगे, सांस्कृतिक सातत्यता बची रहेगी, गरीब आदमी के लिए सपना बचा रहेगा, मालियों को माननीय होने के लिए जगह बची रहेगी, दर्जियों के बेटों के लिए दारोगा होने के अवसर बचे रहेंगे। हिंदी गई तो एक सबल और सामर्थ्य समाज का सपना भी गया'। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी सपने का दस्तावेजीकरण है।

संदर्भ

1. https://www.google.co.in/books/edition/Mithil%C4%81ka_sa%E1%B9%85g%C4%ABta_parampar%C4%81/WWIGAAAAMAAJ?hl=en&gbpv=0&bsq=%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%AF
2. स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी - सं. डॉ. मीना गौतम, पृष्ठ - ११
3. https://hi.celeb-true.com/william-carey-english-baptist-missionary-baptist-minister-this
4. गांधी हिंद दर्शन - काका कालेलकर, पृष्ठ - ३००
5. https://www.rekhta.org/couplets/mujh-ko-shaaer-na-kaho-miir-ki-saahab-main-ne-mir-taqi-mir--couplets?lang=hi
6. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%96_%E0%A4%A4%E0%A5%8B_%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B2_%E0%A4%95%E0%A4%BF_%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%81_%E0%A4%B8%E0%A5%87_%E0%A4%89%E0%A4%A0%E0%A4%A4%E0%A4%BE_%E0%A4%B9%E0%A5%88_/_%E0%A4%AE%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%A4%E0%A4%95%E0%A4%BC%E0%A5%80_%27%E0%A4%AE%E0%A5%80%E0%A4%B0%27
7. https://www.urducouncil.nic.in/i/%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A-4%B7%E0%A4%A6/%E0%A4%89%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%90%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%95-%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%AF
8. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AF_%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A5%83%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A4%BE_%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%B8
9. भाषा और समाज - डॉ. रामविलास शर्मा, भूमिका से
10. मातृभाषा के प्रति (कविता) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

❖

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली-110007
सी-190, दिव्यज्योति अपार्टमेंट, सैक्टर-19, रोहिणी, दिल्ली-110089
सम्पर्क सूत्र : 9312278999

भारतीयता की अंतरकथा और लोक संस्कृति

– **कोमल**

संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है, और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है। मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है।

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य कहते हैं - " किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के श्रेष्ठ पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।"

दूसरे शब्दों में कहे तो संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों, परम्पराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल मानते हैं " संस्कृति का अर्थ है संस्कार संपन्न जीवन यह संस्कार मन, कर्म और वचन के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। विश्व के विराट मंच पर स्वयं प्रकृति इन संस्कारों को उत्पन्न करती है। जबकि रेडफील्ड का मानना है

"An organised body of conventional under standing manifest in art and artifact, which persisting through traditions, characterizes human group."

मैथ्यू अर्नाल्ड का भी कहना है

" Culture is acquainting ourselves with the best, that has been known and said in the world."

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति का संबंध मानवीय बुद्धि, स्वभाव और उसकी मनोवृतियों से होता है। इन्हीं तत्वों की सहायता से व्यक्ति अपना विकास करता है इसलिए संस्कृति साध्य एवं साधन दोनों है। जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित रहती है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करती है और जब वह संपूर्ण जाति में प्रसार पा जाती है तो वह राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है।

"महर्षि धौम्य वन में आश्रम बनाकर रहा करते थे। वे बहुत ही विद्वान महापुरुष थे। वेदों पर उनका पूरा अधिकार था। दूर-दूर से उनके आश्रम में बालक पढ़ने के लिए आया करते थे। ऋषि धौम्य के आश्रम में आरुणि नाम का एक शिष्य भी था। वह गुरु का अत्यन्त आज्ञाकारी शिष्य था। सदा उनके आदेश का पालन करने में तत्पर रहता था। यद्यपि वह अधिक कुशाग्र बुद्धि नहीं था, परन्तु इस आज्ञाकारिता के गुण के कारण वह ऋषि धौम्य का प्रिय शिष्य था। एक दिन बड़े ज़ोर की वर्षा हुई। आश्रम के चारों ओर पानी-ही-पानी हो गया। आश्रम के चारों ओर आश्रम के खेत थे जिनमें अन्न तथा साग-सब्जी उगी हुई थी। वर्षा की दशा देखकर ऋषि को यह चिन्ता हुई कि कहीं खेतों में अधिक पानी न भर गया हो। यदि ऐसा हो गया तो सभी फ़सल नष्ट हो जाएंगी। उन्होंने आरुणि को अपने पास बुलाया और उससे कहा कि वह जाकर देखे कि खेतों में कहीं अधिक पानी तो नहीं भर गया। कोई बरहा (नाली) तो पानी के ज़ोर से नहीं टूट गयी है। यदि ऐसा हो गया है तो उसे जाकर बंद कर दें।"

सर्वप्रथम वायु पुराण में 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', तथा 'मोक्ष' विषयक मानवीय घटनाओं को 'संस्कृति' के अन्तर्गत समाहित किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानव जीवन के दिन-प्रतिदिन के आचार-विचार, जीवन शैली तथा कार्य-व्यवहार ही संस्कृति कहलाते है। संस्कृति के अन्तर्गत विचार, भावना, मूल्य, विश्वास, मान्यता, चेतना, भाषा, ज्ञान, कर्म, धर्म इत्यादि जैसे सभी अमूर्त तत्त्व स्वयमेव शामिल हैं, जबकि दूसरी ओर संस्कृति में विज्ञान और प्रौद्यागिकी एवं श्रम और उद्यम से सृजित भोजन, वस्त्र, आवास और भौतिक जीवन को सुविधाजनक बनाने वाले सभी मूर्त रूप भी शामिल हैं। मानव विज्ञान संस्कृति के अमूर्त स्वरूपों को 'आध्यात्मिक संस्कृति' कहता है और मूर्त रूपों को 'भौतिक संस्कृति' की संज्ञा देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन दोनों संस्कृतियों के संयुक्त विकास से परिष्कार पाकर मनुष्य सुसंस्कृत बनता है।

वहीं दूसरी ओर लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है, जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है, जो प्रायः असभ्य और अशिक्षित हैं इसलिए लोक संस्कृति का वास्तविक अर्थ उस संस्कृति से है जो ग्रामीण और विशेषकर कृषक समाज में उदय होती है। इन सबकी मिली-जुली संस्कृति, लोक संस्कृति कहलाती है। लोक संस्कृति पिछड़े हुए समाज की संपत्ति है इसलिए सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही यह भी विकसित हुई। यही कारण है कि लोक संस्कृति में जितनी विविधता है उतनी नगरीय संस्कृति में नहीं। देखने में इन सबका अलग-अलग रहन-सहन है, वेशभूषा, खान-पान, पहरावा-ओढ़ावा, चाल-व्यवहार, नृत्य, गीत, कला-कौशल, भाषा आदि सब अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु एक ऐसा सूत्र है जिसमें यह सब एक माला में पिरोई हुई मणियों की भाँति दिखाई देते हैं, यही लोक संस्कृति है।

लोक में संस्कृति का अपना विशिष्ट महत्व है। लोक संस्कृति की सरलता, सहजता और ग्राह्यता महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक गीतों व लोक कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती गुनगुनाती है। लोक जीवन में पग-पग पर लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं। लोक साहित्य उतना ही पुराना है जितना की मानव, इसलिए उसमें जन जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।

लोक संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती है। लोक संस्कृति का कोई लिखित स्वरूप नहीं होता, बल्कि इसमें धर्म, साहित्य, संगीत, लोक गाथाओ और विश्वासों के प्रशिक्षण को भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

लोक संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं है इसमें इस सामूहिकता की भावना निहित होती है। लोक संस्कृति में सामूहिक प्रेरणा, सामूहिक हिस्सा लेने की भावना और सामूहिकता पायी जाती है इसलिए अनादि काल से चली आ रही यह लोक संस्कृति आज तक जीवित है।

भारतीय संस्कृति के बारे में पं. मदनमोहन मालवीय का कहना है कि ''भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो संपूर्ण मानव के साथ तादात्म्य संबंध स्थापित करने अर्थात् 'वसुधैव कुटुंबकम्' की पवित्र भावना में निहित है।

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं, किन्तु भारत की संस्कृति आदि काल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्यवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। तभी तो पाश्चात्य विद्वान् अपने देश की संस्कृति को समझने हेतु भारतीय संस्कृति को पहले समझने का परामर्श देते हैं।भारतीय संस्कृति ने अनेक जातियों के श्रेष्ठ विचारों को अपने में समेट लिया है। भारतीय संस्कृति में यहां के मूल निवासियों के समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण भी यहां की संस्कृति में घुल-मिल गए हैं। अरबों, तुर्कों और मुगलों के माध्यम से यहाँ इस्लामी संस्कृति का आगमन हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा और नवागत संस्कृतियों की अच्छी बातों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया। ठीक यही स्थिति यूरोपीय जातियों के आने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के कारण भारत में विकसित हुई ईसाई संस्कृति पर भी लागू होती है। ये संस्कृतियाँ अब भारतीय संस्कृतियों का अभिन्न अंग है फिर भी 'भारतीय इस्लाम' एवं 'भारतीय ईसाई' संस्कृतियों का स्वरूप विश्व के अन्य इस्लामी और ईसाई धर्मावलम्बी देशों से कुछ भिन्न है। इस भिन्नता का मूलभूत कारण यह है कि भारत के अधिकांश मुसलमान और ईसाई मूलत: भारत भूमि के ही निवासी हैं। सम्भवत: इसीलिए उनके सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक आचरण में कोई परिवर्तन नहीं हो पाया और भारतीयता ही उनकी पहचान बन गई। आज हम भाषा, खान-पान, पहनावे, कला, संगीत आदि हर तरह

से गंगा-जमुनी तहजीब या यूँ कहें कि वैश्विक संस्कृति के नमूने हैं। कौन कहेगा कि सलवार-सूट ईरानी पहनावा है या हलवा, पराठे, 'शुद्ध भारतीय व्यंजन' नहीं हैं।भारत की विभिन्न कलाओं, जैसे- मूर्तिकला, नृत्यकला, चित्रकला, लोकसंस्कृति इत्यादि में भारतीय संस्कृति के समन्वित स्वरूप को देखा जा सकता है। विभिन्न धर्म, पंथों एवं वर्गों के लोगों का नेतृत्व इन कलाओं में दृष्टिगोचर होता है, जैसे- मध्यकाल में इंडो-इस्लामिक स्थापत्य कला और आधुनिक काल में विक्टोरियन शैली। भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप केवल भौगोलिक-राजनीतिक सीमाओं में ही नहीं है, बल्कि उसके बाहर भी है। भारत के भीतर बौद्ध, जैन, हिंदू, सिख, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मों के लोग एवं उनके पूज्य-स्थल हैं। ये सभी एक स्थान पर होकर भी शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना को पल्लवित करते हैं, पुष्पित करते हैं।

एक भारतीय के परिधान, योजना और आदतें इसके उद्भव के स्थान के अनुसार अलग-अलग होते हैं। भारतीय संस्कृति अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान अलग-अलग है। यहाँ के लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, अलग-अलग तरह के कपड़े पहनते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं, अलग-अलग भोजन करते हैं किंतु उनका स्वभाव एक जैसा होता है। चाहे कोई खुशी का अवसर हो या कोई दुख का क्षण, लोग पूरे दिल से इसमें भाग लेते हैं, एक साथ खुशी या दर्द का अनुभव करते हैं।भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में पाये गये शैलचित्र, नर्मदा घाटी में की गई खुदाई तथा कुछ अन्य नृवंशीय एवं पुरातत्त्वीय प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत भूमि आदि मानव की प्राचीनतम कर्मभूमि रही है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के विवरणों से भी प्रमाणित होता है कि आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहले उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग में एक उच्च कोटि की संस्कृति का विकास हो चुका था। इसी प्रकार वेदों में परिलक्षित भारतीय संस्कृति न केवल प्राचीनता का प्रमाण है, बल्कि वह भारतीय अध्यात्म और चिन्तन की भी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर भारतीय संस्कृति को रोम और यूनानी संस्कृति की भाति प्राचीन तथा मिस्र, असीरिया एवं बेबीलोनिया जैसी संस्कृतियों के समकालीन माना गया है।भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि हज़ारों वर्षों के बाद भी यह संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है, जबकि मिस्र, असीरिया, यूनान और रोम की संस्कृतियों अपने मूल स्वरूप को लगभग विस्मृत कर चुकी हैं। भारत में नदियों, वट, पीपल जैसे वृक्षों, सूर्य तथा अन्य प्राकृतिक देवी - देवताओं की पूजा अर्चना का क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है। देवताओं की मान्यता, हवन और पूजा-पाठ की पद्धतियों की निरन्तरता भी आज तक रही हैं। वेदों और वैदिक धर्म में करोड़ों भारतीयों की आस्था और विश्वास आज भी उतना ही है, जितना हज़ारों वर्ष पूर्व था। गीता और उपनिषदों के सन्देश हज़ारों साल से हमारी प्रेरणा और कर्म का आधार रहे हैं। थोड़े बहुत परिवर्तनों के बावजूद भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों, जीवन मूल्यों और वचन पद्धति में एक ऐसी निरन्तरता रही है कि आज भी करोड़ों भारतीय स्वयं को उन मूल्यों एवं चिन्तन प्रणाली से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और इससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

मुझे लगता है भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उसे दीर्घ आयु और स्थायित्व प्रदान किया है। संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में पाई जाती है। भारतीय हिन्दू किसी देवी - देवता की आराधना करें या न करें, पूजा-हवन करें या न करें, आदि स्वतंत्रताओं पर धर्म या संस्कृति के नाम पर कभी कोई बन्धन नहीं लगाये गए, इसीलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक हिन्दू धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित एक जीवन-पद्धति की संज्ञा दी गई हैं और हिन्दू का अभिप्राय किसी धर्म विशेष के अनुयायी से न लगाकर 'भारतीय' होने से लगाया गया है। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुई तब किसी-न-किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदान कर इसकी सहिष्णुता को एक नई आभा से मंडित कर दिया। चाहे वो प्राचीनकाल में बुद्ध और महावीर के द्वारा किया गया हो, मध्यकाल में शंकराचार्य के द्वारा किया गया हो, कबीर एवं गुरु नानक के द्वारा किया गया हो या महाप्रभु के माध्यम से किया गया हो, वही आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द या महात्मा ज्योतिबा फुले के द्वारा किये गए प्रयास से हो, जो इस संस्कृति की महत्त्वपूर्ण धरोहर बन गए।

भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता एवं उदारता के कारण उसमें एक ग्रहणशीलता प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिला। वस्तुत: जिस संस्कृति में लोकतन्त्र एवं स्थायित्व के आधार व्यापक हों, उस संस्कृति में ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है। हमारी संस्कृति में यहाँ के मूल निवासियों ने समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण जैसी प्रजातियों के लोग भी घुलमिल कर अपनी पहचान खो बैठे थे, यही समन्वयकारी भावना हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान है, मूलाधार है।

भारतीय संस्कृति में आश्रम - व्यवस्था के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुत: इन

पुरुषार्थों ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अदभुत समन्वय कर दिया। हमारी संस्कृति में जीवन के ऐहिक और पारलौकिक दोनों पहलुओं से धर्म को सम्बद्ध किया था। मुझे लगता है धर्म उन सिद्धान्तों, तत्त्वों और जीवन प्रणाली को कहते हैं, जिससे मानव जाति परमात्मा प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपने लौकिक जीवन को सुखी बना सके तथा मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा शान्ति का अनुभव कर सके। शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है, यह अमरता मोक्ष से जुड़ी हुई है और यह मोक्ष पाने के लिए अर्थ और काम का पुरुषार्थ करना भी ज़रूरी है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक सन्देश एवं अर्थ तथा काम की भौतिक अनिवार्यता परस्पर सम्बद्ध है। आध्यात्मिकता और भौतिकता के इस समन्वय में भारतीय संस्कृति की वह विशिष्ट अवधारणा परिलक्षित होती है, जो मनुष्य के इस लोक और परलोक को सुखी बनाने के लिए भारतीय मनीषियों ने निर्मित की थी। सुखी मानव-जीवन के लिए ऐसी चिन्ता विश्व की अन्य संस्कृतियाँ नहीं करतीं।भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू-भाग, जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक विस्तृत है। इसके साथ ही गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण का वनों से आच्छादित पठारी भू-भाग, पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिवृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। इस भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुत: इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं।अनेक विभिन्नताओं के बावजूद भी भारत की पृथक् सांस्कृतिक सत्ता रही है। हिमालय सम्पूर्ण देश के गौरव का प्रतीक रहा है, तो गंगा - यमुना और नर्मदा जैसी नदियों की स्तुति यहाँ के लोग प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। राम, कृष्ण और शिव की आराधना यहाँ सदियों से की जाती रही है। भारत की सभी भाषाओं में इन देवताओं पर आधारित साहित्य का सृजन हुआ है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत में जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कार एक समान प्रचलित हैं। विभिन्न रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और तीज - त्यौहारों में भी समानता है। भाषाओं की विविधता अवश्य है फिर भी संगीत, नृत्य और नाट्य के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। संगीत के सात स्वर और नृत्य के त्रिताल सम्पूर्ण भारत में समान रूप से प्रचलित हैं। भारत अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, मतों और पृथक् आस्थाओं एवं विश्वासों का महादेश है, तथापि इसका सांस्कृतिक समुच्चय और अनेकता में एकता का स्वरूप संसार के अन्य देशों के लिए विस्मय का विषय रहा है। भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत इसकी पाँच हज़ार वर्ष पुरानी संस्कृति एवं सभ्यता से आरंभ होती है।

भारतीय सभ्यता हमेशा से ही स्थिर न होकर विकासोन्मुख एवं गत्यात्मक रही है। भारत में विविध संस्कृति वाली सभ्यता विकसित हुई जो प्राचीन भारत से आधुनिक भारत तक की अमूर्त कला और सांस्कृतिक परंपराओं से सहज ही परिलक्षित होती है, चाहे वह गंधर्व कला विद्यालय का बौद्ध नृत्य हो, जो यूनानियों के द्वारा प्रभावित हुआ था या उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मंदिरों में विद्यमान अमूर्त सांस्कृतिक विरासत हो।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक पर्वोत्सव जैसे होली लोगों के उमंग एवं उत्साह को अभिव्यक्त करता है जिसमें उनकी संस्कृति एवं पहचान परिलक्षित होती है। होली का ऐतिहासिक अस्तित्व ईसा पूर्व की अवधि से ही है। होली के धार्मिक अनुष्ठान सामाजिक परंपराओं पर आधारित थे ओर प्राचीन समय से प्रचलित थे। विश्व के सर्वाधिक ज्ञात अनेक पर्व भारत में मनाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश का जन्म भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में ही हुआ है इसलिए, होली मूलत: 'होलिका' के नाम से जानी जाती है, इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारत की प्राचीनतम धार्मिक कृतियों एवं महाकाव्यों जैसे जामिनी की 'पूर्वमीमांशा- सूत्र' तथा 'कथक – गृह - सूत्र' में विस्तृत विवरण मिलता हैं। भारत के प्राचीन पुरातत्व अवशेषों में भी होली के अनेक संदर्भ पाए जाते हैं। यही कारण है कि होली की परंपरा लोकसाहित्य तथा लोक संस्कृति से जुड़ी हुई हैं।

इसका एक उदाहरण 'छाऊ' नृत्य है। इस नृत्य का स्वरूप भारत के पूर्वी भाग, विशेषकर बिहार की परंपरा है जिसमें महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों, स्थानीय लोक साहित्य तथा गूढ़ विषयों पर आधारित कथा-वृतांतों का अभिनय किया जाता हे। इसकी तीन विशिष्ट शैलियां पूर्वी भारत के सरायकेला, पुरूलिया तथा मयूरगंज क्षेत्रों की हैं। 'छाऊ' नृत्य क्षेत्रीय पर्वों, मुख्यत: बंसत पर्व चैत पर्व से संबंधित है। इसकी मूल अवधारण नृत्य एवं मार्शल पद्धतियों के स्वदेशी स्वरूपों में मिलती है। इस नृत्य की भाव- भंगिमाओं में आभासी युद्ध की तकनीकें, पशुओं एवं पक्षियों की चलने की विशिष्ट शैली ओर ग्रामीण घरेलू औरतों की सामूहिक रूप से चलने की शैली शामिल है। यह लोक नृत्य का अपने स्वाभाविक स्वरूप से विकसित होकर उच्च शैली के नृत्य का स्वरूप धारित करने को प्रतिरूपित करता है। 'छाऊ' नृत्य भारत की

प्राचीनतम स्वदेशी नृत्यों में से एक है। ये पद्धतियां इस बात को दर्शाती हैं कि अपनी अमूल्य संस्कृति को बचाने के लिए अतीत के साथ अपना अस्तित्व बनाए रखना महत्वपूर्ण है इसलिए ये लोक संस्कृतियां भारत की चिरकालीन अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के भाग हैं।

अन्य संस्कृतियों की भांति ही भारतीय संस्कृति में वाचिक और श्रवण परम्परा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय काव्य किसी न किसी रूप में वाचिक संस्कार से अभी तक सुसंस्कृत है। कविता की वाचिकता अभी भी है और वह लोक में आदर भी पाती है। श्रुति की रक्षा भी इसी परम्परा से हुई।

भारत में हमारे पास विरासत के रूप में अनेक जीवंत पद्धतियों के अनमोल एवं अपार भंडार हैं। 1400 बोलियों तथा औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त 22 भाषाएं, विभिन्न धर्मों, कला, वास्तुकला, साहित्य, संगीत और नृत्य की विभिन्न शैलियां, विभिन्न जीवनशैली, प्रतिमानों के साथ, भारत विविधता में एकता के अखंडित स्वरूप वाला सबसे बड़े प्रजातंत्र का प्रतिनिधित्व करता है, शायद विश्व में यह सर्वत्र अनुपम है। भारत की भाषाओं की अपनी अनूठी विभिन्नता है और उनमें जो अपनी परंपराएं हैं, अपनी शैली है, जो उनका अपना स्वरूप है, वह सब मिलकर समग्र भारतीय संस्कृति का निर्माण करती है। उदाहरण के रूप में कई संस्कृतियों को लिया जा सकता है।–

(1) बिहार में जैसे छठ की संस्कृति का अपना अलग ही महत्व है। मानव जीवन की समृद्धि, जन कल्याण, आरोग्य, विकास के लिए प्रकाश, जीवन शक्ति और ऊर्जा के देवता भगवान सूर्य की उपासना की जाती है। सभी सभ्यताओं में ‹सूर्य देवता' की पूजा का एक पर्व है, लेकिन बिहार में इसका एक अनूठा रूप है।छठ पर्व एकमात्र ऐसा अवसर है जहां उगते सूर्य के साथ-साथ अस्त होते हुए सूर्य की भी पूजा की जाती है। हिंदू कैलेंडर के अनुसार कार्तिक माह के छठे दिन, छठ पर्व पर यह मनाया जाता है। छठ पर्व, जिसे 'सूर्य षष्ठी' के नाम से भी जाना जाता है। भक्त भगवान सूर्य के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और चार दिनों के लिए महत्वपूर्ण अनुष्ठान करते हैं। इस त्यौहार के दौरान व्रत रखने वाले लोगों को व्रती कहा जाता है। इस पर्व में लोगों की अटूट आस्था भगवान सूर्य के प्रति देखने को मिलती है| यह पर्व लोगों में उत्साह,उमंग भर देता है| इस पर्व को देखने और करने के लिए लोग दूर-दूर से आते है| यह पर्व बिहार की संस्कृति का गौरव हैं।

(2) इसी क्रम में ओणम को लिया जा सकता है। यह हिंदुओ का पवित्र त्यौहार है जो व्यापक रूप से केरल में मनाया जाता है। इसे चावल की फसल के त्यौहार के रूप में भगवान विष्णु के वामन अवतार के सम्मान में और राजा महाबलि के अपने गृहनगर लौटने की खुशी में मनाया जाता है। मलयाली हिंदू इस त्योहार को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। हर साल ये त्योहार अगस्त से सितंबर के महीने में मनाया जाता है। ओणम के त्योहार के अवसर में कई तरह की प्रस्तुतियां जैसे पुलिकली, ओनाथल्लु, ओनाविल्लु और कई फूलों की खूबसूरत व्यवस्था जिसे पूक्कलम कहा जाता है, आदि की व्यवस्था की जाती है।

(3) वही बंगाल का सबसे बड़ा त्यौहार दुर्गा पूजा है। पूरे नौ दिन बंगाल की गलियां रौशनी से जगमगाती रहती हैं। देश-विदेश से लोग यहां पर पूजा का लुत्फ उठाने के लिए आते हैं। यहां पर भव्य तरह से पंडाल सजाए जाते हैं। नौ दिन बंगाली परिवारों के लिए अलग ही खुशी होती है। दुर्गा पूजा से जुड़ी कई कथाएं हैं। ऐसा माना जाता है कि माँ दुर्गा ने इस दिन महिषासुर नामक असुर का संहार किया था जो भगवान ब्रम्हा का वरदान पाकर काफी शक्तिशाली हो गया था। ब्रम्हा जी ने महिषासुर को यह वरदान दिया था कि कोई भी देवता या दानव उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। वरदान पाकर वह स्वर्ग लोक में देवताओं को परेशान करने लगा और पृथ्वी पर भी आतंक मचाने लगा। उसने स्वर्ग में एक बार अचानक आक्रमण कर दिया और इंद्र को परास्त कर स्वर्ग पर कब्जा कर लिया। सभी देव परेशान होकर त्रिमूर्ति ब्रम्हा, विष्णु और महेश के पास सहायता के लिए पहुंचे। सारे देवताओं ने मिलकर उसे परास्त करने के लिए युद्ध किया, परंतु वह हार गये। कोई उपाय न मिलने पर देवताओं ने उसके विनाश के लिए देवी दुर्गा का सृजन किया जिसे शक्ति और पार्वती के नाम से भी जाना जाता है। देवी दुर्गा ने महिषासुर पर आक्रमण कर उससे नौ दिनों तक युद्ध किया और दसवें दिन उसका वध किया। इसी उपलक्ष्य में हिंदू दुर्गा पूजा का त्यौहार मनाते हैं।

(4) महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई में गणेश चतुर्थी के अवसर पर सबसे ज्यादा चहल-पहल देखी जाती है। गणेश चतुर्थी तब होती है जब जाति, संस्कृति, उम्र में कोई अंतर नहीं होता है। यह त्यौहार लोगों को पहले से कहीं ज्यादा पास लाता है। यहां लोग केवल अपने घरों में ही गणेश जी की मूर्ति नहीं लाते, बल्कि कई जगहों पर गणेश जी के बड़े-बड़े पंडाल लगे होते हैं। यहाँ बप्पा का त्यौहार मनाने के लिए लोग खास तरह की तैयारियां करते हैं। यह पर्व घरों में भगवान गणेश की मूर्ति की स्थापना के साथ शुरू होता है, और जुलूस के साथ गणेश विसर्जन के साथ समाप्त होता है।

(5) पोंगल तमिलनाडु का प्रमुख कृषि त्यौहार है। यह त्यौहार भारत के अन्य शहरों में मकर संक्रांति के रूप में मनाया जाता है, जबकि तमिलनाडु में इसे पोंगल कहते हैं। हिंदुओं के इस प्रमुख त्योहार को चार

दिन तक मनाया जाता है और हर दिन का एक अलग महत्व होता है। इस त्योहार के दौरान जो मौसम होता है उस मौसम में गन्ना, हल्दी और दालों आदि की फसल की जाती है और इस त्योहार के ज़रिए प्रकृति को अमूल्य धान प्रदान करने के लिए आभार व्यक्त किया जाता है।

(6) भारत में कुंभ और अर्धकुंभ हरिद्वार , नासिक और उज्जैन में भी मनाया जाता है। इस दिव्य पर्व को मनाने के लिए लाखों तीर्थयात्री और संत इन तीर्थों में आते हैं। वे पानी को अमृत मानकर पवित्र नदियों में डुबकी लगाते हैं। ये बहुप्रतीक्षित मेले हिंदू संस्कृति की धार्मिक और सामाजिक विशेषताओं का अनुपम मिश्रण हैं।

(7) बरसाना या 'लट्ठमार' होली बरसा (मथुरा) में मनाई जाती है। किंवदंती है कि भगवान कृष्ण अपनी प्रिय राधा और उसकी सहेलियों के साथ होली खेलने के लिए अपने गोपों के साथ बरसाना जाते थे। खेलते समय, गोपियों द्वारा उनके हाथों में 'लाठियां' लेकर गोपों का पीछा किया जाता था, इस प्रकार बरसाना की 'लट्ठमार होली' का प्रारंभ हुआ। यह विशेष त्यौहार श्री राधा रानी को समर्पित है।

भारतीय संस्कृति विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं का महासंगम है, जिसमें सनातन संस्कृति से लेकर आदिवासी, तिब्बत, मंगोल, द्रविड़, हड़प्पाई और यूरोपीय धाराएँ समाहित हैं। ये धाराएँ भारतीय संस्कृति को इंद्रधनुषीय संस्कृति या गंगा-जमुनी तहज़ीब में परिवर्तित करती है।

भारतीय संस्कृति की जब हम मिस्र की संस्कृति से तुलनात्मक विवेचना करते हैं तो हम पाते हैं कि उनमें कई समानता थी।

प्राचीन भारत में सिंधु नदी का बंदरगाह अरब और भारतीय संस्कृति का मिलन केंद्र था। इजिप्ट प्राचीन सभ्यताओं और अफ्रीका, अरब, रोमन आदि लोगों का मिलन स्थल है। यह प्राचीन विश्व का प्रमुख व्यापारिक और धार्मिक केंद्र था। मिस्र के भारत से गहरे संबंध रहे हैं।

मिस्र में सूर्य को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा देवता के रूप में माना जाता है। भारतीयों ने भी कहा है- 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत।' भारतीय और मिस्र की भाषाओं में बहुत से शब्द और उनके अर्थ समान हैं, जैसे हरी (सूर्य)- होरस, ईश्वरी- ईसिस, शिव- सेव, श्वेत- सेत आदि। मिस्र के पुरोहितों की वेशभूषा भारतीय पुरोहितों की तरह है। उनकी मूर्तियों पर भी वैष्णवी तिलक लगा हुआ मिलता है। यह भी मिस्र की संस्कृति में भारतीय संस्कृति का परिचायक है।

वहीं दूसरी और जब हम चीन की संस्कृति में भारत के गुण देखते हैं तो कई बार आश्चर्य में पड़ जाते हैं।

चीन विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार चीन के हान वंश के सम्राट मिगंती के समय में (65 ई.) हुआ था। उसने स्वप्न में सुवर्ण पुरुष बुद्ध को देखा और तदुपरांत अपने दूतों को भारत से बौद्ध सूत्रग्रन्थों तथा भिक्षुओं को लाने के लिए भेजा। परिणामस्वरूप, भारत से 'धर्मरक्ष' और 'काश्यपमातंग' अनेक धर्मग्रन्थों तथा मूर्तियों को साथ लेकर चीन पहुंचे और वहां उन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की। धर्मग्रन्थ श्वेत अश्व पर रख कर चीन ले जाए गये थे, इसलिए चीन के प्रथम बौद्ध विहार को श्वेताश्वविहार की संज्ञा दी गई। भारत-चीन के सांस्कृतिक संबंधों की जो परंपरा इस समय स्थापित की गई थी, उसका पूर्ण विकास आगे चल कर फ़ाह्यान (चौथी शती ई.) और युवानच्वांग (सातवीं शती ई.) के समय में हुआ, जब चीन के बौद्धों की सबसे बड़ी आकांक्षा यहां रहती थी कि किसी प्रकार भारत जाकर वहां के बौद्ध तीर्थों का दर्शन करें और भारत के प्राचीन ज्ञान और दर्शन का अध्ययन कर अपना जीवन समुन्नत बनाएं। उस काल में चीन के बौद्ध, भारत को अपनी पुण्यभूमि और संसार का महानतम सांस्कृतिक केंद्र मानते थे।[2]

'विस्डम ऑफ इंडिया' ग्रंथ में लिन युटांग कहते हैं, हिन्दुस्थान धर्म और सरल वाङ्मय विषयों में चीन का गुरु तथा त्रिकोणामिति, वर्गसमीकरण, व्याकरण, ध्वनिशास्त्र, अरेबियन नाईट्स, प्राणियों का खेल, शतरंज का खेल, तत्त्वज्ञान विषयों में अखिल जगत का गुरु था। बोकैशिओ, गटे, शपेनहॅमर, इमर्सन ने भारत से प्रेरणा ली।''

इसलिए कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है जिसमें बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। इसके साथ ही यह अपने-आप को बदलते समय के ढालती भी आई है।

इस बिंदु पर भी विचार करना जरूरी है कि हड़प्पाकालीन सभ्यता की परंपराएँ एवं प्रथाएँ आज भी भारतीय संस्कृति में देखने को मिल जाती है, यथा-मातृदेवी की उपासना, पशुपतिनाथ की उपासना, यांग-आसन की परंपरा इत्यादि। इसके अलावा भारतीय संस्कृति में 'प्रकृति मानव सहसंबंध' पर बल दिया गया है। हमारी संस्कृति मानव, प्रकृति और पर्यावरण के अटूट एवं साहचर्य संबंधों को लेकर चलती है। भारतीय उपनिषदों में 'ईशावास्यइंद सर्वम्' अर्थात् जगत् के कण-कण में ईश्वर की व्याप्तता को स्वीकार किया गया है। ये सभी भारतीय संस्कृति को समन्वित स्वरूप देते हैं।

संस्कृतियों के गर्भ में जो अंतर कथाए चलती रहती है उसका चित्रण प्रभु श्री राम की इस कथा के माध्यम से होता हैं।

(1) हिंदू पौराणिक कथा के अनुसार जब प्रभु श्री राम माता सीता को खोज रहे थे, तब लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि जिस तालाब के जल को शबरी ने अपने रक्त से अपवित्र कर दिया है। हे प्रभु! आप उस जल को अपने पांव से छूकर शुद्ध कर दें। तब प्रभु श्री राम ने शबरी से मिलने की इच्छा प्रकट की। राम भक्त शबरी एक आदिवासी भील की पुत्री थी। अपने प्रभु का बुलावा मिलते ही शबरी अपनी सुध-बुध खो कर प्रभु के पास पहुंची। तब शबरी ने प्रभु श्रीराम से कहा-

" पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।

केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मै जड़मति भारी।।1

कहा जाता है कि उस समय शबरी के पांव की धूल उस तालाब में जा मिली और वह जल पुनः पवित्र हो गया। तब शबरी ने प्रभु श्रीराम के पांव छूकर उनसे आश्रम चलने का आग्रह किया जिसे प्रभु ने सहर्ष स्वीकार किया। शबरी ने रोज की तरह आज भी प्रभु के लिए आश्रम सजाया और बाग के सबसे मीठे-मीठे बेर चक कर अपने प्रभु के लिए लाई। प्रभु श्री राम ने प्रेम से शबरी के झूठे बेर खाए, क्योंकि शबरी आदिवासी थी, उच्च वर्ण की नहीं थी थी लेकिन फिर भी उस समय वर्ण व्यवस्था को ना मानकर मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए जाने वाले प्रभु श्री राम का यह प्रसंग उनकी मानवीयता का परिचायक है।

" कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।" 34

प्रभु श्री राम ने कभी भेद-भाव नहीं किया। वे ऊंच- नीच , जाति-कुजाति, छोटे-बड़े सब को एक समान मानते थे। श्री राम जात-पात का भेद भूलकर प्रेम को सम्मान देते हैं।

एक और अंतरकथा को देखिए-

(2) महर्षि धौम्य वन में आश्रम बनाकर रहा करते थे। वे बहुत ही विद्वान महापुरुष थे। वेदों पर उनका पूरा अधिकार था। दूर-दूर से उनके आश्रम में बालक पढ़ने के लिए आया करते थे। ऋषि धौम्य के आश्रम में आरुणि नाम का एक शिष्य भी था। वह गुरु का अत्यन्त आज्ञाकारी शिष्य था। सदा उनके आदेश का पालन करने में तत्पर रहता था। यद्यपि वह अधिक कुशाग्र बुद्धि नहीं था, परन्तु इस आज्ञाकारिता के गुण के कारण वह ऋषि धौम्य का प्रिय शिष्य था। एक दिन बड़े ज़ोर की वर्षा हुई। आश्रम के चारों ओर पानी-ही-पानी हो गया। आश्रम के चारों ओर आश्रम के खेत थे जिनमें अन्न तथा साग-सब्जी उगी हुई थी। वर्षा की दशा देखकर ऋषि को यह चिन्ता हुई कि कहीं खेतों में अधिक पानी न भर गया हो। यदि ऐसा हो गया तो सभी फ़सल नष्ट हो जाएंगी। उन्होंने आरुणि को अपने पास बुलाया और उससे कहा कि वह जाकर देखे कि खेतों में कहीं अधिक पानी तो नहीं भर गया। कोई बरहा (नाली) तो पानी के ज़ोर से नहीं टूट गयी है। यदि ऐसा हो गया है तो उसे जाकर बंद कर दें। आरुणि तुंरत फावड़ा लेकर चल दिया। वर्षा ज़ोरों पर थीं पर उसने इसकी कोई चिन्ता न की। वह सारे खेतों में बारी-बारी से घूमता रहा। एक जगह उसने देखा कि बरहा टूटा पड़ा है और पानी बड़े वेग के साथ खेत में घूस रहा है। वह तुंरत उसे रोकने में लग गया। बहुत प्रयास किया, परन्तु बरहा बार-बार टूट जाता था। जितनी मिट्टी वह डालता सब बह जाती। जब काफी देर तक पानी को आरुणि नहीं रोक पाया। उसे गुरु के आदेश का पालन करना था चाहे कुछ भी हो तब वह स्वंय उस टूटी हुई मेंड़ पर लेट गया। अब उसके बहने का तो प्रश्न ही नहीं था। पानी बंद हो गया और वह चुपचाप वहीं लेटा रहा। धीरे-धीरे वर्षा कम होने लगी, लेकिन पानी का बहाव अभी वैसा ही था इसलिए उसने उठना उचित नहीं समझा। इधर, गुरु को चिंता सवार हुई। आख़िर इतनी देर हो गई आरुणि कहां गया। उन्होंने अपने सभी शिष्यों से पूछा, लेकिन किसी को भी आरुणि के लौटने का ज्ञान नहीं था। तब ऋषि धौम्य कुछ शिष्यों को साथ लेकर खेतों की ओर चल दिए। वे जगह-जगह रूक कर आरुणि को आवाज़ लगाते, लेकिन कोई उत्तर न पाकर आगे बढ़ जाते। एक जगह जब उन्होंने पुनः आवाज़ लगाई, 'आरुणि तुम कहां हो?' तो आरुणि ने उसे सुन लिया, लेकिन वह उठा नहीं और वहीं से लेटे-लेटे बोला, 'गुरुजी मैं यहाँ हूं।' गुरु और सभी उसकी आवाज़ की ओर दौड़े और उन्होंने पास जाकर देखा कि आरुणि पानी में तर-बतर और मिट्टी में सना मेंड़ पर लेटा हुआ है। गुरु कर दिल भर आया। आरुणि की गुरु भक्ति ने उन्हें हिलाकर रख दिया। उन्होंने तुरंत उसे उठने की आज्ञा दी और गद-गद होकर अपने सीने से लगा लिया। सारे शिष्य इस अलौकिक दृश्य को देखकर रोमांचित हो गए। तभी गुरू ने आरूणि से कहा,'बेटे, आज तुमने गुरु भक्ति का एक अपूर्व उदाहरण दिया है, तुम्हारी यह तपस्या और त्याग युगों-युगों तक याद किया जाएगा। तुम एक आदर्श शिष्य के रूप में सदा याद किए जाओगे तथा अन्य छात्र तुम्हारा अनुकरण करेंगे। मेरा आर्शीवाद है कि तुम एक दिव्य बुद्धि प्राप्त करोगे तथा सभी शास्त्र तुम्हें प्राप्त हो जाएंगे। तुम्हें उनके लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा। आज से तुम्हारा नाम उद्दालक के रूप में प्रसिद्ध होगा अर्थात् जो जल से निकला उत्पन्न हुआ और यही हुआ।' आरुणि का नाम उद्दालक के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सारी विद्याएं उन्हें बिना पढ़े, स्वंय ही प्राप्त हो गई।

भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत लम्बी समयावधि से समुदायों द्वारा अपनाए जा रहे विचारों, पद्धतियों, विश्वासों तथा मूल्यों में अपनी अभिव्यक्ति पाती है और राष्ट्र की सामूहिक स्मृति का हिस्सा बनती है। भारत की भौतिक, नृजातीय तथा भाषायी विविधता इसकी सांस्कृतिक विविधता की तरह ही अद्भुत है, जो आपसी संबद्धता के सांचे में विद्यमान है। कुछ मामलों में, इसकी सांस्कृतिक विरासत को अखिल भारतीय परंपरा के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो किसी विशिष्ट क्षेत्र, शैली या श्रेणी तक ही सीमित न होकर विविध रूपों, स्तरों तथा स्वरूपों का है जो आपस में सम्बद्ध होते हुए भी एक-दूसरे पर आश्रित नहीं है। भारत की विरासत की विविधता को रेखांकित करने से हमें यह पता चलता है कि यह सभ्यता प्राचीनतम समय से अब तक विद्यमान है और बाद में विभिन्न प्रभावों से इसमें संवर्धन होता रहा है।

अंत में, स्वामी विवेकानंद की निम्नलिखित पंक्तियों का स्मरण करना उपयुक्त होगा: यदि कोई अपने ही धर्म तथा संस्कृति का विशेष रूप से विद्यमानता का स्वप्न देखता है, तो मुझे उस व्यक्ति के प्रति दिल से सहानुभूति है और यह कहना चाहता हूँ कि बहुत जल्द प्रत्येक धर्म एवं संस्कृति के बैनर पर बिना संकोच के 'सहायता करो, संघर्ष नहीं, समावेशन करो विध्वंस नहीं; मेल - मिलाप तथा शांति रखो मतभेद नहीं ' ही लिखा जाएगा।''

यह संदर्भ उस भावना का परिचायक है जो भारत संपूर्ण विश्व को देना चाहता है, अपनी जीवंत अमूर्त विरासत। इस विरासत से विभिन्न राष्ट्रों, समाजों तथा संस्कृतियों के बीच संस्कृति एवं सभ्यता का एक संवाद बनाने में सुविधा होगी। यह परिणामत: विकास एवं शांति की दिशा में अंतरराष्ट्रीय समुदाय की रणनीति को पुनर्जीवित करने का एक प्रभावी कदम होगा।

अंत में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति और लोक संस्कृति का स्वरूप 'साहित्य' में सबसे अधिक सामर्थ्यपूर्ण तरीके से अभिव्यंजित होता है। संस्कृति साहित्य की प्राण है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में संस्कृति के प्रभाव को देखा जा सकता है। भारत की संस्कृति के आधारभूत मूल्य दया, करूणा, प्रेम, शांति, सहिष्णुता, लचीलापन, क्षमाशीलता इत्यादि को भारतीय साहित्य में समुचित तरीके से अभिव्यक्ति दी गयी है। भारतीय संस्कृति का यह समन्वित रूप भाषा के माध्यम से रामायण, महाभारत, गीता, कालिदास-भवभूति-भास के काव्यों और नाटकों के माध्यम से बार-बार व्यक्त हुआ है। तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु का अवधान साहित्य, हिंदी का भक्ति साहित्य, मराठी को पोवाड़ा, बंगला का मंगल नीति आदि भारतीय उद्यान के अनमोल फूल हैं। इनकी संयुक्त माला निश्चय ही 'समेकित भारतीय संस्कृति' का प्रतिनिधित्व करती है। तुलसीदास मध्यकाल में भारतीय संस्कृति के समन्वय के सबसे बड़े कवि के रूप में नजर आते हैं।

''स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात

रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात।।''

भारतीय संस्कृति में प्राचीन गौरवशाली मान्यताओं एवं परंपराओं के साथ ही नवीनता का समावेश भी दिखाई देता है। आज आवश्यकता है कि हम अतीत की सांस्कृतिक धरोहर को सहेजें, सवारें तथा उसकी मजबूत आधारशिला पर खड़े होकर प्राचीन मूल्यों के साथ नवीन संस्कृति को निर्मित एवं विकसित करें।

संदर्भ

1. लोक संस्कृति और इतिहास, बद्रीनारायण, अध्याय-1 , पृष्ठ संख्या -भूमिका
2. संस्कृति , वर्चस्व और प्रतिरोध, पुरुषोत्तम अग्रवाल , पृष्ठ - 88 - 102
3. लोक संस्कृति और भारतीय संस्कृति, डॉ. मनोहर , अध्याय -3, पृष्ठ संख्या - 34 - 38, भूमिका
4. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा , बाबू गुलाब राय, 'भारतीय संस्कृति' शीर्षक से निबंध, पृष्ठ संख्या - 18 - 26
5. भारतीय संस्कृति का इतिहास , डॉ. ए. के. मित्तल, भूमिका
6. भारत की लोक संस्कृति, हेमंत कुकरेती, पृष्ठ संख्या - 17 - 24
7. यूनियन सृजन पत्रिका, भारतीय संस्कृति एवं परंपरा, विशेषांक - अप्रैल - जून, 2019, पृष्ठ संख्या - 5, 10-11
8. भारतीय संस्कृति के स्वर, महादेवी वर्मा, भूमिका
9. भारतीय संस्कृति विविध आयाम, डॉ. रामकुमार अहिरवार, पृष्ठ संख्या-11
10. भारतीय संस्कृति के मूल स्वर, डॉ. विभा मिश्रा , अध्याय - 3 , पृष्ठ- 8
11. रामचरितमानस, तुलसीदास, अरण्यकांड , दोहा - 34
12. ऐतिहासिक स्थानावली, विजेंद्र कुमार माथुर, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ संख्या - 338
13. आरूणि उद्दालक की कथा, अथर्ववेद - 1/6/4
14. भारतीय संस्कृति के आधार, विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ संख्या - भूमिका, 16 - 30

❖

कवयित्री एवं सामाजिक चिंतक

पता - सी - 56 वैस्ट ज्योति नगर, इनकलेव , लोनी रोड,

शाहदरा, दिल्ली - 94 संपर्क - 7859926773

स्वाधीनता के 75 वर्ष और भविष्य के संकल्प

– डॉ. विजय कुमार मिश्र

"हर देश की विकास यात्रा में एक समय ऐसा आता है जब देश खुद को नए सिरे से परिभाषित करता है। खुद को नए संकल्पों के साथ आगे बढ़ाता है। भारत की विकास यात्रा में भी आज वो समय आ गया है। 75 वर्ष के अवसर को हमें एक समारोह भर ही सीमित नहीं करना है। हमने नए संकल्पों को आधार बनाना है। नए संकल्पों को लेकर के चल पड़ना है। यहां से शुरू होकर अगले 25 वर्ष की यात्रा, जब हम आजादी की शताब्दी मनाएंगे, नए भारत के इस सृजन का ये अमृत काल है। इस अमृत काल में हमारे संकल्पों की सिद्धि, हमें आजादी के सौ वर्ष तक ले जाएगी। गौरवपूर्ण रूप से ले जाएगी। अमृत काल का लक्ष्य है, भारत और भारत के नागरिकों के लिए समृद्धि के नए शिखरों का आरोहण। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां सुविधाओं का स्तर गांवों और शहर को बांटने वाला न हो। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां नागरिकों के जीवन में सरकार बेवजह दखल न दें। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां दुनिया का हर आधुनिक इन्फ्रास्ट्रक्चर हो।"

भारत की स्वाधीनता किसी एक दिन के प्रयास का परिणाम नहीं है, बल्कि इसके पीछे दशकों का संघर्ष है जिसमें अनगिनत वीर सपूतों ने अपने बलिदान दिए हैं। जब भी अवसर मिले, हमें अपने इन वीर सपूतों के योगदान का स्मरण जरूर करना चाहिए, उनके बलिदान की व्याख्या अवश्य करनी चाहिए, उनसे प्रेरणा लेकर देश के लिए स्वयं को होम कर देने का संकल्प अवश्य लेना चाहिए। हमारे स्वाधीनता सेनानियों के प्रयासों से 15 अगस्त 1947 को भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त अवश्य हुआ, किन्तु यह स्वाधीनता विभाजन के साथ आयी। देश के पूर्वी और पश्चिमी हिस्से में पाकिस्तान नामक नए राष्ट्र का उदय हुआ, जो भारत के विभाजन का परिणाम था। विभाजन के कारण भारत को अपना एक बड़ा भू-भाग खोना पड़ा, कश्मीर और अक्साई चीन में भी हमें अपनी जमीन खोनी पड़ी। हालांकि, उसके बाद से अब तक भारत अपनी सीमा की सुरक्षा करने में सफल रहा है। कई राज्यों में अलगाववादी ताकतों, नक्सलवाद, आतंकवाद की चुनौतियों का सामना करते हुए, सीमा पर चीन और पाकिस्तान से लड़ते हुए भारत ने देश की सीमा और संप्रभुता पर आंच नहीं आने दी।

अनेक प्रकार की आंतरिक चुनौतियों का सामना करते हुए भी यह देश निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहा। भारत एक जीवंत लोकतंत्र का उदाहरण है जहां की लोकतांत्रिक संस्थाओं में नागरिकों की अपार आस्था है। परस्पर मतभेद और विरोधी विचारों के मध्य लोकतंत्र की मूल भावना के अनुरूप काम करते हुए भारत ने एक परिपक्व देश के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच अलग-अलग मुद्दों पर गंभीर मतभेद रहे, लेकिन हमारी कार्य संस्कृति के कारण इन मतभेदों ने लोकतंत्र को कमजोर नहीं किया, बल्कि उसे और मजबूती ही प्रदान की है।

स्वाधीनता के बाद से भारत की प्रगति, इसकी अब तक की उपलब्धियां अपने आप में विशिष्ट हैं। ध्यान रहे कि भारत केवल 75 वर्ष पुराना राष्ट्र नहीं है, इसका इतिहास, इसकी परंपरा, इसकी पहचान हजारों वर्ष पुरानी है। संसार की प्राचीनतम सभ्यता और विश्व गुरु के रूप

में भारत की छवि, इसकी आध्यात्मिक चेतना, वसुधैव कुटुम्बकम का भाव, सर्वे भवन्तु सुखिनः का दर्शन और ऐसी ही अनगिनत चीजें दुनिया के लिए आकर्षण के कारण रहे हैं। किन्तु सैकड़ों वर्षों की पराधीनता से पैदा हुए अवरोध और उससे मुक्ति के लिए होने वाले महान आन्दोलन के परिणामस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वाधीनता मिली। स्वाधीनता के 75वें वर्ष में यह जरुरी हो जाता है कि हम अपनी तब से लेकर अब तक की गौरवपूर्ण उपलब्धियों का आकलन करें। यही नहीं, एक राष्ट्र के रूप में हमारी भविष्य की चुनौतियों की पहचान और आवश्यक रणनीति की दृष्टि से भी स्वाधीनता का यह अमृत महोत्सव अत्यंत ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

हमारी स्वाधीनता का इतिहास हमें यह बताता है कि आत्मविश्वास एवं अभय से जुड़ कर ही अनूठे कीर्तिमान स्थापित किए जा सकते हैं। पिछले 75 वर्षों में भारत ने कई प्रतिमान स्थापित किए हैं। हर क्षेत्र में आशातीत प्रगति के साथ एक सशक्त राष्ट्र के रूप में निरंतर हमारी पहचान बनी रही है। देश भूखमरी के संकट से न केवल बाहर निकलने में सफल रहा, बल्कि भारत खाद्यान्न आधिक्य वाला देश बना। कोरोना महामारी के दौरान तब जबकि सारे उद्योग धंधे ठप्प थे, लोगों के समक्ष पेट भरने तक का संकट था, भारत सरकार ने अपने खाद्यान भंडारों के मुंह खोल दिए और भारत की अस्सी करोड़ जनता तक निःशुल्क खाद्यान्न पहुंचाने का काम किया। निःशुल्क खाद्यान्न आपूर्ति संबंधी यह दुनिया की सबसे बड़ी और अनूठी योजना थी।

इस कालखंड में शिक्षा, चिकित्सा, ऊर्जा, ग्रामीण विकास, सड़क एवं अन्य आधारभूत संरचनाओं के विकास आदि की दृष्टि से भी हमने उल्लेखनीय प्रगति की है। मुक्त अर्थव्यवस्था के दौर में हम विश्व की शीर्ष अर्थव्यवस्थाओं में शामिल होने में सफल रहे। भारत एक सैन्य महाशक्ति बन कर भी उभरा है। परमाणु हथियार संपन्न भारत की सेना विश्व की शक्तिशाली सेनाओं में शुमार है। मिसाइल तकनीकी में आज दुनिया भारत का लोहा मान रही है। अंतरिक्ष क्षेत्र में भी भारत ने नए-नए कीर्तमान गढ़े हैं। मंगल मिशन की सफलता एवं रॉकेट प्रक्षेपण की अपनी क्षमता के बदौलत भारत अंतरिक्ष क्षेत्र में महारथ रखने वाले चुनिंदा देशों में शामिल है। सूचना तकनीक के क्षेत्र में भी भारत अग्रणी बना हुआ है। तकनीक आधारित विकास में भारत ने पिछले कुछ दशकों में अभूतपूर्व प्रगति की है। हाल के वर्षों में विकास की यात्रा में अपेक्षाकृत पीछे छूट गए क्षेत्रों, पूर्वी क्षेत्र, पूर्वोत्तर भारत, पहाड़ी इलाकों, तटीय क्षेत्रों आदि में विकास कार्यों को सरकार ने जिस तरह से गति दी है, वह बेहद उत्साहजनक है।

विगत 75 वर्षों में एक लोकतांत्रिक देश के रूप में भारत ने अपनी परिपक्वता का परिचय दिया है। शांतिपूर्ण सत्ता के हस्तांतरण की हमारी प्रक्रिया बेहद गरिमापूर्ण रही है। इस दौरान हमने आपातकाल जैसी कालिमा का भी सामना किया है, लेकिन उससे लड़ते हुए और उस पर विजय प्राप्त कर हमारा लोकतंत्र पहले से कहीं अधिक मुखर ही हुआ। सौ से भी अधिक संविधान संशोधनों में भी देश की जनता के कल्याण और शासन की बेहतरी के प्रयास ही दिखाई दिए। देश के नागरिकों को अधिकारों से संपन्न किया गया। शिक्षा, भोजन, सूचना, निजता के अधिकार सुनिश्चित किए गये। हालांकि, समान नागरिक संहिता जैसे संकल्प अभी भी पूरे होने शेष हैं। न्याय व्यवस्था में सुधार विलंबित है। चुनाव सुधार संबंधी अनेक कदम उठाए जाने के बावजूद अभी भी व्यापक चुनाव सुधार की आवश्यकता प्रतीत होती है।

हाल के वर्षों में देश की प्रगति को, इसकी मजबूती को, एक सशक्त राष्ट्र के रूप में इसे स्थापित करने के प्रयासों को नए आयाम मिले हैं। वर्तमान शासन के दृष्टिकोण और नीतियों को देखकर ऐसा लगने लगा है कि यह देश अपने संकल्पों को सिद्धि के मार्ग पर ले जाने की ओर चल पड़ा है। हमने आतंकवाद को मुंहतोड़ जवाब देकर उस पर काबू पाने में सफलता पाई है। क्षेत्रवाद, अलगाववाद आदि को नियंत्रित किया है। हमने स्वच्छ भारत, आत्म निर्भर भारत आदि के माध्यम से नए भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया को भी गति मिली है। राम मंदिर का शिलान्यास हो चुका है, काशी विश्वनाथ कोरिडोर के उद्घाटन का दृश्य और उससे बनता परिदृश्य, काशी की भव्यता और दिव्यता को भारत और भारतीयता के उत्कर्ष रूप में देखा जा सकता है। धारा 370 और 35ए को खत्म करके कश्मीर की पुरानी समस्या और चिंता को जिस तरह से ख़त्म किया वह मजबूत नेतृत्व और उसके दृढ संकल्प का ही सूचक है। दशकों पुराने स्वप्न साकार होने लगे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा, संस्कृति, जीवन मूल्यों को सुरक्षित करने की एवं नए भारत की निर्मिति की भूमिका बनने लगी है। स्वाधीनता के वास्तविक मायने स्पष्ट होने लगे हैं, व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक प्रगति में भारत की स्थिति और इसकी छटाएं प्रतिबिंबित होने लगी हैं।

मैकाले की शिक्षा नीति से प्रभावित भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की दृष्टि से युक्त और भारतीयता के अधिष्ठान पर खड़ी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने नई उम्मीदें जगाई हैं। इस शिक्षा नीति की व्यापकता, भारतीय भाषाओं, ज्ञान परम्पराओं, कलाओं, गीत-संगीत, दर्शन, चिंतन आदि को जिस तरह से इसके आधार रूप में स्वीकार किए गए हैं और शिक्षा के ढांचे और ढंग में जिस तरह के बदलाव के प्रस्ताव हैं, उसके कार्यान्वयन से भारत के मानव संसाधन का बेहतर प्रबंधन और उपयोग हो सकेगा। इस शिक्षा नीति में भारत की समृद्ध विरासत को सहेजने का संकल्प अभिव्यक्त हुआ है, यह पहले की किसी भी शिक्षा नीति में नहीं देखाई देता है।

"प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में यह नीति तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्मज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे प्राचीन भारत के विश्वस्तरीय संस्थानों ने अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊंचे प्रतिमान स्थापित किए थे और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को लाभान्वित किया था। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता, माधव, पाणिनी, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, मैत्रयी, गार्गी और थिरुवल्लुवर जैसे अनेकों महान विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों के वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों, जैसे गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, भवन निर्माण, नौकायान-निर्माण और दिशा ज्ञान, योग, ललित कला, शतरंज इत्यादि में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान किए। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक स्तर की इस समृद्ध विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेज कर संरक्षित रखने की जरूरत है बल्कि हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य होने चाहिए, उसे और समृद्ध किया जाना चाहिए और नए-नए उपयोग भी सोचे जाने चाहिए।"[1]

भारत निरंतर अपने सामने मौजूद परिस्थितियों से जूझने, संघर्ष करने और उस पर विजय प्राप्त करने की परंपरा का देश रहा है। स्वाधीनता के बाद भी भारत के निर्माताओं ने लगातार अपनी कर्मठता, राष्ट्र के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ देश को आगे बढाने का काम किया। विदेश नीति के मोर्चे पर भी भारत का अपना विशेष मिजाज रहा। हाल के वर्षों में भारत सरकार ने जिस तेजी से दूसरे देशों के साथ अपने संबंध विकसित किए हैं, जिस तरह से स्वतंत्रता और सह अस्तित्व के सिद्धांत के साथ दुनिया के तमाम देशों का विश्वास अर्जित किया है, जिस तरह से सभी वैश्विक संस्थाओं में हमारी धाक बढ़ी है, वह भारत की बढ़ती चमक और धमक को ही सूचित करता है। चीन की दादागिरी और पाकिस्तान की हरकतों को जिस तरह से मुंहतोड़ जबाव दिया गया और उसे पूरी दुनिया से अलग-थलग कर देने में जैसी कूटनीतिक सफलता मिली है, वैसी सफलता पहले देखने को नहीं मिलती थी। देश के सशक्त नेतृत्व ने अपनी सोच, अपने काम के तरीके से देश को जो ऊंचाई प्रदान की है वह बेमिसाल है। नरेन्द्र मोदी की सरकार ने अपनी सुदृढ़ विदेश नीति का परिचय देते हुए जहां एक ओर विभिन्न देशों के साथ संबंधों को मजबूत करने के प्रयास किए, वहीं दूसरी ओर शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियों का कठोर तरीके से जवाब देने में भी कोई संकोच नहीं किया।

"मोदी सरकार के सत्ता संभालने के पश्चात भारत की विदेश नीति में आए बदलाव के संबंध में चीन के एक 'थिंक टैंक' ने कहा कि मोदी सरकार के सत्ता पर काबिज होने के बाद से भारत की विदेश नीति काफी सक्रिय और मुखर हो गई है। साथ ही भारत की रिस्क लेने की क्षमता में भी उल्लेखनीय उछाल आया है।"[2]

आज 'आजादी का अमृत महोत्सव' के उपलक्ष्य में पूरे देश में विविध कार्यक्रमों, विचार-विमर्शों के माध्यम से देश के प्रति हमारी जिम्मेदारी, हमारे कर्तव्यों को नए सिरे से निर्धारित करने के प्रयास हो रहे हैं, हमें भविष्य के लिए अपने लक्ष्यों को भी पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। लाल किले की प्राचीर से इस अमृत महोत्सव के प्रारंभ में स्वतंत्रता दिवस के दिन दिए गये अपने उद्बोधन में प्रधानमंत्री जी ने इस ओर इशारा किया था। उन्होंने कहा –

"हर देश की विकास यात्रा में एक समय ऐसा आता है जब देश खुद को नए सिरे से परिभाषित करता है। खुद को नए संकल्पों के साथ आगे बढ़ाता है। भारत की विकास यात्रा में भी आज वो समय आ गया है। 75 वर्ष के अवसर को हमें एक समारोह भर ही सीमित नहीं करना है। हमने नए संकल्पों को आधार बनाना है। नए संकल्पों को लेकर के चल पड़ना है। यहां से शुरू होकर अगले 25 वर्ष की यात्रा, जब हम आजादी की शताब्दी मनाएंगे, नए भारत के इस सृजन का ये अमृत काल है। इस अमृत काल में हमारे संकल्पों की सिद्धि, हमें आजादी के सौ वर्ष तक ले जाएगी। गौरवपूर्ण रूप से ले जाएगी। अमृत काल का लक्ष्य है, भारत और भारत के नागरिकों के लिए समृद्धि के नए शिखरों का आरोहण। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां सुविधाओं का स्तर गांवों और शहर को बांटने वाला न हो। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां नागरिकों के जीवन में सरकार बेवजह दखल न दें। अमृत काल का लक्ष्य है एक ऐसे भारत का निर्माण जहां दुनिया का हर आधुनिक इन्फ्रास्ट्रक्चर हो।"[3]

प्रधानमंत्री जी ने अपने शासन के सात वर्षों में किए गये कार्यों, उसकी दृष्टि आदि को भी सामने रखा। उन्होंने उज्ज्वला, आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं का उल्लेख करते हुए यह रेखांकित किया कि बीते सात वर्षों में शुरू हुई अनेक योजनाओं का लाभ करोड़ों गरीबों के घर तक पहुंचा है। पहले की तुलना में बहुत ही तेज गति से देश आगे बढ़ रहा है। विकास के लक्ष्य को नए सिरे से निर्धारित किया जा रहा है, जो नीतियां बनाई जा रहीं हैं, उसे पूर्णता तक ले जाने का संकल्प भी स्पष्ट

दिख रहा है। शत-प्रतिशत का नया मानक सामने आया है – शत प्रतिशत गांवों में सड़कें, शत-प्रतिशत परिवारों का बैंक खाता, शत-प्रतिशत घरों तक बिजली, शत-प्रतिशत योग्य लाभार्थियों को आयुष्मान भारत का कार्ड, शत-प्रतिशत घरों तक गैस सिलिंडर और गैस कनेक्शन। सरकार की बीमा योजना, पेंशन योजना, आवास योजना आदि में भी शत-प्रतिशत की दृष्टि दिखाई देती है। नरेन्द्र मोदी की अर्थनीति पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध लेखक कुलदीप अग्निहोत्री लिखते हैं –

"मोदी ने आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की प्राथमिकताओं को बदला। उन्होंने अर्थव्यवस्था की दिशा को बदला, जिससे सबसे ज्यादा फायदा उस आदमी को मिलने वाला है, जो समाज के सबसे नीचे पायदान पर खड़ा है। मोदी सरकार ने अपनी तमाम जनकल्याणकारी योजनाओं के लिए महात्मा गांधी और दीनदयाल उपाध्याय के दिए गये उस तावीज को याद रखा कि जब भी कोई काम करो तो पहले इस पर विचार कर लो कि इससे सीढ़ी के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति को कितना लाभ होगा। राज्य का एक ही उद्देश्य है- अन्त्योदय। यानी सबसे नीचे बैठे व्यक्ति का उदय। यह तभी संभव था जब हाशिए पर खड़े व्यक्ति को अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनाया जाता।"[4]

हाल के वर्षों में भारत सरकार के कुछ फैसलों से यही स्पष्ट हुआ है कि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो तो देश के हित में लिए जाने वाले जरूरी और कड़े फैसलों से देश की दशा-दिशा को बदला जा सकता है। जिस सूझ-बूझ, कार्यकुशलता और तत्परता के साथ कोरोना जैसी महामारी का सामना किया गया, स्वदेशी वैक्सीन विकसित किए गए और जिस तेजी से टीकाकरण हुआ, वह अपने आप में अभूतपूर्व है।

कोरोना काल में स्वास्थ्य संबंधी आधारभूत संरचनाओं की कमी ने पूरी दुनिया का ध्यान आकृष्ट किया है, भारत ने भी इस संकट का सामना करने के क्रम में अपनी स्वास्थ्य संबंधी संरचनाओं में व्यापक सुधार किया है, किन्तु आने वाले वर्षों में इसमें बड़े पैमाने पर निवेश की आवश्यकता है, स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक बेहतर और पारदर्शी बनाने की जरूरत है। स्वास्थ्य क्षेत्र का विस्तार सुदूर इलाकों और गरीब से गरीब लोगों तक करना ही होगा। इसके लिए आयुष्मान भारत, जन औषधि की तरह ही दूसरे प्रभावी पहल भी करने होंगे। आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त अस्पतालों और लैब्स के नेटवर्क का विस्तार करना होगा। कृषि क्षेत्र में सुधार, श्रमिक सुधार, भूमि सुधार की प्रक्रियाओं को भी तेज करने होंगे।

कोरोना महामारी के बाद वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की घटती साख और अनेक वैश्विक कंपनियों का चीन से हुए मोहभंग की परिस्थिति का लाभ भी भारत को उठाना चाहिए, जिससे नए आर्थिक क्षेत्रों में भी भारत की पहुंच बढ़े। चीन से भारत की ओर आने वाले अवसरों को भुनाने के लिए देश के विनिर्माण तंत्र को मजबूत करना होगा, देश की विनिर्माण प्रतिस्पर्धा को और अधिक सुधारना होगा। असंगठित क्षेत्र के करोड़ों मजदूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना, मौजूदा योजनाओं को नए स्वरूप में ढालना और रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए नई नियुक्तियों में तेजी लाना जैसे कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं जिन्हें जल्द से जल्द संबोधित किए जाने की आवश्यकता है। कोरोना के बाद एक नई दुनिया उभर रही है। इस महामारी ने पूरी दुनिया में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ाई है। ऐसे में संपत्ति और आय का असमान वितरण देश के लिए बड़ी चुनौती है। देश की प्रगति और आत्मनिर्भरता में संतुलन बनाना भी अहम होगा। असंतुलित जनसंख्या वृद्धि, जलवायु परिवर्तन जैसी चिंताओं से भी दो चार होना होगा। हमें समयानुकूल, नवीकरणीय, वैकल्पिक ऊर्जा के विकास पर भी ध्यान देना होगा।

यह सच है कि देश के सामने कई चुनौतियां हैं। भारत जैसे विशाल और विविधता वाले देश के लिए यह अस्वाभाविक भी नहीं है। किन्तु भविष्य के लिए हमारा संकल्प दृढ है। भारत की अब तक की उपलब्धियां, हाल के वर्षों में नेतृत्व और शासन की रीति-नीति और इसकी सफलताओं ने देश में आशा का जिस तरह से संचार किया है, जिस तरह से देश के नागरिक नई ऊर्जा से लबरेज दिखाई देते हैं, उससे लोगों में यह भरोसा पैदा हुआ है कि यह देश अपने वर्तमान और भावी चुनौतियों का सामना करते हुए, उस पर विजय पाकर प्रगति के शिखर को चूमने में सफल रहेगा। आज जिस तरह से सभी मोर्चों पर कार्य हो रहे हैं, हमारे राष्ट्रीय चरित्र का विकास होने लगा है, राष्ट्र सशक्त होने लगा है, न केवल भीतरी परिवेश में बल्कि दुनिया की नजरों में भारत अपनी एक स्वतंत्र और मजबूत पहचान लेकर उपस्थित है। आज भारतवासियों के मन में यह विश्वास जगा है कि अपने सामर्थ्य, अपने दृष्टिकोण, अपने योगदान, अपनी सद्भावना और सदाशयता के दम पर भारत आने वाले वर्षों में विश्व गुरु की अपनी प्रतिष्ठा को पुनः हासिल करने में समर्थ होगा और इक्कीसवीं सदी भारत की सदी होगी।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020, पृष्ठ 4-5
2. डॉ. राकेश कुमार आर्य, भारत की विदेश नीति, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, (भूमिका), वर्ष 2021
3. pib.gov.in, (प्रधानमंत्री का लाल किला की प्राचीर से स्वतंत्रता दिवस पर उद्बोधन की मूल प्रति से)
4. कुलदीप अग्निहोत्री, मोदी होने का अर्थ, प्रभात प्रकाशन, वर्ष 2021

लेखक एवं शिक्षाविद

सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली संपर्क –8585956742

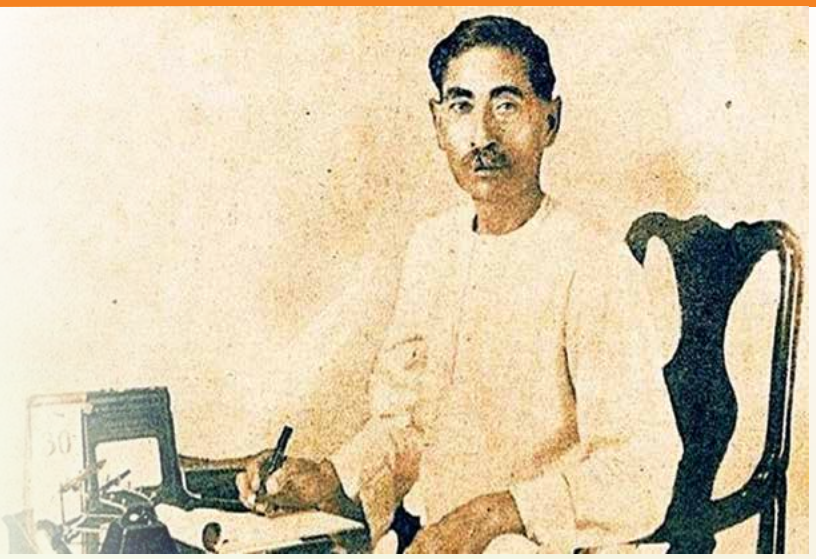

स्वाधीनता संग्राम के साहित्यिक नायक: प्रेमचंद

– डॉ. कमल किशोर गोयनका

"महात्मा गांधी ने स्वराज्य आन्दोलन को एक वैचारिक आधार दिया और उसमें भारत की मूलभूत सांस्कृतिक एवं मानवीय तत्त्वों को जोड़ा और उन्हें अपने कृतित्व से व्यावहारिक रूप दिया। प्रेमचंद ने सन् 96 में ही गांधी के 'राष्ट्रीय जीवन' में पदार्पण करने और व्यावहारिक उद्योग का मार्ग दिखाने के लिए उनका स्वागत किया। उन्होंने गांधी के असहयोग आन्दोलन पर खूब लिखा। सन् 92 में उनका प्रसिद्ध लेख 'स्वराज्य के फायदे' प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने गांधी के नेतृत्व में लड़े जाने वाले स्वाधीनता संग्राम में सहयोग-सहायता देने के लिए पाठकों को प्रेरित किया तथा लिखा कि स्वराज्य से ही भौतिक, आर्थिक, मानसिक तथा नैतिक विकास और उन्नति हो सकती है। उन्होंने इसी प्रकार 'हंस' के प्रथम अंक (मार्च 1930) में लिखा कि महात्मा गांधी ने 'स्वाधीनता' के विचार की सृष्टि की है और हमारा लक्ष्य एवं नीति यही है कि हम इस संग्राम में विजयी हों।"

भारत की स्वतन्त्रता की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर जब सम्पूर्ण भारत स्वतन्त्रता के संघर्ष एवं उसके इतिहास का अवलोकन एवं मूल्यांकन कर रहा है तथा उसमें शहीद हुए देश-भक्तों को श्रद्धाजंलि अर्पित कर रहा है, तब हिन्दी साहित्यकारों द्वारा स्वाधीनता के इस निर्णायक संग्राम में किये गये योगदान तथा भागीदारी का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। भारत में अंग्रेजों की दासता का काल हमारा निकटतम अतीत है, अतः मात्र तथ्यों एवं प्रमाणों को खोजना सरल है। भारत को अंग्रेजी गुलामी से मुक्त करने का पहला प्रयास सन् 1857 को असफल क्रान्ति से हुआ था, लेकिन इस असफलता ने भारत में आत्मालोचन, आत्म-निरीक्षण तथा अपनी अस्मिता को पहचानने तथा समाज को जागृत करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। पश्चिम का ज्ञान-विज्ञान भी अब भारत में आ रहा था तथा अंग्रेजों का शोषण एवं दमन-चक्र भी तेजी से फैल रहा था। इन परिस्थितियों में राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्दघोष, अरविन्द, विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र आदि अनेक भारत-भक्तों ने देश में स्वराज्यघोष, स्व-शासन, स्व-संस्कृति तथा स्वभाषा की नयी चेतना उत्पन्न की और इस प्रकार स्वाधीनता की बुनियाद निर्मित की। साहित्यिक एवं धार्मिक ग्रन्थों ने स्वाधीनता की इस महत् चेतना एवं आकांक्षा को सम्पूर्ण देश में फैला दिया। 'आनन्द मठ' (1881-82) के 'बन्देमातरम्' गीत ने जैसे भारत की सोयी जनता को जागृत कर दिया और मातृ-भूमि भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने का शंखनाद किया। स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में कहा कि 'स्वदेशी राज्य' ही 'सर्वोपरि उत्तम' होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी अपनी 'भारत भारती' (1869) 'भारत दुर्दशा' (1880) आदि ग्रन्थों के द्वारा जनता में स्वाधीनता की इसी नयी चेतना को उत्पन्न कर रहे थे और उसे आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ रहे थे। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक साहित्यकारों, चिन्तकों, धर्म एवं समाज सुधारकों तथा राज-नेताओं ने नव-जागरण की देश-व्यापी लहर उत्पन्न की और जन-मानस में स्वाधीनता का बीज-मन्त्र स्थायी रूप से

स्थापित कर दिया। वर्ष 9105 के बंग-भंग ने तो पूरे देश में स्वदेशी और स्वराज्य का शंख फूंक दिया।

प्रेमचंद का जन्म इसी समय हुआ। यद्यपि उन्होंने आरम्भ में उर्दू में लिखना शुरू किया, किन्तु वे देश की परिस्थितियों तथा स्वराज्य की विभिन्न दिशाओं में फैली किंतु संधिष्ट विचार-धारा एवं नव-जागरण् की व्यापक उथल-पुथल से गहरे रूप से प्रभावित हुए। उन्होंने सर्जनात्मक क्षेत्र में उतरने से पहले उर्दू में उपलब्ध विपुल साहित्य पढ़ा तथा अंग्रेजी के कथा साहित्य को भी रोचकता के साथ पढ़ा था, लेकिन उन्होंने इसमें से किसी की नकल नहीं की और देश की राष्ट्रीय चेतना को आत्मसात् करते हुए 'स्वराज्य' का संकल्प ही सदैव सामने रखा और भारतेन्दू एवं द्विवेदी युग की अधिकांश साहित्यिक प्रवृतियों को आत्मसात् किया। उनका जीवन, विचार तथा साहित्य सभी इसका जीवन्त प्रमाण है। वे यौवन काल से ही आर्यसमाज तथा कांग्रेस पार्टी के सदस्य रहे तथा उन्होंने यद्यपि 20 वर्ष तक अंग्रेजी सरकार की नौकरी की, किन्तु वे अंग्रेजों के अहंकार तथा रौब के सामने झुके नहीं। एक अंग्रेज इन्स्पेक्टर को तो वे अदालत तक ले जाने को गर थे। महात्मा गांधी ने जब स्वाधीनता का अहिंसक आन्दोलन आरम्भ किया तो वे उनके अनुयायी बन गये और उनकी प्रेरणा से 16 फरवरी, 1921 को गोरखपुर में सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। गांधी जी के नमक आन्दोलन में वे पत्नी के साथ मिलकर कांग्रेसी स्वयंसेवकों को आन्दोलन पर जाने के लिए विदा करते तथा कभी-कभी कांग्रेस दफ्तर में जाकर सेवा-कार्य भी करते। गांधी जी के विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार आन्दोलन में उनकी पत्नी शिवरानी देवी पिकेटिंग करती हुईं जिन्हें गिरफ्तार हुई और दो महीने की सजा हुई। प्रेमचंद ने जब 'हंस' निकाला तो कई बार उन्हें अंग्रेजी से सेंसरशिप कानून का शिकार होना पड़ा, लेकिन वे पराजित नहीं हुए। अपने जीवन के अंतिम समय में भी वे 'हंस' के भविष्य के लिए चिन्तित थे, जो अपने प्रवेशांक (मार्च, 1930) में प्रकाशित सम्पादकीय के अनुसार महात्मा गांधी के स्वाधीनता संग्राम के विचार को विजयी बनाने के लिए उसे अपना ध्येय, नीति तथा राजनीति बनाकर चला है। इसी सम्पादकीय में प्रेमचंद ने लिखा कि भारत ने शान्तिमय समर की भेरी बजा दी है। 'हंस' भी मानसरोवर की शान्ति छोड़कर अपनी नन्हीं-सी चोंच में चुटकी-भर मिट्टी लिए हुए, समुद्र पाटने आजादी के जंग में योग देने चला है।

प्रेमचंद अपने सम्पूर्ण रचना-काल (903-36) में भारत-प्रेम तथा भारत को विदेशी दासता से मुक्ति एवं स्वराज्य की स्थापना के लिए संकल्पशील और सृजनशील रहे। भारत और विश्व का अधिकांश परिदृश्य उनके सामने था। अंग्रेजों के क्रूर दुःशासन एवं शोषण-दमन पर आधारित दासता का विष-पान वे स्वयं कर रहे थे और जीवन के अन्त तक करते रहे। उन्होंने 3 जून 1932 को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को पत्र में जो वाक्य लिखे थे, वास्तव में वे उनके साहित्य की मूल प्रेरणा-भूमि तथा मूल बीज-भाव को स्पष्ट करते हैं। प्रेमचंद ने इस पत्र में लिखा था, "मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा नहीं। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविश नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य हो।" यह उनके जीवन और साहित्य का मूल मन्त्र है, यही उसकी बुनियाद है और यही उस पर निर्मित भवन। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य तथा नाटक, लेख आदि में जीवन के जो भी पक्ष चित्रित किये हैं, उनमें उनका देश-प्रेम, दासता से मुक्ति, , स्वराज्य-कामना और भारत के समतामूलक कल्याणकारी स्वतन्त्र देश के रूप में विकसित होने का ही स्वप्न सचेत रूप में क्रियाशील रहा है। उन्होंने अपने पहले कहानी-संग्रह 'सो जैवतन' (1908) में देश-प्रेम की प्रेरणादायक कहानियां संकलित कीं और भूमिका में लिखा कि नयी नस्ल के जिगर पर देश-प्रेम की अस्मत का नशा जमना जरूरी है। इस संग्रह की कहानी, 'दुनिया का अनमोल रतन' में लेखक अन्त में कहता है कि ख़ून का आख़िरी कतरा जो बतन की हिफाज़त में गिरे दुनिया का सबसे अनमोल रतन है। इस कहानी-मंग्रह का परिणाम होता ही था। अंग्रेज कलक्टर ने उन्हें बुलाया और 'राजद्रोहात्मक' कहानियाँ लिखते पर धमकाते हुए कहा, "तुम्हारी कहानियों में 'सिडीशन' भरा हुआ है। अपने भाग्य को बखानों की अंग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज्य होता तो तुम्हारे हाथ काट दिये जाते।" कलक्टर ने 'सौजेवतन' की बची प्रतियाँ मँगाकर आग के हवाले कर दीं और भविष्य के लिए चेतावनी दी। इस पर उन्होंने अपना नाम बदल कर 'प्रेमचंद' नाम रखा और अब इसी नाम से कहानियाँ एवं उपन्यास लिखते रहे।

महात्मा गांधी के भारतीय रंगमंच पर आने और अहिंसक स्वाधीनता संग्राम आरम्भ करने पर प्रेमचंद जैसे उन जैसे ही राष्ट्रीय व्यक्तित्व की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने महात्मा गांधी को अपना प्रेरणा-स्रोत तथा राष्ट्रीय गुरू स्वीकार कर लिया और वे उनके क्रिया-कलापों तथा विचारों का साहित्यिक रूपान्तरतण जीवन के अन्त तक करते रहे। वास्तव में, वह युग ऐसा था जब भारत के साहित्यकार, राजनेता, धार्मिक नेता, चिन्तक, क्रान्तिकारी, गर्म-नरम दल वाले सभी भारत में स्वराज्य के लिए चिन्तित एवं क्रियाशील थे। एक छोटा वर्ग ऐसा ही था जो अंग्रेजों के साथ था, लेकिन पूरा लोक-मानस महात्मा गांधी के आगमन के साथ स्वाधीनता के साथ उद्वैलित हो उठा।

महात्मा गांधी ने स्वराज्य आन्दोलन को एक वैचारिक आधार दिया और उसमें भारत की मूलभूत सांस्कृतिक एवं मानवीय तत्त्वों को

जोड़ा और उन्हें अपने कृतित्व से व्यावहारिक रूप दिया। प्रेमचंद ने सन् 96 में ही गांधी के 'राष्ट्रीय जीवन' में पदार्पण करने और व्यावहारिक उद्योग का मार्ग दिखाने के लिए उनका स्वागत किया। उन्होंने गांधी के असहयोग आन्दोलन पर खूब लिखा। सन् 1992 में उनका प्रसिद्ध लेख 'स्वराज्य के फायदे' प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने गांधी के नेतृत्व में लड़े जाने वाले स्वाधीनता संग्राम में सहयोग-सहायता देने के लिए पाठकों को प्रेरित किया तथा लिखा कि स्वराज्य से ही भौतिक, आर्थिक, मानसिक तथा नैतिक विकास और उन्नति हो सकती है। उन्होंने इसी प्रकार 'हंस' के प्रथम अंक (मार्च 1930) में लिखा कि महात्मा गांधी ने 'स्वाधीनता' के विचार की सृष्टि की है और हमारा लक्ष्य एवं नीति यही है कि हम इस संग्राम में विजयी हों। प्रेमचंद ने एक दूसरी टिप्पणी में लिखा कि स्वराज्य से किसानों, मजदूरों, निर्बलों, गरीबों आदि की आवाज़ प्रबल होगी और उन्हें ही प्रमुख रूप से फायदा होगा। 'हंस' (मई 1930) में 'दमन' शीर्षक से प्रेमचंद ने लिखा कि स्वराज्य आन्दोलन एक 'राष्ट्रीय आन्दोलन' है और यह 'भारतीय आत्मा' के 'स्वाधीनता प्रेम' की विकल जागृति है और महात्मा गांधी इसके जीते-जागते अवतार हैं। प्रेमचंद ने एक बार अपनी पत्नी से कहा था महात्मा गांधी का उद्देश्य मजदूर और काश्तकारों को सुखी बनाना तथा हिन्दू मुसलमानो को एकता है और मैं भी लिखकर वही कर रहा हूँ। उन्होंने 'हंस' (जून, 93) महात्मा गांधी क्रान्ति नहीं चाहते और न क्रान्ति से किसी जाति का उद्धार हुआ है। महात्मा गांधी के मार्ग से भीषण क्रान्ति के बिना भी उसके लाभ प्राप्त हो सकते हैं। अभिप्राय यह है कि प्रेमचंद की मानसिक रचना में महात्मा गांधी का, मार्क्स, फ्रायड, नेहरू, भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों आदि के भाव की तुलना में, वैचारिक प्रभाव सर्वाधिक था। प्रेमचंद ने यद्यपि गांधी की कुछ आस्थावादी एवं अध्यात्मपूर्ण कथनों एवं कार्यों की आलोचना की थी, लेकिन वह इतनी छुट-पुट है कि उससे वे गांधी के न तो आलोचक बनते हैं और न गांधीवाद से मोह-भंग से भटकते, बहकते हुए मार्क्सवाद का पल्ला पकड़ने वाले लेखक। हमारे कई मार्क्सवादी लेखकों एवं आलोचकों में उनके इसी मोह-भंग के बाद मार्क्सवाद को गले लगाने और मार्क्सवादी लेखक बनने को स्थापित किया है, परन्तु यह स्थापना तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित न होकर राजनीतिक स्वार्थों एवं पार्टी-हित पर टिकी है। गांधी की छुट-पुट आलोचना का क्या अर्थ है कि यह उनका गांधी और गांधीवाद से मोह-भंग है? यदि प्रेमचंद का कम्यूनिस्ट दर्शन, शासन-शैली, दोहरे चरित्र तथा प्रजा-विरोधी होने पर जिस प्रकार उसकी आलोचना की है तथा उसके नष्ट होने की भविष्यवाणी की है, उससे स्पष्ट है कि कम्यूनिस्ट-दर्शन पर उनकी कभी आस्था नहीं थी, और यदि शोषण एवं असमानता के विरुद्ध आवाज उठाने के कारण उसका यत्र-तत्र उल्लेख एवं समर्थन भी किया था तो भी वे गांधी-दर्शन की तरह मार्क्सवाद का कभी समर्थन नहीं कर पाये। प्रेमचंद ने स्पष्ट लिखा है कि वे 'श्रेणियों में संग्राम' तथा 'लाल क्रान्ति" नहीं चाहते, क्योंकि क्रान्ति से डिक्टेटरशिप आयेगी जो हमारी व्यक्ति-स्वाधीनता को समाप्त कर देगी। उन्होंने 22 मई, 1933 को जागरण में लिखा कि साम्राज्य विरोधी रूस भी साम्राज्य लिप्सा से ग्रसित है और वह भी संसार को 'सोवियत' बनाना चाहता है। उसे भी "विचार का साम्राज्य' चाहिए। प्रेमचंद ने 'गोदान' में तो साम्यवाद और साम्यवादियों की कटु आलोचना की है। प्रो.मेहता साम्यवादियों के दोहरे चरित्र, बुद्धि-चरित्र-रूप-प्रतिमा-बल को मनुष्यों में बराबर बाँटने की मूर्खतापूर्ण कल्पना तथा रूस में मिल-मालिकों का 'राजकर्मचारी' को रूप लेने की कटु आलोचना करता है। अभिप्राय यह है कि प्रेमचंद स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधी तथा साम्यवादियों दोनों के व्यवहार तथा चिन्तन को गहरायी से देख रहे थे। महात्मा गांधी उनके राष्ट्र-नायक थे, स्वराज्य-कामना एवं अहिंसक संघर्ष के प्रतीक थे, जबकि साम्यवादी दोहरे चरित्र वाले थे, खूनी क्रान्ति से तानाशाही ला सकते थे और प्रजा-हित के विरुद्ध जा सकते थे। उनकी 'कैदी' कहानी में तो लेनिन के कामरेड एक-दूसरे को धोखा देते हैं। इसीलिए प्रेमचंद, 'गांधीवाद' के नाश की भविष्यवाणी नहीं करते, क्योंकि उससे उनका मोह-भंग नहीं होता, किन्तु 'कम्यूनिज्म और फासिज्म के बारे में वे 21 अगस्त 1933 को 'जागरण' में छपी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं कि ज्यों ही वे प्रजा-हित के आदर्श से गिरे, जनता चंचल हो उठेगी और फिर दूसरी तरह समस्या का हल करेगी।

प्रेमचंद का साहित्य, भारत के स्वाधीनता संग्राम का साहित्यिक संस्करण है। वास्तव में, भारतीय भाषाओं में वे ऐसे अकेले साहित्यकार हैं, जो स्वाधीनता संग्राम के कारणों, परिस्थितियों, चुनौतियों तथा सम्भावनाओं को साक्षात् देख रहे थे तथा स्वराज्य, स्व-संस्कृति, स्वभाषा के लिए होने वाली प्रत्येक हल-चल तथा आन्दोलन को अपनी लेखनी से साहित्य का रूप दे रहे थे। प्रेमचंद एक प्रकार से स्वाधीनता संग्राम के कदम-से-कदम मिलाकर चलने वाले साहित्यकार ही नहीं थे, बल्कि अपने समय की राजनीतिक को अपने साहित्य के मशाल से उसका पथ प्रकाशित करने वाले साहित्यकार भी थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य को हम महात्मा गांधी को केन्द्र में रखकर देख सकते हैं- गांधीपूर्व साहित्य तथा गांधी-युग का साहित्य। डा. रामदीन गुप्त ने 'प्रेमचंद और गांधीवाद' में एक तीसरे युग की भी कल्पना की है जिसे उन्होंने 'उत्तर गांधी युग' कहा है, लेकिन मुझे यह तर्कसंगत नहीं लगता। अपने अन्तिम समय में प्रेमचंद का गांधी से न तो मोह-भंग हुआ था और न उन्होंने गांधी को अस्वीकार किया था। 'गोदान' तक में गांधी विद्यमान हैं। अतः प्रेमचंद की स्वाधीनता चेतना को गांधी के सन्दर्भ से देखना ही उचित और तर्कसंगत है।

भारत के राजनीतिक परिदृश्य में गांधी के आगमन से पूर्व प्रेमचंद के छः उपन्यास तथा लगभग 25 कहानियाँ उर्दू-हिन्दी में, प्रमुख रूप से उर्दू में प्रकाशित हो चुकी थीं। इस काल के उपन्यासों-असरारे मआबिद (1903-05) 'किशना' (1906) 'रूठी रानी' (1907), 'वरदान' (1912) एवं 'सेवासदन' (1918) में धर्म, इतिहास, समाज, नारी, ग्राम, निर्धनता, समाज-सेवा आदि प्रमुख हैं जो समाज की पुनर्जागरण चेतना के प्रतीक हैं। प्रेमचंद देश के अतीत और वर्तमान को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं, पराधीनता से उत्पन्न सामाजिक बुराइयों को चित्रित करते हैं और भावी भारत का संकेत करते हैं। कहानियों में, विशेष रूप से 'सोजे वतन' (1908) की कहानियों तथा कुछ ऐतिहासिक कहानियों - 'रानीसारंधा', 'पाप का अग्निकुंड', 'राजा हरददाल', 'विक्रमादित्य को तेगा', 'आल्हा' आदि में देश-प्रेम, गौरवपूर्ण अतीत एवं भारतीय स्वाभिमान का चित्रण है, लेकिन 'दोनों तरफ से' (1911) कहानी में 'अछूतोद्धार' को कथा का आधार बनाकर प्रेमचंद उन्हीं दिशाओं की ओर बढ़ रहे हैं, जिन दिशाओं में सन् 1915 के बाद गांधी को बढ़ना था। प्रेमचंद अपनी रचनाओं से स्वराज्य, जागृति तथा सुधार की मानसिकता और वातावरण निर्मित करते हैं तथा सम्पूर्ण स्वाधीनता के संकल्प तक अपने पाठकों को पहुँचा देते हैं।

गांधी-युग (1918-1936) में प्रेमचंद उन्हें अपना गुरु मानते हैं तथा उनके अनुयायी बन जाते हैं। गांधी और प्रेमचंद का स्वप्न और संकल्प एक है, स्वाधीनता-मंग्राम की चिन्तन एवं लक्ष्य दृष्टि एक है, तथा पूर्व और पश्चिम के बारे में भी विचारों में समानता है। इस काल में उनके आठ उपन्यास प्रकाशित हुए. 'प्रेमाश्राम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1925-26), 'प्रतिज्ञा' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932), 'गोदान' (1936) तथा अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र', (1936)। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास गाँधीवादी उपन्यास हैं। इसमें गांधी का ट्रस्टीशिप, अहिंसात्मक सुधार, हृदय-परिवर्तन, रामराज्य, पश्चिम का विरोध, भारतीय संस्कृति का समर्थन आदि कथा का मुख्य आधार हैं। 'रंगभूमि' तो गांधी के असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह, तथा औद्योगीकरण विरोध के मानवीय-दर्शन का प्रतिफल है। उपन्यास का अन्धा भिखारी सूरदास गांधी का प्रतीक है। वह भी गांधी से 26-27 वर्ष पूर्व गोली से शहीद होता है। 'कायाकल्प' में गांधी की नैतिक दृष्टि है, 'आध्यात्मिक मानववाद' है तथा धन-भोग-स्वार्थ का विरोध है। 'निर्मला' में हृदय-परिवर्तन है तथा खद्दर के प्रेमी है। 'प्रतिज्ञा' में अछूतोद्धार तथा बुड्डे गांधी की चर्चा है।' 'गबन' में अंग्रेजी पुलिस के भ्रष्टाचार, 'सुरात्र' का संघर्ष तथा कांग्रेसी नेताओं की दुरंगी रीति-नीति का उद्घाटन है। 'कर्म-भूमि' तो समग्र गांधीवादी उपन्यास है। गांधी का दस सूत्री कार्यक्रम उपन्यास की कथावस्तु है। गोदान' को गांधी से शून्य तथा उसे मार्क्सवादी कृति कहना भी तर्कसंगत नहीं है। 'गोदान' का नायक हिन्दू किसान है, मार्क्स का कोई मजदूर नहीं। उसमें 'मनुष्यता है और है, 'धर्मात्मापन जहाँ खूनी क्रांति के लिए कोई स्थान नहीं है।' इसमें मशीनी सभ्यता तथा मिल मजदूरां की हड़ताल पर व्यंग्य है। गोविन्दी में गांधीवादी आदर्श हैं, मालती में हृदय- परिवर्तन है तथा प्रो.मेहता प्राकृतिक-जीवन की श्रेष्ठता मान लेते हैं। 'गोदान' के मूल में भारत की कृषि संस्कृति है, मजदूरों की यांत्रिक संस्कृति नहीं। होरी का मज़दूर बनना ही उसकी मृत्यु का कारण है। डॉ.रामविलास शर्मा का मत है कि होरी तथा प्रो.मेहता मिलकर प्रेमचंद बनते हैं, परन्तु इन दोनों में गांधी तो हैं, मार्क्स कतई नहीं है, लेकिन फिर भी मार्क्सवादी आलोचक उपन्यास को मार्क्सवादी कृति मानते हैं। यह उनका बच्चों जैसा हट हैं। 'मंगलसूत्र' के साथ भी यही स्थिति है। मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे भी मार्क्सवाद से जोड़ दिया, जबकि उपलब्ध अंश में गांधी के श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की प्रधानता है। इस काल की कहानियों में भी गांधी के देश-प्रेम, साम्प्रदायिक एकता, अछूतोद्धार, सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आदि विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रमुखता के साथ चित्रित किया गया है। ऐसी कहानियों की संख्या 40-50 से कम नहीं है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्हें

स्वाधिनता संग्राम का साहित्यिक इतिहासकार कहा जा सकता है। उनके साहित्य की मुख्यधारा भारत की स्वाधीनता है और इस स्वाधीनता आन्दोलन के नायक हैं महात्मा गांधी। वे भारत की मुक्ति एवं स्वराज्य के लिए स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द तथा अन्य राष्ट्र-नायकों से भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं तथा अत्यन्त सीमित रूप में रूसी क्रान्ति का भी उल्लेख करते हैं, किन्तु मुख्यरूप से वे गांधी के संसार के ही सदस्य बने रहते हैं। गांधी से मोह-भंग तथा मार्क्स को स्वीकार करने का जो तर्क देते हैं, वे न तो गांधी को समझते हैं और न प्रेमचंद को। गांधी और प्रेमचंद दोनों कम्यूनिस्ट-दर्शन एवं बोल्शेविज्म के मानव- विरोधी चरित्र से परिचित थे, बस अन्तर इतना था कि प्रेमचंद को उसमें शोषण एवं असमानता के विरुद्ध अभिव्यक्ति की ताकत मिलती थी, लेकिन वे भी उसके तानाशाही बनने तथा प्रजा विरोधी बनने की भविष्यवाणी कर रहे थे। प्रेमचंद ने अपने वर्ष 1928 में प्रकाशित एक लेख 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' (स्वदेश 18 मार्च 1928) में यहां तक लिखा था कि साम्यवाद तो पूँजीवाद से भी भयानक है। प्रेमचंद गांधी के स्वराज्य के आकांक्षी थे, मार्क्स लेनिन की खूनी क्रान्ति से प्राप्त स्वराज्य के नहीं। इसीलिए भारतीय कम्यूनिस्ट लेखक एवं आलोचक न तो गांधी को अपना सके और न गांधीवादी प्रेमचंद को। वास्तव में, गांधी और प्रेमचंद एक ही लक्ष्य के सहयात्री थे। गांधी राजनीति के नायक थे और प्रेमचंद साहित्य के नायक। प्रेमचंद ने स्वाधीनता संग्राम को वाणी दी और वे गांधी की तरह अमर हो गये।

❖

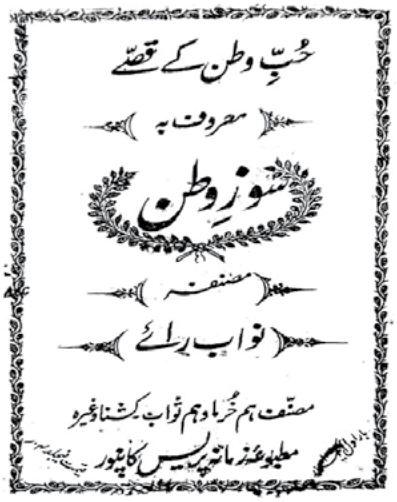

حُبِّ وطن کے قصّے

معروف بہ

سوزِ وطن

مصنفہ

نواب رائے

مصنف ہم خُرما وہم ثواب کشناوغیرہ

مطبوعہ زمانہ پریس کانپور

1. 'सोज़े-वतन' का आवरण पृष्ठ

زمانہ

اُردو علم ادب کا بہترین ماہوار رسالہ

ہم خرما وہم ثواب

پریمیا

المشتہر منیجر "زمانہ" نیا چوک کانپور

2. सोज़े-वतन का बैक कवर

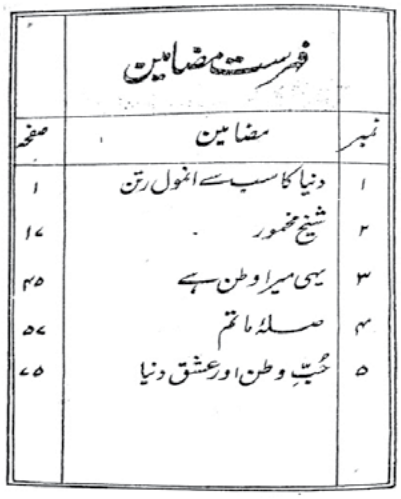

فہرست مضامین

نمبر	مضامین	صفحہ
۱	دنیا کا سب سے انمول رتن	۱
۲	شیخ مخمور	۱۷
۳	یہی میرا وطن ہے	۴۵
۴	صلۂ ماتم	۵۷
۵	حُبِّ وطن اور عشق دنیا	۷۵

3. फ़ेहरिस्ते-मज़ामीन (कहानियों की सूची)

دیباچہ

4. सोज़े-वतन का दीबाचा (भूमिका)

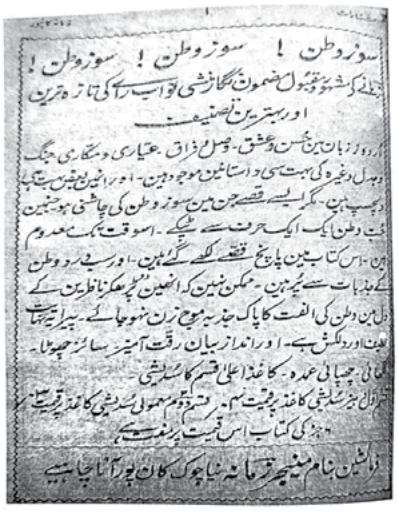

سوزِ وطن ! سوزِ وطن ! سوزِ وطن !

5. ज़माना, अगस्त, 1908 में 'सोज़े-वतन' का पहला विज्ञापन

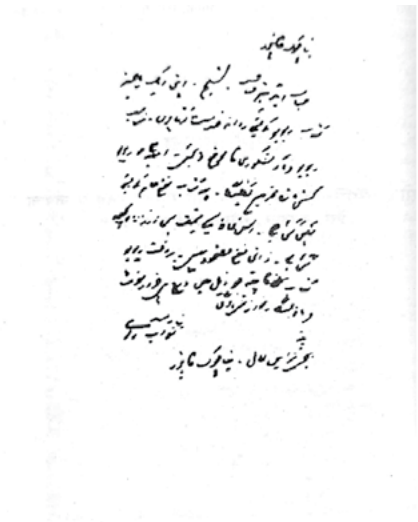

7. 'सोज़े-वतन' की समीक्षा हेतु 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीर प्र० द्विवेदी के नाम नवाब राय का 20 सितम्बर, 1908 का पत्र

9. सरस्वती, दिसम्बर, 1908 में प्रकाशित समीक्षा

'हंस' पर काले कानून का प्रहार !

'हंस' के पाठकों, लेखिकों और हितैषियों को यह सूचना दुख होगा कि इस दुख कारण के लिए 'हंस' का नवम्बर संयोजित कर रहे हैं—रोक रहे हैं। यह दुख इस अपने मन से नहीं कर रहे हैं—नीलाम्बरी निर्मित काले कानून की कृपा के ही हमें ऐसा करना पड़ रहा है। वास्तव, 'हंस' के जमानतदाता 'सरस्वती-प्रेस' से हा० २२-८-३० को १०००) की जमानत माँग ली गई। हमने उपायान्तर अपना करने से इन्कार करके प्रेस को बन्द कर दिया। जिन बड़ी-बड़ी अखबारों को लेकर हमने 'हंस' को बड़े ठाठ से प्रकाशित किया था, वे अभी कोसों दूर थीं, कि इसे इस प्रकार से दुलारों के घाटे में आ-जाना पड़ा। इसे अपने इस दुर्भाग्य की पूरा भी चिन्ता नहीं है, हम में यही बरदाश्त करना हुआ है। अगर कोई अच्छा प्रेस खोलने का विचार होता, तो हम अन्य प्रेस से छपवाकर भी 'हंस' को निकालते; पर यह भी किसी प्रेस से प्रबन्ध न हो सका। हम मजबूर हैं। लाचार करते हैं, हमारे शाहक कुछ समय धैर्य रक्खेंगे। ईश्वर की कृपा हुई—और जिसकी पूर्ण आशा है—तो हम जेल या दो महीने के बाद्दी 'हंस' को और भी सुन्दर रूप में ठेकर आपकी सेवा में उपस्थित होंगे।

प्रेस बन्द करते हम लिए भारी चार्ज कर चुके थे। खयाल था कि बाकी किश्तों अन्य प्रेसवाले छपवाकर पूरे कर लिये जायेंगे; पर अब तक भी यह आशा पूर्ण न हुई और विवश होकर आज ही चार्जों का यह अंक निकालना पड़ा। अन्दर भी दूसरे प्रेस से छपवाना पड़ा है। हमारे शाहक इसके जवाबदेह नहीं। इस अंक की कमी, इस अन्तों के अंकों में समरस हो पूरी कर देंगे, और संयुक्त अंक न निकाल कर पूरे बारह अंक दो साल भर में इस बराबरी सेट करेंगे। हाँ, इस समय व्यवस्था यह आपात।

'हंस' को सुन्दर बनाने के लिए, इसी अवसर में, हम एक अर्थ-सहायक भी खोज रहे हैं। 'हंस' के लिए अच्छे-अच्छे चित्रों का संग्रह भी कर रहे हैं। इसे पूर्ण विश्वास है, कि हम इसे अंक को सहज ही अच्छे रूप में आपके सामने पेश कर सकेंगे।

अन्त में हम 'हंस' के प्रेमियों से इतना निवेदन और करना चाहते हैं, कि वे भी ऐसे समय में हमारी चोटी-सी सहायता करें। हम उनसे केवल यही चाहते हैं, कि वे इस अवसर में अपने मित्रों में से 'हंस' के दो दो शाहक बना दें। इनका अतीतकर से न निकला रहें, तो केवल उनके नाम लिख लेवें, हम उक्त अंक समाप्तिक होते ही उनके पास V. P. से भेजकर प्राप्त कर लेंगे।

अगर 'हंस' के प्रेमियों ने इतनी कृपा की, तो हम विश्वास दिलाते हैं, कि आगे हम भी 'हंस' को सहज ही सुन्दर बनाने की पूरी कोशिश करेंगे।

—व्यवस्थापक ।

'हंस', अगस्त, 1930 में सेंसरशिप के विरुद्ध प्रकाशित व्यवस्थापकीय टिप्पणी

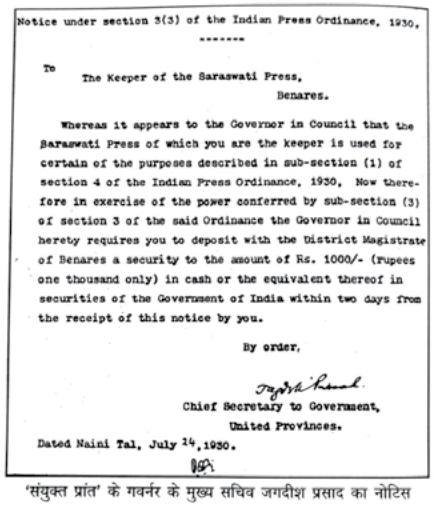

Notice under section 3(3) of the Indian Press Ordinance, 1930.

To

The Keeper of the Saraswati Press,
Benares.

Whereas it appears to the Governor in Council that the Saraswati Press of which you are the keeper is used for certain of the purposes described in sub-section (1) of section 4 of the Indian Press Ordinance, 1930, Now therefore in exercise of the power conferred by sub-section (3) of section 3 of the said Ordinance the Governor in Council hereby requires you to deposit with the District Magistrate of Benares a security to the amount of Rs. 1000/- (Rupees one thousand only) in cash or the equivalent thereof in securities of the Government of India within two days from the receipt of this notice by you.

By order,

Chief Secretary to Government,
United Provinces.

Dated Naini Tal, July 14, 1930.

'संयुक्त प्रांत' के गवर्नर के मुख्य सचिव जगदीश प्रसाद का नोटिस

अंतिम बीमारी—प्रेमचंद और शिवरानी देवी

अंतिम यात्रा की तैयारी

प्रेमचंद-एक जापानी द्वारा बनाया गया रेखाचित्र—1936

ए-98, बशोक विहार, फेज-प्रथम, दिल्ली-110052
मोबाइल : 9811052469 / 011-27219251
ईमेल : kkgoyanka@gmail.com

अमृत महोत्सव और राष्ट्रवाद की वैचारिकी

– प्रो. सत्यकेतु सांकृत

आलोचना के इस सम्पादकीय को झूठ और अनर्गल वार्तालाप की खान कहा जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।चाहे हिन्दी के आग्रपान्क्तेय आलोचक डॉ रामविलास शर्मा को लेकर कही गई बाते हों या राष्ट्रवाद को लेकर किसी पार्टी विशेष की कॉपीराईट सिद्ध करने के परिप्रेक्ष्य में टुकड़े टुकड़े गैंग के समर्थन में मैला आँचल जैसी कालजयी रचना को 'एंटी-नेशनल' कहे जाने की अकल्पनीय,षड्यंत्रकारी और विध्वंसकारी सोंच हो सभी जगह चौखटे से निष्पन्न विघटनकारी वृत्ति पूरी तरह से एक्स्पोज हो गई है। अब जरा मेरीगंज में आई रजनीतिक चेतना पर भी नजर डाल ही ली जाये।रेणु ने इस उपन्यास में तत्कालीन किसानों की आर्थिक-सामाजिक दुरावस्था और राजनीतिक चेतना के विस्तार के साथ साथ उनमें आई विकृतियों का भी यथार्थ चित्रण किया है।मेरीगंज में काँग्रेस,सोशलिस्ट और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी तीन राजनीतिक पार्टियॉं सक्रिय दिखाई पडती हैं। सम्पादक महोदय ने बड़ी चतुराई से इनमें से केवल आरएसएस का जिक्र करते हुए यह अपनी प्रकृति के अनुरूप इसको लेकर लोगों को दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया है।

औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के विरुद्ध संन्यासी विद्रोह से लेकर नौ-सैनिक विद्रोह तक का मुक्ति संग्राम भारतीय इतिहास के सुनहरे पन्नों में दर्ज भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की वह अमरगाथा है जिसमें ब्रिटिश सरकार की बर्बरता के विरूद्ध भारतीय जनमानस के संघर्ष की अनुगूँज सहज सुनी जा सकती है। इन विद्रोहों की सबसे बड़ी विशेषता यह मानी जा सकती है कि इसने भारतीय जनता को एक मंच पर लाने और उनमें एक देश का निवासी होने की चेतना पैदा करनें में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। इस काल में राष्ट्रवाद की ऐसी बयार बही जिसनें न केवल अंग्रेजों के दांत ही खट्टे किये बल्कि 'भारत को एक राष्ट्र न मानकर केवल एक भूखंड मात्र' घोषित करने की उनकी शातिराना हरकत को धता बताते हुए अपनी सभ्यता का ढिंढोरा पीटनेवाली बरतानिया सरकार की सारी पोल पट्टी खोलकर उनकी असभ्यता को जगजाहिर कर दिया। चाहे १८५७ की जनक्रान्ति हो, बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक संचालित स्वदेशी की भावना से लबरेज जुझारू राष्ट्रवाद के तहत तिलक के नेतृत्व में 'होम रूल' का अभियान हो, गांधी जी की अगुआई में स्वाधीनता आन्दोलन के विभिन्न चरणों की संघर्ष गाथा हो या फिर नेताजी के नायकत्व में नियोजित 'आजाद हिन्द फ़ौज' की संरचना, सबमें राष्ट्रवाद का स्वर मुखर था। सही अर्थों में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के केंद्र में राष्ट्रवाद ही वह अवधारणा थी, जिसनें औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में अहम भूमिका निभाई थी।

स्वाधीनता के उपरान्त भारतीय संविधान के तहत राष्ट्रवाद को जिस तरह से व्याख्यायित किया गया है उससे उसके महत्व को सहज ही समझा जा सकता है। पर हमारे समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है

कि इसमें एक विशेष विचारधारा के तहत अपनी एकांगी बौद्धिकता का ढिंढोरा पीटने वाले वाममार्गी विचारक अपनी स्वार्थान्धता में लगातार राष्ट्रवाद जैसी उन्नतिशील वैचारिक चेतना पर भी घात-प्रतिघात करते रहे हैं जिसमें तर्क के शेष में कुतर्क की बयार बहती दिखाई पडती है। राष्ट्रवाद को देशभक्ति से अलग कर देखने का उनका नजरिया उनकी वैचारिकी की अर्थवत्ता पर ही प्रश्न चिह्न लगा देता है। दरअसल राष्ट्रवाद को किसी जाति, धर्म, संप्रदाय या संस्था से जोड़कर देखने का अर्थ भारत की दार्शनिक चेतना और देशभक्ति की चेतना को छोटा करके देखना है। राष्ट्रवाद भारत की सांस्कृतिक अस्मिता का एक अहम् हिस्सा है इसे स्वीकार कर ही अपने को अप्रासंगिक होने से बचाया जा सकता है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक स्वर्गीय (अगर उनके अनुयायी इसे स्वीकार करें तो) प्रो. नामवर सिंह अपने वर्ग कक्ष में गाहे बगाहे इस बात का जिक्र कर ही दिया करते थे कि हर चीज को 'मार्क्सवाद के चौखटे' में बंद कर नहीं देखना चाहिए। दरअसल गुरुवर अपनी दिव्य दृष्टि से जो कुछ देख रहे थे उसमें उनकी यह आशंका बलवती होती जाती रही थी कि भविष्य में उनके अनुगामी कहीं इस लोभ में पड़कर उस रुग्ण मानसिकता के शिकार न हो जाएँ, जिसमें उनके साथ-साथ पूरी विचारधारा ही विस्मयकारी नेत्रों से निहारी जाने लगे। गुरुवर की आशंका आज किस तरह से यथार्थ रूप में परिणति को प्राप्त हो रही है इसका ज्वलंत उदाहरण त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना', के अंक 64 का सम्पादकीय है। इसमें सम्पादक महोदय ने 'रेणु' के माध्यम से विशेषकर 'मैला आँचल' को लेकर कुछ ऐसे अजीबो-गरीब कुतर्क प्रस्तुत किये हैं जो आलोचकीय चिंतन और विजन पर न केवल प्रश्नचिह्न ही खड़ा करते हैं, बल्कि अध्यापकीय आलोचना वाली कुवृत्ति को भी कुठाराघात करने का अवसर प्रदान कर देते है। किसी रचनाकार की श्रेष्ठ रचना को लेकर साहित्यिक समाज को कैसे दिग्भ्रमित किया जा सकता है। इसका सुंदर उदाहरण नामवर जी के कुशल सम्पादन में कभी अपने शिखर पर पहुंची आलोचना पत्रिका के चौसठवें अंक का 'आंचलिक और राष्ट्रीय के द्विचर से परे' नामक सम्पादकीय है, जिस पर निश्चित ही नियति नेपथ्य से अट्टहास कर रही होगी।

सर्वप्रथम इस सम्पादकीय में राष्ट्रवाद को लेकर जो भ्रम फैलाने की जो चालाकी की गई है उस पर बात कर लेना लाजिमी होगा।भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की दमनकारी नीतियों के खिलाफ पुनर्जागरण के फलस्वरूप उभरे और स्वतंत्र भारत में पुष्पित एवं पल्लवित होकर २१वीं सदी में एक नई ऊर्जा के साथ प्रस्फुटित राष्ट्रवाद को अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप टुकड़ों-टुकड़ों में विखंडित कर जिस तरह से पतनोन्मुख आलोचना धर्मिता के तहत जुगुप्सापूर्ण परिपाटी में प्रस्तुत किया गया है उसकी रहस्यात्मकता संपादकीय वक्तव्य से स्पष्ट हो जाती है जिसमें राष्ट्रवाद को उसी 'चौखटे' के तहत अजीबो-गरीब रूप में विश्लेषित करने का कूटनीतिक प्रयास किया है जिसकी तरफ आरम्भ में ही इशारा किया है। यही नहीं फणीश्वरनाथ रेणु की जन्म शताब्दी की छाँव में उनके साहित्य को आज के परिप्रेक्ष्य में जिस तरह से क्रमशः तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है वह उस चौखटे से निष्पन्न विकृत मानसिकता का ही द्योतक है। इस क्रम में सर्वप्रथम 'मैला आँचल' के रचनाकाल के सम्बन्ध में की गई अनर्गल टिप्पणी ध्यानापेक्षी है। इसमें जिस सोंची-समझी रणनीति के तहत राष्ट्रवाद को अपनी रुग्ण मनोवृत्ति के अनुरूप टुकड़ों में बाटकर देखने के परिप्रेक्ष्य में 'मैला आँचल' की रचनावधि को संविधान के लिखे जाने के समानांतर सिद्ध करने की जो हास्यास्पद चेष्टा की गई है उस पर दृष्टिपात करना जरूरी है। सम्पादक महोदय के बोल हैं "संविधान की रचना के समानांतर मैला आँचल का लिखा जाना, बनते हुए राष्ट्र में उपेक्षितों की भागीदारी का दावा पेश करने जैसा था।"[1] अब इस गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्य को लेकर क्या कहा जाए जिसमें अपनी अपनी गलत बात को सिद्ध करने के लिए किसी भी हद तक जाने की जिद दिखाई पडती हो। यह तो साहित्योंमुख प्रवृत्ति से संम्बद्ध बच्चा-बच्चा तक जानता है कि मैला आँचल का सर्वप्रथम प्रकाशन 1954 में हुआ था। ऐसा भी नहीं है कि आलोचना के सम्पादक को इसका पता न हो पर किसी भी तरह इस महान रचना को संविधान के रचना समय के समीप दिखाने के प्रयास में उन्होंनें ऐसे-ऐसे कुतर्क प्रस्तुत किये है जो उनकी मंशा को स्वतः प्रकट कर देते हैं। अब जरा इस वक्तव्य को देखिये "राजकमल से प्रकाशित होने से साल भर पहले यानी 1953 में मैला आँचल पटना के एक प्रकाशनगृह (बड़ी चालबाजी से नामोधृत नहीं किया गया है) से छप चुका था।उस प्रकाशक के यहाँ भी उसे लगभग साल-भर इन्तजार करना पड़ा था।(झूठ का कोई सिर पैर नहीं होता) गरज कि 1952 में उपन्यास लिखा जा चुका

था।ऐसे उपन्यास को पकने और कागज पर उतरने में जितना वक्त लगना चाहिए, उसे देखते हुए यह कहना असंगत न होगा कि उपन्यास की कथा जिस काल खंड को घेरती है, यानी आजादी के थोड़ा पहले से आजादी के थोड़ा बाद तक का समय,वही उसका 'जेस्टेशन पीरियड' भी है। ध्यान दें यही वह समय था जब देश का संविधान भी रचा जा रहा था।"२ यहाँ यह ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है कि मैला आँचल में जहाँ पूर्णियां अंचल के 1944-1948 के जीवन-यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है उसे भी बड़ी चालाकी से उपन्यास की रचनावधि से जोड़कर भारतीय संविधान के लेखन काल के समानांतर प्रस्तुत करने का जो बालहठ है, वह एक अपरिपक्व सम्पादन की शातिराना हरकत का सुंदर नमूना माना जा सकता है।उपन्यास के रचनाकाल और उसमें अभिव्यक्त कालावधि की संपादकीय विभ्रांति की स्वीकारोक्ति कितनी घातक हो सकती है इसे सम्पादकीय में सहज महसूस किया जा सकता है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, जिन्हें मैला आँचल का प्रथम गंभीर आलोचक भी माना जाता है की मानें तो"मैला आँचल का पहला संस्करण इंडियन प्रेस, पटना के सौहार्द से 'समता प्रकाशन,पटना' नामक एक अज्ञातकुलशील प्रकाशन संस्था से अक्टूबर, 1954 में प्रकाशित हुआ, जिसकी छपाई तो बहुत बढ़िया थी, पर कागज घटिया था। प्रकाशन के बाद उसनें साहित्यिक जगत में जल्द ही इतनी लोकप्रियता हासिल कर ली कि राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली के तत्कालीन प्रबंध निदेशक श्री ओम प्रकाश जी ने समता प्रकाशन से प्रकाशित 'मैला आँचल' के प्रथम संस्करण की सारी प्रतियाँ खरीद लीं और उन्हें नष्ट करके तत्काल, अर्थात 1954 दिसम्बर महीने में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-पटना से नयी सज-धज के साथ प्रकाशित कर दिया।"3 अब इस सारस्वत कथन के उपरान्त कभी आलोचना जैसी गंभीर मानी जाने वाली पत्रिका के सम्पादकीय की मिथ्याचारुता को देखकर तो बाबा नागार्जुन के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि "धत तेरी, धत तेरी, कुच्छो नहीं, कुच्छो नहीं।"4

आलोचना के इस सम्पादकीय को झूठ और अनर्गल वार्तालाप की खान कहा जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।चाहे हिन्दी के आग्रपान्क्तेय आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा को लेकर कही गई बाते हों या राष्ट्रवाद को लेकर किसी पार्टी विशेष की कॉपीराईट सिद्ध करने के परिप्रेक्ष्य में टुकड़े-टुकड़े गैंग के समर्थन में मैला आँचल जैसी कालजयी रचना को 'एंटी-नेशनल' कहे जाने की अकल्पनीय,षड्यंत्रकारी और विध्वंसकारी सोंच हो सभी जगह चौखटे से निष्पन्न विघटनकारी वृत्ति पूरी तरह से एक्स्पोज हो गई है। अब जरा मेरीगंज में आई रजनीतिक चेतना पर भी नजर डाल ही ली जाये। रेणु ने इस उपन्यास में तत्कालीन किसानों की आर्थिक-सामाजिक दुरावस्था और राजनीतिक चेतना के विस्तार के साथ-साथ उनमें आई विकृतियों का भी यथार्थ चित्रण किया है। मेरीगंज में काँग्रेस,सोशलिस्ट और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे तीन संगठन सक्रिय दिखाई पड़ते हैं। सम्पादक महोदय ने बड़ी चतुराई से इनमें से केवल आरएसएस का जिक्र करते हुए यह अपनी प्रकृति के अनुरूप इसको लेकर लोगों को दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया है। जबकि सच्चाई तो यह है कि स्वयं सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य होते हए भी रेणु ने इस पार्टी के चारित्रक अधोपतन और अन्तर्विरोध का जो यथार्थ चित्रण किया है उससे बड़ी चालकी से अपने आप को दूर कर लिया गया है। रेणु ने अपने उपन्यास में बड़े विस्तारपूर्वक इस बात को दिखाया है कि कैसे काँग्रेस की तरह ही सोशलिस्ट पार्टी भी अधोपतन के गर्त में गिरती चली जाती है।यदि कांग्रेस में पूंजीपति और भूमिपति घुसते हैं तो सोशलिस्ट पार्टी में डकैतों और खूनियों का प्रवेश होता है। वासुदेव,सुन्दर,सनीचर सब अपराधी हैं। सोमा

जाट तो नामी डकैत है ही। रेणु ने अपने उपन्यास में इस बात को बखूबी चित्रित किया है कि सोशलिस्ट पार्टी के नेता ऐसे अपराधी तत्वों को पार्टी का सदस्य बनाते समय केवल अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु उनके द्वारा प्रदत्त राशि से पार्टी चलाने के लिए उनका दुरूपयोग करते हैं।कालीचरण इनकी चिकनी चुपड़ी बातों में फंस जाता है और उस पर डकैती तक का मुकदमा चला कर जेल में डाल दिया जाता है। डकैती केस में फँसा दिए जाने पर सोशलिस्ट पार्टी के नेता उसकी सहायता तो नहीं ही करते,बल्कि उससे सामना होने पर मुँह तक फेर लेते हैं। रेणु ने इस स्थिति को बखूबी चित्रित किया है "डेढ़ महीने से कालीचरण जेल में है ।वासुदेव,सुनरा ,जगदेवा, सोमा और सोनमा सब एक ही केस में नत्थी हैं।इसी बीच एक तारीख को कचहरी के मजिस्ट्री-इजलास में हाजिरी हुई।सभी को हथकड़ी और बेड़ी डालकर कचहरी लाया गया।------कालीचरण की निगाह सेक्रेटरी साहेब पर पड़ी,उनसे आँखें मिलीं।कालीचरण का चेहरा खिल गया।तीन महीनों से जिनकी सूरत आँखों के आगे नाच रही थी। सेक्रेटरी साहेब!...कृष्णकांत मिश्रजी! कालीचरण ने चिल्लाकर कहा,"जय हिन्द कामरेड!" सेक्रेटरी साहेब ने तुरंत कनपट्टी इस तरह फेर ली मानो कान के पास मधुमक्खी ने अचानक काट लिया। फिर उसी तरह गर्दन टेढ़ी किये आगे बढ़ते गए।"5 भोला भाला कालीचरण सोंचता है "लेकिन इसमें सिकरेटरी साहेब का क्या कसूर! चोर-डकैतों से सभी भले लोगों को दूर रहना चाहिए। बासुदेव, सुनरा ,सोमा, सनीचरा वगैरह आखिर डकैत ही तो हैं!.. और सेक्रेटरी साहेब उसे भी डकैत समझ रहे हैं। कोई उपाय नहीं।"6 कालीचरण सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं से मिलने के लिए जेल से भागता है। भागते वक्त उसके पैर में गोली लग जाती है।वह अपनी जान बचाने के लिए किसी तरह पार्टी कार्यालय तो पहुँच जाता है पर ऑफिस सेक्रेटरी उसे डकैत और बदमाश कहकर ऑफिस से निकाल देते हैं- "राजबल्ली जी, आपको बघोछ लग गया है? किवाड़ बंद कीजिए, हटाइए इसे।.....कालीचरण पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।"7 सोशलिस्ट नेता साथी गंगाप्रसाद सिंह यादव के जोशीले भाषण के भँवर में फँसकर मेरीगंज में सोशलिस्ट पार्टी को कभी बड़े उत्साह से आलिंगनबद्ध करने वाले आदर्शवादी युवक कालीचरण के 'कॉमरेड' होने का भ्रम टूट जाता है। समाजवादी नेताओं के सिद्धांत और व्यवहार के इस अन्तर्विरोध को रेणु ने अपनी महान रचना 'मैला आँचल' में बिना किसी कुनबा-परस्ती के प्रस्तुत किया है, पर आलोचना के सम्पादक महोदय अपनी चौखटेवाली सीमा के तहत इस यथार्थ से कन्नी काटकर निकल जाने के आग्रही दिखाई पड़ते है जिसे आलोचकीय विजन के परिप्रेक्ष्य में किसी भी तरह से जायज नहीं ठहराया जा सकता। अब गुरुदेव को क्या पता था कि उनके शागिर्दों की अंधभक्ति में पड़कर उनकी 'मार्क्सवादी चौखटे'वाली आशंका उनकी प्रिय पत्रिका 'आलोचना' को ही ग्रस लेगी। पिछले दिनों जिस प्रकार से विशेषकर सम्पादक द्वैय के संपादकत्व में आलोचना के सम्पादकीय में कभी जानबूझकर तो कभी अज्ञानतावश जो तथ्यात्मक गलतियां परिलक्षित हुई हैं और उनके माध्यम से साहित्यिक समाज को दिग्भ्रमित करने के जो कुटिल प्रयास किए गए हैं उससे और कुछ हुआ हो या न हुआ हो पर कभी हिन्दी आलोचना को नई दिशा प्रदान करने वाली पत्रिका की साख पर बट्टा तो अवश्य लग गया है। 'राष्ट्रवाद' के सम्बन्ध में नकरात्मक वृत्ति से लबरेज कुतर्कों के भ्रमजाल में फंसकर अपने साथ-साथ अपनी पूरी कौम को ही अविश्वसनीयता की हद तक पहुंचा देने का शायद ही इससे अच्छा नमूना और कहीं मिल पाए। इस विश्वसनीयता के ह्रास के सम्बन्ध में तो यह ही कहा जा सकता है कि 'इस घर को आग लग गई घर के चिराग से'।

संदर्भ

1. सम्पादकीय,आलोचना त्रैमासिक पत्रिका,अंक-64,पृ,सं-(7)
2. उपरिवत्- पृ,सं-(5-6)
3. नलिन विलोचन शर्मा, मैला आंचल, आलोचना, वर्ष 4, अंक 3।
4. नागार्जुन की कविता छब्बीस जनवरी पंद्रह अगस्त से उद्धृत।
5. मैला आँचल, पृ.सं-314-15
6. उपरिवत
7. मैला आँचल, पृ.सं.-318

❖

लेखक एवं शिक्षाविद

संप्रति - प्रो. एवं संकायाध्यक्ष (साहित्य अध्ययन पीठ) हिंदी विभाग

डॉ. बी. आर. अंबेडकर वि. वि. दिल्ली-110006

संपर्क - 8826252403, ईमेल satyaketu@aud.ac.in

आजादी का अमृत महोत्सव

वैदिक राष्ट्रवाद का अर्वाचीन दर्शन है 'राष्ट्रमेव जयते'

– अखिलेश आर्येन्दु

राष्ट्र शब्द का प्रथम प्रयोग वेद में आया है। वेद के अनेक मंत्रों में राष्ट्र चेतना, राष्ट्र वंदना, राष्ट्र जागरण, राष्ट्र शक्ति और राष्ट्र भक्ति का अद्भुत वर्णन है। वेद के अनुसार राष्ट्र ही सर्वोपरि है। जैसे राष्ट्रपति किसी राष्ट्र का सबसे बड़ा व प्रथम नागरिक होता है उसी तरह से अनेक संस्कृतियों, सभ्यताओं और विचारों के एक विशेष क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों के लिए राष्ट्र सबसे बड़ा होता हे। यूं तो देश, मातृभूमि और राष्ट्र को एक ही अर्थ में माना जाता है, लेकिन देश, राष्ट्र तथा मातृभूमि के अर्थ और भाव अ लग-अलग होते हैं। राष्ट्र शब्द जिस उदारता के साथ वेद में प्रयोग किया गया है, वह इतना व्यापक है कि उसमें सारी धरती ही आ जाती है। जिस राष्ट्र की विजय और प्रगति की बात वेदों में वर्णित है उसके आठ आधार बताए गए हैं- सत्य, उद्यम, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ।

आध्यात्मिक क्षेत्र का विस्तार ब्रह्मांड और लोक-लोकांतरों तक है। इसलिए अध्यात्म में सारे कर्म, धर्म, ज्ञान, विज्ञान और विचार धाराएं आ जाती हैं। वेद में इसी व्यापकता का वर्णन किया है। वेद में शास्त्र और शस्त्र दोनों की जरूरत पर जोर दिया है और कहा गया है- शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवत्र्तते। यह वैदिक ज्ञान और संस्कृति का आदर्श है। वेद के एक मंत्र में कहा गया है...आगे चारों वेद तो पीठ पर तीरों से भरा तरकस। पहले शास्त्र, फिर शस्त्र। पहले प्यार, फिर तलवार। पहले वार्ता-ध्यान, फिर शर-संधान। यह बात रामचरित मानस में संत तुलसी दास भी करते हैं। जब समुद्र ने प्रभु राम के अनुनय-विनय को अनसुना कर दिया तो राम ने समुद्र को सुखाने के लिए तीर चलाना चाहा। ऐसा देख समुद्र ने श्री राम को जाने का रास्ता दे दिया। राष्ट्र रक्षा का जागरण राष्ट्र के हर व्यक्ति में होना ही चाहिए। यजुर्वेद में कहा गया है- वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः यानी हम सभी राष्ट्र-जन राष्ट्र की रक्षा के लिए जागृत और जीवंत रहें।

राष्ट्र के जिन आठ आधारों का वेद में वर्णन है वे आधार अध्यात्म के भी आधार हैं। जैसे सृष्टि के नियम ईश्वरीय नियम हैं और

> ***"तप राष्ट्र की महान् शक्ति और आधार है। वेद के अनुसार मकसद के लिए दुख सहना तप है। राष्ट्र की उन्नति का आधार है राष्ट्र के नागरिकों में तप की भावना हो। महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में तप को स्वकर्म की उच्च स्थिति बताया गया है। जीवन में यदि तप नहीं है तो ऐसा जीवन किसी काम का नहीं। इसलिए तप से भागना नहीं चाहिए। महाभारत में कहा गया है- तपः स्वकर्म वर्तित्वम् और तपः स्वधर्म वर्तित्वम्। यानी हर व्यक्ति या समाज को अपने कार्य, कर्तव्य को पूरे सिद्दत के साथ करना चाहिए। जो व्यक्ति जिस हालात में और जगह है वहां वह ईमानदारी से कार्य करे। वेद में कहा गया है धरती सत्य, ऋत और तप के सहारे टिकी हुई है। गौरतलब है शेषनाग पर धरती टिकी होने का भाव यह है कि वेद में शेष का मतलब परमात्मा है। यानी परमात्मा के सहारे ही यह धरती टिकी हुई है। राष्ट्र के जो आधार हैं वही आधार जगत् के भी हैं। इसलिए हर आदमी को राष्ट्र के आधारों का पालन ईमानदारी से करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रहित इन्हीं पर टिका हुआ है।"***

जगत् के भी नियम हैं। जैसे देश का संविधान देश के हर क्षेत्र के व्यक्तियों, गतिविधियों, संस्कृति, धर्म, जाति और कानून व्यवस्था पर लागू होता है, उसी तरह सृष्टि के नियम भी हैं। वेद में वर्णित जिन आधारों को राष्ट्र का आधार माना है वे आधार उस राष्ट्र, वहां रहने वाले लोगों, वहां की संस्कृति, धर्म और विकास के पैमाने पर भी लागू होता है। गौरतलब है भारत का आदर्श वाक्य 'सत्यमेव जयते' है। यह सत्य व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र धर्म, कानून व्यवस्था, प्रगति और योजनाओं पर भी लागू होता है। इसलिए 'सत्य' को देश का आदर्श व आधार वाक्य स्वीकार किया गया। वेद में कहा गया है नहि सत्यात्परोधर्मः यानी सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। आगे कहा गया, जिसकी सत्ता है वह सत्य है। लेकिन सवाल उठता है क्या वाकई में सत्य सत्ता का आधार है? नहीं। क्योंकि गंदे और पाप कर्मों की भी तो सत्ता है, क्या इन्हें सत्य का आधार माना जा सकता है? पितामह भीष्म कहते हैं- ऋषीणामपि राजेन्द्र सत्यमेव परं धनम्। तथा राज्ञां परं सत्यान्नान्यद् विश्वासकारणम्।। यानी ऋषियों, विद्वानों का सबसे बड़ा धर्म सत्य और ईमान है। सत्य से बढ़कर और कोई नीति नहीं है। जिससे प्रजा का शासन पर यकीन पैदा हो सके।

वेद में आया है, ऋतं सत्यं जयते। कहने का भाव यह है कि सत्य के साथ ऋत् यानी शाश्वत नियमों में बधा सत्य होना चाहिए। इसलिए राष्ट्र का पहला आधार सत्य माना गया है। दूसरा आधार बृहद यानी विस्तारवादी और उद्यमी होना राष्ट्र के लिए जरूरी है। यानी सभी तरह की संस्कृतियों, धर्मों, सभ्यताओं, विचार धाराओं और मान्यताओं को उदारता और बड़प्पन के साथ स्वीकार करना जरूरी है। यही आधार उदार चरित्र के व्यक्तियों का भी बताया गया है। बृहद् राष्ट्र का आधार इसलिए है क्योंकि यह विकास और प्रगति का आधार है। कहा गया है, कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। यानी कर्म करना हमारे दाहिने हाथ में, सफलता हमारे बायें हाथ में है। कहने का भाव यह है कि राष्ट्र की जय तब होती है जब भाग्य को छोड़कर राष्ट्र का हर व्यक्ति अपने कठिन पुरुषार्थ के जरिए कार्य कर्तव्य भावना से करे। शास्त्र कहते हैं जिस राष्ट्र में किस्मत के भरोसे रहकर लोग अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते, वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता है। इसलिए चालाकी, भ्रष्टाचार, कामचोरी और विश्वासघात राष्ट्र के दुश्मन माने गए हैं।

राष्ट्र की उन्नति का चौथा आधार उग्रम् है। उग्रम् का मतलब तेज से युक्त। उग्र संस्कृत में तेज के अर्थ में प्रयोग होता है। इसलिए इसे राष्ट्र के आधार के रूप में बताया है। एक व्यक्ति को क्रोध आ रहा है। यदि क्रोध को नियंत्रित न किया जाए तो क्रोधी की भावना के साथ क्रोध भड़क उठता है। क्रोध के तेज होने पर व्यक्ति में ताव आ रहा है। जोश आ रहा है। यह ताव या जोश ही वेद में उग्रम् कहा गया है। लेकिन उग्रता सात्विक और निर्माण करने वाली होनी चाहिए, विनाश करने वाली नहीं। कार्य जब जोश व होश के साथ किया जाता है तब वह सफल होता है और निर्धारित समय में हो जाता है। जैसे सीमा पर तैनात सैनिक में यदि क्रोध, जोश या ताव का भाव न आया तो वह अपने राष्ट्र की रक्षा में सफल नहीं हो सकता है। तेजस्विता राष्ट्र रक्षा, संस्कृति व धर्म रक्षा का भी आधार है तो है ही, आत्म रक्षा का भी आधार है।

दीक्षा का मतलब वेद में व्रत या संकल्प बताया गया है। किसी शुभ कार्य या उद्देश्य के लिए समर्पित हो जाना। संकल्प या व्रत के साथ जब पक्का इरादा किया जाए तो वह दीक्षा है। ईमानदारी से जब राष्ट्रसेवा या राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने का संकल्प लिया जाए, वह संकल्प वेद के अनुसार दीक्षा है। महाराणा प्रताप ने स्वदेश को स्वतंत्र कराने के लिए, वे अपना राजसी ठाट-बाट छोड़कर स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए दीक्षित हो गए, यह है राष्ट्रमेव जयते का संकल्प। महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया। पूरा देश उनके पीछे चल पड़ा। यह है वेद की दीक्षा का परम पावन व्रत।

तप राष्ट्र की महान् शक्ति और आधार है। वेद के अनुसार मकसद के लिए दुख सहना तप है। राष्ट्र की उन्नति का आधार है राष्ट्र के नागरिकों में तप की भावना हो। महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में तप को स्वकर्म की उच्च स्थिति बताया गया है। जीवन में यदि तप नहीं है तो ऐसा जीवन किसी काम का नहीं। इसलिए तप से भागना नहीं चाहिए। महाभारत में कहा गया है- तपः स्वकर्म वर्तित्वम् और तपः स्वधर्म वर्तित्वम्। यानी हर व्यक्ति या समाज को अपने कार्य, कर्तव्य को पूरे सिद्दत के साथ करना चाहिए। जो व्यक्ति जिस हालात में और जगह है वहां वह ईमानदारी से कार्य करे। वेद में कहा गया है धरती सत्य, ऋत और तप के सहारे टिकी हुई है। गौरतलब है शेषनाग पर धरती टिकी होने का भाव यह है कि वेद में शेष का मतलब परमात्मा है। यानी परमात्मा के सहारे ही यह धरती टिकी हुई है। राष्ट्र के जो आधार हैं वही आधार जगत् के भी हैं। इसलिए हर आदमी को राष्ट्र के आधारों का पालन ईमानदारी से करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रहित इन्हीं पर टिका हुआ है।

वेद में ब्रह्म यानी ज्ञान-विद्या को राष्ट्र का आधार माना है। गौरतलब है बिना ज्ञान और विद्या के किसी राष्ट्र की उन्नति संभव ही नहीं है। एक सक्षम राष्ट्र वह होता है जहां ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा की समुचित व्यवस्था नियमानुसार चलती हो। अशिक्षा या अज्ञानता व्यक्ति के लिए अभिशाप है तो राष्ट्र के लिए भी अभिशाप है। ब्रह्म का प्रयोग ज्ञान और विद्या के साथ मंगलविधान को बताता है। यानी ज्ञान-विद्या के साथ उसका मांगलिक इस्तेमाल हो। किसी विनाश में नहीं। वैदिक विज्ञान की यही खासियत है कि राष्ट्र उन्नति या मानव मात्र का हित शुभत्व को साथ लेकर आगे बढ़ता है। इसलिए कहीं किसी तरह की

रुकावट नहीं है। खेती-किसानी हो या वाणिज्य -व्यवसाय, सेवा प्रबंधन हो या प्रशासन न्याय हर जगह ब्रह्मविद्या की जरूरत है। यानी देव तत्त्व का समावेश होना आवश्यक है।

और आठवां आधार यज्ञ, राष्ट्र का परम आधार वेद में माना गया है। वैदिक दर्शन के अनुसार जितने भी शुभ संकल्प के साथ किए जाने वाले कर्म हैं, यज्ञ कहे जाते हैं। भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं-नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। यानी यह लोक या परलोक कुछ भी उसे नहीं मिलता जो यज्ञ से रहित होता है। वेद में देवपूजा यानी पूज्यों का पूजन करना, संगतिकरण यानी विभिन्न वर्गों व स्वार्थों का समन्वय और दान यानी अपनी उपलब्धि में से राष्ट्र के लिए निःस्वार्थ त्याग करना। महर्षि दयानंद ने सत्यार्थप्रकाश मं लिखा है- राष्ट्र में तरह-तरह के यज्ञ हुआ करते हैं और उन यज्ञों का उस राष्ट्र का हर व्यक्ति अपना कर्तव्य मानकर खुशी-खुशी पूरा करता है, वह राष्ट्र हमेशा विकास के रास्ते पर आगे बढ़ता चला जाता है। देवपूजा में राष्ट्र व समाज के लिए समर्पित लोगों का सम्मान करना है। बड़े-बूढ़ों, ईमानदार, विद्वान्, देश सेवक, मेहनती का सम्मान और उनको पुरस्कार मिलना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र की उन्नति में इनका खास योगदान रहता है। राष्ट्र में विद्वानों और श्रम करने वालों का जब सम्मान होता है तब राष्ट्र लगातार बढ़ता चला जाता है। इसलिए वेद में देवपूजा को महत्व दिया है। और संगतिकरण व दान यज्ञ के ऐसे पहिये हैं जिनके बिना राष्ट्र में सुमति और समन्वय हो ही नहीं सकता। कहने का भाव यह है कि वेद में राष्ट्र के जिन आठ आधारों का वर्णन है वे आधार राष्ट्र को विकास और प्रगति पर ले जाते हैं और समाज भी एक आदर्श समाज के रूप में प्रतिष्ठित होता है। इसलिए वैदिक दर्शन में राष्ट्र को सर्वोपरि माना है। देखा जाए तो वैदिक राष्ट्रवाद ऐसी विचार धारा है जो राष्ट्र के साथ-साथ हर व्यक्ति को उन्नति के लिए कर्तव्य की भावना से ओत-प्रोत होने की प्रेरणा देता है। जहां न किसी तरह की संकुचित भावना है और न तो वर्ण व वर्ग (जाति) का भेदभाव है।

❖

(लेखक साहित्यकार व वैदिक वांगमय के अध्येता हैं)
सम्पर्क - द्वारा आर्यन क्लासेज 500/7 गली न.-5, विश्वास नगर
शाहदरा दिल्ली-110032 मो. 8178710334

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ (हाई रेज्योलेशन) भी भेज सकते हैं।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अतः प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

आजादी का अमृत महोत्सव

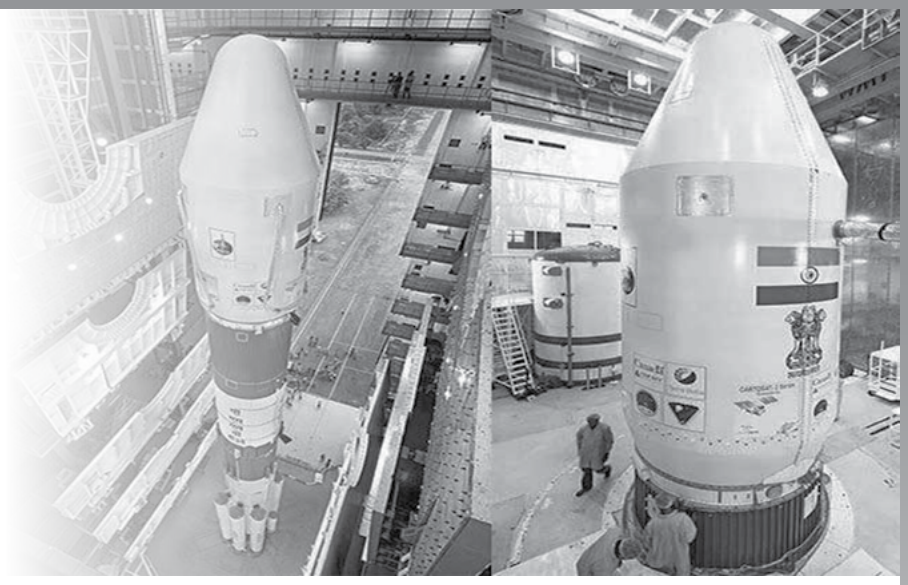

स्वाधीन भारत का जटिल सुरक्षा परिदृश्य

– डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

आज जब संपूर्ण देश अपनी आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तब यह जरूरी हो जाता है कि हम स्वाधीन भारत के जटिल सुरक्षा परिदृश्य का भी नये सिरे से विश्लेषण करें। यह सर्वज्ञात है कि भारत जब 15 अगस्त 1947 को स्वाधीन हुआ तो अंग्रेजों ने इसे विभाजन की त्रासदी का उपहार भी साथ में दिया था, जिसके बाद हुई हिंसक गतिविधियां पहली बड़ी चुनौती बनीं। आज भी विभाजन का घाव रह- रह कर उभर जाता है और संकट का परिवर्तित रूप देखने में आता है। यही नहीं अंग्रेजों ने देश के भीतर 562 देशी रियायतों को आजाद छोड़ दिया था, जिनका सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रयासों से भारत में विलय हुआ। इनमें भी जम्मू-कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ जैसी बड़ी रियायतों का भारत में विलय अत्यंत चुनौतीपूर्ण था। चूंकि पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर पर विलय पूर्व ही आक्रमण कर दिया था। अतः भारत को इस अनचाहे युद्ध में तुरंत कूदना पड़ा। यह आज भी रणनीतिक दृष्टि से एक बड़ी भूल मानी जाती है कि जब भारतीय सेनाएं पाकिस्तान को रौंद रही थीं तो तत्कालीन सरकार इस मसले को लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ में क्यों थी ? इस कारण आज भी कश्मीर के एक बड़े हिस्से पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा बना हुआ है। पाकिस्तान के अलावा हमारा एक और पड़ोसी चीन भारतीय सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती रहा है। वह हमें हिंदी- चीनी भाई- भाई के झांसे में रखकर न केवल 1962 में भारत पर हमला करता है, अपितु एक बड़े भू- भाग पर कब्जा भी कर लेता है।इसका जवाब भारत 1967 ई.में सिक्किम के नाथुला दर्रे की लड़ाई के दौरान देता है।यही नहीं वह 1987 ई.में भी भारतीय सीमा पर युद्ध के हालात पैदा करता है।इसके बाद भी चीनी सेना समय- समय पर घुसपैठ के प्रयास में लगी रहती है।बावजूद इसके वह भारतीय सेना के पेशेवर युद्धकौशल के भयवश युद्ध से बचने का प्रयास भी करती है।

> ***"इस युद्ध में सबसे बड़ी भूमिका नौसेना की रहेगी। भारतीय नौसेना की पश्चिमी कमान ब्रह्मोस मिसाइलों से लैस युद्धपोतों एवं पनडुब्बियों से कराची, ग्वादर तथा मकराना की तमाम नौसैनिक सुविधाओं को आरंभिक हमले में नष्ट कर देगी, जिससे वे कच्छ एवं कांडला पर हमला न कर सकें। यदि कोई कसर बाकी रह जाएगी तो उसे नलिया से उड़ान भरने वाले वायुसेना के विमान पूरी कर देंगे। भारत और ईरान मिलकर अरब सागर में चीन-पाकिस्तान का रास्ता रोक देंगे। यदि ईरान तटस्थ रहता है तो भी भारतीय नौसेना का पश्चिमी बेड़ा इस कार्य के लिए अकेले ही पर्याप्त है। तदुपरांत भारतीय नौसेना का पूर्वी तथा अंडमान - निकोबार द्वीप समूह स्थित चौथी कमान मलक्का जलसंधि को ब्लॉक करके चीन के 80 फीसदी व्यापार और तेल आपूर्ति को रोक देगी।चूंकि भारतीय नौसेना की दक्षिण निकोबार और इंडोनेशिया के सबांग पत्तन पर बड़ी उपस्थिति है, अतः यह कार्य उसके लिए सहज है।"***

इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि आज भी चीनी सेना भारतीय सेना द्वारा दिए गये दो दुःस्वप्नों को भूल नहीं पायी है। पहला दुःस्वप्न है लद्दाख की चुशुल घाटी के पहाड़ दर्रे रेजांगला का युद्ध। 18 नवंबर 1962 को मेजर शैतान सिंह के नेतृत्व में कुमाऊँ रेजीमेंट के 120 सैनिकों ने तोपों और बड़े हथियारों से लैस लगभग 6000 चीनी सैनिकों का मुकाबला किया और 1300 चीनी सैनिकों को मार गिराया। फलतः शेष घायल और भयभीत चीनी सैनिक मैदान छोड़कर भाग गए। चीन अपने 861 सैनिकों के शव को भी बर्फ़ की सफ़ेद चादर पर छोड़कर भाग खड़ा हुआ, जिसे वह 20 साल बाद 1982 की गर्मियों में ले जाता है। इस युद्ध में भारतीय सेना के 114 जवानों ने वीरता से लड़ते हुए अपना सर्वोच्च बलिदान दिया। यदि उस समय भारतीय नेतृत्व वायुसेना का प्रयोग करता तो भारत अपने रणबांकुरों की बदौलत युद्ध जीत गया होता। आज भारत का इतिहास दूसरा होता। इसी तरह दूसरा दुःस्वप्न है सितम्बर 1967 में सिक्किम के नाथुला दर्रे का युद्ध, जिसमें कैप्टन डागर एवं मेजर हरभजन सिंह के नेतृत्व में भारतीय सेना ने 440 चीनी सैनिकों को मार गिराया था। इस युद्ध में 70 भारतीय सैनिक शहीद हुए थे। उसके बाद चीन ने डरकर समझौता किया कि अब दोनों सेनाएं सीमा पर गोली नहीं चलाएंगी। इस समझौते का अब तक पालन होता रहा है। अतः भिड़ंत के समय दोनों सेनाएं हाथापाई और धक्का-मुक्की ही करती हैं। इन दुःस्वप्नों के कारण आज भी चीनी सेना मानती है कि यदि युद्ध जीतना है तो एक भारतीय सैनिक पर हावी होने के लिए दस चीनी सैनिकों की जरूरत होगी जो व्यावहारिक दृष्टि से लगभग असंभव है। अतः चीनी सेना जब भी भारतीय सेना के समक्ष आती है तो उसका मनोबल टूट जाता है।

मई 2020 में भारत और चीन ने कूटनीतिक संबंधों की 70वीं वर्षगाँठ मनाई और दोनों देश मिलकर कुल 70 कार्यक्रम करने वाले थे तब चीन ने एक बार फिर धोखा देते हुए गलवान घाटी में घुसपैठ करके युद्ध का माहौल बनाया और समझौते के बाद फिंगर 8 के पीछे न जाकर फिंगर 5 के पास डटी रही। जब भारतीय सेना यह देखने के लिए गई कि क्या चीनी सेना वापस अप्रैल 2020 की स्थिति में वापस लौटी तो उन्होंने धारदार और नुकीले हथियारों से हमला कर दिया। धोखे से किए गए इस हमले में भारतीय कर्नल समेत 20 भारतीय सैनिक शहीद हो गए और बदले में 56 चीनी सैनिक मारे गए।इसके अतिरिक्त 5 और 9 मई 2020 को चीनी सैनिकों ने लद्दाख और उत्तरी सिक्किम में घुसपैठ करने का प्रयास किया तथा दोनों स्थानों पर तीन बार झड़प हुई। सूत्रों के अनुसार गलवान घाटी में चीनी सैनिकों ने भारतीय पोस्ट के.एम.120 से लगभग 15 किलोमीटर दूर अपने तंबू गाड़े हैं। इनकी अनुमानित संख्या 5000 के आस-पास है। इसी इलाके में भारतीय सेना पैट्रोलिंग पोस्ट 14 के पास गलवान नदी पर पुल बना रही है जो 60 प्रतिशत तक पूरा हो गया है। चीनी सेना डोकलाम का बदला लेने के लिए इसे रुकवाना चाहती थी जिसे भारतीय सेना की दृढ़ता और मनोबल ने नाकाम कर दिया। गौरतलब है कि चीन पहले ही तिब्बत में एल.ए.सी.के पास तक सड़क व ढांचागत सुविधाओं का जाल बिछा चुका है। अब जब भारतीय सेना वैसा ही कर रही है तो उसे नागवार गुजर रहा है। जब लगातार हुई बैठकों के बाद भी चीन पीछे नहीं हटा तो अगस्त 2020 में भारतीय सेना ने कैलाश पर्वत श्रृंखला की चोटियों पर कब्जा करके उसे समझौते के लिए बाध्य कर दिया।

भारत और चीन पूर्वी लद्दाख में पैंगोंग त्सो क्षेत्र से पीछे हटने के लिए सहमत हो गए हैं और लगभग नौ महीने के गतिरोध के बाद दोनों देशों ने वापस यथास्थिति में जाने का फैसला किया है. रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने राज्यसभा में गुरुवार को यह जानकारी दी। इसके बाद गत वर्ष दोनों सेनाओं के बीच जो समझौता हुआ उसकी जानकारी देते हुए रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा कि समझौते के अनुसार, चीनी सेना पैंगोंग त्सो के उत्तरी किनारे में फिंगर 4 क्षेत्र से फिंगर 8 से आगे नहीं आएगी और वापस जाएगी। इसी तरह भारत भी अपनी सेना की टुकड़ियों को फिंगर 3 के पास अपने परमानेंट धन सिंह थापा पोस्ट पर रखेगा। कुछ ऐसी ही कार्रवाई साउथ बैंक एरिया में भी दोनों पक्षों द्वारा की जायेगी। ये कदम आपसी समझौते के तहत बढ़ाए जाएंगे तथा जो भी निर्माण आदि दोनों पक्षों द्वारा अप्रैल 2020 से उत्तरी और पूर्वी किनारों पर किया गया है उन्हें हटा दिया जाएगा और पुरानी स्थिति बना दी जाएगी। बावजूद इसके अभी भी पेंगोत्से, डेपचांग जैसे स्थानों पर दोनों ओर की सेनाएं अभी भी आमने- सामने हैं और चौदह दौर की वार्ता के बाद भी कोई समाधान नहीं निकला है।भारतीय सुरक्षा के लिए चीन के अलावा पाकिस्तान भी एक बड़ी चुनौती है।इसने 1965, 1971 और 1999 में भारत के साथ युद्ध किए। अब तक हर युद्ध में मुंह की खाने के बाद भी पाकिस्तान सुधरने का नाम नहीं ले रहा है। जब भारत ने 1971 के युद्ध में उसके दो टुकड़े कर दिए और पाकिस्तानी सेना को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे बड़ा आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस युद्ध से धर्म के आधार पर देश के विभाजन का द्विराष्ट्र सिद्धांत भी ध्वस्त हो गया।इससे पाकिस्तान को अच्छी तरह से समझ में आ गया कि वह भारत को सीधे युद्ध में नहीं हरा सकता।फलस्वरूप उसने छद्म युद्ध का सहारा लेना आरंभ किया। पहले उसने आई. एस.आई.के माध्यम से

पंजाब में आतंकी गतिविधियों को संचालित किया और जब उसमें सफल नहीं हुआ तो कश्मीर में आतंकी गतिविधियां संचालित करने लगा। इस दौरान भारत ने आतंकी हमलों का सबसे भयावह दंश झेला है।हमने आतंकी हमलों में हजारों सैनिकों तथा दो प्रधानमंत्रियों की कुर्बानी भी दी है।लेकिन नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से भारत आतंकवाद को लेकर काफी आक्रामक है और वह शून्य सहनशीलता की नीति पर चल रहा है।इसे अमली जामा पहनाते हुए भारतीय सेना पाकिस्तान में सर्जिकल स्ट्राइक कर चुकी है। साथ ही, भारतीय वायुसेना भी बालाकोट स्थित आतंकी ठिकानों पर हमला करके पाकिस्तान को कड़ा संदेश दे चुकी है।वर्तमान भारत सरकार ने संविधान की धारा 370 के अंतर्गत जम्मू-कश्मीर को दिए गए विशेष दर्जे को समाप्त करते हुए उसका लद्दाख के रूप में विभाजन कर दिया। इस कारण विगत वर्षों में आतंकी गतिविधियों पर एक सीमा तक लगाम लग गई है।बावजूद इसके पाकिस्तान अभी भी जम्मू-कश्मीर और पंजाब में आतंकी गतिविधियों का सूत्रधार बना हुआ है।

जब हम वर्तमान संदर्भ में भारत के जटिल सुरक्षा परिदृश्य पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि भारत इस समय अपने दो ऐसे पड़ोसियों से घिरा है जो केवल हमारी सुरक्षा के लिए ही नहीं, अपितु समूचे एशिया की सुरक्षा के लिए खतरा बने हुए हैं। दुर्भाग्य से ये दोनों परमाणु शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र हैं। भारत तथा विश्व के दूसरे देशों में आतंकवाद फैलाने वाला एक तरफ आतंकी देश पाकिस्तान तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी चीन है।इनके पारस्परिक गठजोड़ से भारत के समक्ष चुनौतियां लगातार गहराती जा रही हैं। चीन विश्वभर में कोरोना फैलाने का दोषी है जिसके कारण वह विश्व के अधिकांश देशों के निशाने पर है।बावजूद इसके वह अपनी विस्तारवादी नीति से भारत, जापान, ताइवान, फिलीपीन्स, वियतनाम और इंडोनेशिया जैसे पड़ोसियों को परेशान कर रहा है। इसके साथ ही आतंकी राष्ट्र पाकिस्तान है जिसके नेता लगातार परमाणु धमकी देते रहते हैं। चूंकि भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश है और विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थ व्यवस्था है। अतः उसकी सुरक्षा भी अत्यंत संवेदनशील और सुचिंतित रणनीति की मांग करती है। वर्तमान परिदृश्य इस बात का द्योतक है कि हमें राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे को लेकर हमेशा सतर्क रहने की आवश्यकता है।आज हमारे पास विश्व की चौथी सबसे बड़ी सैन्य शक्ति है, परन्तु तकनीकी बदलावों के कारण उसका तीव्र गति से आधुनिकीकरण करना होगा। एक विकासमान अर्थव्यवस्था के समक्ष यह चुनौती और भी कठिन है। ऐसी स्थिति में हमारे लिए यह गहन विमर्श का विषय है कि आखिर हम इन दोनों खतरनाक पड़ोसियों से कैसे निपटें? यह हमारे निरंतर चिंतन का विषय है।

आज विश्व के तमाम रणनीतिकार इस विषय पर विचार कर रहे हैं कि यदि चीन और पाकिस्तान दोनों एक साथ भारत पर हमला करें तो क्या होगा ? हर भारतीय के मन में भी यह प्रश्न बार-बार उठता रहता है।चूंकि चीन की नीति आंतरिक मामलों में दमनकारी तथा विदेशी मामलों में विस्तारवादी है अतः इस बात को सच माना जा रहा है।भारतीय सेनाएं न केवल इस दिशा में गंभीर तैयारी कर रही हैं, बल्कि दो मोर्चों पर समानांतर युद्ध का अभ्यास भी कर चुकी हैं। इसके लिए जंगी खेल(War Games) भी बन चुके हैं। यह भारतीय सुरक्षा परिदृश्य के लिए सबसे कठिन सवाल है। इसलिए इस काल्पनिक प्रश्न का एक संभावित उत्तर देने का प्रयास कर रहा हूँयदि दोनों शत्रुओं ने एक साथ हमला किया तो युद्ध आरंभ होते ही भारत अपनी संपूर्ण शक्ति से तुरंत जवाब देगा।भारत दोनों ही मोर्चों पर अपने 5-5 लाख सैनिक भेजेगा। इस युद्ध में रूस की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण होगी जिसके भारत और चीन दोनों से ही गहरे रणनीतिक और व्यापारिक संबंध हैं। यदि वह चीन का साथ देता है तो अमेरिका और उसके तमाम नाटो एवं गैर-नाटो सहयोगी भारत के पक्ष में उतर जाएंगे। दूसरी ओर यदि वह भारत का साथ देता है तो चीन पाकिस्तान चारों ओर से घिर जाएंगे। साथ ही, रूस के तटस्थ रहने की सर्वाधिक संभावना है। लेकिन वह दीर्घकालिक संबंधों के कारण भारत को सैन्य साजो-सामान की आपूर्ति जारी रखेगा। वह भलीभांति जानता है कि यदि चीन युद्ध जीतता है तो लंबे समय से चला आ रहा सीमा-विवाद तथा चीन की साम्राज्यवादी आकांक्षा अगला नंबर उसका ही लगाएगी।यह जग-जाहिर है कि सीमा विवाद के चलते पूर्व सोवियत संघ तथा चीन के बीच परमाणु युद्ध होते-होते बचा था। अतः वह भारत की जीत में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मदद ही करेगा। जहां तक खाड़ी देशों का सवाल है तो वे अमेरिका और रूस के दबाव में या तो भारत का साथ देंगे अथवा तटस्थ रहेंगे।लेकिन रूस पैसे के लिए भारत और चीन दोनों को हथियार बेच सकता है।

यह भी चिंतनीय है कि युद्ध शुरू होते ही सामरिक साझेदारी के समझौते के कारण अमेरिका , जापान और ऑस्ट्रेलिया अपना समर्थन देने के लिए अपनी सेनाओं को चीन का मार्ग बाधित करने के लिए सन्नद्ध कर देंगे। साथ ही, दक्षिण कोरिया तथा वियतनाम की सेनाएं अत्यधिक सतर्कता की स्थिति में आ जाएंगी। भारत-अमेरिका और चीन की उपग्रह सीमाओं के चप्पे-चप्पे पर निगरानी करने लगेंगे।अमेरिका

चीन के अलावा उत्तर कोरिया की गतिविधि पर अपना ध्यान केंद्रित कर देगा।वह चीन और पाकिस्तान की हर गतिविधि की सूचना भारत को भेजता रहेगा जिससे भारतीय सेनाओं को त्वरित प्रतिक्रिया करने का सुअवसर मिलेगा। भारतीय सेना संपूर्ण पश्चिमी सीमा तथा लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड , सिक्किम तथा अरुणाचल प्रदेश के सीमांत तक जवानों , टैंकों, तोपों, रॉकेटों और मिसाइलों द्वारा हमले को निरस्त करते हुए आगे बढ़ेगी। इस कार्य में पिनाक रॉकेट, प्रलय, प्रहार , पृथ्वी तथा ब्रह्मोस मिसाइल की सबसे बड़ी भूमिका रहेगी।चूंकि ब्रह्मोस विश्व की सबसे तेज क्रूज मिसाइल है और उसे विश्व की कोई भी मिसाइल रक्षा प्रणाली रोक नहीं सकती।अतः इससे चीन के तिब्बत स्थित सैन्य ठिकाने तथा पाकिस्तान के अधिकांश सैन्य ठिकाने नष्ट हो जाएंगे। भारतीय सेना संपूर्ण शक्ति से पाकिस्तानी सैन्य ठिकानों को शुरुआती हमले में नष्ट करने का प्रयास करेगी जिससे युद्ध में टिके रहने की उसकी क्षमता कमजोर हो जाए। फलतः अनेक मोर्चों पर उसके सैनिक आत्मसमर्पण करेंगे। चीन-पाकिस्तान की मिसाइलें और रॉकेट भारतीय सैन्य ठिकानों को निशाना बनाने का प्रयास करेंगे जिसे भारतीय सेनाएं रूसी-400, नयी पीढ़ी की आकाश बराक-8 मिसाइल सुरक्षा प्रणाली, स्वदेशी बी.एम.डी. तथा अपने लेज़र हथियारों से निरस्त करेगी।यह बहुत कम लोग जानते हैं कि भारत की स्वदेशी तकनीक से विकसित मिसाइल सुरक्षा प्रणाली रूसी-500 के समकक्ष है जिसका वह उपग्रह रोधी मिसाइल के रूप में परीक्षण भी कर चुका है।यह अंतरिक्ष से आने वाले किसी भी खतरे का मुँहतोड़ जवाब देने में सक्षम है। यदि चीन बहुत बड़े पैमाने पर मिसाइल हमले का प्रयास करता है तो भारतीय सेना काली-5000 तथा काली-10000 के प्रयोग द्वारा उसे रास्ते में ही नष्ट अथवा विपथित कर देगी। वह भारत के महत्वपूर्ण ठिकानों के लिए एक लेज़र छतरी बना देगी।इस युद्ध में लेजर तकनीक और प्रत्यक्ष ऊर्जा संचालित हथियारों की विशेष भूमिका रहेगी। उस समय साइबर हमले भी अपने चरम पर हो सकते हैं।भारत के पास विश्व की सर्वोत्तम पर्वतीय ब्रिगेड है जिसके पेशेवर युद्धकौशल के सामने चीनी सैनिक पनाह मांगेंगे।इसके बाद स्थिति अनुकूल होते ही भारतीय सेना तिब्बत के महत्वपूर्ण ठिकानों तथा पी.ओ.के.पर कब्जा कर लेगी। अमेरिकी वायुसेना और नौसेना ऐसी परिस्थिति पैदा करेगी जिससे चीन डरकर उन पर हमला कर दे। फलतः अमेरिका और जापान की अत्याधुनिक वायुसेना एवं नौसेना के समक्ष चीन को अपनी अधिकतम शक्ति झोंकनी पड़ेगी। अमेरिका के 3000 अत्याधुनिक बी-1,बी-2, एफ-22 तथा एफ-35 युद्धक विमानों के सामने चीनी वायुसेना मामूली सिद्ध होगी। यदि चीन बौखलाहट में सियोल, टोक्यो तथा गुआम पर मिसाइल हमले का प्रयास करता है तो बदले में अमेरिका और सहयोगी देशों की सेनाएं चीन के किस-किस ठिकाने पर और कितना हमला करेंगी, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। इस अवसर का लाभ उठाकर ताइवान, फिलीपीन्स, वियतनाम ,मलेशिया, कंबोडिया और इंडोनेशिया दक्षिण चीन सागर में अपने -अपने क्षेत्रों पर कब्जा कर सकते हैं। भारत से सांस्कृतिक संबंध के कारण मंगोलिया भी अपना खेल दिखा सकता है। चूंकि चीन का सभी पडोसियों के साथ सीमा विवाद है अतः वे अपने अधिकारों को पाने का प्रयास कर सकते हैं।यह स्थिति भारत के पक्ष में जाती है।

जहां तक वायुसेना का सवाल है तो भारत राफेल, सुखोई-3० एम.के.आई., मिग-29 तथा तेजस विमानों द्वारा चीन पर हमले करेगा। भारतीय वायुसेना के राफेल मेट्योर तथा हैमर मिसाइल एवं सुखोई-3० एम.के.आई.तथा तेजस ब्रह्मोस मिसाइलों से लैस होने के कारण अत्यंत सटीक और घातक निशाना लगा सकेंगे। भारत के सारे महत्वपूर्ण विमान- तल समुद्र की सतह के बराबर हैं अतः वे पूरे आयुध भार के साथ उड़ान भरेंगे, जबकि तिब्बत स्थित चीनी विमानों को 4000 मीटर की उंचाई से उड़ान भरनी पड़ेगी। फलतः वे भारतीय विमानों की तुलना में आधा वज़न भी नहीं उठा पाएंगे।चूंकि चीन अपने सुखोई-3०,जे-2० और रूसी एस-400 को पूर्वी तट से हटा नहीं सकता अतः भारतीय वायुसेना के लिए चीनी जे-10, जे-11, सुखोई-27 तथा जे-17 विमान आसान शिकार सिद्ध होंगे। भारतीय वायुसेना अवाक्स प्रणाली से लैस होने के कारण चीन के भीतर 1500 किमी.तथा संपूर्ण पाकिस्तान पर अपनी सीमा से ही नज़र रख सकेगी। भारत अपने राफेल, सुखोई-30 एम.के.आई., मिराज-2000,जगुआर, मिग-29,मिग-27,तथा आधुनिक बनाए गए मिग-21 से पाकिस्तान पर इतना जोरदार हमला करेगी कि वह जवाब देने के लायक ही न रह जाए। यदि पाकिस्तानी वायुसेना के एफ-16 तथा जे-17 विमान भारत पर हमले का प्रयास करते हैं तो भारतीय वायुसेना अंबाला में तैनात राफेल, मिग-29 तथा सुखोई-30 एम.के.आई तथा अस्त्र मिसाइलों से लैस तेजस विमानों द्वारा उन्हें भारतीय सीमा में प्रवेश करने के पहले ही ध्वस्त कर देगी।

इस युद्ध में सबसे बड़ी भूमिका नौसेना की रहेगी। भारतीय नौसेना की पश्चिमी कमान ब्रह्मोस मिसाइलों से लैस युद्धपोतों एवं पनडुब्बियों से कराची, ग्वादर तथा मकराना की तमाम नौसैनिक सुविधाओं को आरंभिक हमले में नष्ट कर देगी, जिससे वे कच्छ एवं कांडला पर हमला न कर सकें। यदि कोई कसर बाकी रह जाएगी तो उसे नलिया से उड़ान

भरने वाले वायुसेना के विमान पूरी कर देंगे। भारत और ईरान मिलकर अरब सागर में चीन-पाकिस्तान का रास्ता रोक देंगे। यदि ईरान तटस्थ रहता है तो भी भारतीय नौसेना का पश्चिमी बेड़ा इस कार्य के लिए अकेले ही पर्याप्त है। तदुपरांत भारतीय नौसेना का पूर्वी तथा अंडमान - निकोबार द्वीप समूह स्थित चौथी कमान मलक्का जलसंधि को ब्लॉक करके चीन के 80 फीसदी व्यापार और तेल आपूर्ति को रोक देगी।चूंकि भारतीय नौसेना की दक्षिण निकोबार और इंडोनेशिया के सबांग पत्तन पर बड़ी उपस्थिति है अतः यह कार्य उसके लिए सहज है। इस कार्य में दिएगोगार्शिया स्थित अमेरिका के सातवें बेड़े द्वारा भरपूर सहयोग मिलेगा जो सुन्दा व अन्य मार्गों को बाधित कर देगा। साथ ही, फ्रांस तथा ऑस्ट्रेलिया की नौसेनाएं दक्षिण हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति से चीनी नौसेना को हिंद महासागर में आने से रोकेंगी। चूंकि भारत की जैव-भौगोलिक स्थिति रणनीतिक दृष्टि से इतनी व्यापक और सुरक्षित है कि यदि चीन हमारे समुद्री मार्ग को बाधित करना चाहे तो उसे अपनी संपूर्ण नौसेना हिंद महासागर क्षेत्र में उतारनी होगी जो व्यावहारिक दृष्टि से लगभग असंभव है। उसे अमेरिका, जापान, दक्षिण कोरिया तथा ऑस्ट्रेलिया की अत्याधुनिक नौसेना से मुकाबले के लिए अपनी अधिकतम शक्ति पूर्वी चीन सागर तथा दक्षिण चीन सागर में झोंकनी होगी।यदि वह ऐसा करता भी है तो भारतीय मिसाइलों की मारक क्षमता के भीतर आ जाएगा। ऐसी स्थिति में चीनी नौसेना ब्रह्मोस मिसाइल तथा अग्नि श्रृंखला की मिसाइलों विशेष रूप से अग्नि प्राइम मिसाइलों के मारक क्षमता के भीतर आ जाएगी जिससे उसकी जल-समाधि सुनिश्चित है।इस दौरान अमेरिका दिएगोगार्शिया से तथा भारतीय वायुसेना अपने विभिन्न ठिकानों से हमला करके उसे हिंद महासागर क्षेत्र में जल समाधि लेने के लिए विवश कर सकती है। यदि चीन भारत पर हमले के लिए एक विमानवाहक पोत , कुछ विध्वंसक युद्धपोत और पनडुब्बियां भेजता है तो इसकी सूचना भारतीय और अमेरिकी उपग्रह प्रस्थान के समय ही दे देंगे। साथ ही, वियतनाम, इंडोनेशिया और सिंगापुर की नौसेना भी हमें समय पर सूचित कर देंगी। साथ ही, वे अपनी शक्ति भर उसके रास्ते को बाधित करने का कार्य करेंगी। ऐसी स्थिति में मलक्का जलसंधि पर भारतीय नौसेना और सुन्दा जलसंधि पर अमेरिकी नौसेना का सातवां बेड़ा तथा कोकोस द्वीप स्थित ऑस्ट्रेलियाई नौसेना उसका स्वागत करेगी। यदि चीनी नौसेना चकमा देकर हिंद महासागर में पहुंचने में सफल हो गयी तो सामने से भारतीय नौसेना तथा पीछे से अमेरिकी नौसेना के दोहरे प्रहार को वह नहीं झेल पाएगी और हिंद महासागर उसका कब्रिस्तान बन जाएगा। चीन अफ्रीका के जिबूती स्थित अपने नौसैनिक बेड़े को भारत पर हमला करने के लिए कह सकता है जिसे अदन की खाड़ी और सोमालिया तट पर तैनात ब्रह्मोस मिसाइलों से लैस भारतीय नौसेना के युद्धपोत नष्ट कर देंगे। यदि जरूरी हुआ तो भारत सुखोई-30 एम.के.आई.विमानों तथा अग्नि श्रृंखला की मिसाइलों से जिबूती नौसैनिक अड्डे को तबाह कर देगा।

इसके अलावा यदि चीन लंबी दूरी की मिसाइलों द्वारा भारत के आंतरिक रक्षा ठिकानों को निशाना बनाने का प्रयास करता है तो भारत अंडमान-निकोबार द्वीप समूह से ही अग्नि-4 और अग्नि-5 मिसाइलों से हमला करके दक्षिण चीन सागर स्थित तमाम कृत्रिम नौसैनिक सुविधाओं को नष्ट कर सकता है।साथ ही,वह अरुणाचल प्रदेश के सीमांत क्षेत्र से चीन के हर कोने में स्थित सैन्य सुविधाओं को भी नष्ट कर सकता है।अमेरिका जापान, दक्षिण कोरिया और गुआम स्थित अड्डे से बीजिंग तथा शंघाई जैसे प्रमुख चीनी शहरों को भी निशाना बना सकता है।इस चतुर्दिक हमले से चीन का सुरक्षा तंत्र बिखर जाएगा। फलतः भारतीय सेना तिब्बत को आजाद करवाकर अक्साई लद्दाख पर कब्जा कर लेगी। तिब्बत की आजादी की घोषणा होते ही ताइवान, हांगकांग, झिनजियांग , आंतरिक मंगोलिया समेत चीन के दूसरे प्रांत आजादी की घोषणा कर देंगे।फलतः चीन पूर्व सोवियत संघ की नियति को प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर भारतीय सेना गिलगित-बालटिस्तान सहित संपूर्ण पी.ओ.के.को अपने अधिकार में कर लेगी। इस अवसर का लाभ उठाकर बलूचिस्तान तथा सिंध आजाद हो जाएंगे। यदि बिखराव से बचने के लिए चीन-पाकिस्तान परमाणु हमला करते हैं तो भारतीय प्रतिक्रिया के बाद पाकिस्तान इतिहास बन जाएगा और पश्चिमी चीन नष्ट हो जाएगा।इसके जवाब में भारत अपनी स्वदेशी परमाणु पनडुब्बियों तथा अग्नि-5 मिसाइल से चीन के प्रमुख सामरिक एवं आर्थिक ठिकानों को लक्ष्य बना सकता है। यदि चीन सियोल तथा टोक्यो पर भी परमाणु हमला करता है तो अमेरिका बीजिंग व अन्य चीनी ठिकानों को नेस्तनाबूत कर सकता है।यदि परमाणु युद्ध हुआ तो संपूर्ण पाकिस्तान , भारत के सीमांत शहर, पश्चिमी चीन, बीजिंग , शंघाई तथा चीन के अन्य सैन्य ठिकाने और सियोल तथा टोक्यो को भारी नुकसान हो सकता है। ऐसी स्थिति में 30 करोड़ लोगों की मृत्यु हो सकती है। यदि परमाणु युद्ध नहीं हुआ तो तीन लाख लोगों की मौत हो सकती है। भारत यथासंभव रूस, अमेरिका तथा इजरायल से प्राप्त मिसाइल सुरक्षा प्रणाली और स्वदेशी तकनीक से निर्मित एवं विकसित सुरक्षा प्रणाली से स्वयं को बचाने का प्रयास करेगा। यदि परमाणु युद्ध हुआ तो यह पाकिस्तान का सबसे बड़ा दु:स्वप्न होगा। दूसरी ओर यदि परमाणु युद्ध की नौबत

नहीं आयी तो चीन का आर्थिक एवं सैनिक महाशक्ति बनने का सपना सदा-सर्वदा के लिए टूट जाएगा। भारत दस साल पीछे चला जाएगा। पाकिस्तान इतिहास बन जाएगा। भारत की स्थिति सुरक्षित होते ही रूस , फ्रांस इत्यादि संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद की आपातकालीन बैठक बुलाएंगे जिसमें अमेरिका , फ्रांस तथा ब्रिटेन चीन पर युद्ध शुरू करने का आरोप लगाएंगे। उस पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए जाएंगे। चीन और पाकिस्तान से जो देश आजाद होंगे उन्हें मान्यता दी जाएगी। समूचा विश्व भयावह मंदी की चपेट में आ जाएगा। विश्व भर के शेयर बाजार नीचे गिर जाएंगे। सोना आसमान छूने लगेगा। इन देशों की मुद्राएं भी गिर जाएंगी। एक नयी विश्वव्यवस्था बनेगी जिसमें अमेरिका अकेली विश्व शक्ति के रूप में दुबारा उठेगा। भारत एशिया की सबसे बड़ी ताकत बन जाएगा। संपूर्ण विश्व में एक नए ढंग की अफरा-तफरी मच जाएगी। यह विश्लेषण सम्बद्ध राष्ट्रों की वर्तमान सैन्य शक्ति , युद्ध कौशल और रणनीतिक साझेदारी पर आधारित है। इसके नतीजे में केवल उन्नीस-बीस का ही फर्क आ सकता है।इसे अनुमान के तौर पर ही देखा जाए और यह ध्यान रखा जाए कि हमारे दोनों पड़ोसी कभी भी ऐसी अथवा इससे भी भयावह चुनौती पेश कर सकते हैं।यदि यही हमला रूस से प्राप्त एस-400 मिसाइल की तैनाती के बाद होता है तो भारत नयी दिल्ली को बचाने में सफल हो जाएगा। इसके अलावा भारत के पास स्वदेशी और इजरायल निर्मित बहु-स्तरीय हवाई सुरक्षा प्रणाली है जो उसके महत्वपूर्ण ठिकानों की रक्षा करने में समर्थ है।

वर्तमान जटिल सुरक्षा परिदृश्य को देखते हुए भारत के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपनी परमाणु नीति पर दुबारा विचार करे। चूंकि भारत ने पहले परमाणु हमला न करने की नीति अख्तियार कर रखी है अतः इस कठिन एवं भयावह स्थिति में उसे बदलने की जरूरत है। भारत की तरह चीन ने भी पहले परमाणु हमला न करने की नीति बना रखी है, लेकिन चीन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। वह विश्व का सबसे धोखेबाज राष्ट्र है। उसकी नीति कभी भी बदल सकती है। पाकिस्तान की कोई परमाणु नीति नहीं है। वह लगातार परमाणु हमले की धमकियां देता रहता है। ऐसी स्थिति में यदि भारत अपनी परमाणु नीति में बदलाव करते हुए पहले हमला न करने की नीति का त्याग करता है तो पाकिस्तान असीमित दबाव महसूस करेगा।पाकिस्तान जैसे दुष्ट देश तथा चीन जैसे आक्रामक देश से घिरे होने के कारण हमें हर प्रकार की वचनबद्धता से दूर रहना चाहिए। हमारे लिए यही सही मार्ग है कि हम परिस्थिति के अनुसार अपनी सुरक्षा के संबंध में निर्णय लें। इसके अलावा बदली हुई विश्व व्यवस्था में चीन को अकेला करने के लिए भारत सरकार को चाहिए कि वह अमेरिका से रूस पर लगे हुए प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए प्रयास करे। वह रूसी पेट्रोलियम उत्पादों के लिए यूरोपीय संघ का बाज़ार खुलवाकर रूस को हमेशा के लिए चीन से दूर कर सकती है। ऐसी स्थिति में चीन एवं पाकिस्तान बिलकुल अकेले होंगे।साथ ही, हमें अमेरिका-भारत-जापान और ऑस्ट्रेलिया के शक्तिशाली सामरिक गठजोड़ को व्यापक बनाते हुए उसमें दक्षिण कोरिया, फ्रांस, वियतनाम तथा आसियान देशों को भी शामिल करवाने का प्रयत्न करना चाहिए।इसके अलावा भारतीय सेनाओं के आधुनिकीकरण को गति प्रदान करनी चाहिए। हमें इस ध्रुवसत्य को स्मरण रखना होगा कि 'क्षमा शोभती उस भुजंग को , जिसके पास गरल हो'। भारतीय सुरक्षा परिदृश्य की आगामी चुनौतियां साइबर युद्ध, अंतरिक्ष युद्ध और अदृश्य युद्ध के रूप में आने वाली हैं अतः हमें इन नए तकनीकी क्षेत्रों में विशेष ध्यान देना होगा। अब स्टील्थ तकनीक और ड्रोण सुरक्षा के समक्ष एक बड़ी चुनौती बन रहे हैं। भारत सरकार और डी.आर.डी.ओ.को चाहिए कि वह इससे बचने के लिए बड़े पैमाने पर लेजर और प्रत्यक्ष ऊर्जा हथियारों के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करे।हमें अपने साइबर योद्धाओं को भी त्वरित प्रतिक्रिया हेतु सक्षम बनाना होगा।साथ ही, सुरक्षा के बहुस्तरीय एवं पुख्ता इंतजाम करने होंगे।

सारांश यह है कि आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर भी भारत का सुरक्षा परिदृश्य अत्यंत जटिल है।हम अभी निश्चिंत नहीं बैठ सकते।जब तक चीन के साथ सीमा- विवाद का सम्मानजनक हल नहीं निकलता और पाकिस्तान अपनी आतंक परस्त नीति का त्याग नहीं करता तब तक हमें अंतर्बाह्य दोनों ही धरातल पर स्वयं सतर्क और सक्षम रखना होगा।साथ ही, पाकिस्तान गिलगित-बाल्टिस्तान सहित संपूर्ण पी.ओ.के.को भारत के हवाले नहीं करता अथवा भारत उस पर कब्जा नहीं करता, तब तक शांति दूर है।वर्तमान परिदृश्य को देखकर यह कहना भी मुश्किल है कि भारत के दोनों पड़ोसी सुधरने वाले हैं। ऐसी स्थिति में हमें स्वयं को सक्षम बनाकर सेनाओं के निरंतर आधुनिकीकरण पर बड़ा निवेश करना होगा और भावी तकनीकी चुनौतियों के अनुरूप अद्यतन सामरिक तैयारी करनी होगी। हमें इतिहास के घावों से सीखकर स्वयं को सतर्क, समर्थ एवं तत्पर रखना होगा।

❖

(रक्षा व विदेश मामलों के विशेषज्ञ)
1102, सी- विंग, लक्षचंडी हाईट्स, कृष्ण वाटिका मार्ग, गोकुलधाम,
गोरेगांव (पूर्व), मुंबई-400063
संपर्क 9167921043

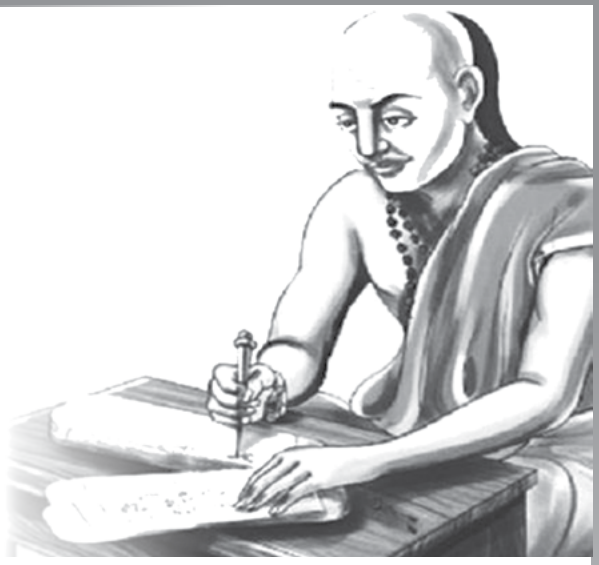

चाणक्य का राष्ट्र दर्शन

– प्रो. लल्लन प्रसाद

भारत की जिन महान विभूतियों का पूरा विश्व लोहा मानता है चाणक्य उनमें से एक हैं। ईसा से लगभग 325 वर्ष पूर्व राजा का खेल खेलते-देखते हुए एक सामान्य परिवार के बालक चंद्रगुप्त मौर्य को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा देकर उन्होंने विश्व का सबसे बड़ा सम्राट बना दिया, देश के छोटे-छोटे गण राज्यों को मिलाकर एक महान राष्ट्र बना दिया, सिकंदर की विश्व विजय का सपना चूर कर दिया, भारत पर उसका आक्रमण विफल कर दिया और भारत को सोने की चिड़िया बना दिया। चाणक्य को कई नामों से जाना जाता है, किंतु उनमें दो नाम प्रसिद्ध है: कौटिल्य एवं विष्णुगुप्त। कौटिल्य नाम से उन्होंने एक महान ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' की रचना की, जिसमें उन्होंने अर्थनीति, राजनीति, प्रबंध शास्त्र, समाज नीति, दंड नीति, युद्ध और शांति नीति एवं कूटनीति सहित अनेक विषयों पर व्यापक चर्चा की है। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों वृहस्पति, शुक्राचार्य, मनु, पराशर आदि को भी उद्धृत किया है और अपने विचार तर्क सहित रखे हैं। अर्थशास्त्र का जर्मन भाषा में अनुवाद करने वाले विद्वान जोहान मैकप मेयर ने लिखा है कि यह मात्र एक पुस्तक नहीं है, यह प्राचीन भारत का पुस्तकालय है। ए. एल. बाशम का मानना है कि प्राचीन भारत को समझने का अर्थशास्त्र एक बेशकीमती स्रोत है। चाणक्य का व्यक्तित्व बहुआयामी था। तक्षशिला एवं नालंदा विश्वविद्यालय के कुल गुरु के रूप में, सम्राट चंद्रगुप्त के सलाहकार के रूप में, महान दार्शनिक एवं चिंतक के रूप में, दृढ़ प्रतिज्ञ, साहसी, निर्भय और निर्विकार व्यक्ति के रूप में उनका व्यक्तित्व अतुलनीय था, उनकी गिनती भारत के 13 महान ऋषियों में की जाती है। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं किया, जो कुछ किया राष्ट्र के के

> ***"अर्थशास्त्र में लोक कल्याणकारी राज्य के स्थापना की कामना की गई है। बुजुर्गों, विधवाओं और असहाय नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा दी जानी चाहिए। जो व्यक्ति समर्थ होने पर भी अपने बच्चों, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिक भाई, अविवाहित तथा विधवा बहन आदि का भरण पोषण न करें उसे दंडित किया जाए। पुत्र तथा स्त्री के जीवन निर्वाह का उचित प्रबंध किए बिना ही यदि कोई पुरुष सन्यास ग्रहण कर ले तो उसे भी राज्य की ओर से दंडित किया जाना चाहिए। शत्रु, चोर, डाकुओं, व्याधियों एवं दुर्भिक्षम से नागरिकों की सुरक्षा सरकार की जिम्मेदारी है। सरकार उन क्रियाओं पर भी प्रतिबंध लगाए जो धन का अपव्यय और विलासिता को बढ़ावा देती हैं। चोरो, लुटेरों, हिंसक जंतुओं से राजमार्गों व समुद्री व्यापार मार्गों की सुरक्षा का प्रबन्ध कराये। कारीगर और व्यवसायी जो जनता को लूटते हैं, अधिक कीमत वसूल करते हैं, माप तोल की चोरी करते हैं, मिलावट करते हैं, बढ़ियां बताकर घटिया माल देते हैं, जमा खोरी करते हैं, टैक्स की चोरी करते हैं उनको भी राज्य की ओर से दंडित कराने का प्रावधान अर्थशास्त्र में है, जिसे कंटक शोधन कहा गया है।"***

लिए किया। साधारण-सी झोपड़ी में निवास करते थे, चंद्रगुप्त के सम्राट बनने के बाद मंत्री पद स्वीकार नहीं किया, मंत्री के रूप में नंद के मंत्री राक्षस को मन्त्री बनवाया जिसकी प्रतिभा के वे कायल थे, यद्यपि वह उनका दुश्मन था। चाणक्य का विष्णुगुप्त नाम उनके पिता का दिया हुआ था जिसका अर्थ है भगवान विष्णु के संरक्षण मे रहने वाला।

चाणक्य का जीवन दर्शन उनके द्वारा प्रणीत सूत्रों में परिलक्षित होता है जो भारतीय संस्कृति की पहचान हैं:

सुखस्य मूलं धर्मः। (सुख का मूल धर्म है)

धर्मस्य मूलं अर्थः। (धर्म का मूल अर्थ है)

अर्थस्यमूलं राजस्यम। (अर्थ का मूल राज्य है)

राज्यमूलमिद्रिय जयः। (राज्य का मूल इंद्रिय जय है)

इंद्रयजयस्यमूलमं विनयः। (इंद्रिय जय का मूल विनय-नम्रता है)

विनयस्य मूलं वृद्ध सेवाया विज्ञानम्। (विनय का मूल वृद्धों, विद्वानों की सेवा है)

विज्ञाने नात्मानं संपादयेत। (वृद्धों की सेवा का मूल विज्ञान है)

संपादितात्मा जितात्मा भवति।(मनुष्य को चाहिए अपने-आप को ज्ञान-विज्ञान से संपन्न कराए, आत्मोन्नति करें)

जितात्मा सर्वार्थे: संयुज्येत।(जो पुरुष विज्ञान से संपन्न होता है वह स्वयं को भी जीत सकता है)

अर्थ संपत्प्रकृतिसंपदं करोति।(अपने ऊपर काबू पाने वाला मनुष्य समस्त अर्थों से संपन्न होता है)

सुखी जीवन व्यतीत करना मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा है, हमारे ऋषियों ने 'सर्वे भवंतु सुखिनः' का मंत्र दिया था। राम राज्य के लिए कहा जाता है 'दैहिक दैविक भौतिक तापा राम राज्य कबहूं नहीं व्यापा।' जीवन में सुख शांति धर्म के मार्ग पर चलकर ही मिल सकती है। धर्म भारतीय वांग्मय में अंग्रेजी शब्द रिलिजन के अर्थ में नहीं लिया गया है, जो कुछ धारण योग्य है उसे धर्म कहा गया है 'धरणाद्धर्म इत्याहुः।' मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताये गये हैं: धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, स्वच्छता, इंद्रियों पर नियंत्रण, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना। चाणक्य के अनुसार धर्मोप देश का उद्देश्य है किस कार्य के करने से अच्छा परिणाम निकलेगा और किससे बुरा, इससे अच्छे बुरे का ज्ञान हो जाता है। भगवत गीता के शाश्वत सिद्धांत 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' में चाणक्य की पूरी आस्था थी। उनके अनुसार जैसे हजारों गायों के मध्य बछड़ा अपनी ही माता के पास आता है उसी प्रकार किए गये कर्म कर्ता के पीछे-पीछे जाते हैं: 'यथा धेनुसहस्रेषु वस्तो गच्छति मारतम। तथा यच्च कृत कर्म कर्तारमनुगच्छति'। चारों वर्ण, चारो आश्रम, संपूर्ण लोकाचार और नष्ट होते हुए धर्मों का रक्षक राजा को माना गया है और इसीलिए उसे धर्म का प्रवर्तक कहा गया है: 'चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात्। नश्यतां सर्वधर्मसमभाव राजा: धर्म प्रवर्तकः'। राष्ट्र के चार पैर माने गए हैं: धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा, इन्हीं पर राज्य टिका होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चाणक्य पहले तीन को ही वरीयता देते हैं मोक्ष को नहीं, जिसे वे कर्मों का फल मानते हैं। सुखी जीवन के लिए धर्म के साथ-साथ अर्थ की आवश्यकता पर चाणक्य ने जोर दिया है: सारा संसार धन के पीछे दौड़ता है 'अर्थार्त प्रवर्तके लोकः', दरिद्र होकर जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है 'दैन्यानमरणमुत्तमम्', धन के बिना किसी उद्यम करना बालू से तेल निकालने के समान है 'अद्रव्यप्रयत्नों बालुकाक्वथ नादनन्यः', धनवान व्यक्ति ही सबका मान्य होता है 'अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः। चाणक्य के पूर्ववर्ती ऋषियों ने भी धन के महत्व का प्रतिपादन किया है। वेदों में इंद्र अग्नि मारुत आदि सभी देवताओं से यज्ञ के बाद यजमान धन, यश और सुखी जीवन के वरदान की कामना करते थे।

राष्ट्र को समृद्ध और साधन संपन्न बनाने में राज्य की भूमिका का विशद विवेचन अर्थशास्त्र में मिलता है। प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजा के हित में ही राजा का हित है: 'प्रजा सुखे सुखम राग्यः प्रजानां च हिते हितम्'। राजा उद्यमी होता है तो प्रजा भी उद्यमी होती है, उद्योग ही अर्थ का मूल है: 'अर्थस्य मूलमुत्थानं'। राजा उन्नतशील होता है तो उसके अंदर काम करने वाले सभी उन्नतशील होते हैं। राजा का चरित्रवान होना भी आवश्यक है। व्यसनों के चंगुल में फंसे, जुआरी और कामोत्तेजक राजा के कार्य सिद्ध नहीं होते। शास्त्र विहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाला इंद्रियों के बस में पड़ा हुआ राजा

चतुरंग सेना के होने पर भी विनष्ट हो जाता है: 'इंद्रिय वशवर्तो चतुरंगवानपि विनश्यति'। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से उसे अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए: 'कामक्रोधलोभमोहमदहर्ष त्यागात्कार्य:'। राजकुमारों को शस्त्र और शास्त्र दोनों ही विद्याओं में निपुण कराना चाहिए। उन्हे वेदों, उपनिषदों, रामायण,महाभारत आदि ग्रंथों का अध्ययन कराना चाहिए। उनपर निगरानी भी रखनी चाहिए, क्योंकि केकड़े की भांति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक हो सकते हैं 'करकट सघर्माणो हि जनक भक्षा राजपुत्रा:'। अयोग्य पुत्र को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहिए। राजा को न्याय प्रिय होना चाहिए, प्रजा जन और परिवार को एक दृष्टि से देखना चाहिए। अपना पुत्र भी कानून का उल्लंघन करें तो उसे वहीं सजा दे जो प्रजा को दी जाती है: 'दण्डोहि केवल लोक पर क्षेम च रक्षात। राजा पुत्र च शत्रो च यथादोष समध्रित।' मंत्री और अधिकारी योग्य, ईमानदार एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होने चाहिए। राजा और राज्य के अधिकारियों के लिए चाणक्य ने जो कुछ कहा है वह आज के राज्याध्यक्षों एवं उच्च पदाधिकारियों (राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्री गण, एवं उच्च अधिकारी गण) के ऊपर भी वैसे ही लागू होती है।

अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्ति का संरक्षण, संरक्षित का संवर्धन और सवर्धित का वितरण राज्य के चार मुख्य कार्य है: 'अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम्। राज्यतंत्रायतं नीतिशास्त्रम्। राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रवापौ।' योग्य निष्ठावान कुशल मंत्रियों और प्रशासकों की सहायता से यह लक्ष्य प्राप्त होता है। राजा को चाहिए कि सभी प्रशासनिक पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करे, जो जिस कार्य को करने में निपुण हो उसको उसी कार्य में नियुक्त करना चाहिएः 'यो यस्मिन कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत'। मंत्री स्वदेशोत्पन्न, निपुण, अर्थशास्त्र के ज्ञाता, प्रतिवाद तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, स्वामिभक्त, धैर्यवान आदि गुणों से संपन्न होने चाहिए। अपने बहुत नजदीकी जैसे सहपाठी को मंत्री पद पर नियुक्त न करे, राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके बस में हो जाता है। शासन मंत्रिपरिषद की सलाह पर करे, क्योंकि एक पहिए की गाड़ी की भांति राजकाज भी बिना सहायता सहयोग से नहीं चलाया जा सकता: 'सहायसाध्यम् राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते। कौर्वात सचिवांस्तस्मात्तेषाम च ऋणुयानमतमू।' राजकोष की रक्षा करना और उसे बढ़ाना शासन का कर्तव्य है, सब कुछ कोष पर निर्भर करता है: 'कोषपूर्वा समारंम्भा। तस्मात पूर्व कोषवेक्षेतं।' शासन के सभी काम प्रजा के हित में होने चाहिए: 'योगक्षेम्यवहाम्यहम'। कुशल प्रशासन के लिए श्रम वितरण के सिद्धांत पर विभागों के अध्यक्ष, अधिकारी गण और कार्मिक अनुभव, योग्यता के और कार्यक्षमता आधार पर नियुक्त किए जाने चाहिए। अर्थशास्त्र में जिन अधिकारियों का उल्लेख है उनमें कुछ प्रमुख हैं: समाहर्ता (जिला अधिकारी), नगराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष, अकराध्यक्ष, नौकाध्यक्ष, पण्याध्यक्ष आदि। जो अधिकारी अच्छा काम करें उन्हें सम्मानित करने और जो अपने अपने पद का दुरुपयोग करें, जनता के हितों का ध्यान न रखें, सरकारी धन का दुरुपयोग करें, भ्रष्टाचार मे लिप्त पाये जांये उनको दंडित करने का प्रावधान भी अर्थशास्त्र में है। अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध दर्प एवं लोभ के कारण सरकारी अधिकारी लापरवाही करते हैं,गबन करते हैं, राजकोष का क्षय करते हैं। चाणक्य का मानना था कि जैसे जीभ में रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद लिए बिना नहीं रहा जा सकता उसी प्रकार अर्थाधिकार कार्यों पर नियुक्त अधिकारी अर्थ का थोड़ा भी स्वाद ना लें यह संभव नही है: 'यथाह्यनास्वादयितुं न शक्य जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा। अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पोऽप्नास्वादयितुं न शक्यः।' ऐसे अधिकारियों का जैसे ही पता लगे उनकी सारी धन-संपत्ति छीन ली जाए और उन्हें पदच्युत कर दिया जाय। आय कर के अधिकारी निर्धारित कर वसूल करें, न अधिक न कम। उनका काम माली की तरह पौधों को सींचना होता है न कि जलाकर राख कर देना।

पर्यावरण प्रदूषण रोकने, पेड़- पौधों, पशुओं-पक्षियों और वन्य जीव जंतुओं के संरक्षण के लिए भी शासन को सजग रहना चाहिए। फल देने वाले वृक्षों को काटने और दूध देने वाले पशुओं की हत्या करने पर रोक होनी चाहिए। चाणक्य के अनुसार ऐसा काम करने वाले यदि स्वर्ग में जाएं तो नर्क कौन जाएगा?: 'व्रिक्षांशित्वा पशुन्हत्या, क्रित्य संपरकर्दमम्।

पथेवं गम्यते स्वर्ग नरक केन गम्यते।' गांव और शहर नियोजित ढंग से बचाए जाने चाहिए। अर्थशास्त्र में जनपदों की स्थापना का विशद विवेचन है। गांव की सीमा पर नदी, पहाड़, जंगल, तालाब आदि हों, सेमल, बरगद, बेर आदि के वृक्ष लगाए जांय: 'नदीशैलवनग्रिष्टिदरीसेतबंधशालमलीशमीक्षीरब्रिक्षानन्तेषु सीम्ना स्थापयेत'। एक जनपद में अधिक-से-अधिक 500 घर हों। श्मशान शहर से दूर हो और उसका रास्ता भी आम रास्ते से अलग हो। खेती के लिए जो जमीन किसान को दी जाती है उस पर यदि वह खेती न करें तो सरकार जमीन जप्त कर ले। बंजर भूमि को जो किसान अपने श्रम से उपयोगी बनाएं उस पर उसका पूर्ण अधिकार हो। अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर राज्य किसानों की सहायता करे। सिंचाई के लिए सरकार नदियों पर बड़े-बड़े बांध बनवाएं अथवा वर्षा ऋतु के जल को बड़े-बड़े जलाशयों में भरवाये। आवश्यकतानुसार नए जंगल और सेतु बंध का निर्माण कराए। खानों से निकलने वाली चीजों के विक्रय स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं के पालन और वृद्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों व मंडियों की व्यवस्था सरकार करे।

अर्थशास्त्र में लोक कल्याणकारी राज्य के स्थापना की कामना की गई है। बुजुर्गों, विधवाओं और असहाय नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा दी जानी चाहिए। जो व्यक्ति समर्थ होने पर भी अपने बच्चों, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिक भाई, अविवाहित तथा विधवा बहन आदि का भरण पोषण न करें उसे दंडित किया जाए। पुत्र तथा स्त्री के जीवन निर्वाह का उचित प्रबंध किए बिना ही यदि कोई पुरुष सन्यास ग्रहण कर ले तो उसे भी राज्य की ओर से दंडित किया जाना चाहिए। शत्रु, चोर, डाकुओं, व्याधियों एवं दुर्भिक्षम से नागरिकों की सुरक्षा सरकार की जिम्मेदारी है। सरकार उन क्रियाओं पर भी प्रतिबंध लगाए जो धन का अपव्यय और विलासिता को बढ़ावा देती हैं। चोरो, लुटेरों, हिंसक जंतुओं से राजमार्गों व समुद्री व्यापार मार्गों की सुरक्षा का प्रबन्ध कराये। कारीगर और व्यवसायी जो जनता को लूटते हैं, अधिक कीमत वसूल करते हैं, माप तोल की चोरी करते हैं, मिलावट करते हैं, बढ़ियां बताकर घटिया माल देते हैं, जमा खोरी करते हैं, टैक्स की चोरी करते हैं उनको भी राज्य की ओर से दंडित कराने का प्रावधान अर्थशास्त्र में है, जिसे कंटक शोधन कहा गया है। मजदूरों को कम वेतन देना, समय पर वेतन न देना भी अपराध है। साथ-ही-साथ मजदूरों की जिम्मेदारी भी निर्धारित की गई है काम न करने, काम बिगाड़ने, बिना छुट्टी अनुपस्थित रहने, जानबूझकर मालिक को नुकसान पहुंचाने पर मजदूर को दंडित करने का भी प्रावधान है। चाणक्य, दास प्रथा के खिलाफ थे। कारखानों में काम करने वाली महिलाओं को बुरी नजर से देखना या उनसे छेड़-छाड़ करना दंडनीय अपराध था। स्त्रीधन को कानूनी मान्यता थी। दो प्रकार के स्त्रीधन परिभाषित किए गये थे: वृत्ति जो न्यायाधीशों के लिए स्त्री के नाम से जमा किया जा सकता है, एवं आवध्य जैसे गहना, जेवर आदि। पति के विदेश जाकर न लौटने, उसकी मृत्यु हो जाने या दुराचारी होने की स्थिति में स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार था। बच्ची के साथ बलात्कार की सजा मृत्युदंड थी। अर्थशास्त्र में जो न्याय व्यवस्था दी गई है उनके मूल सिद्धांत आज भी मान्य है। न्यायाधीश को धर्मस्थ की संज्ञा दी गई है। न्यायाधीश उन्हीं लोगों को बनाया जाए जो कानून के जानकार हो, ईमानदार और स्वच्छ छवि के हों, साथ ही साथ निर्भीक हों, सही निर्णय दे सकें, किसी के दबाव में ना आएं। उन्हें अच्छा वेतन दिया जाए। सबके लिए समान कानून, न्याय कानून के अनुसार, दंड अपराध के अनुपात में, अपराधी कहे जाने वाले को अपना पक्ष रखने का पूरा अवसर, वादी- प्रतिवादी की पारस्परिक विरुद्ध दलीलों का उचित समाधान न होने पर साक्षियों और गुप्तचरों के द्वारा मामले की छानबीन करा कर फैसला देना आदि न्याय व्यवस्था के आधार थे। न्यायाधीशों के लिए चाणक्य का कहना था कि थी कि वे छल-कपट से विलग होकर अपने कार्यों को संपन्न करें और सबको एक समान निगाह में रखकर एवं जनता के विश्वास पात्र बनकर लोकप्रियता प्राप्त करें: 'एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्युर च्छलदर्शिन:। समा: सर्वेषु भावेशु विश्वास्या लोक सम्प्रिया:।।'

❖

प्रख्यात अर्थशास्त्री, वरिष्ठ हिंदी लेखक एवं कवि
सी 140 सैक्टर -19, नोएडा 20131, यू पी
मो. 98100990008 ईमेल: lallanpd@gmail.com

आजादी का अमृत महोत्सव

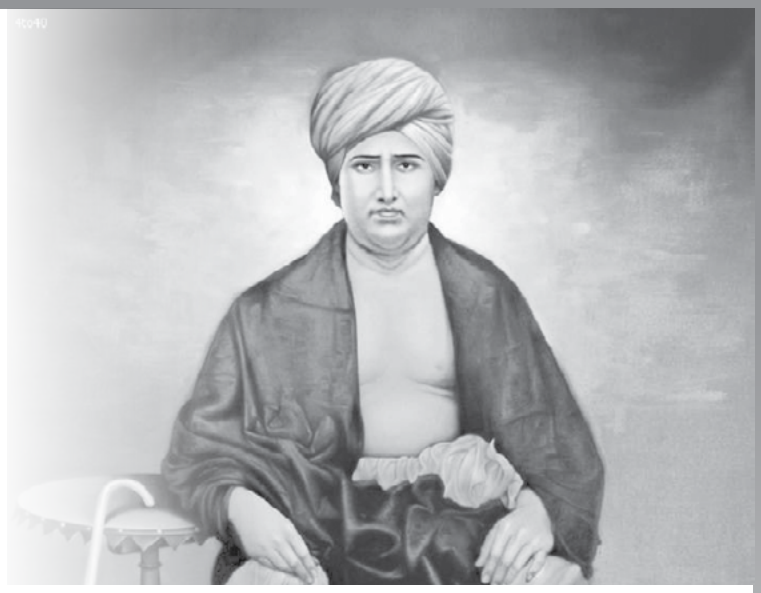

स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा की चेतना के उन्नायक ऋषि दयानंद

– डॉ. अजीत कुमार पुरी

"1857 का स्वाधीनता संग्राम किन्ही कारणों से सफल नहीं हुआ और ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय संसाधनों के बल पर जीत गयी। भारतीय साहस और धैर्य से लडे, किंतु भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न समयों में, इसलिए समन्वय की कुछ कमी रह गयी। कंपनी के पास अत्याधुनिक संसाधन थे, इसलिए उसकी जीत हो गयी किंतु " विषम परिस्थितियों में सिपाहियों ने स्वाधीनता, राष्ट्रीय एकता और नयी लोकसत्ता के लिए जो संघर्ष किया, वह भारतीय इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण अध्याय है। " भारत का ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन वाला हिस्सा सीधे ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में आ गया। अब अंग्रेज नये रूप में हमारे सामने आए। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि भारतीयों के साथ अन्याय नहीं होगा,क्योंकि अंग्रेज जाति सभ्य और न्यायकारी है। विदेशी मतों में दीक्षित भारतीयों के एक वर्ग में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। किंतु दयानंद के लिए यह असह्य था। इन सबों को लगभग डांटते हुए उन्होंने कहा " कोई कितना ही करे, परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतांतर के आग्रह से रहित अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा,न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। "

विक्रम की 19 वीं सदी का भारतीय समाज जहां एक ओर इस्लामिक आक्रांताओं से युद्ध क्षेत्र में निरंतर सफलता पा रहा था। छत्रपति शिवाजी महाराज के अनुयायी वीर मराठों की अगुवाई में मुगल सत्ता की चुल्हे हिला चुका था, वहीं दूसरी ओर भारत में प्रवेश कर चुके यूरोपीय लोगों को जिज्ञासु दृष्टि से देख रहे थे। उनकी व्यापारिक गतिविधियों के भीतर की लुटेरी मानसिकता को समझने के लिए प्रयासरत था। जिसमें वह कितना सफल रहा, यह इतिहास का विषय है। कुल मिलाकर उस समय भारतवर्ष की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में एक हलचल थी। इस्लाम को भारतीय जब तक समझ पाते, उसका राजनीतिक - सांस्कृतिक प्रतिकार कर पाते तब - तक ईसाईयत भी ईस्ट इंडिया कंपनी और मिशनरियों के रुप में आ धमकी थी। जिसे आगे चलकर ब्रिटिश शासन से पूर्ण सहयोग मिला।

चतुर और कपटी अंग्रेज, ईस्ट इंडिया कंपनी बनाकर डच, पुर्तगीज और फ्रेंच कंपनियों को हाशिए पर धकेल कर सशक्त होते जा रहे थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के आश्रय में ईसाई मिशनरियां बलपूर्वक हिंदुओं का ईसाईकरण करने पर तुल गयी। इसके लिए उन्होंने बड़ा भारी निवेशकर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय खोले और कुछ भारतीयों को अपना वशवर्ती भी बना लिया। ब्रह्मसमाज जैसी संस्थाओं के अनेक नेता ईसाईयत के गुणगान में लग गये तो यह अंग्रेजों की अपनी शिक्षा नीति की सफलता ही कही जा सकती है, जिसने आगे चलकर भारत के बौद्धिक वातावरण को बहुत प्रभावित किया। इस तरह बहुत ही विषम स्थिति थी। भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना पर कुठाराघात की स्थिति थी। ऐसे समय में भारतीय मेधा ने इस्लामी जिहादियों और ईसाई मिशनरियों का समर्थ प्रतिरोध करने का जो उपक्रम किया उसमें स्वामी दयानंद और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का स्थान अग्रगण्य है। वास्तव में यह समय भारतीय मनीषा के लिए एक परीक्षा का काल था, जिसमें वह चौतरफा संघर्षो से जूझते हुए सफल हुई, तो इसका बहुत कुछ श्रेय स्वामी दयानंद सरस्वती और उनके आर्यसमाज को दिया जा सकता है, जिन्होंने अपनी प्रखर मेधा, उत्कट परिश्रम, अगाध धर्मनिष्ठा से इस्लामी

मजहबियों और ईसाई मिशनरियों को पिछले पैर पर धकेल दिया और स्वराज, स्वदेशी तथा स्वभाषा के प्रति भारतीयों के हृदय में ऐसा कल्याण मंत्र फूका कि तत्कालीन आर्य- हिंदू मानस उत्साह और उमंग से भर गया। इस तरह से देखा जाए तो कालांतर में आगे चलकर विभिन्न आंदोलनों के द्वारा देश में जो जागरुकता आयी उसमें दयानंद के इस चिंतन की गहरी छाप रही। इस संबंध में प्रख्यात राजनीतिक विद्वान विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि " स्वराज के सिद्धांत की शिक्षा देकर दयानंद ने भावी स्वतंत्रता की नींव तैयार कर दी। उन्होंने देश की जनता को एक ऐसा आदर्श प्रदान कर दिया जिसके चतुर्दिक अपने को वे संगठित कर सकते तथा जिसके साक्षात्कार के लिए वे अपनी संपूर्ण शक्तियों को जुटा सकते थे।" आगे चलकर स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्यसमाज इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ जिसके नेतृत्व में एक बडे बौद्धिक समूह ने देश के, विशेषकर उत्तर भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया।

जिस समय यूरोपीय शिक्षा में दीक्षित भारतीयों का पढ़ा-लिखा वर्ग स्वदेश की निंदा करने और विजातीय मत परंपरा का गुणगान करने में लगा था, उस समय इन वर्गों को फटकारते हुए दयानंद ने कहा "आर्यावर्त ऐसा देश है, जिस के सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है,क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारस मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है परंतु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी,छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। "

उपर्युक्त पंक्तियों में दो विचार स्पष्ट रूप से ध्वनित होते हैं -1 भारतवर्ष के प्राकृतिक संसाधनों, सांस्कृतिक परंपरा या राजनीतिक वैभव की दृष्टि से यदि विश्व के देशों के साथ तुलना की जाए तो इस देश के सामने कोई भी नहीं ठहरता। सभी ऋतुएं, सब प्रकार की उपजाऊ मिट्टी और अन्न का भंडार,खनिज संपदा आदि की व्याप्ति जिस तरह से यहां है, वह कहीं नहीं है। इस संपदा को लूट कर विदेशी जो कि दरिद्र हैं वे धनाढ्य होते जा रहे हैं। 2 - भारतीय जनता, विचारकों को इस ओर ध्यान दिलाकर दयानंद जताना चाहते थे कि वे अपने देश की गौरवपूर्ण पूर्व स्थिति को जानें और विदेशियों की अतिशय प्रशंसा से बचें। अंग्रेज जाति हमें लूट कर ही संपन्न बन रही है, अंग्रेज पहले से संपन्न नहीं है। यह कह कर संपूर्ण संसार के सामने दयानंद ने यूरोपीय देशों की पूर्व की विपन्नता की पोल खोल दी एवं भारतीयों को चेताया कि जो कुछ बचा है, उसे बचा लें।

तुर्क, मुगल, पुर्तगीज, फ्रेंच के समान अंग्रेज भी भारत के लिए बाहरी ही थे। भारतीय समाज में इनकी स्वीकार्यता का कोई प्रश्न ही नही था। भारतीयों को अपनी प्रचीन ज्ञान परंपरा पर गहरा विश्वास और अगाध श्रद्धा थी। भक्तिकालीन साहित्य का अमिट प्रभाव बना हुआ था। कबीर,नानक, तुलसी, ज्ञानेश्वर, समर्थ गुरु रामदास, शंकरदेव जैसे संतो के अलौकिक आभामंडल से देश की सामान्य जनता अलोकित हो रही थी। ऐसे में ईसाई मिशनरियों और मैक्समूलर जैसे कुछ अन्य यूरोपीय लेखकों ने आर्य- द्रविड सिद्धांत की कपोल कल्पना द्वारा देश में नवशिक्षित भारतीयों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगे कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए। इस देश का अपना कोई स्थाई निवासी नहीं है। ताकि भारतीयों में भेद डाला जा सके।

भारतवर्ष में अपनी मान्यता स्थापित करने के लिए ही अंग्रेजों और ईसाई मिशनरियों ने यह गप्प उड़ाया कि इस देश का स्थायी निवासी कोई नहीं है। आर्य लोग बाहर से आकर बसे थे। एक कहावत चल पड़ी कि कारवां आता गया और भारतवर्ष बसता गया। दयानंद ने इस कुविचार का कठोरता पूर्वक खंडन किया। उन्होंने स्पष्ट कहा- " 'आर्य' नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषों का और इनसे भिन्न विपरीत जनों का नाम 'दस्यु' अर्थात् डाकू,दुष्ट,अधार्मिक और अविद्वान है। किसी संस्कृत ग्रंथ में व इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहां के जंगलियों को लड़कर, जय पाके,निकाल के, इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है ? " कहने का आशय यही है कि भारत का इतिहास भारतीय स्रोतों के आधार पर लिखा जाना चाहिए। जो भारत की भाषाओं को भी ठीक-ठीक नहीं जानते उनके कथनों को आंख मूंदकर मान लेना कहीं से भी युक्तियुक्त नहीं है।

दयानंद को अपने महान स्वदेश के गौरव से जितनी निष्ठा थी, स्वदेश की भाषाओं से भी उतना ही प्रेम था। दयानंद के समय खड़ी बोली हिंदी गद्य भाषा के रूप में ढलने के लिए तैयार हो रही थी। स्थानीय गुजराती और औपचारिक रूप से संस्कृत का व्यवहार करने वाले दयानंद ने अपने बंगाल प्रवास के समय केशव चंद्र सेन के कहने से हिंदी भाषा में व्याख्यान देने की बात स्वीकार कर ली। फिर तो दशों दिशाओं में धूम मच गई। उन्होंने आम जनता में घूम घूम कर अपने व्याख्यान देने प्रारंभ कर दिए। जिससे खड़ी बोली हिंदी को भाषा के रूप में स्थापित होने का बल मिला। दयानंद हिंदी को 'आर्य भाषा' कहकर बुलाते थे। उन्होंने अपने सकल ग्रंथ इसी भाषा में लिखे। उनकी इस प्रेरणा से प्रेरित होकर सैकड़ों लोगों ने पत्रकारिता,साहित्य रचना में जो योगदान दिया वह अद्भुत है। विष्णु प्रभाकर से सहमत होते हुए माना जा सकता है कि " जो काम हिंदी के लिए दयानंद ने कुछ वर्षों में कर दिया,उसे कई संस्थाएं मिलकर 50 वर्ष में भी नहीं कर पाती "। दयानंद ने हिंदी गद्य में अपना अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश लिखकर बौद्धिक ही नहीं साधारण जनमानस को प्रभावित तो किया ही, इसके माध्यम से उन्होंने हिंदी गद्य के स्वरुप निर्धारण में भी महती भूमिका निभाई। सत्यार्थ प्रकाश में स्थान-स्थान पर कहावतों, लोकोक्तियों और मुहावरों के द्वारा उन्होंने एक ओर जहाँ अपने कथनों को प्रभावी बनाया, वहीं भाषा को भी कुछ इस तरह हास्य- व्यंग्य के

पुट से पोषित किया कि बडी-से- बडी बात भी सहजता से कही जा सके। हिंदी में भारतेंदु युग का समूचा साहित्य इस दृष्टि से दयानंद से प्रभावित देखा जा सकता है। जिस अंधेर नगरी चौपट राजा की कहावत के माध्यम से भारतेंदु ने ब्रिटिश शासन के कुशासन की कलई खोली, दयानंद कई वर्ष पूर्व ही अपने सत्यार्थ प्रकाश में इसकी चर्चा कर चुके थे।

जहां तक स्वराज्य की बात है, दयानंद इसके आग्रही थे कि भारतवर्ष शीघ्र ही स्वाधीन हो। दयानंद को भारतवर्ष की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ ज्ञान था कि कैसे विश्व में अपने राजनीतिक प्रभुत्व का लोहा मनवाने वाला भारतवर्ष आज दीन हीन स्थिति में है। उन्होंने लिखा "अब भाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहनी,किंतु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतंत्र,स्वाधीन,निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक दुःख भोगना पड़ता है। " ' कुछ थोडे राजा स्वतंत्र हैं' ऐसा कहकर दयानंद कहीं- न- कहीं यह संदेश अवश्य देना चाहते थे कि भारतीयों को अपने संपूर्ण देश की स्वाधीनता के मिलकर प्रयास तो करना ही चाहिए। इसके लिए उनका राजस्थान के देशी स्वाधीन राज्यों का समय- समय पर दौरा करना, राजाओं को बुलाकर उन्हें उपदेश देना यही संकेतित करता है। उदयपुराधीश राणा सज्जन सिंह जैसे बहुत से नरेशों को उन्होंने मनुस्मृति के माध्यम से जो राजधर्म की शिक्षा दी, उसका बहुत कुछ निहितार्थ यही था कि अपने स्वर्णिम अतीत के गौरव का बोध कर राजा लोग अपना खोया सम्मान प्राप्त करने की चेष्टा करें, अपनी प्रजा का पुत्रवत पालन करें। बडौदा नरेश ने अपने राज्य में जो शिक्षा संबंधी श्रेष्ठ योजनाएं चलायी तो कहा जा सकता है कि इसमें दयानंद के विचारों की गहरी छाप थी।

1857 का स्वाधीनता संग्राम किन्ही कारणों से सफल नहीं हुआ और ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय संसाधनों के बल पर जीत गयी। भारतीय साहस और धैर्य से लडे, किंतु भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न समयों में, इसलिए समन्वय की कुछ कमी रह गयी। कंपनी के पास अत्याधुनिक संसाधन थे, इसलिए उसकी जीत हो गयी किंतु " विषम परिस्थितियों में सिपाहियों ने स्वाधीनता, राष्ट्रीय एकता और नयी लोकसत्ता के लिए जो संघर्ष किया, वह भारतीय इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण अध्याय है। " भारत का ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन वाला हिस्सा सीधे ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में आ गया। अब अंग्रेज नये रूप में हमारे सामने आये। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि भारतीयों के साथ अन्याय नहीं होगा,क्योंकि अंग्रेज जाति सभ्य और न्यायकारी है। विदेशी मतों में दीक्षित भारतीयों के एक वर्ग में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। किंतु दयानंद के लिए यह असह्य था। इन सबों को लगभग डांटते हुए उन्होंने कहा " कोई कितना ही करे, परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतांतर के आग्रह से रहित अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा,न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। "

यह दयानंद के विचारों का ही घनीभूत प्रभाव था कि अंग्रेजी शासन के विनाश के लिए युवकों का समूह उमड़ पड़ा। स्वामी श्रद्धानंद,लाला लाजपत राय,बिस्मिल, भगत सिंह, वीर सावरकर जैसे सैकड़ों हजारों लोगों के प्रेरणास्रोत दयानंद बने। इस दृष्टि से दयानंद के विचारों का अपना स्थायी महत्व है। इस विवेचन के पश्चात यह स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वदेश,स्वभाषा और स्वराज्य के लिए स्वामी दयानंद और आर्य समाज ने जो कुछ किया उससे भारतवर्ष में एक नई लहर उठी, विचारों की ऐसी लहर जिससे भारतवर्ष वैचारिक, सांस्कृतिक रूप से इतना स्वस्थ हुआ कि 1947 ई० तक आते-आते उसने ब्रिटिश साम्राज्य का जुआ अपने सिर से उतार फेंका। भारतवर्ष के लिए यह राजनीतिक स्वाधीनता थी, सांस्कृतिक और वैचारिक स्वाधीनता अभी उलझी हुई है। हिंदी राष्ट्रभाषा केवल कहने भर के लिए बची हुई है। यदि वास्तव में हमें यह शेष कार्य भी पूर्ण करना है, तो दयानंद के विचार हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण होंगे, वस्तुत: कहा जाए तो हम इन विचारों की उपेक्षा कर देश में स्वराज, स्वदेशी और स्वभाषा की उन्नति के लिए सुगमतापूर्वक आगे नहीं बढ़ सकेंगे। जिसकी कि वर्तमान परिस्थितियों में महती आवश्यकता बनी हुई है।

संदर्भ

1. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा – आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, छठा संस्करण 2009, पृ. 126
2. स्वामी दयानंद सरस्वती- सत्यार्थ प्रकाश (संपादक - युधिष्ठिर मीमांसक) एकादश समुल्लास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण 2000, पृ. 407
3. स्वामी दयानंद सरस्वती- सत्यार्थ प्रकाश (संपादक - युधिष्ठिर मीमांसक) सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण 2000, पृ.332 - 333
4. विष्णु प्रभाकर- भारतीय साहित्य के निर्माता : दयानंद,साहित्य अकादमी,प्रथम संस्करण 1978, पृ.75
5. स्वामी दयानंद सरस्वती- सत्यार्थ प्रकाश (संपादक - युधिष्ठिर मीमांसक) सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण 2000, पृ.334 - 335
6. रामविलास शर्मा - स्वाधीनता संग्राम बदलते परिप्रेक्ष्य,हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ.11
7. स्वामी दयानंद सरस्वती- सत्यार्थ प्रकाश (संपादक - युधिष्ठिर मीमांसक) सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण 2000, पृ.335

❖

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
मोबाईल- 9968637345, ईमेल akpuri.bhu@gmail.com

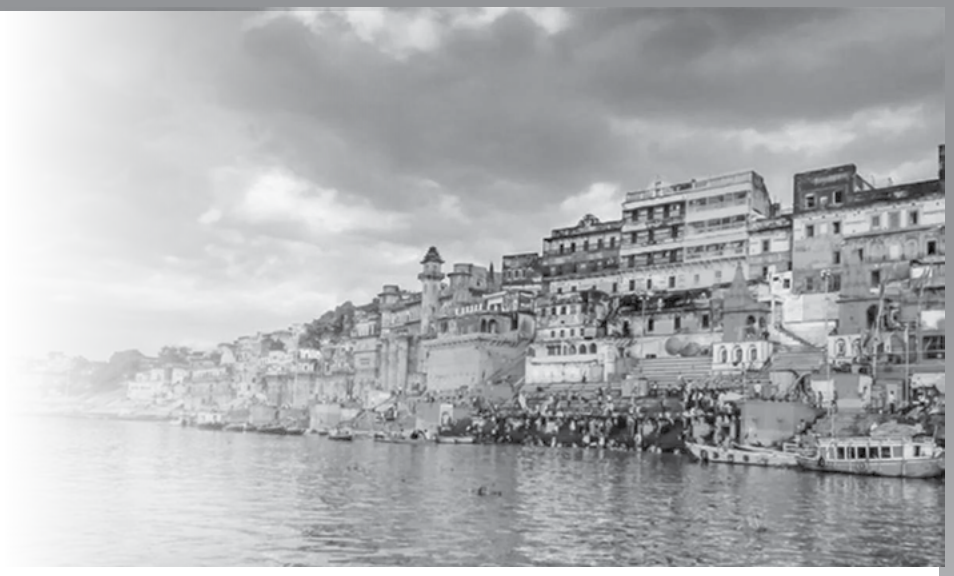

आज़ादी का अमृत महोत्सव और काशी की रंगमंच परंपरा

– डॉ. प्रभांशु ओझा

किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसके सांस्कृतिक और सामुदयिक मूल्यों में बसती है। इन्हीं मूल्यों की निरंतरता और उसका प्रवाह राष्ट्र को जीवंत बनाए रखता है। इस समय जब देश आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तो इस बात पर विचार करना अस्वभाविक नहीं कि आखिर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में इन सांस्कृतिक मूल्यों ने कैसी भूमिका निभायी है। कहना ना होगा कि हमारे देश के सांस्कृतिक मूल्यों की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति रंगमंच की परंपरा में दिखायी पड़ती रही है। एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में भारत के उदय और आज आजादी के 75 वर्ष पूरे करने तक की यात्रा के उतार-चढ़ाव रंगमंच की परपंरा में दिखायी पड़ते हैं। रंगमंच की इस परम्परा का सबसे बड़ा भौगोलिक क्षेत्र कोई और नहीं, बल्कि स्वयं काशी यानी बनारस नगरी रही है। यही वह नगरी है जहां भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने सबसे पहले नाटक और रंगमंच को औपनिवेशिक राज पर हमला करने का औजार बनाया और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यहीं से पूरे देश में रंगमंचीय चेतना का विस्तार भी हुआ। बनारस में रंगमंच की ये परंपरा आधुनिक सिनेमा और चलचित्र के बढ़ते प्रभाव के बीच भी कायम रही और आजादी के बाद भी काशी रंगमंचीय प्रयोगों की धरती बनी रही। इसलिए आज़ादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर काशी की रंगमंच परंपरा और उसमें आए परिवर्तनों पर दृष्टि डालना स्वभाविक हो जाता है।

काशी की रंगपरंपरा का इतिहास भी काशी के सांस्कृतिक और सामाजिक अतीत जितना ही समृद्ध है। रंगमंचीय क्रियाएं भी काशी की विलक्षण और अद्वितीय परिवेश में हमेशा से उपस्थित रहीं। काशी की नाट्यपरंपरा का पहला प्रमाण प्रथम जातक युग (ईसा से तीन शती पूर्व) में मिलता है। जातक की कथाओं में प्रायः 'समज्ज मंडल' कहे जाने वाले घुमंतू पेशवर नटों का विवरण दिया गया है जो संगीतमय अभिनय करते थे। काशी में प्राचीनकाल में रंगकला की उपस्थिति का सबसे प्रामाणिक और विस्तृत वर्णन दामोदर गुप्त की प्रसिद्ध कृति 'कुट्टीनमतं काव्यं' में मिलता है। दामोदर गुप्त स्वयं कश्मीर के राजा जयापीड़ के

> ***"भारतीय परिवार व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एक निधि के रूप में है। जिसे सहेजना प्रत्येक पति-पत्नी का कर्तव्य है। मृदुला सिन्हा की कहानियाँ भी इसी सौन्दर्य बोध से आद्योपांत आप्लावित हैं। मृदुला जी एक चर्चित और प्रसिद्ध कहानी है – 'खूँटा'। लाजो रानी अपने त्याग और समर्पण से अपने मायके का नाम 'रुक्मिणी' भी बिसरा देती है। लाजो नाम से ही अपने ससुराल में अपने दायित्व का निर्वहन करती है। इसके बावजूद लाजो की अपने पति की एक भूल से बातचीत बंद हो जाती है। फिर भी लाजो अपने घर का 'खूँटा' बनी रहती है। जोड़े रखती है अपने घर को। आखिरी सांस तक। अपने बेटे-बहु को भी यही सीख अपने आचरण-व्यवहार से दे देती हैं। कितनी भी, कैसी भी परिस्थितियाँ आई लाजो ने रिश्ता नहीं तोड़ा और न ही हौंसला। कोई कुछ पूछता तो – "लाजो रानी ! क्या देख रही हूँ। रामदीन से तुम्हारी बात नहीं होती क्या? पति-पत्नी का रिश्ता भी नहीं रहा।"***

मंत्री थे, लेकिन उनके इस ग्रंथ की पृष्ठभूमि काशी ही थी। काशी में संस्कृत की यह रंगपरंपरा पूरी तरह खत्म तो नहीं हुई, पर इसका धीरे-धीरे विघटन होना आरंभ हो गया। इसके लिये काशी के रंगपरिवेश में आ रहे परिवर्तन ही उत्तरदायी थे। प्रायः संस्कृत का शास्त्रीय रंगप्रयोग अत्यंत परिष्कृत शैलीबद्ध प्रदर्शन होता था जिसमें मुद्रा प्रतीकों की जटिल भाषा और उच्चकोटि का काव्य जुड़ा होता था। इस प्रकार की रंग ग्राह्यता और कला-संस्कार का विकास राज परिवेश में संभव था। काशी में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद पैदा हुई राजनीतिक अस्थिरता के चलते कला-सौन्दर्य का राजकीय परिवेश दम तोड़ने लगा था।

काशी में हिन्दू राजाओं के शासन का अंत लगभग 12 वीं शती में हो गया था और इसके बाद 1194 ईसवी में शहाबुद्दीन गोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक की व्यापक लूटपाट तथा इस्लामी शासन का आरम्भ हुआ। इस अवधि में काशी का सांस्कृतिक परिवेश परिवर्तन के बड़े दौर से गुजरा जिसने काशी के रंगपरिवेश को विशिष्ट, अधिक जटिल और बहुआयामी बना दिया। इस्लामी शासन की प्रारंभिक अवधि में काशी की बहुस्तरीय हिन्दू परंपराओं का आंतरिक संतुलन बिगड़ा और इनमें कुछ ठहराव आया, परंतु चौदहवीं शताब्दी में नवीन विजातीय तत्वों के प्रति सशक्त प्रतिक्रिया आरंभ हुई जिससे काशी के समन्वित सांस्कृतिक परिवेश की रचना नये सिरे से होना आरम्भ हो गयी। ठीक इसी अवधि में काशी भक्तिकाल के सांस्कृतिक आन्दोलन का प्रमुख केंद्र बनकर उभरी। यहां पहले तो रामानन्द, कबीर, रैदास आदि तत्वदर्शी संतों ने उदार व्यापक हिन्दू संस्कृति के निर्माण का प्रयत्न किया और फिर गोस्वामी तुलसीदास ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। बल्लभाचार्य ने भी काशी में काफी समय तक निवास किया था। परंतु काशी के परिवेश की सबसे बड़ी विशिष्टता यही थी कि यहां परंपरागत ब्राह्मण शिक्षा, संस्कृति और संस्कृतविद्या का संरक्षण की परंपरा भी समांतर रूप में गतिमान रही।

समन्वित सांस्कृतिक परिवेश की नयी परिस्थितयों और इसके समान्तर काशी की परंपरागत संस्कृत विद्वत धारा के सम्मिश्रण ने काशी के रंगपरिवेश को नवीन आयाम प्रदान किया। इस अवधि में काशी में संस्कृतरंग प्रयोग के सूत्र पूरी तरह विनष्ट नहीं हुए, इसका प्रमाण न सिर्फ पैराणिक उल्लेखों में मिलता है, बल्कि कई संस्कृत नाटकों के अभिनय का प्रमाण भी अब उपलब्ध है। चौदहवीं शती में काशी की तीर्थ यात्रा करने वाले जिनप्रभु सूरि ने काशी में नाटक के उच्च कोटि के पंडित होने की बात लिखी है। पंद्रहवीं शताब्दी में काशी में राघव भट्ट ने अभिज्ञान शाकुंतलम की प्रसिद्ध टीका 'अर्थद्योतनिका' लिखी जिसमें उन्होंने व्याख्या के साथ अभिनय-निर्देश के संकेत भी दिये हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत नाट्य की परंपरा काशी में तब तक विद्यमान थी। सोलहवीं शती में काशी की सांस्कृतिक संपन्नता की शती थी और इस शती में यहां बहुत से संस्कृत के मर्मज्ञ निवास करते थे। शेषकृष्ण नामक विद्वान ने चार महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की थी जिनके नाम क्रमशः 'कंस वध', 'सत्यभामा विलास', 'मुरारि विजय' और 'सत्यभामा परिणय' थे। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि 1585 ई और 1589 ई के बीच विश्वेश्वर पूजा के अवसर पर कंस वध का अभिनय हुआ था। इसमें काशी-जौनपुर की कई ऐतिहासिक इमारतों से संबद्ध रहे और कला रसिक राजा टोडरमल के पुत्र गोवर्धन भी उपस्थित थे। इसी अवधि में महान वेदांती मधुसूदन सरस्वती ने 'कृष्ण कुतूहल' नाटक लिखा था। सत्रहवीं शती में जन्में दाराशुकोह के गुरु पंडित रामानंद ने महत्वपूर्ण नाट्य प्रहसन 'काशी कुतूहल' की भी रचना की।

संस्कृत रंगपरंपरा के गतिमान रहने के साथ-साथ काशी में जनभाषा में रंगपरंपरा का विकास भी 12 वीं शती के पश्चात् होना आरंभ हो गया था, लेकिन यह भी इस्लामी शासन की राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता के परिणामस्वरूप कोई स्पष्ट रूप ग्रहण नहीं कर सकी। इस्लामी संस्कृति रंगप्रयोग के विरुद्ध थी, हालांकि बाद में जाकर उसे भारतीय रंगपरंपरा के कुछ तत्वों को स्वीकार करना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप जनभाषा में विकसित हो रहा संभावनाशील रंगमंच प्राचीन लोकनाट्य रूपों के साथ घुल-मिल गया और ग्रामीण अर्थव्यवस्था उनकी आजीविका का आधार हो गयी। मध्यकालीन साहित्य में भगत, भेषधर, नट, विट और रंगाचार्य आदि बहुत-सी जातियां ऐसी ही थीं। काशी में भी इन जातियों की बड़ी संख्या निवास करती थी। इस अवधि में एक परिवर्तन यह भी हुआ कि बहुत से रंगजीवी मुसलमान बन गये और मुसलमान शासकों के प्रोत्साहन ने निम्न श्रेणी के हास्य वाली 'भांड' अभिनय प्रणाली में निपुण हो गये।

इस्लामी संस्कृति के संपर्क की प्रतिक्रिया ने भारत में जिस भक्ति आन्दोलन को प्रेरित किया, उसके परिणामस्वरूप आधुनिक आर्यभाषाओं के युग में सर्वथा नवीन युग का आरम्भ हुआ। संगीत, मूर्ति और वास्तु कला ने नये आयाम प्राप्त किये। भक्ति कालीन चेतना के इस प्रभाव से रंगमंच भी अछूता नहीं रहा। उत्तर प्रदेश में लोकप्रिय हुये भक्तिमूलक रंगरूप में सर्वाधिक लोकप्रिय रामलीला हुयी जिसके प्रवर्तन का श्रेय काशी को ही है। रामलीला के इतिहास पर हुये अनुसंधानों में निरंतरता का अभाव है और यह गहन अध्ययन का विषय अब भी बना हुआ है।

काशी में 19 वीं शती में महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के नेतृत्व में केवल रामलीला के परिष्कार का ही नहीं, बल्कि नाट्यकला के उद्धार और उसकी संभावनाओं पर भी विचार-विमर्श होना आरंभ

हो गया था। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप काशी में 3 अप्रैल, 1868 ई में बनारस के सैनिक छावनी क्षेत्र स्थित बंगला नंबर 25 (बनारस थियेटर) में पं शीतला प्रसाद त्रिपाठी लिखित 'जानकी मंगल' की प्रस्तुति के रूप में सिर्फ काशी ही नहीं बल्कि हिंदी नाट्यजगत के आधुनिक इतिहास का आरम्भ हुआ। यह रंगचेतना भी काशी में 18 वीं और 19 वीं शती में हुए जटिल सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का परिणाम थी जिसके केंद्र में मुख्यतः उत्तर-मुग़ल काल में 18 वीं शती की आख़िरी चौथाई में काशी के परिदृश्य में प्रवेश करने वाले ब्रिटिश थे। ब्रिटिश विचारों और संस्थानों की 18 वीं और 19वीं शती के बनारस की सुदीर्घ और बहुस्तरीय सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा के साथ अन्योन्यक्रिया ने नई संरचनाओं को जन्म दिया।

काशी में 'जानकी मंगल' की प्रस्तुति में लक्ष्मण की भूमिका निभाने के बाद युवा भारतेंदु ने काशी के रंगपरिवेश में कदम रखा। संभवतः यह जानकी मंगल में किए गये अभिनय से मिली सर्जनात्मक प्रेरणा थी कि उन्होंने अभिनय के कुछ दिनों के बाद ही काशी के नाट्यांदोलन को मार्ग दिखाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने हिंदी में चित्त को आनंदित और भाषा को बल प्रदान करने वाले नाटक और पुस्तकों के अभाव को रेखांकित किया। यहीं से उन्होंने गुणवत्तापूर्ण अनुवाद करने का लक्ष्य भी साधा। वास्तव में, भारतेंदु ने काशी में रंग अभिनय और नाट्य लेखन, दोनों का कार्य एक साथ आरम्भ किया। नाट्यकला के प्रचार के लिये उन्होंने कविवचन सुधा में प्रेरक टिप्पणियां भी कीं। ऐसी ही एक टिप्पणी में उन्होंने मध्यकालीन निम्नकोटि के नाटकों की परंपरा की आलोचना करते हुये नये नाटकों से उसकी भरपाई का आह्वान किया। अपने इन प्रयासों के चलते उन्होंने काशी और सम्पूर्ण हिंदी क्षेत्र में एक सम्पूर्ण आन्दोलन का आरम्भ किया जिसने भारतेंदु जैसे अनेक प्रतिभाशाली नाटककाकरों को तैयार किया।

हिंदी रंगमंच के विकास की दृष्टि से रंगप्रस्तुति के क्षेत्र में भी भारतेंदु की देनों का बहुत महत्त्व है। सर्वप्रथम उन्होंने ही अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति का फायदा उठाते हुए संभ्रांत और कुलीन वर्ग के लोगों को रंगमंच से जोड़ा तथा उन्हें अभिनय का मार्ग दिखाया। भारतेंदु काशी की बहुस्तरीय समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा और सभ्यता से निकले हुये व्यक्ति थे, जो स्वयं विलक्षण अभिनेता थे। अपने नाटकीय और बहुआयामी व्यक्तित्व के चलते वे वास्तविक जीवन में भी अभिनय करते थे। पहली अप्रैल को सामूहिक परिहास उनका प्रिय व्यसन था। तरह-तरह की पोशाकें धारण करने में उन्हें निपुणता हासिल थी। वे स्त्रीवेश धारण कर चित्र खिंचवा सकते थे और कई बार लाट साहब के दरबार में अपनी जगह मशालची को अपने कपड़े पहनाकर भेज सकते थे। भारतेंदु ने अपने लिखे नाट्यएकालाप में चूसा पैगंबर का अभिनय किया था। गोपालराम गहमरी के बहुचर्चित संस्मरण के अनुसार, भारतेंदु ने बलिया में सत्य हरिश्चंद्र नाटक में स्वयं हरिश्चन्द्र का अभिनय इतना जीवंत और मार्मिक किया कि वहां के कलेक्टर साहब की मेम और दर्शक वर्ग में करुणा के मारे त्राहि-त्राहि मच गयी थी।

भारतेंदु ने इसके अतिरिक्त अपने कई नाटकों में स्वयं अभिनय किया था। काशी में उन्होंने अपने मित्रों के साथ एक नाट्यटोली भी बनायी थी जिसमें राधाकृष्ण दास, रविदत्त शुक्ल, दामोदर शास्त्री, पं चिंतामणि और पं माणिक लाल जोशी शामिल थे।

भारतेंदु ने 19 वीं शती के आख़िरी दशकों में अपने नाट्यकर्म से काशी में जिस चेतना का प्रसार किया, उसका प्रभाव काशी के रंगपरिवेश पर पड़ा, लेकिन भारतेंदु के जीवनकाल में पारसी व्यवसायिक रंगमंडलियों ने काशी में रंगपरिवेश को एक नया आयाम देना आरम्भ कर दिया था, परंतु इनका वास्तविक प्रभाव काशी के रंगपरिवेश पर बीसवीं शती के आरंभिक दशकों में दिखाई पड़ना आरम्भ हुआ। काशी में इन नाट्यमंडलियों के पैर जमने से विश्वेश्वर थियेटर, मदन थियेटर, रामेश्वर थियेटर आदि स्थायी रंगशालायें बनने लगीं। नागरी नाटक मंडली और भारतेंदु नाटकमंडली की यात्रा बीसवीं शती के दूसरे शतक से आरम्भ हुई। नागरी नाटक मंडली ने अपने जन्म से लेकर भारत के स्वतंत्र होने तक मंडली ने सैंतीस वर्षों में चौबीस नाटकों के सैंतीस प्रदर्शन किये। इनमें निरंतरता के कमी रही, परंतु मंडली ने अपनी सक्रियता बनाये रखी। भारतेंदु नाटकमंडली के माध्यम से भारतेंदु के बाद उनके नाट्यांदोलन को आगे बढ़ाने का कार्य उनके भतीजों कृष्णचंद और ब्रजचंद ने किया। काशी के रंगपरिवेश तब तक पारसी रंगमंच के रंगविधान का बोलबाला था, लेकिन कृष्णचन्द्र ने भारतेंदु नाट्य परंपरा को बचाने के लिये निजी स्तर पर अपना सब कुछ झोंक दिया। यही कारण है कि उन्होंने भवभूति के 'उत्तररामचरितमानस' का स्वयं हिंदी अनुवाद कर उसे अपने खर्चे से प्रकाशित करवाया।

बीसवीं शती के आरम्भ से ही काशी में शिक्षा संस्थाओं ने अपना कई नाट्यसमितियों का विकास किया जो काशी में रंगमंच का बहुत महत्वपूर्ण केंद्र बनकर उभरीं। इनमें सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल, हरिश्चन्द्र स्कूल, अग्रवाल महाजनी पाठशाला, थियोसोफिकल गर्ल्स इंस्टीट्यूट और सर्वोपरि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रमुख नाट्य संस्थायें थीं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं. मदन मोहन मालवीय रंगमंच का बहुत सम्मान करते थे, अतः यह स्वभाविक ही था कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने नाट्य समिति की स्थापना की। इसने वर्ष 1927 ई में राधेश्याम कथावाचक के 'वीर अभिमन्यु' नाटक का मंचन गुजरात के बाढ़ पीड़ितों के लिये किया था। इसके नाट्यकर्मी छात्र तथा

अध्यापक थे। बाद में इसी नाट्यमंडली ने पंडित सीताराम चतुर्वेदी की नाट्य प्रतिभा के विकास में योगदान दिया।

काशी में प्रसादोत्तर काल में रंगमंच किसी विशिष्ट धारा या नाट्यांदोलन की तरह आगे नहीं बढ़ा। वास्तव में, बीसवीं शती के चौथे दशक में हुये बोलती फिल्मों के निर्माण ने व्यवसायिक सफलता के नये रास्ते खोल दिए, अतः बहुत से नाट्य व्यवसायियों का दल इनकी ओर झुकने लगा। नाट्यशालाओं के सिनेमाघरों में परिवर्तित होने में तेजी आयी और जयशंकर प्रसाद तथा आगाखां हश्र जैसे नाटककारों ने यह भविष्यवाणी की कि सिनेमा शीघ्र जी रंगमंच को विस्थापित कर देगी। इसी अवधि में जयशंकर प्रसाद ने निराशा में कहा कि हिंदी का अपना कोई रंगमंच नहीं है। अब उसके पनपने का अवसर था तभी सस्ती भावुकता लेकर वर्तमान सिनेमा में बोलने वाले चित्रपटों का अभ्युदय हो गया और फलतः अभिनयों का रंगमंच नहीं-सा हो गया। काशी के रंगपरिवेश में नाट्यशालाओं और नाट्यमंडलियों के टूटने का एक प्रभाव यह हुआ कि नाटकों का अभिनय अब स्कूल-कॉलेजों तथा दूसरे तरह की संस्थाओं के समारोहों पर कभी-कभार होने वाली प्रस्तुतियों तक ही सीमित हो गया। साल 1943 में नागरी प्रचारिणी सभा के अर्धशताब्दी उत्सव पर जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के मंचन का विवरण मिलता है।

वर्तमान में काशी के रंगपरिवेश के बारे में सुव्यवस्थित ढंग से जानकारी प्राप्त करना एक दुष्कर कार्य है। हालांकि रंगमंचीय गतिविधियों की दृष्टि से काशी में अनेक अव्यवसायी रंग मंडलियां अब भी सक्रिय हैं। परंतु मुख्य रूप से इन रंगमंडलियों में 'रूपवाणी' और 'नागरी नाटक मंडली' का नाम आता है। 'रूपवाणी' नाट्य मंडली की कमान वर्तमान में युवा रंगकर्मी व्योमेश शुक्ल के हाथों में है। अधिकांशतः युवा कलाकारों की सहायता से चलने वाली इस नाट्य मंडली ने अपनी सक्रियता से काशी के रंगपरिवेश में विशेष योगदान दिया है। व्योमेश शुक्ल द्वारा निर्देशित जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' कृत 'राम की शक्ति-पूजा और रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'रश्मिरथी' पर आधारित रंग-प्रस्तुतियां काफी चर्चित रही हैं। इनका मंचन सिर्फ बनारस में ही नहीं, बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी सफलतापूर्वक किया गया है। इन नाट्य प्रस्तुतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इनमें नई दृष्टि और शिल्प के साथ 'कामायनी' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कालजयी काव्य कृतियों को रंग विन्यास में स्थापित कर इनका पुर्नपाठ संभव बनाया गया है। व्योमेश शुक्ल के निर्देशन में रूपवाणी ने यह कार्य कामायनी' और 'राम की शक्ति-पूजा' के पचहत्तर वर्ष पूरे होने पर किया था। व्योमेश शुक्ल ने इन कृतियों के नाट्यालेख भी तैयार किये हैं ताकि इनकी रंगमंचीय निरंतरता सुनिश्चित हो सके।'कामायनी' और 'राम की शक्ति-पूजा' पर आधारित नाट्यालेखों का रंगमंचीय अनुकूलन करने के उद्देश्य से व्योमेश शुक्ल द्वारा इन कृतियों की कुछ काव्य-पंक्तियां छोड़ दी गई हैं, कुछ स्थानांतरित की गई हैं। व्योमेश शुक्ल मानते हैं कि जो पंक्तियां कामायनी के काव्य में निहित भावना को अभिव्यक्त करती हैं, उन्होंने केवल उन्हीं पंक्तियों को मंचन के लिये उपयोग किया है। ऐसे ही पंक्तियों के क्रम में भी कहीं-कुछ परिवर्तन हुआ है। उनका तर्क है कि नाट्यालेख के मूल कविता-पंक्तियों पर आधारित होने के बावजूद ये परिवर्तन इन काव्य कृतियों के रंगमंचीय स्वरूप को स्वायत्तता प्रदान करते हैं। 'राम की शक्ति पूजा के मंचन के उद्देश्य से भी कुछ नवाचार किए गये हैं और ब्योमेश शुक्ल के अनुसार उनका उद्देश्य सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य को अभिनय विन्यास के माध्यम से पुर्नजीवित करना है।

संदर्भ

1. वसुधा, डालमिया : हिन्दू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण, भारतेंदु हरिश्चंद्र और उन्नीसवीं सदी का बनारस. अनु. संजीव कुमार और योगेन्द्र दत्त, राजकलम पेपरबैक्स, 2016
2. बलदेव, उपाध्याय : काशी की पांडित्य परंपरा, काशीस्थ विद्वानों के जीवनचरित एवं साहित्यिक अवदानों का प्रारंभिक विवरण (1200 ई-1980 ई), पृ 10, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1994
3. कुंवरजी, अग्रवाल: काशी का रंगपरिवेश, पृ 7, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1986
4. दशरथ, ओझा: हिंदी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल प्रकाशन, 2017
5. मोतीचंद्र: काशी का इतिहास, दूसरा संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1985
6. महेश, आनंद: रंग दस्तावेज: सौ साल (1850-1950), भाग 1, पृ 54, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, 2007, नई दिल्ली
9. विश्वप्रसिद्ध रामलीला: रामनगर (वाराणसी की सांस्कृतिक धरोहर), पृ 14, प्रोजेक्ट वाराणसी के तहत प्रकाशित शोध पुस्तिका, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
10. डायना, एक: ए सर्वे आफ संस्कृत सोर्सेज फार दि स्टडी आफ वाराणसी, पुराना 22.1 (जनवरी): 81-101

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हंसराज विश्वविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय), दिल्ली–110007
दूरभाष : 9968993201 ई-मेल: prabhanshuehrc.du.ac.in

मृदुला सिन्हा की कहानियाँ और भारत बोध

– डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा

मृदुला सिन्हा का कथा साहित्य लोक की उस भाव भूमि से उपजा साहित्य है जहाँ परस्पर लोक विश्वास की धुनें निकलती हैं, लोक संस्कारों की रस्में सजती रहती हैं, लोक संस्कृति की लय-तान अपने सुरों से संगीत सजाती हैं, लोक परम्पराओं-रीति-रिवाजों के मेले लगते हैं। जहाँ पुराण भी आकर लोक के आँचल में विश्राम करने लगता है, पौराणिक मिथक लोक में घुल-मिल जाते हैं, पौराणिक कथाएँ आधुनिक परिवेशनुसार जीवन को संबल और प्रेरणा प्रदान करने लगती हैं। ऐसी ही लोक संस्कृति की वाहक मृदुला जी का पूरा का पूरा कहानी साहित्य भारत बोध के स्वर को प्रबल करता है। जिसमें एक तरफ भारतीयता का ध्वज लहराता है, तो दूसरी तरफ आधुनिक जीवन का राग-विराग, भाव बोध, संघर्ष और संवेदनाएं हिलोरें लेती हैं।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में महिला कथा लेखन की परंपरा में भारत बोध के प्रबल स्वरों के साथ मृदुला जी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। मृदुला जी के लेखन की शुरूआत अपनी आत्मकथात्मक कहानियों से हुई है। उनकी प्रथम कहानी 'भ्रम की व्यथा', 'कादम्बिनी' में प्रकाशित होती है और यहीं से उनकी कलम चल पड़ती है, निरंतर सर्जन के पथ पर बिना रूके अविराम। मृदुला सिन्हा हिन्दी कहानी साहित्य में अपने सात कहानी संग्रहों – साक्षात्कार, एक दिये की दिवाली, स्पर्श की तासीर, जैसे उड़ि जहाज़ को पंछी, ढाई बीघा जमीन, अंतिम इच्छा, अपना जीवन और एक लघुकथा-संग्रह 'देखन में छोटे लगे' से अपनी उपस्थिती दर्ज करती हैं। यह उपस्थिती महज उपस्थिती नहीं है, बल्कि वे अपनी कहानियों के माध्यम से लोक, परिवार और स्त्री की मौजूदगी भारतीय संदर्भों के साथ

> ***"भारतीय परिवार व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एक निधि के रूप में है। जिसे सहेजना प्रत्येक पति-पत्नी का कर्तव्य है। मृदुला सिन्हा की कहानियाँ भी इसी सौन्दर्य बोध से आद्योपांत आप्लावित हैं। मृदुला जी की एक चर्चित और प्रसिद्ध कहानी है –'खूँटा'। लाजो रानी अपने त्याग और समर्पण से अपने मायके का नाम 'रुक्मिणी' भी बिसरा देती है। लाजो नाम से ही अपने ससुराल में अपने दायित्व का निर्वहन करती है। इसके बावजूद लाजो की अपने पति की एक भूल से बातचीत बंद हो जाती है। फिर भी लाजो अपने घर का 'खूँटा' बनी रहती है। जोड़े रखती है अपने घर को। आखिरी सांस तक। अपने बेटे-बहु को भी यही सीख अपने आचरण-व्यवहार से दे देती हैं। कितनी भी, कैसी भी परिस्थितियाँ आई लाजो ने रिश्ता नहीं तोड़ा और न ही हौंसला। कोई कुछ पूछता तो – "लाजो रानी ! क्या देख रही हूँ। रामदीन से तुम्हारी बात नहीं होती क्या? पति-पत्नी का रिश्ता भी नहीं रहा।"***

करती हैं।

भारतीयता का विचार-चिंतन उनके कहानी साहित्य में विद्यमान है। अपनी सृजनात्मक चेतना के विकास पथ पर मृदुला सिन्हा लोक, पुराण और आधुनिक मूल्य बोध को लेकर निरंतर गतिशील रही हैं। यह उनकी संवेदनशील मन और लेखनी की प्रतिबद्धता है, जिसका निर्वहन उनका लिखा-बोला प्रत्येक शब्द करता है। लोकगीतों और लोक कहावतों में तो अपनी बात को कहने का अलग ढंग है ही मृदुला जी का। भारतीय संस्कारशीलता की कहानियों को सँजोती हुई इनकी रचनाएँ जीवन-मूल्यों को स्थापित करती हैं और सबसे खास इनकी जो विशेषता है, वह है, वर्तमान समय की विकराल एवं जटिल समस्याओं का समाधान अपनी ही परंपरा में लोक व्यवहार, रीति-रिवाज, खान-पान, बोल-चाल, रहन-सहन और लोकगीतों में ढूंढना। अपनी 'माटी की सौंधी' महक से देश-विदेश के लोगों को अवगत कराना, इनके व्यक्तित्व और लेखनी की एक न्यारी विशेषता है। लोकजीवन के निकट रहकर माँ, मातृभूमि और मातृभाषा का अधिकाधिक स्नेह, वात्सल्य प्राप्त करना और लोक तत्त्वों से लबालब भरी हुई रचनाओं के द्वारा देश-विदेश में विशेष अभियान का संचालन करना इनके नव प्रयोगों में शामिल है।

महिला लेखन की चुनौतियों को समझते हुए, स्वीकारते हुए मृदुला जी की कहानियाँ स्त्री-विमर्श का भारतीय संदर्भ प्रस्तुत करती है। मृदुला जी की एक बड़ी चर्चित कहानी है 'बेनाम रिश्ता'। इस कहानी के पात्र शालिग्राम जी को एक समय एक बड़ी बीमारी ने आ घेरा। उस समय वे अस्पताल में थे। तभी वहाँ पर चित्रा जी के पति दुर्घटनाग्रस्त होकर उन्हीं के वार्ड में भर्ती हुए। चित्रा जी के पति के मस्तिष्क ने काम करना बंद कर दिया और शालिग्राम की के दिल ने। उस समय चिकित्सकों ने कह दिया था कि अगर किसी का धड़कता हुआ दिल शालिग्राम जी के प्रत्यारोपण कर दिया तो इनके प्राण बच सकते हैं। तब चित्रा जी ने अपने पति का हृदय दानकर शालिग्राम जी को पुनर्जीवित किया था। उसी कि बदौलत शालिग्राम जी जिंदा हुए। जब शालिग्राम जी की बिटिया के विवाह पर कन्यादान करने कि बात आयी तो शालिग्राम जी ने चित्रा जी को आमंत्रित किया। "शालिग्राम जी ने ऊँची आवाज़ में कहा – चित्रा जी ! आप इधर आइये। मंडप पर बैठिए। मेरी बेटी को आपका विशेष आशीर्वाद चाहिए। "[1] भारत के गाँवों-शहरों में आजकल भी बहुधा विधवा औरत को ऐसे शुभ कार्यों में शरीक नहीं किया जाता। लेकिन फिर भी शालिग्राम जी के कहने और पूरे परिवार-बिरादरी, रिश्तेदारों को यह बात बताने पर शालिग्राम जी की पत्नी माला खुद चित्रा जी को मंडप तक लेकर आती है – अपनी बेटी का कन्यादान करवाने के लिए - "माला मंडप पर से उठी। सीधे चित्रा जी के पास पहुँची। पैर छूकर आशीष लिए। और हाथ पकड़कर मंडप पर ले आई। महिलाओं के झुंड ने आँसू पोंछकर गाना प्रारम्भ किया –'शुभ हो शुभ, आज का मंगल का दिन है, शुभ हो शुभ। शुभ बोलू अम्मा, शुभ बोलू पापा, शुभ नगरी के लोग सब, शुभ हो शुभ। "[2] यह भारतीय परंपरा में स्त्री-विमर्श का सही रूप। जहाँ ऐसा त्याग, समर्पण देखने को मिलता है। भारतीय समाज में देखने की गुंजाइश चाहिए और देखने वाली दृष्टि ऐसे उदाहरण पग-पग पर देखने-निहारने को मिल जाएंगे। मृदुला सिन्हा की कहानियाँ भी इसी भारत बोध की दृष्टि का परिणाम हैं।

भारतीय परिवार व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एक निधि के रूप में है। जिसे सहेजना प्रत्येक पति-पत्नी का कर्तव्य है। मृदुला सिन्हा की कहानियाँ भी इसी सौन्दर्य बोध से आद्योपांत आप्लावित हैं। मृदुला जी की एक चर्चित और प्रसिद्ध कहानी है –'खूँटा'। लाजो रानी अपने त्याग और समर्पण से अपने मायके का नाम 'रुक्मिणी' भी बिसरा देती है। लाजो नाम से ही अपने ससुराल में अपने दायित्व का निर्वहन करती है। इसके बावजूद लाजो की अपने पति की एक भूल से बातचीत बंद हो जाती है। फिर भी लाजो अपने घर का 'खूँटा' बनी रहती है। जोड़े रखती है अपने घर को। आखिरी सांस तक। अपने बेटे-बहु को भी यही सीख अपने आचरण-व्यवहार से दे देती हैं। कितनी भी, कैसी भी परिस्थितियाँ आई लाजो ने रिश्ता नहीं तोड़ा और न ही हौंसला। कोई कुछ पूछता तो – "लाजो रानी ! क्या देख रही हूँ। रामदीन से तुम्हारी बात नहीं होती क्या? पति-पत्नी का रिश्ता भी नहीं रहा।

फूआ जी! अभी देवर और देवरानी को नाश्ता परोस दूँ।

फिर इत्मीनान से बात करती हूँ।"[3] किसी से कुछ शिकायत नहीं रखना और न ही करना। दांपत्य जीवन की समृद्धि का राज है। जिसे भारतीय परंपरा में गृहणी खूब निभाती हैं। लाजो भी निभा रही थी तो रामदीन भी। रामदीन अपनी भूल को मानकर प्रायश्चित में लगा हुआ था। अहसास तो था उसे भी, पर कहे किससे। अपने बेटे राहुल को जीवन की सीख देते हुए कहते हैं – "आज जीवन जीने की पढ़ाई नहीं होती। तो सुनो ! विवाह होना आवश्यक नहीं। विवाह का टिकना आवश्यक होता है। "[4] दोनों पति-पत्नी में बोलचाल नहीं फिर भी रिश्ता चल रहा है। एक विश्वास के बूते। एक कसम के साथ। सात जन्मों के लिए। आजीवन। यही है भारत बोध और भारतीय परंपरा के दाम्पत्य जीवन का सौन्दर्य। रामदीन अपने बेटे राहुल से कहते भी हैं - "तुमने जो लड़की पसंद की है, हम तुम्हारा विवाह उसी से करेंगे। शर्त यही है कि तुम दोनों का वैवाहिक संबंध टिकना चाहिए। चाहे जैसी भी परिस्थिति हो। विवाह मनोरंजन के लिए नहीं है। पर्दे पर प्रकट हुये और चले गए। "[5] आगे भी इसी कहानी में रामदीन और लाजो के बेटा-बहू को यहाँ से सीख भी मिलती है। कुछ थोड़ी बहुत अनबन होने पर दोनों तलाक का निर्णय भी लेते हैं। पर, अपने पिता रामदीन कि बीमारी कि खबर सुनकर घर आते समय राहुल जब अपनी पत्नी रूपा से कहता है कि –"दोनों के बीच माँ खूँटा है"[6] तो रूपा को बात समझ नहीं आती। पर, जब घर आकर उसने देखा कि किस तरह सासु माँ, ससुर जी की सेवा में लगी है। जबकि सास-ससुर दोनों में आपस में कई वर्षों से बोलचाल बंद थी। पर, फिर भी दोनों किस तरह दांपत्य जीवन की गाड़ी का आनंद ले रहे हैं। और लाजो अपने पूरे परिवार को एक खूँटे की तरह बांधे हुये। बस, उस वातावरण को देखकर रूपा पिघल जाती है। राहुल अपनी माँ से कहता है – "माँ ! रूपा भी आपकी तरह घर का खूँटा बनाना चाहती है। '

'हाँ ! माँ ! सच। ' रूपा ने नज़रें नीची कर लीं। लाजो रानी की हँसी छूट गई। उसने बहू को छाती से चिपका लिया।

उसके भाव बदले। लाजो रानी की सिसकियाँ बंध गई। वह अपने को संभालते हुई बोली– 'संबंध विच्छेद करने की पीड़ा दोनों ओर होती है। पुरुष अधिक पीड़ित होता है।"[7] दाम्पत्य जीवन की सरसता को रेखांकित करती यह कहानी पारिवारिक सुदृढ़ता के लिए एक मिशाल पेश करती हुई भारत बोध की परिचायक है।

बिना परिवार के समाज की संरचना नहीं हो सकती। परिवार की मजबूती के लिए परस्पर त्याग, समर्पण और विश्वास की जरूरत होती है। पारिवारिक संरचना के लिए रिश्ते-नातों के साथ परिवार में मिलजुल कर रहने की भावना बड़ी प्रभावशाली होती है। इसके लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को आपस में जुटना पड़ता है। सम्बन्धों का निर्वाह करना पड़ता है।

मृदुला सिन्हा की ऐसी ही कहानी है – बाबूजी। बाबूजी कहानी परिवारिक सम्बोधन के बीच उपजे सामंजस्य की कहानी है। जिसमें पत्नी अपने पति के बाबूजी को संबोधित करते समय आपके बाबूजी कहकर संबोधित करती है। परंतु परिवार में रहते हुये एक समय ऐसा आता है कि पत्नी भी अपने पति के बाबूजी को सिर्फ बाबूजी नाम से संबोधित करने लगती है।

इसके पीछे भी परिवार में घटित एक एक संवाद जिम्मेदार होता है। बाबूजी कहानी में जब पत्नी अपने बाबूजी और अपने पति के बाबूजी में तुलना करने लगती है तो – "और उनके बाबूजी ? तत्क्षण एक तुलनात्मक भाव जागा। तभी उन कंटीली श्वेत झड़ियों को रसास्वादित करता सरित स्वर बहा – बड़ा स्वाद है तरकारी में ! और दीजिये थोड़ा। '

उनकी थाली पर झुकी हुई सास ने आगाह किया 'चूड़ा-दही खा लीजिये, चावल कच्चा है, आपको अईगुफ करेगा। फिर पेट से खून निकलेगा। मुझे मत सुनाइएगा। '

नहीं, यही ठीक है। आपको तो कभी तरकारी बनाना नहीं आया। दुलहिन अच्छा खाना बना लेती है। मुझे तो लगा था, केवल पढ़ाई-लिखाई ही करती होगी। "[8] बहू की प्रशंसा कर अच्छे गुणों की पारिवारिक सामंजस्य को बढ़ाया जा सकता है। इसकी मिशाल पेश करती है यह कहानी।

जब पति के बाबूजी कहते हैं – "दुलहिन बड़े सवाद का खाना बनाती है। "[9] तो बहू की खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। और जब वह अपने पति के पूछने पर कहती है – "बाबूजी खाना खा रहे थे, मैं ...मैं ....मैं... उन्हें ही ....'

और वे चारों ओर बाबूजी के पहले आते 'आपके' शब्द को ढूंढते रहे। मात्र बाबूजी का अकेलापन उन्हें छू गया। क्या कहा ? उत्तर

की पुनरावृति थी, बाबूजी खाना खा रहे थे, मैं उन्हें देख....। "[10] मात्र सम्बोधन ने ही निश्चल प्रेम संचार को जीवित कर दिया।

परिवार के लिए यह संबंध निर्वाहता उसके सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। भारतीय परिवार परंपरा में यह मूल्य बोध बहुत गहरे तक पैठा हुआ है। जिसे मृदुला सिन्हा अपनी कहानियों के जरिये प्रकट करती रहती हैं।

भारतीय परंपरा में लोग अपने धर्म-कर्म में बहुत विश्वास करते हैं। मृदुला जी भी आस्था तीर्थ, मेलों में रही है। अपने स्वभाव के अनुसार ही वे अपनी कहानियों के माध्यम से निरंतर इस आस्था के प्रवाह को प्रवाहित करती रही हैं। यह उनकी भारतीय परंपरा के धर्म व्यवस्था के प्रतिकों के प्रति निष्ठा और श्रद्धा भाव को दर्शाता है।

मृदुला जी एक बहुचर्चित कहानी है– मुसाफिर काकी। मुसाफिर काकी कोई तीर्थ स्थल, मेला, कुम्भ स्नान नहीं छोड़तीं। गाँव भर की महिलाओं को भी एक साथ चाहिए होता तो मुसाफिर काकी को भी यात्रा का एक सहारा – "वह तो पर्व-त्योहार पर गंगा-स्नान से लेकर मेला-ठेला घूमने-घुमाने में दक्ष हो गई। अयोध्या, मथुरा, काशी, जनकपुर धाम के साथ चारों धामों की यात्रा समाप्त कर गंगा सागर भी हो आई। और इन तीर्थ स्थलों की यात्रा कर-करके वह ऐसी नायिका हो गई थीं कि गाँव की महिलाओं का झुंड लेकर बिना किसी पुरुष की सहायता के निकल पड़ती थीं। कभी-कभी तो बिलकुल अकेली। जिन अधवयसा अथवा नवोढ़ा को अपने घरवालों से तीर्थ जाने की अनुमति नहीं मिलती हो वह अपना अंतिम अस्त्र अपनाती थीं – मैं अकेले थोड़े जा रही हूँ, मुसाफिर काकी के साथ जा रही हूँ। "[11] मुसाफिर काकी जैसी औरतें भारत में गाँव-गाँव, शहर-शहर आज भी मिल जाएंगी। यह देश अपनी आस्था और विश्वास के बूते आज भी जीता है।

भारतीय सामाजिक परिवेश में पूजा-पाठ के प्रति आस्था देखी जा सकती है। जन-जीवन में, समाज में, नित-प्रति के जीवन में अधिकतर लोग व्रत-उपवास में आस्था और श्रद्धा रखते हैं। मृदुला सिन्हा भी बिहार के लोक परिवेश में पली-बढ़ी। उसी परिवेश को ग्रहण किया। अपने आसपास के वातावरण से उन्होने अपने कहानी के पात्रों को गढ़ा है। उनकी कहानी के पात्र जन-जीवन के संघर्षों का वरण तो करते ही हैं साथ ही वे लोक परिवेश के धार्मिक आस्था के मूल्यों को भी अपनी जीवन शैली में उतार लेते हैं।

मृदुला सिन्हा की एक कहानी है –साक्षात्कार। जिसमें बाढ़ की विभीषिका तो है ही। साथ ही भारत की गरीबी, बदहाली का भी साक्षात्कार भी है। इसके साथ ही उस कहानी में धार्मिक मूल्य बोध के नजरिए पर व्रत-उपवास की परंपरा के भी दर्शन होते हैं।

व्रत के दिन क्या पहनना, क्या खाना आदि लोक व्यवहार या व्रत के विधि-विधानों से तय होते हैं। साक्षात्कार कहानी की नायिका भी तीज के व्रत का उल्लेख अपने पहनावे के साथ - "उस दिन व्रत था, तीज का। नयी साड़ी कैसे न पहनती।"[12] कहानी भले ही बिहार के बाढ़ पीड़ित क्षेत्र की हो, उसमें गरीबी और बदहाली का चित्र हो। परंतु साथ ही उसमें व्यक्ति के धर्म-कर्म की आस्थावान प्रवृत्ति के दर्शन हो ही जाते हैं।

बिहार में छठ व्रत की परंपरा भी है। पूरे देश में उपवास की संस्कृति है। जिसे लोग बड़ी आस्था, विश्वास और श्रद्धा से निर्वहन करते हैं। मृदुला जी कई कहानियों के पात्र भी ऐसे ही जीवन मूल्यों के वाहक हैं। व्रत रखना अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए भी हो सकता है। यह हमारी परम्पराओं का हिस्सा भी है।

लोक में पशु-पक्षियों से प्यार-स्नेह का अटूट रिश्ता दृष्टिगोचर होता है। पशु-पक्षी भी मनुष्य से उतना ही प्रेम करने लगते हैं। जितना मनुष्य उन्हें करता है, उससे कहीं ज्यादा वे भी मनुष्य जाति को चाहने लगते हैं। मृदुला सिन्हा लोक परिवेश की इन बातों को अपनी कहानियों में उतार लाती हैं। साथ ही उनकी कहानियों में लोक-अध्यात्म का संगम भी दिखाई देता है। कारण, उनकी लोकधर्मिता और पौराणिक पात्रों की आधुनिक सृष्टि।

मृदुला जी की एक कहानी है – अनशन। इस कहानी में बेचू अपने ही घर में अपनी ही बेटी द्वारा गाय को कसाई को बेचने की बात को सुनता है। तो बड़ा ही विकल हो जाता है। बेचू गाय माता के विरह को झेल नहीं पाता। और उसका प्रायश्चित करने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा देता है। लोक में आज भी गाय को माता या कहें पूजा जाता है। उसी विचार के चलते बेचू भी अपनी गाय से प्रेम करने लगता है। पर, जब उसे पता चलता है कि गाय को कसाई को बेचा जा चुका है

तो वह इस पाप का प्रायश्चित अनशन द्वारा अपने प्राणों की बलि देकर पूरी करता है।

कहानी में "बेचन जब घर लौटा और गाय को बेचे जाने की खबर सुनी तो सन्न रह गया था। बिना माँ की बेटी सखिया को वह बेहद प्यार करता था। इसलिए उसने सखिया सिर्फ इतना ही कहा था, - 'बेटी तूने यह क्या कर दिया, मेरी ज़िंदगी ही कितनी थी, दोनों साथ-साथ चले जाते, उसे कसाई के हाथ सौंपने की क्या जरूरत थी ?' लेखिन सखिया से यह छुपा न रह सका था कि उसका बापू मर्माहत हो गया था। उसका दिल कचोटता रहता कि कसाई के हाथ गाय बेचकर उसने कितना बुरा किया था। गाय को किसी दूसरे के हाथ बेचने से शायद बापू को इतनी गहरी चोट न लगी होती। उसने कसाई के बजाय किसी और का ही नाम क्यों नहीं ले दिया ? गलती तो हो ही गई थी, परंतु झूठ बोलने कि उसकी आदत नहीं थी, तभी तो उसने सब कुछ सच-सच कह दिया था।

सखिया के लाख आग्रह के बावजूद बेचू ने आज कुछ भी नहीं खाया। बछिया के पास खाट खींचकर वह चुपचाप औंधे मुँह पड़ गया।"[13] भारतीय लोक में गाय को माता माना गया है। गाँव के लोग अभी भी उतनी ही श्रद्धा भाव रखते हैं गाय माता के प्रति। लोक और अध्यात्म का ही प्रभाव है यह भारत की चेतना पर। भारत की जनता पर। जो लोक में है उसे वेद में सिद्धांत के रूप में स्थापित किया गया है और जो वेद में है उसे ही लोक में व्यवहार में अपनाया गया है – लोक वेदच:। यही सूत्र वाक्य भारत की लोक अध्यात्म को समझने के लिए पर्याप्त है।

साहित्य की सार्थकता भी इसी में है कि वह वर्तमान परिवेश और जन-जीवन को जीने की ललक से जोड़े। उसे जीवटता का घूँट पिलाये। संघर्ष का बीजारोपण करे। अच्छे-बुरे के बीच सच्चाई का दामन पकड़े रखे। संवेदनशील जनमानस के हृदय पक्ष को शीतलता पहुंचाये। वर्तमान का बोध कराते हुये भविष्य की दिशा भी निर्धारित करे। यह सब होने लगता है तो लगने लगता है कि लेखक की लेखनी धन्य-धन्य हो रही है। इन तमाम अर्थों और परिप्रेक्ष्यों में कथाकार मृदुला सिन्हा अपने लोक चितेरे अंदाज में महिला कथा लेखन की परंपरा में दृढ़ता-मजबूती से खड़ी नज़र आती हैं – भारतीय चिंतन के लोक पक्ष के साथ। पौराणिक पात्रों की आधुनिक दृष्टि को लिए। आधुनिक मूल्य बोध के सामंजस्य से। भारतीय नारी को संबल, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, अडिगता, निडर, आत्मनिर्भर, निर्णय में स्वतंत्रता और आर्थिक मजबूती से गढ़ते हुये।

विविधताएँ व्याप्त रहना भी जरूरी है। पर, वैचारिकता के बूते स्वयं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करना – सकारात्मक ढंग से। यह लेखनी और लेखक की सच्ची कसौटी है। जीवन की समस्याओं से घबराने का नहीं, उनसे डटकर लड़ने का जोश-हौंसला पैदा करना, जीवटता का घूँट भरते हुये यही लेखनी की सार्थकता है। जिसमें मृदुला सिन्हा खरी उतरती हैं – भारत बोध के प्रबल स्वरों के साथ।

संदर्भ

1. मृदुला सिंहा, अपना जीवन (कहानी-संग्रह), यश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 19
2. वही, पृ.सं. 20
3. वही, पृ.सं. 60
4. मृदुला सिंहा, अपना जीवन (कहानी-संग्रह), यश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,पृ.सं. 62
5. वही, पृ.सं. 63
6. वही, पृ.सं. 64
7. वही, पृ.सं. 66
8. मृदुला सिन्हा, एक दिये की दीवाली (कहानी-संग्रह) प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1996, पृ74 .सं.
9. वही, पृ.सं. 75
10. मृदुला सिन्हा, एक दिये की दीवाली (कहानी-संग्रह), प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1996, पृ.सं. 75
11. मृदुला सिन्हा, एक दिये की दीवाली (कहानी-संग्रह), प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1996, पृ.सं. 141
12. मृदुला सिन्हा, साक्षात्कार (कहानी-संग्रह), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ10 .सं.
13. मृदुला सिन्हा, साक्षात्कार (कहानी-संग्रह), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ.सं. 19

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय), आइजोल, मिज़ोरम – 796004
दूरभाष : 9413224221, 7597525190
ई-मेल: akhileshksharma82@gmail.com

आजादी का अमृत महोत्सव

भारतीय ज्ञान-परम्परा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020

– प्रो. रचना बिमल

बहुप्रतिक्षित, पूर्व से ज्यादा वैचारिक प्रक्रिया से गुजरकर मिली नई शिक्षा नीति 2020 बदलते दौर की आकांक्षाओं की पूर्ति करने का सशक्त संबंल है, बशर्ते इसे भली-भाँति लागू किया जा सके। इस नीति के तहत भूमंडलीकरण के दौर के साथ कदम-ताल मिलाने के लिए शिक्षा को कौशलपूर्ण रोजगार परक बनाया गया है, तो शिक्षार्थियों के जीवन में रोजगार के साथ-साथ उच्च मानवीय आयामों से जोड़ने के लिए ज्ञान परम्परा के गवाक्ष भी खोलने का प्रयास किया है। यद्यपि यह अति कठिन कार्य है, क्योंकि औपनिवेशिक दौर ने विश्व को पूंजीवाद की जिस घातक लत का शिकार बना दिया उसने मनुष्य को औद्योगिक सिस्टम का पुर्जा मात्र बनाकर छोड़ दिया है। सिस्टम का संचालन तकनीक की सहायता से होता है और तकनीकी कुशलता ही आज भौतिक उपलब्धियों के शिखरों पर पहुँचाती है, लेकिन शिखर पर आदमी अकेला होता है वह यह तथ्य भूल जाता है। भूल की उत्पति ही तब होती है, जब ज्ञान का तिरोहण हो जाता है। यहाँ एडविन टाफ्लर के लहरवाद के सिद्धांत पर ध्यान देना समीचीन होगा। टाफ्लर के अनुसार दुनिया के भौतिक विकास को विकास की तीन लहरों के रूपक से समझा जा सकता है। पहली लहर को उन्होंने "कृषि लहर" का नाम दिया जो लगभग उनके अनुसार सौलह सौ वर्षों तक चली। कृषि-कर्म श्रम और शांति काल का घोतक होता है, इस काल खंड में पूरी दुनिया में अपने-अपने तरीके से मनुष्य की मेधा शक्ति का प्रयोग आध्यात्मिकता और क्षेत्रीय धर्म की स्थापना के लिए किया गया।

मनुष्य कौन है? वह क्यूँ जन्मा? उसके जन्म का उद्देश्य क्या है? किन गुणों को अपनाकर वह ईश्वर को प्राप्तकर सकता है? ईश्वर कैसा है? जीवन में ईश्वर की उपयोगिता क्या है? ईश्वरीय सृष्टि को सभी प्राणियों के लिए सुखकर कैसे बनाया जा सकता है? जगत में जो कुछ भी दृश्यमान है, उसके इतर भी कुछ है, तो वह क्या है? पशुवत जीवन से इतर वह जिस समाज की संरचना कर रहा है, वह समाज कैसा होना चाहिए? समाज को संचालित करने वाले नियम कैसे होने चाहिए? इन

> ***"प्राचीन भारतीय संस्कृति के उन्नायक ऋषिगण भली-भाँति जानते थे कि मानव को पशुतर स्तर से ऊपर कैसे उठाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने घोषित किया कि जीवन को चार भागों (प्रत्येक भाग/चरण/खंड को उन्होंने आश्रम नाम से पुकारा) में बाँटकर जीना चाहिए। पहला चरण ब्रहाचार्याश्रम है, जिसमें बालक-बालिकाएं आठ से 25 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करें, (विद्याध्ययन 8 वर्ष से उपनयन संस्कार के बाद आरंभ होता था)। 25 से 50 वर्ष तक मनुष्य की गृहस्थाश्रम में रहते हुए जीवन को सुख पूर्वक भोगने की अवधारणा थी। 50 वर्ष के बाद भोगवाद को धीरे-धीरे छोड़ते हुए वानप्रस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान किया जाए ताकि मनुष्य की इच्छाओं और लालसाओं पर विराम लग सके। 75 वर्ष के बाद उसे (मनुष्य को) संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर संसार की इच्छाओं की रस्सी को काटकर मुक्ति की ओर जाना चाहिए। मुक्ति ही मानवीय जीवन का परम लक्ष्य मानी गयी। ऋषि परम्परा में ही जीवन के चार लक्ष्य केन्द्रित किए गये धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष। "धर्म" का अर्थ वेदों में धारण किए जाने वाले गुणों से लिया गया है।"***

अंनत प्रश्नों का समाधान ज्ञात करने के लिए ज्ञान मार्ग का आवलंबन लिया गया जिसकी अनेक शाखाएँ-उपशाखाएँ (धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, विचारधाराओं के रूप में) समय? पर दुनिया के अलग-अलग खंडों में विकसित होती गई। यह ज्ञान प्रथम श्रुति और तत्पश्चात लिखित परम्परा के साथ मिलकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी धीमें परिवर्तन के साथ हस्तांरित होता गया।

सत्रहवीं शताब्दी की "औद्योगिक लहर" ने "कृषि लहर" से संचालित धीमे जीवन को गतिशील बना दिया और तकनीक ज्ञान के समकक्ष प्रतिष्ठा पाने का प्रयास करने लगी। भाप के ईंजन के आविष्कार ने तकनीकी अधिष्ठाताओं को धन और मान से परिपूर्ण कर जनसामान्य की दृष्टि में विशुद्ध ज्ञान मार्गी संतों और दार्शनिकों की तुलना में अधिक सम्मान दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया। ईंजन चलित समुद्री जहाजों, रेलगाड़ी, ट्रक जैसे यातायात के संसाधनों ने व्यापार को गति दी और दुनिया में अब सांस्कृतिक वैभव से सम्पन्न समाजों को व्यापारिक मंडियों के रूप में तलाशा जाना शुरू हुआ। मध्ययुगीन दुनिया में तलवार के बल पर धर्म और व्यापार की सहायता से जो वर्चस्व की लड़ाई धीमी गति से लड़ी जा रही थी उसका प्रसार अब तेजी से होने लगा। फलतः शांति प्रिय प्रकृतिपूर्वक समाज दासता की श्रृंखलाओं में जकड़े जाने लगे और शुरू हुआ औपनिवेशिक गुलामी का दौर जो लगभग पिचहतर प्रतिशत दुनिया को त्रस्त करने लगा। औपनिविशेक विचारधारा ने पूंजीवाद के घिनौने पंजों से दुनिया को घायल कर दिया। नतीजा भारत जैसे देश जो आदिकाल से विश्वगुरू बन ज्ञान का प्रकाश फैला रहे थे, जिनका चिंतन और विश्वास समस्त विश्व को "वसुधैव कुटुम्बकम्" के रूप में देखता था। वे भी साम्राज्यवादी शक्तियों के "धर्म के चाबुक" "राजनीति की तलवार" और "व्यापार की डंडी" से निस्तेज हो गए। विदेशी विध्वंस का तांडव यूँ तो भारत भूमि पर इस्लामिक आक्रमणकारियों के द्वारा अंग्रेजों के आने से एक हजार वर्ष पूर्व ही शुरू हो गया था, लेकिन औद्योगिक तकनीकि कौशल ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से घुटने टिकवाकर उसे निस्तेज कर दिया। भारत ब्रिटिश राजमुकुट का "कोहिनूर था" जिस पर नियत्रंण रखकर ही यूरोपीय क्षेत्रफल का छोटा-सा-हिस्सा ब्रिटेन दुनिया का सिरमौर बनने का ख्बाब पूरा कर सकता था। अंग्रेज जानते थे कि भारत पर शासन करना है, तो भारतीय समाज को उसकी जड़ों से काटना होगा। इसके लिए उन्हें भारत की ज्ञान परम्परा को ध्वस्त करना होगा। उसके निवासियों को उनकी मातृभाषा, ज्ञान-भाषा, संस्कृति और मूल्यों से विलग करना होगा तभी वे उन्हें अपना गुलाम बना पाँएगें। अंग्रेजी साम्राज्य की नींव का पत्थर बनी सन् 1835 कि लार्ड मैकाले द्वारा भारत में लागू की गई शिक्षा प्रणाली। तब लार्ड मैकाले ने स्पष्ट शब्दों में कहा था- "अंग्रेजी शिक्षा का उद्देदश्य है, भारत में प्रशासन के लिये बिचैलियों की भूमिका निभाने तथा सरकारी कार्य के लिए भारत के विशिष्ट लोगों को तैयार करना।" (1) मैकाले की यह शिक्षा नीति मुगल शासन से भी ज्यादा कुठाराघात करने वाली थी। इस शिक्षा प्रणाली से अंगे्रजों को हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश पर राज करने के लिए अंगे्रजी जानने वाले क्लर्कों की आपूर्ति मिली तो दूसरी ओर भारत की बहुसंख्यक जनता को अंग्रेजी न जानने के कारण अशिक्षित घोषित कर, उसका मनोबल तोड़ने का काम किया गया। परायी भाषा में शासन के आदेशों का नागरिकों पर प्रभाव आम आदमी समझ नहीं पाया तथा लम्बे समय तक अंगे्रजों को अपना हितैषी समझने की गलतफहमी पाले रहा। दूसरी ओर अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा पाने वाला उच्च वर्ग भी शेष भारतीय समाज से स्वयं को दूर रख अभिजात्य होने का खोखला अंहकार पाले रहा। "ब्रिटिश समाज स्वयं बींसवी सदी तक यह मानता था कि श्रमिक वर्ग के बच्चों को शिक्षित करने का अर्थ है, उन्हें जीवन में अपने श्रम संबंधी कार्यों को सम्पन्न कर देने के लिए आयोग्य बना देना" (2) सत्य तो यह है, कि समाज को शैक्षिक रूप से उच्च एवं निम्न वर्ग में बदलने का कार्य सबसे ज्यादा अंग्रेजों ने किया, क्योंकि उनकी शिक्षा व्यक्ति को उत्पादन के अंग में बदलने का कार्य करती है जबकि भारतीय शिक्षा पद्धति मनुष्य के सर्वांगीण विकास अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक विकास को समानातंर रूप से जोड़ते हुए विकसित करने का महत्ती कार्य करती है। इस शिक्षा व्यवस्था में गुरू के लिए कृष्ण और सुदामा एक ही थे। अंग्रेजों के समान आर्थिक रूप से अमीर-गरीब बच्चों में भेदभाव करने की गुंजाइश हमारे यहाँ नहीं थी।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के उन्नायक ऋषिगण भली-भाँति जानते थे कि मानव को पशुतर स्तर से उपर कैसे उठाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने घोषित किया कि जीवन को चार भागों (प्रत्येक भाग/चरण/खंड को उन्होंने आश्रम नाम से पुकारा) में बाँटकर जीना चाहिए। पहला चरण ब्रहाचार्याश्रम है, जिसमें बालक-बालिकाएं आठ से 25 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करें, (विद्याध्ययन 8 वर्ष से उपनयन संस्कार के बाद आरंभ होता था)। 25 से 50 वर्ष तक मनुष्य की गृहस्थाश्रम में रहते हुए जीवन को सुख पूर्वक भोगने की अवधारणा थी। 50 वर्ष के बाद भोगवाद को धीरे-धीरे छोड़ते हुए वानप्रस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान किया जाए ताकि मनुष्य की इच्छाओं और लालसाओं पर विराम लग सके। 75 वर्ष के बाद उसे (मनुष्य को) संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर संसार की इच्छाओं की रस्सी को काटकर मुक्ति की ओर जाना चाहिए। मुक्ति ही मानवीय जीवन का परम लक्ष्य मानी गई। ऋषि परम्परा में ही जीवन के चार लक्ष्य केन्द्रित किए गए धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष। "धर्म" का अर्थ वेदों में धारण किए जाने वाले गुणों से लिया गया है। "धारयति इति सः धर्मः। गुण ही मानवीय मूल्यों के जनक होते हैं। यहाँ वैदिक मान्यताओं

के इन चार जीवन लक्ष्यों को संक्षेप में ही सही जान लेना समीचीन होगा।

आजकल "धर्म" को संकुचित रूप में देखा जाता है। रिलिजन, पंथ, मत, मजहब आदि सभी के लिए धर्म शब्द का प्रयोग किया जाता है। धर्म को मानवीयता के विरूद्ध रूढ़ि ओर अंधविश्वास का पर्याय मानने के कारण ही इसके विरोध मे धर्म-निरपेक्षता को एक मूल्य के रूप में लिया गया। भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म को पूजा अर्चना की उपासना, अंधविश्वास ना मानकर जीवन के आधार रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि समाज के लिए जो कुछ भी कल्याणपरक है, वह सब धर्म है। धर्म भौतिक और आध्यात्मिक दो विरोधी दिखने वाली धारणाओं का सुंदर समन्वय करता है। (यतो अम्युदयः निःश्रेयसः सिद्धि सधर्मः)। कर्म की परिशुदध अवधारणा धर्म है, जो मानवीय आचरण का नियमन करती है। अर्थात् मूल्यपरक जीवन जीने की कला ही धर्म है जिसका मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है-

धृति क्षमा दमो अस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या तपोदानम् दशकं धर्म लक्षणम्।। (3)

(अर्थ-धृति (दृढ़ता), क्षमा, दम (मन को विषयों से रोकना) अस्तेय (किसी भी प्रकार की चोरी न करना) शौच (शरीर, मन व बुद्धि को कुप्रवृत्तियों से अलग रखना), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना), धी (शास्त्राध्ययन और स्वाध्याय से बुद्धि बढ़ाना), विद्या (जीवात्मा, परमात्मा, प्रकृति के सत्य स्वरूप को जानना), सत्य (ज्ञान के विरूद्ध कुछ भी न कहना), अक्रोध (अकारण किसी पर क्रोध नही करना ही धर्म के दस लक्षण है।)

मानव जीवन का दूसरा पुरूषार्थ "अर्थ" भौतिक विकास या कहें आर्थिक उपलब्धियों से जुड़ा है, किंतु भारतीय संस्कृति आर्थिक विकास को भी धर्माधारित स्वीकारती है ताकि व्यैक्तिक स्वार्थ हेतु प्रकृति से लेकर चराचार जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव का भी शोषण नहीं किया जा सके। "सर्वे भवन्तु सुखिना: सर्वे सन्तु निरामया" का सिद्धांत त्याग और सहयोग पर ही आधारित है, जो प्राकृतिक संपदा के उपयोग को भी न्यायपर्वूक उपभोग की अनुमति देती है जिसके द्वारा हर प्रकार के शोषण और दोहन को रोका जा सकता है। "काम" तीसरा पुरूषार्थ है, जिसकी व्याख्या तो और भी गलत ढंग से की गई है। भावनाओं, कामनाओं, अकांक्षाओं और मन के कोमल भावों की अभिव्यक्ति काम के द्वारा होती है, क्योंकि ललित कलाओं के विकास, आमोद-प्रमोद के साधन सब काम के द्वारा ही सृजित होते हैं। काम में वासनाओं को भी स्थान मिलता है, किंतु इन्हें भी धर्म से नियंत्रित किया जाता है। धर्म की मर्यादाएँ अर्थ-भोग और काम की तृप्ति को दिशा प्रदान करती हैं। अतः मर्यादा धर्म का पालन अभिष्ट होना चाहिए। ईशावास्योपनिषद् में इसी मर्यादित आचरण की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है- "ईशा वास्यमिदं सर्वयत्किंच जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विदधनम्" (4)

(अर्थात " इस जगत में सर्वत्र परमेश्वर व्याप्त है, सब कुछ उसी परमात्मा का है, अतः भौतिक पदार्थों में आसक्ति त्यागकर कर्तव्य पालन में यथाविधि उनका उपभोग करो")।

भौतिक जगत में मर्यादापूर्वक आसक्ति हीन उपभोग से ही मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है। मोक्ष यानि मुक्ति ही "चुतर्थ पुरूषार्थ" है। यही जीवन का अंतिम लक्ष्य है। प्राचीन भारत में शिक्षा संस्कार का पर्याय थी। अपेक्षित संस्कारों के द्वारा मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति हेतु सक्षम बनाया जाता था। यही शिक्षा का लक्ष्य भी था, किंतु कालांतर में मोक्ष को स्वर्ग प्राप्ति, निर्वाण, मुक्ति आदि से जोड़ दिया गया। प्रश्न यह उभरा कि मुक्ति किससे? मुक्ति-चिंताओं, बन्धनों, अज्ञान से होनी चाहिए केवल जागतिक मोह माया के बन्धनों को तोड़ना (संन्यास लेना) मात्र मुक्ति नहीं हो सकता। वास्तव में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति को समग्र विकास से जोड़ते हुए चिंताओं से मुक्त-कर सके। मनुष्य स्थूल शरीर मात्र नहीं है वह अन्नमय कोष (अन्न तथा भोजन से निर्मित शरीर) और मस्तिष्क के साथ-साथ प्राणमय कोष-(प्राणों से बना), मनोमय कोष (मन से बना) विज्ञानमय कोष (अन्तर्ज्ञान या सहज ज्ञान) से परिपूर्ण परमात्मा स्वरूप आंनदमय कोष भी है। इस आंनदमय कोष तक पहुँचना ही मुक्ति है। अंग्रेज अधिकारी मैकाले द्वारा निर्मित शिक्षा प्रणाली दूर-दूर तक इस तथ्य का संस्पर्श नही सकती, क्योंकि पश्चिम का अधिकांश चिंतन स्थूल और दृश्यमान जगत पर ही केन्द्रित है। मैकाले भारतीयों को उनकी ज्ञान परम्परा से दूर ले जाकर उनका आत्मबल तोड़ना चाहता था और "शासन की दृढ़ता के लिए भारतीयों के मन में भारतीय दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और संस्कृति एवं भाषा की अपेक्षा अंग्रेजी दर्शन, पाश्चात्य संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं भाषा की उच्चता और महानता स्थापित करना चाहता था। अपनी उस नीति में मैकाले सफल हुआ"। (5) ऐसा नहीं था कि मैकाले की इस नीति को भारतीय मेधाशक्ति पहचान नहीं पाई। हमारे 19वीं एवं 20वी सदी के महान नेता अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की निरर्थकता, शुष्कता और निर्जीवता को पहचानते थे, किंतु अंग्रेजी शासन के कारण उस स्तर पर इसे नहीं बदल पाए जिस स्तर पर इसे बदला जाना चाहिए था। फिर भी गोपालकृष्ण गोखले ने बीसंवी शताब्दी के प्रथम और द्वितीय दशक में प्राथमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन किए। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगौर ने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को कृत्रिम एवं सूचनादात्री मात्र बताते हुए तथा प्राकृतिक आदर्शों की शिक्षा हेतु "विश्वभारती"

की स्थापना करी। महात्मा गांधी ने भी इस प्रणाली को दासता की भावना उत्पन्न करने वाली प्रणाली बताकर बेसिक शिक्षा प्ररणाली को ही प्रस्तुत कर दिया। दुर्भाग्यवश देश की स्वतंत्रता के पश्चात् मानों इन देशभक्तों की भी भावनाओं और चिंतन को जबरन उपेक्षित किया गया। नतीजा स्वतंत्र भारत में आज भी वही अंगे्रजी मैकाले शिक्षा प्रणाली प्रचलित है जबकि स्वतंत्र भारत के नागरिकों में देशभक्ति की भावना और राष्ट्रीय चरित्र के विकास के लिए मैकाले की नीति को त्यागकर भारतीय दर्शन, संस्कृति, विज्ञान एवं साहित्य को भारतीय भाषाओं के माध्यम से स्थापित किया जाना चाहिए था।

मैकाले की शिक्षा प्रणाली को जारी रखने के कारण ही राष्ट्र की स्वाधीनता का ध्येय लेकर चलने वाला "स्वतंत्रता संग्राम" देश को केवल विदेश सत्ता से ही मुक्त करा सका तथा हमें स्वाधीन बनाने मे अक्षम सिद्ध हुआ। स्वाधीनता में आर्थिक स्वावलम्बन, सामाजिक न्याय एवं सेवा, स्वदेशी स्वाभिमान और जीवन के समस्त तंत्रों पर अपनी राष्ट्रीय मेधा शक्ति का अधिकार निहित होता है। इसी कारण हमारे आस-पास ही स्वतंत्र हुए अनेक राष्ट्र आज हमारी तुलना में हर प्रकार के विकास में हमसे हजारों गुना आगे है। रूस, चीन, दक्षिण कोरिया, जापान, इजराइल इत्यादि देश इतना विकास स्वदेशी भाषा और स्वदेशी चिंतन के कारण ही कर पाए। दूसरी ओर भारत में दो सौ वर्ष पुरानी शिक्षा ज्यों कि त्यों चलती रही। इस शिक्षा प्रणाली के प्रमाण पत्र एवं उपलब्धियाँ न तो व्यक्ति में उच्च आदर्शों का जागरण करती है न ही व्यक्ति को आजीविका प्रदान करने की क्षमता प्रदान करती है। इस शिक्षा नीति ने मेहनती, प्रतिभावन विद्यार्थियों के भीतर स्वावलम्बन, सेवा, स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम जैसे भावों का पोषण न करके भविष्य के प्रति कुंठा एवं निराशा ही विकसित की है। अधिकांश युवाओं के दिशाहीन, श्रद्धाविहीन एवं उद्देश्यहीन जीवन जीना पड़ता है, क्योंकि दिन-रात परीक्षा पास करने की चिंता जीवन का रस समाप्त कर देती है। वहीं शिक्षा के प्रमाण पत्र एवं उपलब्धियाँ न तो व्यक्ति में उच्च आदर्शों का जागरण करती है और न व्यक्ति को घर, परिवार, समाज और बदलती दुनिया के साथ जोड़ पाती है। समाज की प्रत्येक संस्था शिक्षा प्रणाली की ही एक संस्था या साधन होती है। बच्चा एक परिवार में जन्मता है, स्थानीय समाज में खेलता-कूदता विद्यालय जाता है, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टी.वी.सिनेमा और अब मोबाइल, लैपटॉप के माध्यम से राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को देखता समझता है जिनका प्रभाव उसके तन-मन पर गहराई से पड़ता है। दो रोटी की जुगत जुटाने के लिए घर-परिवार से दूर, संस्कारहीन शिक्षा प्रणाली के माध्यम से पढ़ने-लिखने वाले युवा जब स्वयं के जीवन को संस्कारित, मर्यादित नहीं कर पाते तो वो माता-पिता बनने से लेकर शिक्षक, नेता, अभिनेता, धार्मिक संस्थाओं के पदाधिकारी आदि पदों पर प्रतिष्ठित होने पर जिम्मेदारियों का निर्वाहन भली-भाँति नहीं कर पाते। फलतः मंदिर, मस्जिद, चर्च भ्रष्टता के केन्द्र बनकर आकर्षणहीन हो गए है, तो जल्द से जल्द पैसा बटोरने के लक्ष्य से जुड़ा मीडिया दर्शनीय-अदर्शनीय की सीमाओं को तोड़कर अमर्यादित हो चुका है। सिनेमा की पृष्ठभूमि में कालाधन अपनी कालिमा से मूल्यों को विस्थापित कर अमूल्यों को प्रतिष्ठित कर रहा है। इसलिए देशद्रोही, राष्ट्रविरोधी, समाजविरोधी चरित्रों (फिल्म रईस) नैतिक मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाते सिगेरट प्रेमी चरित्रों (फिल्म शराबी) पत्नी से राखी बंधवाकर भाई-बहन के पवित्र रिश्ते की धज्जियाँ उड़ाते लम्पट नायक (फिल्म दे दे प्यार दे) से बाल मन कुसंस्कारित होकर स्वच्छन्द, एकाकी, नशामय जीवन जीने का अभिलाषी बन कालांतर में परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए बोझ ही बन जाता है। "अर्थ" ही जीवन का परम लक्ष्य बन गया है, जो काम (काम भी अब केवल वासनाओं का प्रतीक है) की पूर्ति कराने में व्यय किया जाता है। भारतीय समाज के लड़के-लड़कियाँ अब वर वधू के स्थान पर नगर वर, नगर वधू (वेश्याएँ) बनने में लज्जा महसूस नहीं करते। दोस्ताना जैसी फिल्में इस का मार्ग प्रस्तुत कर चुकी है। इन फिल्मों के लेखक, निर्माता निर्देशक, प्रोडयूसर, अभिनेता, अभिनेत्रियाँ अशिक्षित नहीं है, बल्कि ये सभी मैकाले की अंग्रेजी प्रधान शिक्षा प्रणाली से उत्पन्न भस्मासुर हैं जिन्हें स्वयं के भस्मासुर जीवन से जब परहेज नहीं है तो वे समाज को क्या दिशा प्रदान करेंगे? दुर्भाग्य से भारतीय समाज के बच्चे इन्हीं को जीवन का आदर्श समझ बैठे हैं। इसी कारण अब हमारे समाज में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, भारतेंदु, हरीश्चंद्र, बालगंगाधर तिलक, महर्षि अरविंद, नेताजी सुभाषचंद्र बोस की बात तो दूर पूर्व राष्ट्रपति अबुल कलाम जैसा भी कोई नहीं बनना चाहता है। अंग्रेजी पढ़ी-लिखी पीढ़ी के लिए देश रहने की जगह नहीं है इसलिए विदेशों के लिए प्रतिभा पलायन जारी है। जिस देश के पाठ्यक्रम में राष्ट्र की संस्कृति समाहित ना हो उस देश की आकांक्षाओं, आदर्शों और जीवन मूल्यों की रक्षा कोई भी शिक्षा प्रणाली नहीं कर सकती।

अंग्रेज जानते थे कि भारत को तोड़ना है, तो इस देश के मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तातंरित करने वाली भाषा को खत्म करना होगा। इसके लिए उन्होंने भारतीयता की जनक संस्कृत भाषा पर कुठाराघात किया। यह संस्कृत भाषा थी जिसने अंग्रेजों के आने से पूर्व 10 हजार वर्षों से भारत भूमि की राजसत्ता से लेकर जन मानस तक को संस्कारित करने का महत्ती कार्य किया था। संस्कृतनिष्ठ बुद्धिजीवियों का तो मानना था कि-"सा विद्या या विमुक्तये"। यह मुक्ति कामना थी - अविद्या के अंधकार से, राग-द्वेष मनोमालिन्य से, घृणा से.....। संसार के आदिग्रंथ ऋग्वेद में मानव के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए कामना करते हुए शरीर को सबल एवं निरोग बनाने के लिए स्तुति का निर्देश है-

"भद्रम् कर्णेनिः श्रृवुयाम देवा,

भद्रम् पश्येमाक्षमियर्जत्राः

स्थिरै रंगैस्तुष्टुवासस्तनूभिः

व्यशेमाहि देवहितं यदायुः।। (6)

अर्थात हम कानों से शुभवचनों को सुनें जिससे हमारा मन प्रसन्न रहे, ह्दय राग-द्वेष से रहित पवित्र रहे। नेत्र इंद्रियों से मन को सुख देने वाली अच्छी सत् वस्तुओं को देखें, जिससे हमारे अंतः करण में दूषित मनोवृत्तियों का विकास नहीं हो पाए, प्रातः स्मरणीय हमारे ऋषिगण जानते थे कि केवल व्यक्ति के विकास से समाज का कल्याण नहीं हो सकता। सम्पूर्ण समाज के विकास से ही राष्ट्र सबल बनता है, इसलिए समाज में सबको मिलकर चलने की प्रेरणा देते हुए, एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से कहा गया कि-

"संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।" (7)

मिलकर रहने, चलने, बोलने, एवं मिलकर सोचने से ही संगठन की शक्ति बढ़ती है। इसी क्रम में एक प्रार्थना और मिलती है कि-

"समानो मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेणाम्।

समानं मंत्रमभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा, जुहोभि।।" (8)

समान चित्त वाले समाज के और परिवार में सौहार्द और सद्भाव बनाए रखने के लिए इस प्रार्थना के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी कि-

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। (9)

हम मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें, हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से एक-दूसरे को देखें अर्थात् कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य को द्वेष की दृष्टि से ना देखे। सभी आपस में मधुर व्यवहार रखते हुए कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो।

अर्थववेद में पिता-पुत्र संबंध, पति-पत्नी संबंधों की शिक्षा देते हुए कहा गया-

अनुव्रतः पितुः पुत्रों मात्रा भवतु संमनाः।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।। (10)

इस मंत्र का अर्थ है कि पुत्र पिता का आज्ञा पालक बना रहे और माता से मन मिलाकर मधुरबानी का व्यवहार करें। पति-पत्नी मिल-जुलकर मधुर वचनों एवं शांति के साथ निवास करते हए परिवार को सुदृढ़ करते हुए, राष्ट्र का निर्माण करें।

राष्ट्र निर्माण के लिए राष्ट्रीय भावना की जरूरत होती है, इस हेतु मातृभूमि के प्रति माँ और पुत्र का संबंध स्थापित करते हुए- "माता भूमिः पुत्रोअहं" पृथिव्याः (11) के भाव संबंध को दृढ़ किया है।

संस्कृत भाषा ज्ञान की ही नहीं विज्ञान की भी भाषा थी। वेदों में मानवीय मनोभावों के विकास का ही ज्ञान नहीं दिया गया अपितु पृथ्वी कैसे जन्मी? उसकी परते कितनी है? विद्युत कितने प्रकार की है, जैसे भूगर्भ-विज्ञान, रसायन-विज्ञान के अतिरिक्त औषधी-विज्ञान आदि का ज्ञान भी मिलता है, तैत्तिरीय ब्राह्मण में पृथ्वी रचना का वर्णन मिलता है, जो आधुनिक पश्चिम विज्ञान की बिग बैंग थ्योरी का शताब्दियों पूर्व का वर्णन प्रतीत होता है, जिसके अनुसार-

"इंद वै अग्ने नैव किंचनासीत्। तदप्यता तस्मात्तपनाद् धूमो जायतः..... स पृथिव्यभवत्।। (12) अर्थात् प्रलय काल में असद् कारण रूप सामाग्रय ही था। तारू ब्रह्म अतप्यत..... उससे क्रमशः अग्नि, ज्योति, मारीचि एवं ज्वाला उत्पन्न हुए। तत्पश्चात मेघ उत्पन्न हुए। उनके भेदन से समुद्र बना फिर पार्थिव कणों से युक्त जल द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम वायु का निर्माण हुआ। वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी बनी। तत् पश्चात पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से पुरूष का निर्माण हुआ-

तस्मादात्मनः आकाश संभूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्य पृथिवी। पृथिव्याः ओषधयः। ओषधीभ्योऽनम्। अन्नात् पुरूषः।(13)

प्रश्न यह उठता है कि जब लिपि का भी आविष्कार नहीं हुआ था, तब सदियों तक यह ज्ञान सुरक्षित कैसे रहा? इस प्रश्न का उत्तर है, कि हमारे यहाँ शिक्षकों ने श्रुति परम्परा में ज्ञान का संरक्षण किया। वर्तमान दौर में गुरू शब्द का पर्यायवाची शिक्षक या अध्यापक के रूप में लिया जाता है, किंतु इन पर्यायवाची शब्दों के बीच में बारीक-सा अंतर है। शिक्षक हमें सांसारिक ज्ञान देकर, आजीविका कमाने योग्य बनाते हैं, लेकिन गुरू सांसारिक ज्ञान देने के साथ-साथ हमें मानव से महामानव, महामानव से देवत्व की ओर ले जाते हैं। गुरू शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है। गु॰रू यहाँ गु का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और रू का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अर्थात् अज्ञान रूपी अंधकार से निकालकर ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाना वाला व्यक्ति ! गुरू का दायित्व वेतनभोगी शिक्षक और अध्यापक से कहीं बड़ा है। भारतीय परम्परा में गुरू किसी विषय विशेष का विशेषज्ञ न होकर राजैनतिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक या यूं कहे ललित कलाओं से लेकर पारलौकिक क्षेत्र की भी विशेषज्ञता रखता था। वह विद्यार्थी के मन में उमड़ते प्रत्येक सवाल का जवाब देता था।

उसके जीवन में मार्ग दर्शक की भूमिका निभाता था। गुरू भारतीय समाज का शिल्पकार था। इसलिए कबीर ने कहा था-

गुरू कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़ी-गढ़ी काढ़े खोट।

अंतर हाथ सहार दे, बाहिर मारे चोट।। (14)

गुरू का स्थान इसीलिए माता-पिता ही नहीं, ईश्वर से भी बढ़कर था। सादा जीवन, उच्च विचार की प्रतिमूर्ति गुरूओं ने ही भारत को जगतगुरू की पदवी प्रदान कराई थी। इन ज्ञान-वीरों को वेद की भाषा में ग्रावाणः कहा जाता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में सूक्त सं. 76, 84 और 175 का विषय ग्रावणः है। यह ज्ञान वीर गुरू/शिक्षक/उपदेशक जब अपनी वाणी से बोलते हैं तो हज़ारों लोग प्रभावित होते हैं। उनका (गुरूओं) जीवन निर्वाह समाजसेवी, दानशील व्यक्तियों की दान रूपी छवियों से होता था। इन ज्ञान-वीरों के समक्ष चक्रवर्ती सम्राट भी नतमस्तक होते थे। इनके गुरूकुलों में ही श्रीराम, लक्ष्मण, श्री कृष्ण जैसे महामानवों का जीवन गढ़ा। जिनके महत्ती कार्यों को दुरूहतम मानकर उन्हें ईश्वर के समकक्ष मान लिया गया। वशिष्ठ, विश्वामित्र, संदीपन जैसे गुरूओं को महत्ती कार्य-प्रेरणा ऋग्वेद जैसे ग्रंथों से ही मिली। ऋग्वेद के (10/84/90) मंत्र में स्पष्टतः कहा गया है कि विद्वानजन परमात्मा के अध्यात्म यज्ञ का सेवन करते हैं, तब उन्हें सुखदायी आनन्द प्रवाह प्राप्त होता है। उससे वे विचलित नहीं होते, अपितु धनवान की धनवन्ता के समान ही महत्ती आध्यात्मिक सम्पति से युक्त होकर आनंद की प्राप्ति करते हैं।

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेडावन्तः सदमित्स्थनाशिताः।

रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम्।। (15)

इन्हीं मंत्रों में शिक्षक व उपदेशक के बारह गुणों का वर्णन मिलता है-

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा आशृथिता अमृत्यवः।

अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः।।(16)

अर्थात् विद्वान, शिक्षक या उपदेशक(1) (तृदिला)-जो अपनी विषयवस्तु का निवारण असानी से कर सके, जो अपने शिष्यों को अधिक-से -अधिक शंका उठाने दे और उनका निवारण कर सके (2) अतृदिलास- जो अभेदय हो यानि बहु-विषयज्ञ, निश्चयी, दृढ युक्ति पूर्ण शिक्षक ही प्रंशसनीय होता है। (3) अद्रय- का अर्थ आदर योग्य होता है। वैसे इसका शाब्दिक अर्थ पर्वत और मेघ होता है, जो शिक्षक योग्यता में पर्वत के समान उच्च, अडिग, स्थिर हो और मेघों के समान शीतलता बरसाता हो (4) आश्रमण- कभी ना थकने वाला! आदर्श शिक्षक ही कभी न थकने वाला और अपने अध्यव्यसाय के प्रति समर्पित होता है, वह अपनी तपस्या, साधना, स्वाध्याय और परिश्रम के कारण (5) अपृथिता-अर्थात् अशिथिलता आलस्य ना करने वाला होता है (6) अमृत्यव- मृत्यु के बंधनों से मुक्त। जीवन में धर्म, योग-क्षेम, सुमति, सद्भाव, ब्रहाचर्य, ब्रहाज्ञान आदि। अमृत्यवः के लक्षण हैं परमात्मा का उपासक, साधक, शिक्षक ही मृत्यु के बंधन और भय से मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त करना चाहता है। वह ''बन्धनात् मृत्योर्भुक्षीय मा अमृतात'' (ऋ0 7.58.12) का जयघोष करता है। (7) कभी न थकने, घबराने वाला, धीर, गंभीर, शांत, धैर्यवान, आकुलता-व्याकुलता से रहित शिक्षक ही ''अनातुराः'' होता है। (8) ''अजरा''- यानि बुढ़ापा मुक्त ऐसा शिक्षक जो उम्र को भुलाकर सदैव कर्मशील हो, आत्म-विश्वासी, आशावादी हो ताकि अपने शिष्यों और श्रोताओं का उत्साहवर्धन करता रहें (9) अमविष्ठाव- का अभिप्राय होता है गतिशील। जीवन में सन्ध्या, स्वाध्याय सदाचार, सेवाकार्य और सत्संग अपनाने से शिक्षक गतिशाील रहता है। (10) सुपीवस- का तात्पर्य सुस्पष्टता होता है। सुस्पष्टता संयमित आहार-विहार, यम-नियम, आसन-प्राणायाम् आदि आष्टंग योग को अपनाने और समाज द्वारा शिक्षकों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ रखने से आती है। (11) अतृष्णज- अ$तृष्ण$ज अर्थात् तृष्णा रहित या निस्पृहता शिक्षकों का अनिवार्य गुण है क्योंकि तृष्णाओं की दावाग्नि को बुझाना आसान नहीं होता। इच्छा यानि तृष्णा-समुन्द्र की उन लहरों के समान है, जो एक के गिरने पर पुनः-पुनः और वेग से उठ खड़ी होती है। यदि इन पर नियंत्रण ना रहे तो शिक्षक भी भोग विलास में डूब जाएगें तथा समाज को सही दिशा नहीं दिखा पाएगें। ''12''. अतृषिता-का अर्थ है वासना रहित होना। शिक्षक को मान-सम्मान धन-उपहार, भेंट-पूजा का प्यासा नहीं होना चाहिए। साथ ही उसका काम वासनाओं पर पूर्ण विजयी होना अनिवार्य होता हैं। तभी वह विद्यार्थियों के साथ माता-पिता के समान समभाव, प्रेम, सद्भाव के साथ व्यवहार कर सकेगा।

इन गुणों का अधिकारी ही श्रेष्ठ गुरू बन सकता है। सदियों तक ज्ञान की यह परम्परा गुरूओं के आश्रम में उनके आचरण को देखकर शिष्यगण धारण करते रहे और समय आने पर भावी पीढ़ी का गुरू बनकर स्वयं इस महान दायित्व का निर्वाहन करते हुए भारतीय संस्कृति, समाज और सम्पूर्ण आर्यावत् को दिशा प्रदान करते रहे। इसीलिए क्या मुगल, क्या अंग्रेज क्या विदेशी यात्री सभी लोग हमारे गांव-देहात तक में चलने में निस्पृह शिक्षकों की पाठशाला कौतुक की दृष्टि से देखकर इस ज्ञान-परम्परा का सम्मान से वर्णन करते हैं। स्वयं मैकाले ने स्वीकार किया था कि भारत के 32 हजार से ज्यादा विद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी और इनमें पढ़ाने वाले गुरू उच्च कोटि के विद्वान होने पर भी अत्यंत साधारण जीवन जीते हुए आत्मतृप्त रहते थे। समाज में उनका सम्मान राजा से भी बढ़कर था। इसी कारण चाणक्य जैसा गुरू चन्द्रगुप्त मौर्य जैसा प्रतापी राजा, संत रामानंद और विरजानंद क्रमशः कबीर और स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे

धर्म सुधारक विश्व को दे सकें जिन्होंने करोड़ो, मुनष्यों के जीवन में ज्ञान की ज्योत प्रकाशित की और जिसका प्रकाश आज भी फैला हुआ है। आलोचकों का एक वर्ग मानता है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा में स्त्रियों और शुद्र कुल में उत्पन्न आम जनों को विद्याध्ययन का अधिकार नहीं था। सत्य इसके विपरीत है, क्योंकि वेदों की तो अनेक त्रृचाएँ स्त्रियों द्वारा रचित हैं जैसे ऋषिका वागामभ्रिणी ऋग्वेद के दसवें मंडल के एक सौ पचीसवें सुक्त की, लोपामुद्रा पहले मंडल के एक सौ उन्नीसवें सुक्त की, सूर्या सावित्री दसवें मंडल के पचासवें सूक्त की रचियता है। (17) इस प्रकार विश्ववारा, घोषा, अपाला, शाश्वती, अंडिरसी, उर्वशी, यमी, इन्द्राणी, आदि ऋषिकाओं के भी अनके सूक्त मिलते हैं। रही बात शुद्रों के ज्ञान की तो देवर्षि नारद की महत्ता से तो भारतीय संस्कृति का अल्प ज्ञान रखने वाला जन भी परिचित है जो शुद्रादासी (18) की कोख से जन्मे थे। मध्यकाल में कृष्णभक्त मेवाड़ की राजरानी मीरा शुद्रकुल, जन्मी, किंतु प्रातः पूजनीय संत कवि रैदास को गुरू बनाया था तो समाज की कुप्रथाओं के शिकार बालक भीमराव को निम्न जाति जन्मणा होने पर भी गुरू अम्बेड़कर ने अपनी जाति का नाम प्रदान कर कुंप्रथाओ को दूर करने की उज्ज्वल पहल करी और भीमराव भारत के यशस्वी संविधान निर्माता की भूमिका निभाने वाले बने। खैर हजाऱों साल के कालखंड में कभी न कभी तेज प्रकाश वाले दीपक की लौ भी मद्धिम हो ही जाती है किंतु सौभाग्य से वह बुझी नहीं। अंगे्रजी शिक्षा नीति ने इस ज्ञान ज्योत को बुझाने के कुप्रयास किए थे, पर जागरूक राष्ट्रप्रेमी विचारकों ने ऐसा नहीं होने दिया। स्वामी विवेकांनद ने ब्रिटिश राज में ही कहा था कि-

"Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there, undigested all your life, we must have live building, man making, character making assimilation of ideas. If you have assimilated five ideas and made them your life and character you have more education than any man who has got by heart a whole library.

The idea therefore is that we must have the whole education of our country spiritual and secular, in our hand and it must be on national lines, through national method as far as practical." (19) इस उददे्श्य की पूर्ति रसहीन, उददे्श्यहीन, कौशलहीन जड़ हो चुकी मैकाले की शिक्षा को त्यागकर ही हो सकती है। आवश्यकता शिक्षा को जीवन से जोड़ने की होगी। वर्ष 2020 की नई शिक्षा नीति ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है। कक्षा पांच तक की पढ़ाई मातृभाषा में होगी तो कक्षा छह से विद्यालय में ही विद्यार्थियों को रोजगार परक व्यवहारिक शिक्षा जैसे मोबाइल ठीक करना, सॉफ्टवेयर बनाना आदि का कौशल सिखाया जाएगा। संस्कृत भाषा के शिक्षण पर भी बल दिया जाएगा तो चिकित्सा और आई.टी.आई. जैसे संस्थानों में साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल कर तकनीकी शिक्षा और संवेदना का "मणि कांचन योग" किया जाएगा। आशा है नए भारत की नई उड़ान में नई शिक्षा नीति मूल्य परक और ज्ञान परक पंखों के साथ नए क्षितिजों के संस्पर्श कराने में सफल होगी तो दूसरी ओर प्राचीन भारत कि ज्ञान परम्परा और वर्तमान का तकनीकी कौशल भारत को विश्व गुरू की पद्वी पर पुनः प्रतिष्ठित करेंगें। यही राष्ट्र प्रेमियों की कामना है।

संदर्भः

1. आधुनिक शिक्षा पद्धति एवं व्यक्तित्व विकास- डॉ. बीना शुक्ला, नवीन शोध ससांर जर्नल, जुलाई - सितंबर 2017, पृ.-176
2. वही - पृ. 177
3. मनुस्मृति - 6/92, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
4. ईशवास्योपनिषद् (प्रथम श्लोक) गीता प्रेस गोरखपुर
5. शिक्षा दशा एवं दिशा-प्रो. ईश्वर शरण अस्थाना, प्रकाशक-अकादमिक एक्सेलन्स, वर्ष 2005, पृ.-18
6. ऋग्वेद (1/89/8) आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
7. ऋग्वेद (10/191/2) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
8. ऋग्वेद (10/191/3) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
9. यजुर्वेद (36/18) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
10. अथर्ववेद (3/30/2) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
11. अर्थववेद (12/1/12) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
12. तैतित्रीय ब्राह्मण (2.2.91) न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, अंसारी रोड़, दरियांगज, दिल्ली
13. तैत्तिरीय उपनिषद (8.1) गीता प्रेस गोरखपुर
14. भारत में गुरू शिष्य परम्परा - शुकदेव, (सेवा समर्पण पत्रिका), अंक - 10, वर्ष - 38, जुलाई 2021, पृ. - 11
15. ऋग्वेद (10.64.10), आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
16. ऋग्वेद (10.64.11.), आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली
17. प्राचीन भारत में नारी शिक्षा-डॉ मीरा कुमार, विकल्प प्रकाशन दिल्ली, वर्ष 2019, पृ. 18
18. कल्याण-भक्त चरितांक, वर्ष 26, सं.-1, गीता प्रेस गोरखपुर पृ-50
19. शिक्षा दशा एवं दिशा-प्रो ईश्वर शरण अस्थाना, अकादमिक एक्सेलन्स प्रकाशन, वर्ष 2005, पृ. 21

❖

वरिष्ठ लेखिका

49 भागीरथी अपार्टमेंट्स सैक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली 110085

मो. 9868792476

आजादी का अमृत महोत्सव

राष्ट्रभाषा चिंतन और पं. दीनदयाल उपाध्याय

– डॉ. गायत्री सिंह

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की गणना भारतीय राजनीति के उन महान नेताओं में होती है जिनकी वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, बोल-भाषा आदि सब बहुत सरल व सीधा-सादा था, किंतु व्यक्तित्व व प्रतिभा असाधारण। एक कुशल संगठनकर्त्ता, विचारक, दार्शनिक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ व समाजसेवी पंडित उपाध्याय ने राजनीति में खो रहे मूल्यों एवं शुचिता को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र हित में समर्पित कर वे सदा इस पद के अनुगामी बने रहें एवं सदैव एक चिंतक के रूप में भी अपनी लेखनी चलाते रहे। 'दीनदयाल जी का सारा चिंतन असाधारण था। केवल सौ वर्ष के नहीं, अपितु बारह सौ वर्ष के कालचक्र को उल्टा घुमाकर देश में फिर से शांति, स्थिरता, मानवता, समृद्धि और स्वाभिमान का युग प्रारम्भ करने की उच्चाकाँक्षा से वे अभिमंत्रित हुए थे। जीवन ना तो एकाकी है , न एकांगी ही, इसका पूरा बोध उनमें था और इसीलिए जीवन का सर्वांगीण विकास करने वाला पांचवा वेद सदृश एकात्म मानववाद उनके अंतः करण से प्रस्फुटित हुआ।'[1] एकात्म मानव दर्शन के माध्यम से उन्होंने युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना हेतु अनुकरणीय वैचारिक आधार प्रस्तुत किया जो भारत को भारत से जोड़ने में सक्षम था।

पंडित उपाध्याय के चिंतन की परिधि विस्तृत व व्यापक थी। राष्ट्र व समाज से जुड़े प्रत्येक पक्ष पर उन्होंने बड़ी स्पष्टता के साथ अपने विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने छोटी-से-छोटी व बड़ी-से-बड़ी, प्रत्येक राष्ट्रीय व सामाजिक समस्या पर पूरी गंभीरता व संजीदगी से अपनी लेखनी चलायी। उनके चिंतन की यह विशिष्टता थी कि उन्होंने केवल समस्या पर ही आवाज नहीं उठाई, अपितु उनका समाधान भी प्रस्तुत किया। 'दीनदयाल जी जिस समय समाज कार्य, राष्ट्र कार्य और राजनीति में आए तब अंग्रेज तो यहां से जाने लगे थे, किंतु अंग्रेजियत बनी रह रही थी। औरंगजेब के उत्तराधिकारी तथा विदेशों के मानस पुत्र देश के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन को फिर से ध्वस्त करने लगे थे।---------- स्वतंत्रता प्राप्ति का सही बोध भले-भले

"पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक राष्ट्रवादी विचारक थे और अखंड भारत के पक्षधर थे, राष्ट्रवादी विचारों के वाहक और राष्ट्रीयता के पोषक थे। देश की स्वतंत्रता के पश्चात अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी का विरोध प्रारंभ हुआ। उनका मानना था कि हिंदी का विरोध राजनीतिक कारणों से हो रहा है। इस बात का उन्होंने खंडन किया कि हिंदी के कारण प्रांतीय भाषाओं का विकास बाधित होगा या केवल हिंदी न जानने के कारण अहिंदीभाषी क्षेत्रों के नागरिकों को अपने किसी भी अधिकार से वंचित होना पड़ेगा। जनसंघ के कालीकट में हुए 14वें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में बोलते हुए उन्होंने कहा था -जनसंघ ऐसे किसी कदम का समर्थक नहीं है जिससे हिंदी न जानने वालों को किसी भी अधिकार से वंचित रहना पड़े। इस हेतु जन संघ ने यह मांग की है कि संघ लोक सेवा आयोग की सभी परीक्षाएं प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से हो तथा भर्ती के लिए किसी भाषा विशेष के ज्ञान की बाध्यता न रहे। संक्रमण काल में जो अंग्रेजी का प्रयोग करना चाहें उन्हें भी सुविधा दी जा सकती हैय किंतु अंग्रेजी का प्रभुत्व निर्बाध बना रहे तथा हिंदी के प्रयोग की भी छूट ना हो यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।"

लोगों में ही भी नहीं था। दीनदयाल जी की स्वतंत्रता की संवेदना बहुत तरल थी। वह तो राजनीति में अनेक स्व का समावेश करते थे - जैसे स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वभाषा, स्वावलम्बन, स्वदेशी, स्वत्व आदि।'[2] उनकी राष्ट्र के विषय में नीति पूर्णता मौलिक थी एवं भारतीय परंपराओं पर आधारित थी। स्वतंत्रता के पश्चात देश में नवीन संविधान निर्मित होकर लागू हुआ। संविधान से सम्बन्धित अनेक ऐसे मुद्दे थे जिन पर पंडित उपाध्याय सहमत नहीं थे और उन मुद्दों को सदैव उन्होंने मुखरता से अपने विचार रखे। राष्ट्रभाषा ध्राजभाषा या स्वभाषा एक ऐसा ही महत्वपूर्ण मुद्दा था। राजभाषा के लिए संविधान में जो प्रावधान किए गए थे उन प्रावधानों से वे सहमत नहीं थे और उन्होंने सदा उन पर प्रश्न उठाए।

प्रस्तुत शोध आलेख में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के राष्ट्रभाषा या राजभाषा के विषय में जो विचार थे उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक है-'पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रभाषा संबंधी विचार।'

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य-राष्ट्रभाषा या राजभाषा के विषय में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने जो विचार व्यक्त किए हैं उनके विश्लेषण पर ढंग से अध्ययन करना है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रभाषा राजभाषा के सम्बन्ध में विचार-

देश की स्वतंत्रता के पश्चात हमारे संविधान निर्माताओं के समक्ष एक बड़ा प्रश्न उपस्थित हुआ कि राष्ट्र के कामकाज की भाषा क्या होगी? काफी विचार-विमर्श के बाद संविधान सभा ने हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया। इसके लिए संविधान में कई तरह के प्रावधान किए गये। 'हमारे संविधान निर्माताओं के सामने जो अनेक दुरुह समस्याएं आई, उनमें से हमारी किसी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अथवा संघ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न सर्वाधिक जटिल प्रश्न सिद्ध हुआ। अंत में अनुच्छेद 343 में शामिल किए गए, एक मध्यममार्गी सूत्र के अधीन देवनागरी लिपि वाली हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार किया गया।'[3]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राजभाषा के विषय में संविधान में उल्लिखित प्रावधानों का गहनता से अध्ययन किया और उनकी खामियों को उजागर करते हुए इस संदर्भ में समय? परअपने विचार रखे। राष्ट्रभाषा राजभाषा के विषय में उनके विचारों को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा समझा जा सकता है। --

राज भाषा का प्रयोग राष्ट्र के स्वतंत्र अस्तित्व व सम्मान का द्योतक -

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक राष्ट्रवादी विचारक थे जिन्होंने स्वदेशी को चाहे वह संस्कृति या शासन या भाषा का प्रश्न हो, देश के लिए अनिवार्य माना। उनका मानना था कि प्रत्येक राष्ट्र का विकास स्वभाषा में ही हो सकता है। स्वभाषा या मातृभाषा का स्थान कोई विदेशी भाषा चाहे वह कितनी समृद्ध और प्रभावशाली हो, नहीं ले सकती हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं ने गम्भीर चिंतन के पश्चात हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया था किंतु कुछ अंग्रेजी समर्थक राजनेताओं की साजिश से हिंदी को उसका वह स्थान नहीं मिल सका जिसके लिए उसको चुना गया था। पंडित दीनदयाल जी ने इस स्थिति को नहीं स्वीकारा। शासन-प्रशासन के सभी क्षेत्रों में हिंदी के स्थान पर जब कार्यकारी भाषा के रूप में अंग्रेजी को स्थापित किया गया तो राष्ट्र के लिए एक असहाय स्थिति होनी चाहिए थी। विदेशी शासकों, जिसने सैकड़ों वर्षो तक भारत की अस्मिता और स्वाभिमान को अपने पैरों तले रौंदा, उन्हीं की भाषा को पुनः निर्बाध रूप से प्रयोग की जाने की व्यवस्था बना दी गई। इस संदर्भ में पंडित दीनदयाल लिखते हैं - 'स्पष्ट था कि शासन के सभी क्षेत्रों में अभी अंग्रेजी अबाध रूप से चलती रहेगी। उसके प्रयोग को प्रतिबंधित करने वाला कोई आदेश नहीं दिया गया। कहा जा सकता है कि जब शासन तैयार ही नहीं तो उसको रोकने वाला कोई आदेश देकर शासन के काम को ठप कर देना व्यावहारिक नहीं होता। किंतु ऐसे क्षेत्र अवश्य हैं, जहां हमारे राष्ट्र के स्वतंत्र अस्तित्व एवं हमारे सम्मान का तकाजा है कि हम अंग्रेजी को छोड़कर अपनी राजभाषा का प्रयोग करें।'[4]

बहुत से अंग्रेजी समर्थकों का कहना था कि अंग्रेजी एक सभ्य और समृद्ध भाषा है जिसमे नए-नए अध्ययन क्षेत्रों के लिए भी शब्दावली उपलब्ध है। ऐसे तर्क देने वालों से उनका कहना था- 'एक बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि अंग्रेजी को तो यहां से जाना ही चाहिए, क्योंकि यह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रश्न है। मान लीजिए कि अंग्रेजों का राज हमारे लिए पर्याप्त लाभकारी होता, तब भी तो हम ब्रिटिश राज यहां नहीं चाहते क्योंकि वह एक पराया राज था। हम स्वराज्य के प्यासे थे। पराए सुराज्य से वह कदापि नहीं बुझ सकती। उसी प्रकार हमारी स्वभाषा की प्यास भी सुभाषा से नहीं मिट सकती।'[5] जैसे सुराज स्वराज का स्थान नहीं ले सकता उसी प्रकार सुभाषा भी स्वभाषा के स्थान पर स्थापित नहीं हो सकती। 1967 में हुए जनसंघ के कालीकट अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण मेंउन्होंने कहा था-'देश के कामकाज के लिए अपनी ही भाषाओं का प्रयोग व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान दोनों की दृष्टि से आवश्यक है।'[6]

राजभाषा राष्ट्रभाषा का प्रयोग राष्ट्र के स्वतंत्र अस्तित्व व सम्मान

का द्योतक है इसलिए शासन-प्रशासन के सभी क्षेत्रों में पंडित उपाध्याय राजभाषा के प्रयोग के पक्षधर थे। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि भाषा के विषय में पंडित उपाध्याय का दृष्टिकोण अतिव्यापक था। उनकी दृष्टि में भारत की सभी भाषाएं राष्ट्र भाषाएं हैं और सभी को विकसित किया जाना चाहिए। प्रांतीय भाषाओं का विकास किसी भी कारण से बाधित नहीं होना चाहिए, ऐसा उनका मानना था। अंग्रेजी भाषा में वह स्वयं पारंगत थे। एक समृद्ध भाषा के रूप में उसको स्वीकार कर उसका सम्मान करते थे किंतु विदेशी भाषा होने के कारण ही उसे अस्वीकार करते थे। उनका यही आग्रह था कि राष्ट्र का कामकाज स्वभाषा में हो क्योंकि भाषा राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रश्न है।

अंग्रेजी को सहयोगी राजभाषा कहना उपयुक्त नहीं-

भारतीय संविधान निर्माताओं के समक्ष उस समय जो राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियां बनी, जिसके कारण उन्हें अंग्रेजी को हिंदी के स्थान पर 15 वर्षों के लिए स्थापित करना पड़ा था, तब उस समय में अंग्रेजी को राजभाषा हिंदी की सहयोगी भाषा या सहभाषा कहने का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। क्योंकि संविधान में यह व्यवस्था करते समय अंग्रेजी के लिए ऐसा कोई शब्द संविधान निर्माताओं द्वारा उद्धृत नहीं किया गया था। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है- अनुच्छेद 343 में अथवा भाग 17 में जहां राजभाषा का विधान हुआ है सहयोगी राजभाषा के रूप में अंग्रेजी अथवा किसी अन्य भाषा की कल्पना नहीं की गई है। संविधान निर्माताओं को न यह शब्द ही सूझा और न उन्होंने इसकी आवश्यकता ही समझी। उन्होंने तो स्पष्ट रूप में यह कहा कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी तथा 15वर्ष की कालावधि में अंग्रेजी का उपयोग केवल राजकीय प्रयोजनों के लिए होगा।[7]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय अंग्रेजी को हिंदी की सहयोगी या सहभाषा कहा जाना रंच मात्र भी स्वीकार नहीं था। जब संविधान में सहयोगी या सह भाषा की कोई चर्चा नहीं की गई है तो हमारे शीर्षस्थ वैधानिक पदों पर बैठे राजनेताओं द्वारा अंग्रेजी के लिए यह शब्द नहीं प्रयुक्त किया जाना चाहिए था। विषम परिस्थितियों में यदि देश के प्रधान मंत्री द्वारा राजनैतिक कारणों से यह कहा भी गया हो तो भी राष्ट्रपति द्वारा अंग्रेजी के लिए सहभाषा या सहयोगी भाषा को कतई प्रयुक्त नहीं होना चाहिए क्योंकि राष्ट्रपति के शब्दों में विधान की शक्ति होती है। उन्हीं के शब्दों में -'उस समय प्रधानमंत्री ने सहयोगी भाषा शब्द का प्रयोग राजनीतिक दृष्टि से किया रहा होगा किंतु राष्ट्रपति के आदेश में जो कि एक विधान की शक्ति रखता है, इस शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए था।'[8]

1965 ई0 के पश्चात अंग्रेजी के प्रयोग पर निर्णय संसद द्वारा होना चाहिए था- भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात राजभाषा हिंदी के प्रयोग के संदर्भ में यह व्यवस्था बनाई गई थी कि राजकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के स्थान पर 15 वर्षों तक अंग्रेजी भाषा का उपयोग किया जाता रहेगा। इस प्रकार भारत में संविधान लागू होने के पश्चात (26 जनवरी 1950 से) 1965 तक राज काज में अंग्रेजी का प्रयोग होता रहा। होना यह चाहिए था कि 1965 के बाद हिंदी को उसका वह स्थान, जो उसके लिए संविधान निर्माताओं द्वारा नियत किया गया था, मिल जाना चाहिए था। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो सका। हिंदी अपने ही देश में, अपने ही घर में, अपने ही देश के राजनेताओं द्वारा पुनः निर्वासित हो गई। राष्ट्रपति के एक आदेश द्वारा राजकाज में अंग्रेजी का प्रयोग पूर्ववत जारी रहा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि राजभाषा के संदर्भ में अंग्रेजी की समय सीमा बढ़ाने के लिए यह तरीका उपयुक्त नहीं था। यह विषय संसद का था संसद को यह निर्धारित करना चाहिए था कि आगे अंग्रेजी भाषा का राष्ट्र में क्या स्थान होगा ? उनका कथन था कि - '15 वर्षों के पश्चात अंग्रेजी का राजकाज में कोई सहयोग नहीं रह जाता। हां यदि संसद आवश्यक समझे तो विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा का ऐसे प्रयोजनों के लिए उपयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि उस विधि में उल्लिखित हो। स्पष्ट है कि 1965 के बाद अंग्रेजी का क्या, कितना और कब तक स्थान रहेगा? इसका निर्णय संसद की विधि के द्वारा होना चाहिए था न कि राष्ट्रपति के आदेश द्वारा। राष्ट्रपति आने वाली संसद को इस प्रकार प्रतिबंधित नहीं कर सकते।'[9]

आज इसका दुष्परिणाम भली-भांति देखा जा सकता है। जिन-जिन क्षेत्रों में अंग्रेजी का प्रयोग एक सहयोगी भाषा के रूप में प्रयुक्त होना प्रारंभ हुआ था, आज अंग्रेजी उन सभी क्षेत्रों में प्रमुख भाषा के रूप में व्यवहार में लाई जा रही है। हिंदी अपने ही देश में पिछड़ गई है। उसका स्थान सीमित व संकुचित हो गया है। 'विदेशों से हमारे जो संबंध आते हैं वह हमारी अपनी ही भाषा में होने चाहिए हमें तो अपने स्वाभाविक राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण अंग्रेजी को इस क्षेत्र से विदा देनी चाहिए।'[10]

नागरी अंकों के स्थान पर अंग्रेजी अंको का प्रयोग अनुचित-

संविधान द्वारा जब हिंदी को राजभाषा घोषित करने के बावजूद उसे पदच्युत करते हुए अंग्रेजी को 15 वर्षों के लिए उसके स्थान पर पदस्थापित किया गया तो अपने ही देश में हिंदी बहिष्कृत सी होकर रह गई। हिंदी के अक्षरों के साथ-साथ नागरी लिपि अंको को भी यह बहिष्कार झेलना पड़ा जो सतत जारी है। आज हम अपने हिंदी के सामान्य लेखन में भी नागरी अंकों के स्थान पर अंग्रेजी अंको का प्रयोग कर रहे हैं। दिन-प्रतिदिन हिंदी

नागरी अकों का प्रयोग घटता जा रहा है। आज स्थिति यह है कि जहां हिंदी नागरी अंकों का प्रयोग हम कर सकते हैं या होना चाहिए, वहां भी हम अंग्रेजी अंको का ही प्रयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नई पीढ़ी नागरी अंकों को भूलती जा रही है। दीनदयाल जी ने इस स्थिति को भांप लिया था। उन्होंने कहा था-'नागरी अंकों के सम्बन्ध में जो आदेश मिला, उसके फल स्वरुप एकरूपता के नाम पर, उनको चारों ओर से बहिष्कृत होना पड़ा। राजभाषा आयोग ने यद्यपि यह स्पष्ट कहा था कि हिंदी के प्रकाशनों में नागरी के अंकों का ही प्रयोग होना चाहिए य किंतु शासन ने हिंदी के इन प्रचलित अंको को चलने नहीं दिया। संविधान में अंग्रेजी अंक की उस समय जो सौदेबाजी हुई उसमें हम फंस गए। किंतु उस आधार में जहां न्यायतरू नागरी अंक प्रस्तुत हो सकते हैं या होते रहे हैं, वहां से भी उनको हटा देना तो ठीक नहीं रहा।'[10] आज हम देख सकते हैं कि नागरी अंकों को देख पाना कठिन हो रहा है। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्र व पुस्तकों में भी जहां नागरी अंक प्रस्तुत होने चाहिए, वहां अंग्रेजी अंक प्रयुक्त हो रहे हैं। इसके लिए शासन की नीतियों के साथ-साथ समाज, पाठक व प्रकाशक भी बराबर के जिम्मेदार हैं। केवल शासन की नीतियों को ही जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं है। पूरी व्यवस्था कहीं न कहीं दोषी है। नागरी अंकों की आज जो दुर्दशा है, दीनदयाल जी ने इसकी कल्पना भी नहीं की होगी। इसीलिए उनका आग्रह था कि जहां नागरी अंको का प्रयोग किया जा सकता है, वहां इसका ही प्रयोग करना चाहिए। इसको हटाना उपयुक्त नहीं होगा।

हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिए-

हिंदी के राजभाषा घोषित होने के बाद हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का प्रश्न उठा। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू अंग्रेजी से अत्यधिक प्रभावित थे। नेहरू ने हिंदी के विकास के प्रति अपना ढुलमुल रवैया अपनाया। उनका मानना था कि आधुनिक प्रौद्योगिकी की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण हिंदी में संभव नहीं है। उनका यह भी मत था कि जो अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं, उनको हिंदी में ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिए जाने चाहिए। वह संस्कृतनिष्ठ हिंदी के स्थान पर उर्दूनिष्ठ हिंदी के पक्षधर थे। पंडित दीनदयाल जी ने नेहरू के इन सभी विचारों को अपने तर्कयुक्त वाद से काटा, जो उनके भाषाई ज्ञान, राष्ट्रभाषा प्रेम, स्वदेशी भावना व प्रगाढ़ पांडित्य का द्योतक है। उनका मानना था कि यदि पारिभाषिक शब्दावली में मूल शब्द ग्रीक या लैटिन का लिया गया तो विज्ञान और विद्या के क्षेत्र में उनसे निकले हुए शब्द को लेना अनिवार्य हो जाएगा। यदि उनके साथ संस्कृत या हिंदी के उपसर्ग औरप्रत्यय को जोड़ा गया तो प्रथम तो वह सरल एवं सहज नहीं होगा, दूसरे इस प्रकार का बना हुआ शब्द संस्कृत धातु से बने हुए शब्द से और भी कठिन हो जाएगा। इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अति प्रचलित शब्द जज का उदाहरण लिया। जज को यदि हम हिंदी में स्वीकार कर प्रयोग में लाएं, तो मूल शब्द जज से बने धातु साधितों जैसे जुडिशरी, जुडिशल, जजशिप, जजमेंट, ज्युडिकेयर, ज्युडिशियन, प्रोजज, जस्टिस, जस्टिफाई, ज्यूरी , ज्यूरिस्डिक्शन आदि अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनका हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में प्रयोग कैसे संभव हो सकेगा। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के मूल शब्द एवं व्युत्पन्न शब्द एवं व्युत्पन्न शब्दों का भारतीयकरण भारी गड़बड़ी करने वाला होगा। उनके ही शब्दों में -'उसका भारतीयकरण करने का यदि प्रयास किया गयातो शिवजी की बारात बन जाएगी, भाषा नहीं।'[12] इस प्रकार उनका स्पष्ट मत था कि हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करते समय यदि हम अंग्रेजी के अति प्रचलित या जन सामान्य की बोली से निकले हुए शब्दों को पारिभाषिक शब्दावली में स्थान देंगे तो इससे सरलता के स्थान पर दुरुहता और जटिलता ही उत्पन्न होगी। 'संस्कृत धातु से बने शब्द यथार्थ भाव को व्यक्त करने में सक्षम होंगे। इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है- संस्कृत धातु से बना हुआ शब्द आज चाहे कुछ अनजान-सा और कठिन प्रतीत हो, किंतु थोड़े ही दिनों में यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह शब्द हमारे लिए अधिक सुलभ एवं प्रामाणिक दृष्टि से सूक्ष्म एवं यथार्थ भाव को व्यक्त करने वाला होगा।

संस्कृत निष्ठ पारिभाषिक पारिभाषिक शब्दावली न केवल भारत के लिए अपितु संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया के लिए काम दे सकेगी तथा आने वाली शब्दावली में वही अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली बन सकेगी।'[13] उस समय अनेक राजनेताओं ने पारिभाषिक शब्दावली कैसे निर्मित हो? इस विषय पर बिना भाषा की बारीकियों को समझे हुए अपने-अपने मत दिए थे। दीनदयाल जी का स्पष्ट मत था कि पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण भाषाविदों एवं भाषाशास्त्रियों का कार्य है और इस कार्य को उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए। उन्होंने कहा था -'राजनीतिज्ञ भाषा के नाम पर लड़ सकते हैं, पर भाषा का सृजन नहीं कर सकते।'[14] दीनदयाल जी के लिए राष्ट्र एवं राष्ट्र हित सर्वोपरि था। भाषा के आग्रह में भी वे राष्ट्रहित ही देखते थे। उन्होंने इस बात की भी चिंता नहीं की कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी का पक्षधर होने के नाते उनकी छवि पुरोहित तंत्र के समर्थक की, घोषित कर दी जाएगी या उर्दू निष्ठ हिंदी अर्थात हिंदुस्तानी के विरोध के कारण मुस्लिम मतदाता उनसे नाराज होकर उन्हें अपना मत नहीं देंगे।

हिंदी भाषी क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी को सिखाने की पर्याप्त व्यवस्था हो -

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक राष्ट्रवादी विचारक थे और अखंड

भारत के पक्षधर थे, राष्ट्रवादी विचारों के वाहक और राष्ट्रीयता के पोषकथे। देश की स्वतंत्रता के पश्चात अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी का विरोध प्रारंभ हुआ। उनका मानना था कि हिंदी का विरोध राजनीतिक कारणों से हो रहा है। इस बात का उन्होंने खंडन किया कि हिंदी के कारण प्रांतीय भाषाओं का विकास बाधित होगा या केवल हिंदी न जानने के कारण अहिंदीभाषी क्षेत्रों के नागरिकों कोअपने किसी भी अधिकार से वंचित होना पड़ेगा। जनसंघ के कालीकट में हुए 14वें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में बोलते हुए उन्होंने कहा था -जनसंघ ऐसे किसी कदम का समर्थक नहीं है जिससे हिंदी न जानने वालों को किसी भी अधिकार से वंचित रहना पड़े। इस हेतु जन संघ ने यह मांग की है किसंघ लोक सेवा आयोग की सभी परीक्षाएं प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से हो तथा भर्ती के लिए किसी भाषा विशेष के ज्ञान की बाध्यता न रहे। संक्रमण काल में जो अंग्रेजी का प्रयोग करना चाहें उन्हें भी सुविधा दी जा सकती है, किंतु अंग्रेजी का प्रभुत्व निर्बाध बना रहे तथा हिंदी के प्रयोग की भी छूट ना हो यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उपरोक्त कथन उनके द्वारा जन-जन की भाषा नीति स्पष्ट करने के लिए जनसंघ अध्यक्ष के तौर पर कहे गए थे, किंतु जनसंघ का वैचारिक आग्रह उनके ही मस्तिष्क की उपज थी।

उनका मानना था कि वास्तविक धरातल पर देश में हिंदी का विरोध कहीं नहीं है। शासन की नीतियों के कारण यह विरोध उत्पन्न हुआ है। उनका स्पष्ट मत था कि 'वास्तव में देश में हिंदी का कहीं विरोध नहीं है। यदि शासन की नीतियों के कारण अहिंदी भाषियों को हिंदी सीखने और उसमें पटुता प्राप्त करने की सुविधा और अवसर नहीं मिला तो वह अपने भविष्य केसम्बन्ध में आशंकित अवश्य हैं। उनकी आशंकाओं को दूर करने के लिए ऐसी व्यवस्था करना है जिससे अहिंदी प्रांतों के बच्चे हिंदी सीख सकें।'[16]

उनका स्पष्ट मत था कि भारतीय भाषाओं का आपस में कोई विवाद या विरोध नहीं है, क्योंकि अंग्रेजी के विदा हो जाने पर हिंदी ही केवल वह स्थान नहीं लेगी अपितु सभी भारतीय भाषाएं वह स्थान लेंगी। उनके अनुसार-'तमिल, बांग्ला आदि भाषाओं को उनके राज्यों से हिंदी ने नहीं, अंग्रेजी ने निकाल बाहर किया है। ----------केवल अखिल भारतीय स्तर पर ही अंग्रेजी का स्थान हिंदी लेगी।'[17]

यदि शासन ने भाषा के प्रश्न पर प्रारंभ में ही गंभीरता पूर्वक विचार किया होता और हिंदी के सीखने की उचित व्यवस्था अखिल राष्ट्रीय स्तर पर की होती तो राजभाषा हिंदी का विरोध इतना प्रबल न होता और एक बड़ी समस्या न बनता।

हिंदी के प्रति शासन का उपेक्षा पूर्ण ढुलमुल रवैया-

संविधान सभा द्वारा हिंदी को राजभाषा तो स्वीकार कर लिया गया किंतु कार्यकारी भाषा के रूप में 15 वर्षों के लिए उसके स्थान पर अंग्रेजी को स्थापित कर देना एक ऐसी राजनीतिक पैंतरेबाजी थी जिसने अनंत काल के लिए हिंदी को अपने वास्तविक स्थान से दूरकर दिया और भाषा विवाद को हल करने के स्थान पर उसे स्थाई बना दिया। माना यह गया था कि इन 15 वर्षों में हिंदी को समुन्नत कर अखिल भारतीय स्तर पर उसका प्रचार-प्रसार किया जाएगा और देशमें वह राजभाषा के तौर पर स्वीकार्य होकर अपने वास्तविक स्थान को ग्रहण कर लेगी अर्थात राजकाज के कार्यों में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का प्रयोग होने लगेगा, किंतु हुआ इसका उल्टा। हिंदी का विरोध और तीव्र हुआ और अंग्रेजी स्थायी रूप से राजकाज की भाषा के तौर पर स्थापित हो गई। पंडित दीनदयाल जी इस स्थिति के लिए शासन की हिंदी के प्रति उपेक्षापूर्ण नीति और ढुलमुल रवैये को जिम्मेदार माना। उनका मानना था कि हिंदी के प्रयोग को लेकर शासन टालमटोल कर रहा है। जनसंघ के कालीकट में हुए 14वें अधिवेशन में अध्यक्ष के तौर पर बोलते हुए उन्होंने तत्कालीन कांग्रेस सरकारपर आरोप लगाया कि 'केंद्र में हिंदी का प्रयोग करने में कांग्रेस सरकार ने न केवल टालमटोल की है बल्कि हिंदी को लेकर विवाद और संदेह निर्मित करने वाले ही कदम उठाए हैं।'[18]

केंद्र सरकार ने हिंदी के विकास, प्रचार व प्रसार में सक्रिय व प्रभावकारी भूमिका का निर्वहन नहीं किया। दीनदयालजी का मानना था कि शासन की हिंदी के विकास, प्रचार व प्रसार में निष्क्रिय भूमिका के कारण ही दक्षिण में हिंदी का विरोध प्रबल हुआ और सी राजगोपालाचारी जैसे प्रबुद्ध राजनेता हिंदी के विरोध में उतरे। उनके ही शब्दों में -'आज डॉ राम मनोहर लोहिया और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी में इस प्रश्न पर जमीन-आसमान का अंतर दिखाई देता है, किंतु उनके मूल में यदि जाएं तो शासन की निष्क्रियता के कारण हिंदी के योग्य प्रसार और विकास का अभाव ही है। उसके कारण ही राजाजी को लगा कि 1965 में हिंदी आ गई तो सभी तमिल वाले हिंदी ज्ञान के अभाव में नौकरियों से वंचित हो जाएंगे।'[19]

उनका मानना था कि 15 वर्षों में हिंदी का विकसित व समृद्ध रूप राष्ट्र के समक्ष आना चाहिए था य उसकी शब्दावली का निर्माण हो जाना चाहिए था और टंकण हेतु पटल विकसित हो जाना चाहिए था। किंतु शासन ने इस दिशा में सार्थक प्रयास नहीं किया। भारत की अधिकांश जनसंख्या हिंदी को राजभाषा के रूप में ही देखती है। जो विवाद उसे लेकर हो रहा है वह शासन की नीतियों के कारण है। इसका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं-'हिंदी के प्रश्न पर जबकि बहुतांश एकमत हैं, शासन की नीति के कारण ही विवाद खड़ा हो गया है। आज तक शासन ने पारिभाषिक शब्द क्यों नहीं बनाए ? क्या राजा जी ने उनको रोका था ? उन्होंने टंकण के मापक पटल क्यों नहीं

सुधारें? उसके किस हिंदी विरोधी ने बाधा डाली थी? बाधा हिंदी विरोधियों की नहीं शासन की उपेक्षा, टालमटोल एवं उदासीनता की नीति ही है।'[20] शासन की हिंदी के प्रति उपेक्षा, टालमटोल और उदासीनता की नीति ने हिंदी विरोध को राष्ट्रीय स्तर पर भड़काया और व्यापक बनाया। यदि सरकार ने राजभाषा के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए सच्चे मन से इसके विकास, प्रचार एवं प्रसार के लिए कार्य किया होता तो आज स्थिति दूसरी होती। अपने ही घर में हिंदी को उपेक्षा का दंश झेलना पड़ रहा है। राजभाषा हिंदी की इस स्थिति पर व्यथित होकर डॉक्टर संपूर्णानंद ने एक बार कहा था -'अंग्रेजी का पद चिरस्थाई करना देश के लिए लज्जा की बात है।'

इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र भाषा या राजभाषा के प्रश्न को राष्ट्रीय स्वाभिमान का विषय मानते हुए हिन्दी को राजभाषा एवं राजभाषा के रूप में यथोचित स्थान देने की वकालत की। उन्हें अंग्रेजी एक भाषा के रूप में तो किन्तु कार्यवाहक राजभाषा या हिन्दी राजभाषा की सह राजभाषा के रूप में कतई स्वीकार नहीं थी। उनका यह भी स्पष्ट मत था कि हिन्दी के राजभाषा के रूप में स्थापित होने पर किसी भी प्रान्तीय को अपने स्थान से च्युत नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि हिन्दी किसी प्रान्तीय भाषा का स्थान न लेकर अंग्रेजी के स्थान पर स्थापित होगी। अहिन्दी भाषियों के मन में व्याप्त हिन्दी के प्रति दुर्भावना को उन्होंने राजनीति का अंग और काफी हद तक केंद्र सरकार की नीतियों का दुष्परिणाम माना।

आज हमारे देश में भाषा के कारण प्रांतों में असंतोष दिखाई पड़ता है। कभी-कभी भाषाई आधार पर केंद्र व राज्य सरकारों में टकराहट दिखाई पड़ जाती है और कभी-कभी आरोप-प्रत्यारोप के भी दौर चल जाते हैं। यदि केंद्रीय सरकारों ने हिंदी के प्रति साफ नियत रखी होती और निष्पक्षता के साथ हिन्दी को राजभाषा के पद पर आसीन कराना चाहते हो भारत में राजभाषा विवाद का विषय न बनती। दीनदयाल भविष्य द्रष्टा थे। तत्कालीन परिस्थितियों में उपजे असंतोष और भविष्य में उनके प्रभावों का अंदाजा उन्हें भली प्रकार था। इसी लिए राजभाषा के विषय में उपजी समस्याओं के निवारणार्थ उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार महत्वपूर्ण हैं। यदि उनके विचारों को आधार बना कर राजभाषा की समस्या को सरकारें निपटना चाहें तो अवश्य सफलता मिलेगी। राजभाषा के सन्दर्भ में प्रस्तुत किये गए इनके विचार सदैव प्रासंगिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण बने रहेंगे।

संदर्भ

1. जोग, बलवंत नारायण, पंडित दीनदयाल विचार दर्शन, खण्ड 6 -राजनीति राष्ट्र के लिए, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्क_रण-1991, पृष्ठसंख्या 135
2. वही, पृष्ठ संख्या 136
3. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, नयी दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, षष्ठ संस्करण-2001, पृष्ठ संख्या-225
4. उपाध्याय, पंडित दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र भाषा की समस्या, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन, सप्तम संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या 23
5. जोग, बलवंत नारायण, पंडित दीनदयाल विचार दर्शन, खण्ड 6 -राजनीति राष्ट्र के लिए, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्क_रण-1991, पृष्ठ संख्या 40।
6. देवधर, विश्वनाथ नारायण, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन रू व्यक्तित्व दर्शन, कालीकट अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण, नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1987, पृष्ठ संख्या 85
7. उपाध्याय, पंडित दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र भाषा की समस्या, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन, सप्तम संकरण- 2014, पृष्ठ संख्या 20 -21
8. वही, पृष्ठ संख्या 22
9. वही, पृष्ठ संख्या 22
10. वही, पृष्ठ संख्या 23
11. वही, पृष्ठ संख्या 24
12. वही, पृष्ठ संख्या 24
13. वही, पृष्ठ संख्या 24
14. शर्मा, महेश चंद्र, आधुनिक भारत के निर्माता पंडित दीनदयाल उपा_ध्याय, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, संस्करण -2018
15. देवधर, विश्वनाथ नारायण, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन: व्यक्तित्व दर्शन, कालीकट अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण, नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1987, पृष्ठ संख्या 85
16. उपाध्याय, पंडित दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र भाषा की समस्या, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन, सप्तम संकरण- 2014, पृष्ठ संख्या 25
17. जोग, बलवंत नारायण, पंडित दीनदयाल विचार दर्शन, खण्ड 6 -राजनीति राष्ट्र के लिए, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्क_रण-1991, पृष्ठ संख्या 40
18. वही - पृष्ठ संख्या 44
19. उपाध्याय, पंडित दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र भाषा की समस्या, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन, सप्तम संकरण- 2014, पृष्ठ संख्या 25
20. वही, पृष्ठ संख्या 25

❖

प्राचार्य, अर्मापुर पी0 जी0 कॉलेज, कानपुर। अधिष्ठाता, कला संकाय,
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
ईमेल gaytrisingh59@gmail.com मोबाइल9451968714

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना

– डॉ. आलोक रंजन पांडेय

"हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के पहले युग यानी भारतेंदु युग में राष्ट्रीय चेतना का जो स्वर भारतेंदु और उनके मंडल ने धीरे धीरे ज़माने की कोशिश की उसके बाद के साहित्यकारों ने बड़े प्रभावी रूप में आगे बढ़ाया।श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद और रामधारी सिंह 'दिनकर'जैसे कवियों ने अपने काव्य में देश और उसकी पावन भूमि का पुण्य स्मरण किया।चाहे निराला हों या सुभद्रा कुमारी चौहान चाहे जयशंकर प्रसाद हो या बच्चन सभी के यहाँ अपने राष्ट्र की चेतना को प्रभावी रूप में हम देख पाते हैं।ऐसा नहीं है कि जब उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत आज़ाद हो गया तो अचानक से साहित्य में राष्ट्र के लिए, राष्ट्र को समर्पित या राष्ट्रीय चेतना से युक्त कविताएँ लिखी जानी बंद हो गईं।यह प्रक्रिया अनवरत जारी रही और उसके बाद भी लोगों ने अपने साहित्य में राष्ट्र के विविध रूपों के बारे में बताने की कोशिश की।"

स्वाधीनता के आगमन के साथ ही गुलामी की गहन निशा का अवसान हुआ। देश पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त हुआ। नवीन समाज-रचना,नए जीवन मूल्यों और नूतन विचार-दिशाओं के लिए नवल मापदंडों का नव निर्धारण होने लगा। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप तब-जीवन के व्यवस्थापन हेतु नये साध्य और नवल साधन जुटाये जानेलगे। युगानुरूप राष्ट्र नवीन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक-ध्येय, एक मन और एक-रूप होकर विकास पथ पर आगे बढ़ने को आतुर दिखायी देने लगा। पर इस आगे बढ़ने के क्रम में सांप्रदायिकता के विनाशकारी तूफान ने भयंकर उत्पात मचाया। अंग्रेजों की विभेद-नीति ने हिन्दू और मुसलमान जातियों के मध्य भीषण रक्तपात और भयंकर नरसंहार का हृदयविदारक महान कारुणिक चित्र ला उपस्थित किया। विभाजन के बाद भी राष्ट्र के हृदय का अन्तराल क्षुब्ध और अशान्त वातावरण के भीषण आघातों को व्याकुलता के साथ झेलता रहा ।ऐसी विषम और दर्दनाक परिस्थिति से पार पाने के लिए देश का प्रत्येक प्रबुद्ध जन कटिबद्ध हो गया। राष्ट्रीय कवियों की वाणी साम्प्रदायिक विद्वेष के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता के स्वर में गूंज उठी। लेखकों की लेखनी चली,नेताओं ने भाषण दिये,कवियों ने राष्ट्रीय एकता का स्वर साधा और बलिदानियों ने साम्प्रदायिकता के शमन के लिए हँसते-हँसते प्राण न्योछावर कर दिये। केवल देश की आजादी तक ही राष्ट्रीयता सीमित नहीं रही है अपितु आज भी हर भारतीय राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हैं। राष्ट्रीय-चेतना के बारे में बात करने से पहले हमें 'राष्ट्र'और 'राष्ट्रीयता' को जानना आवश्यक है।

राष्ट्र क्या है? क्या यह केवल कोई भौतिक वस्तु है या किसी निश्चित परिसीमन में कोई भूमि या वहाँ पर रहने वाले लोगों का एक विशाल समुदाय या समूह?क्या है राष्ट्र? इसको समझना आवश्यक है।राष्ट्र मनुष्य के कार्यों और उसके चिंतन की वृहद पृष्ठभूमि से जीवन संचालित करने का वह सिद्धांत है जहाँ पर मनुष्य के कर्मों में आस्था और संस्कृति के सम्मिश्रण से एक सभ्यता का जन्म होता है। सभ्यताओं के इतिहास पर अगर हम ग़ौर फ़रमाएँ तो हम देखते हैं कि बहुत प्राचीन समय से ही माँ और मातृभूमि को एक उच्च स्थान प्राप्त है।हमारे यहाँ कहा भी गया है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी'। वह पृथ्वी ही है जो मनुष्य का लालन पालन करती है और उसके हिस्से में बसने

वाले वहाँ के समुदाय की ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपनी भूमि की रक्षा करें। जब यह ज़िम्मेदारी वहाँ के जन समुदाय के द्वारा ग्रहण किया जाता है तो वह निश्चित भूभाग या उस भौगोलिक सीमा में उस भूमि को जिसमें भाव जागृत हो रहे हैं,राष्ट्र के रूप में हम जानते हैं। राष्ट्र शब्द 'सर्वधातुभ्य:ष्ट्रन' उगादि प्रत्यय के संयोग से 'रासु शब्दे' अथवा 'राजृ शोभते' धातु से बनता है। संस्कृत का 'राष्ट्रम' शब्द 'राज+ष्ट्रन' शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ है राज्य, देश, साम्राज्य आदि। व्युत्पति की दृष्टि से राष्ट्र संयुक्त शब्द और पुरुषवाचक संज्ञा है, जिसका अर्थ है"राज्य में बसनेवाला जनसमुदाय जिसमें जिला, प्रदेश, देश, अधिवासी, जनता और प्रजा का समन्वित स्वरूप निहित होता है।"1 आचार्य रामचंद्र वर्मा ने अपने कोश में 'राष्ट्र' की अवधारणा को बताते हुए लिखते हैं कि जब किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक-सी रीति, रिवाज तथा एक-सी विचारधारा होती है और वे एक शासन में रहते हैं, उसे राष्ट्र कहा जाता है।"[2] राष्ट्र में 'ईय' प्रत्यय लगने से 'राष्ट्रीय' शब्द बनता है। 'राष्ट्रीय' शब्द 'राष्ट्रे भव इति राष्ट्रीयता' से भी बना है। राष्ट्र+घञ् (रष्ट्रियः)' हिंदी भाषा में 'राष्ट्रीय एकस्य भाव इति एकता' के रूप में हैंराष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है। और एक विस्तृत अस्मिता के रूप में उभर कर आती है तब 'राष्ट्रीय-चेतना' साकार हो उठती है। 'राष्ट्रीय चेतना' के अंतर्गत समष्टि-हित की भावना, लोक-हित की भावना प्रखर रूप से विद्यमान रहती है, अर्थात जब व्यक्ति-चेतना अपनी सीमा को त्यागकर राष्ट्रहित में अनंत विस्तार पा लेती है, तब वह राष्ट्रीय-चेतना कहलाती है। राष्ट्रीय-चेतना समाज के अपनत्व के उर्वर धरातल पर विकसित होती है, इसलिए समाज में आपसी सहयोग और समन्वय की अनिवार्यता होती है। इसी से राष्ट्रीय-चेतना में देश-प्रेम की पावनधारा, प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अनुराग, धर्म और संस्कृति के प्रति प्रेरक निष्ठा, परंपराओं के प्रति आस्था, स्वाभिमान के मनमोहक रंग के साथ सर्वजन हिताय की भावना विद्यमान रहती है।

राष्ट्र की अवधारणा एकदम अभी की नहीं, प्राचीन है परंतु उन्नीसवीं सदी के बाद राष्ट्र की अवधारणा एक नए कलेवर में उभर कर के आती है जिसके अंतर्गत व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता और उसकी सुरक्षा के लिए राष्ट्र की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। राष्ट्रवाद इसके बाद एक ज्वार के रूप में आया। महात्मा गांधी के शब्दों में यदि हम बात करें तो वे राष्ट्र को एक स्वतंत्र देश के रूप में स्वीकार करते हैं। एक राष्ट्र के अंतर्गत उसके नागरिकों में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना जागृत करनी होती है, जिसमें देश की स्वतंत्रता एकता और अखंडता को प्रमुख माना जाता है जिसके लिए हम अपने प्राणों को भी न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राष्ट्र के प्रति वहाँ के रहने वाले लोगों की सभी प्रकार की भावनाएँ ही 'राष्ट्रीय-चेतना' है। उस देश के लोगों का अपना गौरवमयी इतिहास, वहाँ का चिंतन,वहाँ की संस्कृति,परंपराएं, वहाँ के धार्मिक विश्वास, वहाँ की भाषा, खानपान आदि सभी तत्व सम्मिलित होते हैं। परंतु यह देखा जाता है कि कई बार, कई कारणों से बाह्य आक्रमणकारी देश की सुरक्षा के लिए ख़तरा बनते हैं। उनकी मंशा उस राष्ट्र को खंडित करने की होती है, ऐसे विषम परिस्थितियों में उस देश के निवासियों के मन में अपने देश के प्रति प्रेम-भाव, सदभाव,त्यागवीरता और लगाव का जागरण कराना हमारी ज़िम्मेदारी बन जाती है। ऐसा ही भारत के साथ हुआ। लंबे समय से यहाँ पर बाह्य आक्रांता यूँ कहें कि मुस्लिम शासक अपनी सत्ता जमाए हुए थे।,ऐसे में अंग्रेजों का भारत में आकर आधिपत्य जमाना भारत के लिए एक नई क़िस्म की चुनौती उपस्थित कर रहा था।उस चुनौती में कुटिलता थी, चालाकी थी, सत्ता की हनक और ताकत भी थी। हमें इन चुनौतियों से एक साथ निपटना था और उसके लिए यह आवश्यक था कि देशवासियों के मन में देश के प्रति एक मजबूत भावना को जागृत किया जाए।

यदि भारत में राष्ट्रीय चेतना के उद्भव की बात करें तो यह 19वीं सदी के मध्य से लगभग प्रारंभ हुआ माना जा सकता है, जब से यहाँ पर नवजागरण की शुरुआत देखने को मिलती है। इसके पीछे कई कारण है परंतु अगर हम साहित्य में देखें तो सांस्कृतिक कारण प्रमुख रूप से हमारे सामने आता है। यहाँ के बहुत सारे समाज सुधारक और साहित्यकार इससे जुड़े और उन्होंने इस देश के बेड़ियों को स्वतंत्र करने के लिए अपने स्तर पर कार्य किया। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशव चंद्र सेन आदि ने सांस्कृतिक जागरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और लोगों को धीरे धीरे अपना एक साझा दुश्मन नज़र आने लगा। आगे के समय में देश में बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसे,नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई को अधिक तेजी से आगे बढ़ाया। उन्होंने एक राष्ट्र के तौर पर भारत के स्वरूप पर भी बात करनी शुरू की हमने देखा कि भारतीय जनमानस में कुरीतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठ रही है। अतीत की गौरवमय परंपरा को फिर से जगाने की कोशिश की जा रही है, देश की दुर्दशा के कारणों की पड़ताल करने की कोशिश की जा रही है,अंधविश्वास से लोगों को जगाने की बात की जा रही है और सबसे बड़ी बात साम्राज्यवादी ताक़त बन चुकी ब्रिटिश सत्ता को यहाँ से उखाड़ फेंकने की एक दृढ़ संकल्प नज़र आया।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के पहले युग यानी भारतेंदु युग में राष्ट्रीय चेतना का जो स्वर भारतेंदु और उनके मंडल ने धीरे धीरे ज़माने की कोशिश की उसको बाद के साहित्यकारों ने बड़े प्रभावी रूप में आगे बढ़ाया। श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद और रामधारी सिंह 'दिनकर'जैसे कवियों ने अपने काव्य में देश और उसकी पावन भूमि का पुण्य स्मरण किया। चाहे निराला हों या सुभद्रा कुमारी चौहान चाहे जयशंकर प्रसाद हो या बच्चन सभी के यहाँ अपने राष्ट्र की चेतना को प्रभावी रूप में हम देख पाते हैंऐसा नहीं है कि जब उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत आज़ाद हो गया तो अचानक से साहित्य में राष्ट्र के लिए, राष्ट्र को समर्पित या राष्ट्रीय चेतना से युक्त कविताएँ लिखी जानी बंद हो गई। यह प्रक्रिया अनवरत जारी रही और उसके बाद भी लोगों ने अपने साहित्य में राष्ट्र के विविध रूपों के बारे में बताने की कोशिश की।

जैसा कि उपर मैंने कह था कि देश की स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात राष्ट्र के सम्मुख अनेक जटिल समस्याएँ मुँह बाये खड़ी थी जिनके तात्कालिक

समाधान के लिए राष्ट्र का प्रत्येक समाजसेवी विचारक चिंतित था। राष्ट्र के सम्मुख स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ सर्वप्रथम विस्थापितों के पुनर्स्थापन की समस्या विकट रूप लिये थी। लाखों निरीह भारतीय परिवार पाकिस्तान बनने के फलस्वरूव पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) और पूर्वी बंगाल (पूर्वी पाकिस्तान) से निस्सहाय अवस्था में भारतीय गणराज्य में पहुँच रहे थे। पाकिस्तानवासियों की भीषण घृणा और विद्वेष के शिकार ये हिन्दू परिवार क्षत-विक्षत अवस्था में भारतमाता के चरणों में कराह रहे थे। इनके साथ किये गये अमानुषिक और पाशविक कृत्यों को देश का इतिहास कभी भुला नहीं सकता। स्वतन्त्रता की प्रसन्नता शरणार्थियों की दुःखद गाथाओं के कारण त्याग और तपस्या की कसौटी में पुनः होम हो उठी थी। साम्प्रदायिक विद्वेष और घृणा का बवंडर शान्त होने में काफी समय लगा गया। क्योंकि पाकिस्तान के निरन्तर साम्प्रदायिक रवैये ने भारत के निवासियों के मन में भी प्रतिहिंसा की अग्नि को जन्म दे डाला। परिणामस्वरूप स्थिति को नियन्त्रण में लाने में काफी समय लगना स्वाभाविक था (इसी साम्प्रदायिक विद्वेष की प्रतिहिंसा में प्रज्वलित हो रहे एक मतवाले भारतीय ने देश के गौरव-मानवता के हितैषी पूज्य बापू को गोली का निशाना बना दिया। आज का कवि अपने स्वतन्त्र परिवेश में सामाजिक परिस्थितियों के प्रति कितना सचेष्ट है-यह उसकी यथार्थवादी मनोदृष्टि से स्वयं प्रकट है। राष्ट्रपिता गांधी की मृत्यु पर प्रगतिवादी कवियों ने बड़ी छटपटाहट व्यक्त की। नागार्जुन ने अपनी कविता 'महाशत्रुओं की दाल न गलने देंगे' में तात्कालीन समय का चित्रण करते हुए लिखा –

"बापू मरे...अनाथ हो गयी भारतमाता.....

अब क्या होगा....हाय! हाय! हम रहे कहीं के नहीं ...

लुट गये,रो-रोकर के आँख लाल कर लीं धूर्तों ने।"3

स्वातंत्र्योत्तर कवि जहाँ एक ओर यथार्थवाद की उपासना में संलग्न है,वहीं दूसरी ओर वह सामाजिक समस्याओं के प्रति पहले से अधिक सचेष्ट है। वह अपने देश के प्रति तो जागरूक है ही साथ ही वह मानवता के प्रति हो रहे अन्याय,अनाचार और शोषण के प्रति आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति करने में भी साहस का परिचय देता है। युद्ध के जिज्ञासु, हिंसा के पिपासु विश्व के समर्थ राष्ट्रों को अनेक रूपों में विगत महान युद्धों के परिणामों का बोध कराकर उन्हें शान्ति की अनिवार्यता समझाने में हिन्दी के राष्ट्रीय कवि सचेष्ट हैं। चन्द्रकुंवर बर्त्वाल ने हिरोशिमा के विनाश पर आँसू गिराने के साथ-साथ पूँजीवादी व्यवस्था को घृणा से देखता है–

"हिरोशिमा का शाप -

एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जायेगा / जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जायेगा।

आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा / न्यूयार्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पाएगा।"4

हरिवंशराय बच्चन को हम हालावाद के प्रवर्तक के रूप में जानते हैं और यह मानते हैं कि इनकी कविताओं में एक अलग क़िस्म की मस्ती है। प्रेम के संयोग एवं योग पक्षों का विशद वर्णन है परंतु बच्चन जी के काव्य में भी राष्ट्र के प्रति भावना दिखाई देती है वे लिखते हैं-

"उगते सूरज और चाँद में जब तक है अरुणाई / हिन्द महासागर की लहरों में जबतक तरुणाई,

वृद्ध हिमालय जब तक सर पर श्वेत जटाएँ बाँधे / भारत की गणतंत्र पताका रहे गगन पर छाई।"5

हम देखते हैं कि वह हालावादी कवि किस प्रकार भारत के 'गणतंत्र पताका' को गगन में सबसे ऊँचा स्थान दिलाने का सपना संजोए हुए हैं। इतना ही नहीं बच्चन अन्यत्र लिखते हैं-

"रुको प्रणाम इस ज़मीन को करो / रुको सलाम इस ज़मीन को करो,

समस्त धर्म-तीर्थ इस ज़मीन पर / गिरा यहाँ लहू किसी शहीद का।"6

हरिवंशराय बच्चन की कविता में देश के लिए अपने प्राणों का न्यौछावर करने वाले व्यक्ति को जिसे वे,शहीद का दर्जा दे रहे हैं उस ज़मीन को वो तीर्थ के रूप में देख रहे हैं। जहाँ पर देश के सेनानियों का लहू गिरा हो, जहाँ भूमि रक्त रंजित रही हो और उस रक्त के प्रवाह के कारण आपको आज़ादी मिली हो ऐसी पुण्य भूमि को बार बार नमन करने की बात हरिवंश राय बच्चन अपनी कविता में करते हुए नज़र आते हैं। बच्चन को हम प्रखर रूप से राष्ट्रीय चेतना के कवि के रूप में नहीं जानते हैं परंतु उनकी रचनाओं में यह बार बार हमें दिखता है। सोहनलाल द्विवेदी ऐसे कवि थे जिनकी कविता में राष्ट्रीय भावना प्रमुख तत्व रहा। वे लिखते हैं-

"जब तक एक रक्त कण तन में / डिगे न तिल भर अपने प्रण में,

हाहाकार मचावें रण में / जननी की संतान

जय राष्ट्रीय निशान!,"7

इसमें वे अपने देश के प्रति तब तक लड़के रहने की बात कर रहे हैं जब तक देशवासियों के शरीर में खून, का एक भी कतरा शेष है। वे तब तक प्रण करके देश के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देने की बात करते हैं। वे कहते हैं कि यदि हम इस जननी की संतानें हैं तो हमें इसके लिए अपने को अर्पित करना ही होगा।

भारत माता के लिए अनेक कवियों ने कवितायें लिखीं। कुछ ऐसे लोग भी रहे हैं जो लगातार भारत माँ की सेवा के लिए तत्पर रहें उन्होंने सक्रिय रूप में कार्य किया और वे कवि हृदय भी रहे। 'अटल बिहारी वाजपेयी' का नाम इन्हीं लोगों की श्रेणी में आता है। उन्होने बहुत सी कवितायें लिखीं,अपनी कविताओं में वे एक सकारात्मक वातावरण एवं आशा का संचार करते हुए दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी कविता में देश के लिए योगदान देने वाले महान स्वतंत्रता सेनानियों को भी याद किया।

"याद करें काला पानी को / अंग्रेजों की मनमानी को,

कोल्हू में जुट तेल पेरते / सावरकर से बलिदानी को।

याद करें बहरे शासन को / बम से थर्राते आसन को,

भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू / के आत्मोत्सर्ग पावन को।

अन्यायी से लड़े / दया की मत फरियाद करें,

उनकी याद करें।"8

अटल बिहारी वाजपेयी अपनी कविताओं में भारत के सांस्कृतिक गौरव, भारत के भौगोलिक गौरव के तत्वों को चिन्हित कर उनकी सहायता से भारत के गौरवशाली इतिहास का ज़िक्र कर वे लिखते हैं-

"आज सिंधु में ज्वार उठा है / नगपति फिर ललकार उठा है

कुरुक्षेत्र के कण–कण से फिर / पांचजन्य हुँकार उठा है।"9

यह विशाल भारत की हुंकार है। यह वो हुंकार है जो अब आगे लगातार बढ़ती जाएगी,यह स्वर अब और अधिक मज़बूत होकर उभरेगा। गोपाल सिंह 'नेपाली' एक प्रमुख राष्ट्रीय चेतना के कवि माने जाते हैं। उनकी कविताओं में भारतीय राष्ट्र के प्रति लगाव और आकर्षण का विशद स्वरूप वर्णित होता हुआ दिखाई देता है। वे इसको अपनी अनेक कविताओं में व्यक्त करते हैं। हम कह सकते हैं कि गोपालसिंह 'नेपाली' की कविताओं का प्रमुख स्वर राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है तो इसमें कोई अतिशयोक्तिनहीं होगी। वे लिखते हैं-

"यह अतीत कल्पाना, यह विनीत प्रार्थना / यह पुनीत भवना, यह अनंत साधना,

शांति हो, अशांति हो, युद्ध, संधि, क्रांति हो / तीर पर, कछार पर, यह दिया बुझे नहीं!

देश पर, समाज पर, ज्योयति का वितान है !"10

वे अतीत की कल्पनाओं में भारत के गौरव को देखते हैं, वे भविष्य में भारत की गौरव इतिहास को देखते हैं। आगे चाहे जैसी विषम परिस्थिति आने वाली हो वे उसके लिए तैयार है और यह देश का दीपक कभी न बुझने के बाद अपनी कविता में करते हैं। यह महज़ एक उदाहरण है। ऐसे अनेक उदाहरण उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं। राष्ट्रीय चेतना की जो अलख इन कवियों ने जलायी उसकी परम्परा आज भी है मौजूद है न सिर्फ़ गंभीर साहित्य लेखन में अपितु मंच से भी बड़ी कवियों जैसे कुमार विश्वास, हरिओम पंवार, गजेन्द्र सोलंकी जैसे कवियों में भी देखने को मिलती है। मंचीय कवि कुमार विश्वास अपनी कवितओं में देश प्रेम के संबंध में लिखते हैं -

"है नमन उनको कि जिनको काल पाकर हुआ पावन / शिखर जिनके चरण छूकर और मानी हो गये हैं

कंचनी तन, चन्दनी मन, आह, आँसू, प्यार, सपने / राष्ट्र के हित कर चले सब कुछ हवन तुमको नमन है

है नमन उनको कि जिनके सामने बौना हिमालय / जो धरा पर गिर पड़े पर आसमानी हो गये।"11

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में जनतन्त्र के मूलभूत आधार को पुष्ट करने के प्रयोजन से राष्ट्रीय विकास के नाना विकास-चरणों को शक्ति एवं गति देने के लिए शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की है। राष्ट्र के नव-निर्माण में आज के कवि कंठ पहले से कहीं अधिक ऊँचे उठ रहे हैं। जीवन के प्रत्येक परिवेश में राष्ट्रीयता को उच्च आसन देने के लिए आज के हिन्दी कवि सर्वाधिक चिन्तित एवं जागरूक है। कहने की आवश्यकता नहीं, आज सामाजिक दृष्टिकोण के विकास के लिए जिन राष्ट्रीय चल चित्रों का निर्माण एवं प्रदर्शन देश के छविगृहों में हो रहा है उनमें भी राष्ट्रीयता का उभार निरन्तर उठ रहा है। आज राष्ट्रीय तरानों से हर युवा कंठ मचल रहा है। सिनेमा-संसार अपनी ढेर सारी विकृतियों एवं बुराइयों के रहते हुए भी जिन राष्ट्रीय मूल्यों एवं मापदंडों की प्रस्थापना में अग्रसर हो रहा है, वह उसका मौलिक प्रयास न होकर राष्ट्र के कवियों का सामूहिक अभियान है, जिसे स्तुत्य कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि के नाम राष्ट्रीय गीतकारों की दृष्टि से अत्यन्त महत्व के हैं। 'चौथा पालना' बालकवि वैरागी का एक ऐसा ही राष्ट्रीय गीत है। जिसमें जनसंख्या नियन्त्रण के राष्ट्रीय अभियान की वकालत की गयी है। हरिवंशराय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर से लेकर कवि प्रदीप,अटल बिहारी वाजपेयी और कुमार विश्वास तक की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है।

संदर्भ

1. मराठी व्युत्पति कोश : कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी : पृष्ठ-419
2. मानक हिंदी कोश : आचार्य रामचंद्र वर्मा : पृष्ठ-505
3. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन प्रसाद : पृष्ठ-470
4. वहीं : पृष्ठ-471
5. गणतंत्र- पताका: हरिवंश राय बच्चन, धार के इधर उधर , कविता कोश
6. शहीद की याद में, हरिवंश राय बच्चन: धार के इधर उधर : कविता कोश
7. जय राष्ट्रीय निशान: सोहन लाल द्विवेदी : कविता कोश
8. उनकी याद करें: मेरी एकावन कविताएँ: अटल विहारी वाजपेयी:किताब घर प्रकाशन:प्रथम संस्करण:2006: पृष्ठ-67
9. आज सिंधु में ज्वार उठा है:मेरी एकावन कविताएँ:अटल विहारी वाज-पेयी:किताब घर प्रकाशन:प्रथम संस्करण: 2006: पृष्ठ- 88
10. स्वधतंत्रता का दीपक: गोपाल सिंह 'नेपाली': कविता कोश
11. है नमन उनको: कुमार विश्वास :कविता कोश

❖

हिंदी विभाग रामानुजन कॉलेज, कालका जी, नई दिल्ली-110019

मो. 9540572211

ब्रज लोकगीतों में आजादी की गूँज

– डॉ. नृत्य गोपाल

देश के 74वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय संग्रहालय मथुरा ने एक प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें ब्रज क्षेत्र के स्वतंत्रता आंदोलन से जुडे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए। 'मथुरा की स्मृतियों में स्वतंत्रता के नायक' ऑन लाइन प्रदर्शनी में मथुरा के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले बलिदानियों के फोटोग्राफ और उनकी जानकारी दी गई थी। इससे पता चलता है कि 1930 में स्वामी घाट मथुरा पर स्वतंत्रता सैनानियों की विशाल सभा आयोजित हुई थी। इस सभा के बैनर पर लिखा था-'अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहने वाला अधिक पापी है।' सन् 1928 में साइमन कमीशन के विरोध में एक विशाल जुलूस निकाला गया था। सन् 1935 में राजनैतिक कॉन्फ्रेंस में मथुरा की 41 महिला क्रांतिकारी शामिल हुईं थीं। मथुरा के स्वतंत्रता सैनानियों के योगदान की यह गाथा ऑन लाइन प्लेटफार्म पर उपलब्ध है। ब्रज क्षेत्र का स्वतंत्रता प्रेम इस बात से भी पता चलता है कि यहाँ 1939 में पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने मथुरा में एक सभा को संबोधित किया। सन् 1921 में लाला लाजपत राय वृंदावन आए थे। यहां पर मिर्जापुर वाली धर्मशाला में स्वतंत्रता संघर्ष को लेकर उन्होंने एक सभा को संबोधित किया था।

28 नवंबर 2021 को 'मन की बात' कार्यक्रम' के 83वें संस्करण में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने ब्रज क्षेत्र का उल्लेख करते हुए कहा था कि -''ब्रज अध्यातम की भूमि है। यह भगवान के प्रेम का प्रत्यक्ष स्वरूप है।'' निःसंदेह ब्रज से निकला प्रेम संदेश अध्यात्म का मधुर गान है। कुरूक्षेत्र में दो सेनाओं के मध्य खड़े कृष्ण ने प्रेम (भक्ति योग) और नीति मार्ग का ही संदेश दिया था। यह कृष्ण पर ब्रज के संस्कारों का प्रभाव था। संत वाणी का उद्धरण देते हुए प्रधानमंत्री जी ने ब्रज महिमा संबंधी दोहा भी बोला-

यह आशा धरी चित्त में, कहत जथा मति मोर।

वृंदावन सुख रंग कौ, काहू न पायौ छोर। ।

प्रधानमंत्री जी ने पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के पर्थ में वहां की मूलनिवासी जगततारिणी दासी की आर्ट गैलरी का भी उदाहरण दिया। इस आर्ट गैलरी में कृष्ण की गोवर्धन लीला से संबंधित एक सुंदर चित्राकृति है जिसमें श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को छोटी उंगली पर उठा रखा है। इस पर्वत के नीचे सभी ब्रजवासी आश्रय लिए हुए हैं।

गोवर्धन पर्वत का यह प्रसंग कृष्ण के लीला चरित्र का उदाहरण ही नहीं है यह ब्रज के समरस समाज की अवधारणा का प्रमाण है। साथ ही यह ब्रज की स्वतंत्रताग्राही चेतना की संघर्ष गाथा भी है। यहां ब्रज के निवासी अपनी रक्षा का संकल्प लेते हैं और अदृश्य शक्ति की कृपा की अपेक्षा अपने कर्म और आत्मबल से अपनी सुरक्षा करते हैं। गोवर्धन पर्वत की पूजा के माध्यम से कृष्ण ब्रज समाज को यह संदेश दे रहे थे कि संकट के समय यदि कोई सहायक होता है तो वह है हमारा संघर्ष। यह संघर्ष यदि सामूहिक होगा तो हम किसी भी भयावहता का सामना करने में सक्षम होते हैं। कृष्ण सामूहिक संघर्ष का संदेश देने में सफल होते हैं। ब्रज का स्वतंत्रता आग्रही चरित्र निरंतर बना रहता है।

फाल्गुन मास में खेली जाने वाली बरसाना की लट्ठमार होली स्त्री शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन है। यह भारतीय ललनाओं की शत्रु पक्ष को ललकार है। ब्रज भाषा अपनी मधुरता के लिए जानी जाती है। ब्रज की गोपियां अपने प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। ब्रजवासी अपने मधुर और स्नेहिल व्यवहार के लिए जाने जाते हैं पर फाल्गुन का महीना जाना जाता है ब्रजबालाओं के बल प्रदर्शन और सामाजिक दायित्व के लिए। ध्यान रहे कि ब्रज में लट्ठमार होली का आरंभ मुगलकाल में हुआ था। यह कोई सहज उत्सव नहीं था। मध्यकाल में दक्षिण भारत से आए हुए संत श्रीलनारायण भट्ट जी ने इसे मुगल आक्रांताओं को चेतावनी के रूप में विकसित किया था। यह भारतीय ललनाओं के शौर्य का उत्सव है। ब्रज का यह उत्सव आधुनिक नारी के आत्मविश्वास और आत्मरक्षा का प्रतीक है। इस स्थिति के आकलन हेतु हरिगोपाल भट्ट जी की ये काव्य पंक्तियां उपयुक्त हैं-

अनुपम होरी होत है यहाँ लट्ठों की सरनाम, अबला सबला सी लगें यों बरसाने की बाम।

लट्ठ धरें कंधा फिरै, जबहि भगावै ग्वाल,जिमि महिषासुर मर्दिनी रण में चलती चाल।

भारत का प्रत्येक क्षेत्र स्वतंत्रता संघर्ष का साक्षी रहा है। सन् 1857 की बैरकपुर घटना के बाद मथुरा क्षेत्र में आजादी का रंग बिखर गया था। 31 मई 1857 को आजादी के दीवानों ने कोसी के पुलिस स्टेशन को लूट लिया था। इसके बाद पूरे आगरा, मथुरा, हाथरस, अलीगढ, भरतपुर, धौलपुर आदि जिलों में आजादी की ज्वालासुलगने लगी थी जो सन् 1947 तक लगातार धधकती रही। ब्रज का इतिहास और ब्रज के लोकगीतों में इसकी गूंज को महसूस किया जा सकता है।

ब्रज क्षेत्र में गाए जाने वाले लोकगीतों में राधा कृष्ण प्रेम विहार, लोक मनोरंजन, लोक रीति, लोक व्यवहार आदि को तो देखा ही जाता है इन लोकगीतों में आजादी की आग और आजादी की भोर का सुनहरापन दोनों देखे जा सकते हैं। सन् 1857 की क्रांति में सिपाही विद्रोह प्रमुख था तो 1915 में गांधी जी के भारत आगमन के साथ ही गांधी जी इस आंदोलन के निर्विवाद नेता बन गए थे। ब्रज क्षेत्र ने क्रांति के सशस्त्र दौर में सहभागिता की और जब गांधी जी ने स्वतंत्रता संघर्ष की कमान सँभाली तो ब्रज के लोगों ने गांधी जी को सिर आँखों पर बिठाया। ब्रज के लोकगीतों में आजादी का यह उल्लास पूरी ऊर्जा के साथ विद्यमान दिखाई पडता है।

ब्रज क्षेत्र सन् 1857 की क्रांति से लेकर 15 अगस्त 1947 तक स्वतंत्रता संघर्ष का सक्रिय केंद्र था। 1857 में मथुरा गोवर्धन क्षेत्र के गांव अडींग का विद्रोह इतिहास में दर्ज है। यहां के ठाकुर समाज ने अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ विद्रोह का झंडा बुलंद किया। परिणाम स्वरूप आगरा के कलैक्टर जर्नल ने इस विद्रोह को दबाने के लिए एक विशेष सैन्य टुकडी बुलाई। 22 जमींदारों को गोलियों से भून दिया गया जबकि 57 ठाकुरों को बाद में फांसी की सजा सुनाई गई। इस घटना ने 1857 के विद्रोह को देशव्यापी बनाया। मथुरा - गोवर्धन के बीच स्थित गांव अडींग आजादी के शिल्पकारों की भूमि के रूप में जाना जाता है। हाल ही में ब्रज क्षेत्र के लोगों ने इन शहीदों की स्मृति में स्मारक बनाने की मांग की है।

देश के 74वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय संग्रहालय मथुरा ने एक प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें ब्रज क्षेत्र के स्वतंत्रता आंदोलन से जुडे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए। 'मथुरा की स्मृतियों में स्वतंत्रता के नायक' ऑन लाइन प्रदर्शनी में मथुरा के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले बलिदानियों के फोटोग्राफ और उनकी जानकारी दी गई थी। इससे पता चलता है कि 1930 में स्वामी घाट मथुरा पर स्वतंत्रता सैनानियों की विशाल सभा आयोजित हुई थी। इस सभा के बैनर पर लिखा था-'अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहने वाला अधिक पापी है।' सन् 1928 में साइमन कमीशन के विरोध में एक विशाल जुलूस निकाला गया था। सन् 1935 में राजनैतिक कॉन्फ्रेंस में मथुरा की 41 महिला क्रांतिकारी शामिल हुई थीं। मथुरा के स्वतंत्रता सैनानियों के योगदान की यह गाथा ऑन लाइन प्लेटफार्म पर उपलब्ध है। ब्रज क्षेत्र का स्वतंत्रता प्रेम इस बात से भी पता चलता है कि यहाँ 1939 में पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने मथुरा में एक सभा को संबोधित किया। सन् 1921 में लाला लाजपत राय वृंदावन आए थे। यहां पर मिर्जापुर वाली धर्मशाला में स्वतंत्रता संघर्ष को लेकर उन्होंने एक सभा को संबोधित किया था।

विजयदशमी उत्सव की शृंखला में ब्रज क्षेत्र में टेसू-झांझी का उत्सव मनाया जाता है। इन टेसू गीतों में स्वतंत्रता का संदेश कैसे घर घर संप्रेषित किया जाता था यह देखना रोचक है। फिरंगियों को चोर कहकर संबोधित किया जाता था। इसका उदाहरण टेसू गीत की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

मारा है जी मारा है, जा दिल्ली पछाडा है।

दिल्ली में बैठा गोरा चोर, मार सिकंदर पहली चोट।

भारत माता एक सुंदर उपवन है। इस उपवन को फिरंगी वानर उजाड रहे हैं। ब्रज बालाओं ने सावन की मल्हार में भारत माता की रक्षा के लिए भगत सिंह से गुहार लगाई है। ज्ञातव्य है कि मल्हार ब्रज की सबसे लोकप्रिय लोकगीत शैली है। इसमें महिलाओं की मार्मिक पीडा व्यक्त होती है। विरह की मल्हारों में स्त्री दशा का जैसा करुण वर्णन मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस मल्हार में स्त्रियों की स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता का प्रमाण भी देखा जा सकता है-

बागन बंदरा भगतसिंह बस गए जी, ऐजी कोई दीन्हें हैं बाग उजार।

कौन भगावै अम्मा बंदरा बाग के जी, ऐ जी कोई कौन है सींचन हार...

गांधी पुरुष कौ अम्मा मेरी बाग है जी, ऐ जी कोई जवाहर सींचन हार...

बागन बंदरा भगतसिंह बस गए जी, ऐ जी कोई दीन्हें बाग उजार

कौन भगावै अम्मा बंदरा बाग के जी, ऐ जी कोई कौन भगावै समुंदर पार

गांधी भगावै बंदरा बाग के जी, ऐ जी कोई भागेंगे समुंदर पार

ठाडी ठाडी बहना मेरी रोमती जी, ऐजी कोई कौन झुलावै झूला आज

सतलज के तट पै बहना मेरी रोमती जी, ऐ जी कोई ठाडी ठाडी खावै पछार

सावन सूनौ भइया तो बिन है गयौ जी ऐजी कोई कौन झुलावै झूला आज।

बागन बंदरा भगतसिंह बस गए जी, ऐ जी कोई दीन्हें हैं बाग उजार।

ब्रज के लोकगीतों के बारे में एक बात ध्यान रखने की है कि ब्रज की कोई भी चर्चा राधा कृष्ण से आरंभ होती है और उसी में पर्यवसित हो जाती है। या कोई बात कहनी है तो अधिकांशतः उसका माध्यम राधा कृष्ण ही होंगे।आधुनिक युग में कृष्ण के साथ यदि कोई व्यक्तित्व लोकगीतों का विषय बन पाया है तो वह महात्मा गांधी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि गांधी की स्वीकृति ब्रज लोकजीवन की विशेष स्वीकृति में से एक है। गांधी की इस स्वीकृति का आधार उनका राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र गौरव की भावना है।

स्वतंत्रता संग्राम के अनेक जननायकों का नामोल्लेख ब्रज के लोकगीतों में मिल जाएगा पर नेतृत्व गांधी कर रहे होंगे।ब्रज लोकगीतों में गांधी के वर्णन पर चर्चा करने से पूर्व एक बात पर चर्चा प्रासंगिक होगी कि गांधी जब जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत आए तो 12 अप्रैल 1915 को उन्होंने दिल्ली की पहली यात्रा की। यहां से दक्षिण भारत लौटते हुए वे 14 अप्रैल को वृंदावन गए। इससे जाहिर है कि गांधी जी के हृदय में ब्रज बस रहा था। एक बार पुनः अप्रैल 1919 में जब ब्रिटिश सरकार द्वारा आतंकवादी अपराध अधिनियम के तहत उन्हें पलवल में गिरफ्तार किया गया तो उस रात वे मथुरा कारागार में रहे। यह बात भी ध्यान रखने की है कि गांधी के स्वप्नों का भारत इसी दौरान बन रहा था। इसके बाद सन् 1930-31 में भी वे वृंदावन गए। पूरे भारत में उनके आंदोलन के साथ ब्रज में उनकी यात्राओं से ब्रज लोक जीवन में उनकी छाप अमिट हो गई। ध्यान रहे कि कृष्ण की गीता गांधी जी की प्रिय पुस्तक है। उनके व्यक्तित्व पर इस कृति की अमिट छाप है। गांधी और ब्रज के संबंध को इस रूप में भी देखा जा सकता है। संभवतः यह उनके राजनीतिक चिंतन का आधार प्रतीत हो। ब्रज के लोकगीतों में गांधी की विराटता दिखाई पडती है। एक लोकगीत है-

अबतार महात्मा गांधी जी , भारत कौ भार उतारन कूं।

सिंरी राम ने राबन मारौ हौ, कृष्ण नैं कंस पछारौ हौ

गांधी की तुलना राम और कृष्ण से करना तथा धनुष और सुदर्शन चक्र के बराबर चरखे को रखना चमत्कारी प्रभाव की स्वीकृति है। तीनों के सामने योद्धा बदले हैं पर लक्ष्य एक ही है भारत भूमि की स्वतंत्रता। राम और कृष्ण की भांति गांधी भी अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं यह बात भी लोकगीत के माध्यम से समझी जा सकती है-

भारत देश गुलाम भयौ, गयौ गौरब गर्ब कौ डूब सितारौ।

वीर अनेक शहीद भए जब रोपी है दार लंगोटिया बारे नैं

देश आजाद कराइ दियौ जाकौ सत्य अहिंसा कौ मंत्र करारौ।

को नहीं जानत है जग में सिरी गांधी है मोहन नाम तिहारौ।

ब्रज भावपरक रचना प्रक्रिया के लिए जाना जाता है। सहज भक्ति और सहज स्वीकृति उसकी आत्मा में निवास करते हैं। गांधी के लिए लंगोटिया वारौ संज्ञा ब्रज की खांटी सहजता का प्रमाण है। इस लंगोटिया वाले की ख्याति दिन प्रतिदिन सवाई होती जा रही थी। ब्रज के लिए गांधी अवतारी पुरुष थे-

सुनि गांधी औतारी तेरी दिन दिन जोति सबाई रे।

सूरज बन धरती पै चमकौ , अरे धरती पै जोति समाई है।

सत कौ तेल, तेरे दिए में अरे देखि अहिंसा की बाती बनाई ऐ।

सुनि गांधी औतारी तेरी दिन दिन जोति सवाई है।

1921 में मद्रास की एक सभा में गांधी जी ने कहा था कि -''चरखा एक ऐसी चीज है जो हिंदू और मुसलमानों को ही नहीं, बल्कि भारत में रहने वाले अन्य धर्मावलंबियों को भी एक सूत्र में बांध देगा। चरखा भारतीय नारी के सतीत्व का प्रतीक है। '' चरखे को भारतीय नारी के सतीत्व का प्रमाण बताकर गांधी जी ने भारतीय नारी में आत्म सम्मान भरने का कार्य किया था। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि चरखा कातने का कुशलता पूर्वक कार्य भारतीय ललनाओं के द्वारा ही किया जाता रहा है। बुनकर जाति के पुरुष भले ही चरखे का बेहतर उपयोग करते रहे हों पर पूरे भारतीय समाज में स्त्रियों के माध्यम से ही चरखे का उपयोग किया जाता रहा है। चरखे का संबंध कपड़ा उत्पादन से जुडा था। पूरे परिवार के लिए कपड़े की इस मांग को गृहिणी ही पूरा करती रही हैं। लोकगीतों में चरखा स्त्रियों की सामूहिक लोकगीत गायन की शैली में विकसित हुआ। अड़ोसिन पड़ोसिन सब मिलके चरखा कातती होंगी तभी तो लोकगीत का आनंद आता होगा। इस गीत में पूर्व और पश्चिम को एक करने का संकल्प भी चरखा के माध्यम से दर्शाया गया है।

अरी मेरौ चरखा हल्लेदार परोसिन सुनियौ री बहना।

जा दिन ते मैंने करी कताई, नथु सोने की नई बनवाई,

बनवायौ गरे कौ हारु। । परोसिन सुनियौ री बहना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में चरखा अर्थव्यवस्था का प्रतीक बनकर उभरा था। हिंदी कवि भारतेंदु हरिश्चंद ने लिखा था कि -"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ,पै धन विदेश चल जात इहै अति ख्वारी।'' कृषि प्रधान देश भारत अपने कपास उद्योग के लिए जाना जाता था। अंग्रेज इस उद्योग को नष्ट करने पर तुले हुए थे। ऐसे मे भारतीय अर्थ व्यवस्था के इस आधार को बचाने के लिए भारतीय समाज को आगे लाना था। गांधी जी ने चरखे के माध्यम से न केवल कपास उत्पादन को बढावा दिया वरन साथ ही विदेशी कपडा के बहिष्कार के माध्यम से विदेशी व्यवसाय पर कुठाराघात भी किया। यह उनके स्वदेशी अभियान का मुख्य हथियार था। ब्रज ललनाओं ने अपने लोकगीतों में इस अर्थ व्यवस्था को सँभालने का संकल्प दोहराया था-

घरर घरर चलै चरखा रे।

चलै चाक पै माल तौ,चरखा करै सूत बरखा। ।

घर घर कातौ सूत, ओट सब कपडा की कीजौ।

तजिदेउ सब आलस्य,किफायत पैसा की कीजो। ।घरर घरर चलै चरखा रे।

ब्रज लोकगीतों में लांगुरिया गीतों का अपना स्थान है। वर्ष में दो बार नवरात्र आते हैं और दोनों में लांगुरिया गीत गाए जाते हैं। इनकी लयात्मकता अपनी ही है। छोटे छोट अंतराओं के साथ इनके गायन पर नाचनहारी के पैर स्वतः ही थिरकने लगते हैं। गांधी जी के व्यक्तित्व को दर्शाता हुआ यह लांगुर गीत खूब गाया जाता रहा है-

गांधी बाबा नैं बचाय लयी मेरी लाज , मोरे बारे लांगुरिया

अपने बापू नैं बचाय लयी मेरी लाज मोरे बारे लांगुरिया

अंगरेजन की सत्ता भारी, रहे न एकऊ लत्ता सारी

अरे गोरी फौज सब भजाय दई मोरे बापू नै मोरे बारे लांगुरिया

भारत के सपूतों के बलिदान और संघर्ष के परिणाम स्वरूप वह दिन भी आया जब 15 अगस्त 1947 को भारत फिरंगियों की जकड से बाहर आया। स्वतंत्रता की वह सुहानी भोर कितनी मादक थी इसका उल्लास उस समय गाए गए लोकगीतों से अनुभूत किया जा सकता है। ब्रज का प्रसिद्ध लोक गीत है-

आजादी कौ दिन आयौ रे, सब नाचै रे मिलिकैं।

देश भयौ आजाद रे, सब नाचै रे मिलकैं।

माता तौ जंजीरन जकडी, हू जौ आजादी कौ गान रे... सब नाचै रे मिलिकैं

बापू नैं कमान है थामी, अरे अंग्रेजन तोडौ अभिमान.....सब नाचै रे मिलिकैं

ब्रजलोक गीतो में आजादी का उल्लास गाढा दिखाई पडता है। गांधी और चरखा का सम्मान गहरे तक समाहित है। लोक साहित्य की उपेक्षा के कारण यह रेखांकित नहीं हो सका है। इसे और मनोयोग से समझने की आवश्यकता है।

❖

हिंदीविभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो.9818633238 Email: nrityagopal72@gmail.com

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदी पत्रकारिता

– विजय यादव

विकिपीडिया पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की परिभाषा देते हुए लिखा गया है-"सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद का वह विशेष रूप है जिसमें राष्ट्र को एक साझी संस्कृति के रूप में देखा जाता है। इस राष्ट्रवाद की स्थिति प्रजातीय राष्ट्रवाद तथा नागरिक राष्ट्रवाद के बीच में है। इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मानता है कि देश की सांस्कृतिक परम्पराओं एवं समान भाषा के द्वारा राष्ट्र की पहचान होती है, न कि समान पूर्वज, प्रजाति आदि से।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मूलत: किसी देश की भाषा और परम्पराओं से निर्मित होता है।

भारतीय समाज में कई संप्रदायों और धर्मों को एक साथ रहने का अवसर मिला है। सभी का मूल स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का विस्तार करना है। भारत तो अपनी सांस्कृतिक चेतना की समन्वय भावना के कारण विश्वभर में जाना जाता है। सभी धर्मों और मतों को एक साथ लेकर चलने के कारण यह देश पूरे विश्व में विश्वगुरु के रूप में जाता है। भारत की सभी भाषाओं में यह सांस्कृतिक चेतना देखने को मिलती है-"दुनिया का कोई ऐसा समाज नहीं है जहाँ पिछले तीन-चार हज़ार वर्षों से इतने संप्रदाय, जातियाँ, वर्ग, वर्ण साथ-साथ रह रहे हों। हमारा राष्ट्र और हमारी राष्ट्रीयता इसी सांस्कृतिक एकता से निर्मित होती है। तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती, बांग्ला के रवीद्रनाथ टैगोर, संस्कृत के अभिनव गुप्त और कालिदास सबके संदर्भ बिन्दु एक ही है। इनके ख्यात सांस्कृतिक अनुभव एक ही हैं। यह साझा अनुभव ही भारतीय राष्ट्र का निर्माण करता है।"[2]

'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' मूलत: किसी व्यक्ति, समाज और संस्था से ऊपर एक वैचारिक मत है जिसमें सम्पूर्ण देश समाहित है। इस संदर्भ में प्रोफ़ेसर चन्दन कुमार लिखते हैं-" 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का अर्थ किसी व्यक्ति और जाति-वर्ग से नहीं हैं और इसका सांप्रदायिकता से कोई संबंध नहीं है। यह सभी संप्रदायों को, सभी भारतीय नागरिकों को, भारत के भूत को, भविष्य को, वर्तमान सबको समाहित करके इस देश को आगे बढ़ाने की आधारशिला है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में भाषा का सवाल है,[3] वेषभूषा का सवाल। हमारी विदेश नीति का सवाल है, संगीत का सवाल है।" राष्ट्रवादी चिंतक व पत्रकार वेद प्रताप वैदिक का कहना है कि-"सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की नीव वीर सावरकर ने रखी, उसकी

> ***"भारत की प्राचीन संस्कृति और सबको सम्मान देने की परम्परा से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जन्म होता है। बहुत पहले जब जातियाँ, वर्ण-व्यवस्था और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ नहीं थीं, तब मनुष्य एक_ दूसरे से प्रेम रखता था। भारतीय संस्कृति आज भी मूलत: मानवीय संवेदना के विस्तार के लिए है। उसमें किसी भी तरह का द्वेष-भाव नहीं है। भारत बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुभाषी देश है। भारत का कोई ऐसा कोना नहीं है जहाँ विविधता नहीं पायी जाती है। किसी भी धर्म का त्यौहार हो लोग आपस में मिल-जुल कर मनाते हैं। हिन्दू धर्म तो वैसे भी सभी धर्मों का सम्मान करता है। भारत की सांस्कृतिक चेतना इतनी मजबूत है कि कई विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण के बाद भी वह आज तक बची हुई है-"सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार हमारी युगों पुरानी संस्कृति है, जो सदियों से चली आ रही है। यह सांस्कृतिक एकता है, जो किसी भी बन्धन से अधिक मजबूत और टिकाऊ है, जो किसी देश में लोगों को एकजुट करने में सक्षम है"***

विवेचना गुरु गोलवलकर ने की तथा दीनदयाल उपाध्याय ने इसका प्रयोग अपने लेखों और भाषणों में किया है।"[4] अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीनता, दीर्घजीविता, अनुकूलता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, सर्वांगीणता, संचरणशीलता, मानवीयता, समन्वयवाद आदि भारतीय सांस्कृतिक चेतना के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं।

भारत की प्राचीन संस्कृति और सबको सम्मान देने की परम्परा से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जन्म होता है। बहुत पहले जब जातियाँ, वर्ण-व्यवस्था और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ नहीं थीं, तब मनुष्य एक_दूसरे से प्रेम रखता था। भारतीय संस्कृति आज भी मूलत: मानवीय संवेदना के विस्तार के लिए है। उसमें किसी भी तरह का द्वेष-भाव नहीं है। भारत बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुभाषी देश है। भारत का कोई ऐसा कोना नहीं है जहाँ विविधता नहीं पायी जाती है। किसी भी धर्म का त्यौहार हो लोग आपस में मिल-जुल कर मनाते हैं। हिन्दू धर्म तो वैसे भी सभी धर्मों का सम्मान करता है। भारत की सांस्कृतिक चेतना इतनी मजबूत है कि कई विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण के बाद भी वह आज तक बची हुई है- "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार हमारी युगों पुरानी संस्कृति है, जो सदियों से चली आ रही है। यह सांस्कृतिक एकता है, जो किसी भी बन्धन से अधिक मजबूत और टिकाऊ है, जो किसी देश में लोगों को एकजुट करने में सक्षम है और जिसने इस देश को एक राष्ट्र के सूत्र में बांध रखा है। भारत की संस्कृति भारत की धरती की उपज है। उसकी चेतना की देन है। साधना की पूंजी है। उसकी एकता, एकात्मता, विशालता, समन्वय धरती से निकला है। भारत में आसेतु-हिमालय एक संस्कृति है। उससे भारतीय राष्ट्र जीवन प्रेरित हुआ है। अनादिकाल से यहां का समाज अनेक सम्प्रदायों को उत्पन्न करके भी एक ही मूल से जीवन रस ग्रहण करता आया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के एजेंडे को नरेंद्र मोदी इसी रूप में पूरा कर रहे है।"[5]

पत्रकारिता का आरंभिक इतिहास भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु और उनसे जुड़े साहित्यकारों ने स्वयं के प्रयासों से कई पत्रिकाओं का संपादन किया जिसका एक मात्र उद्देश्य था, भारतीय संस्कृति को महत्व देकर उसका विस्तार करना। भारतेंदु और उनके साथी साहित्यकारों ने व्यक्तिगत संसाधनों से कुछ ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, जिससे भारतीय जनमानस पर अपने देश और समाज के प्रति जुड़ाव का भाव और अधिक मजबूत हुआ। भारतेंदु मंडल ने हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा भारतीय जनता में नवजागरण और स्वाधीनता की चेतना का विस्तार किया। गुलामी की जंजीरों से बंधा भारतीय समाज अपनी मानसिक चेतना में स्वयं को गुलाम ही समझ रखा था। जबकि भारतीय संस्कृति और सभ्यता ने हमेशा ही समूचे विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया। विश्व के साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विद्वानों, चिंतकों एवं मनीषियों ने भारत के धर्मशास्त्रों, वेदों, पुराणों से प्रभावित होकर यहाँ रहना भी स्वीकार किया।

1867 में 'अपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै' उद्देश्य के साथ 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका के संदर्भ में विख्यात आलोचक रामविलाश शर्मा ने लिखा-"कविवचनसुधा का प्रकाशन करके भारतेन्दु ने एक नये युग का सूत्रपात किया।" यह सच भी है। जिस तरह से भारतीय समाज निराशा के भाव में बहकर अपनी ही सांस्कृतिक चेतना को संकुचित कर रहा था और अपने समाज की सच्चाई से भाग रहा था उसे दूर करने में 'कविवचनसुधा' की निर्णायक भूमिका है। हालांकि बाद में आर्थिक कारणों से यह पत्रिका बंद हो गयी। 1873 में भारतेंदु ने फिर से 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' नाम से पत्रिका निकाला। 'बालाबोधिनी' भारतेन्दु की बहुचर्चित पत्रिकाओं में हैं, जिसने स्त्री अस्मिता और जीवन-संघर्ष को एक दिशा प्रदान की। भारतेन्दु के अभिन्न मित्र बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसका उद्देश्य अपने समाज और संस्कृति से कट रहे भारतीय समाज को उनकी संस्कृति से जोड़ना था।

1881 में पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्रिका और प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्र का प्रकाशन कर भारतीय समाज की सोयी हुई सांस्कृतिक चेतना को पुनः जागृत करने का प्रयास किया। 1891 में 'बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन' ने 'नागरी नीरद' का प्रकाशन किया। इस पत्रिका का उद्देश्य राष्ट्र को चेतनशील बनाकर अंग्रेजों की निरंकुशता के खिलाफ भारतीय समाज को खड़ा करना था। इस पत्रिका ने जनता की जाति, धर्म, वर्ग-वर्ण भूलकर एक-दूसरे को जोड़ने का कार्य किया। उन्नीसवीं शताब्दी "आने वाले युग को एक समृद्ध विरासत सौंपती यह पत्रकारिता सही मायनों में जनतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना करती है। इस दौर की पत्रकारिता का मुख्य ध्येय स्वाधीनता आन्दोलन के लिए राष्ट्रीय चेतना का प्रसारण था; पर सही अर्थों में विशुद्ध साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता की जमीन भी इसी युग में निर्मित हुई।"[6]

भाषायी राष्ट्रवाद की दृष्टि से देखें तो द्विवेदी युग महत्वपूर्ण है। इस युग में हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की मुहिम शुरू हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए अथक प्रयास किया। भाषा के माध्यम से वैश्विक स्तर की सांस्कृतिक चेतना की बुनियाद हुई। द्विवेदी युग में केवल भाषा ही नहीं वरन साहित्य को भी राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य हुआ। इस दौर की पत्रकारिता ने भारत को भाषा, साहित्य और संस्कृति की नयी दिशा दी। द्विवेदी युग में भाषा का साथ पाकर स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि और अधिक उर्वर हो गयी। इस आन्दोलन से बाल गंगाधर तिलक और गोपालकृष्ण गोखले तथा दादाजी भाई नौरोजी जैसे लोगों ने भारतीय राष्ट्रवाद की बुनियाद को मजबूत किया। इनकी लेखनी ने भारत को ग़ुलामी से मुक्त होने का सूत्र दिया। 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन ही साहित्यिक, सांस्कृतिक परिवेश को मजबूत करने के लिए हुआ- "सही मायनों में द्विवेदी युग में ही हिन्दी पत्रकारिता का साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप निखरा और वह बड़े दायित्व की ओर मुड़ी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया। बाद के दौर में महत्त्वपूर्ण कवियों और लेखकों में

गिने जाने वाले लोग 'सरस्वती' से सीख लेकर अपनी पहचान बना सके। मैथिलीशरण गुप्त का उदाहरण पूरे हिन्दी समाज के सामने है।"[7]

इस युग की पत्रिकाओं ने भारतीय समाज के बौद्धिक समाज को तो प्रभावित किया ही साथ में आम जनता को स्वर भी दिया। सही मायने में इस युग में हिंदी की पत्रकारिता का मजबूत ढांचा तैयार हुआ। इस समय पत्रिकाओं के प्रकाशन की संख्या भी बढ़ी। भारतीय आजादी के लिए जितने भी साधन बनाये जा रहे थे उसमें पत्रकारिता भी थी। इस समय पत्रकारिता व्यवसाय नहीं मिशन थी जिसका उद्देश्य भारतीय जनमानस को एक साथ जोड़कर अंग्रेजो के खिलाफ खड़ा करना था। भारत की भाषा पर पड़ने वाले अंग्रेजी और उर्दू-फारसी के प्रभाव को कम करने में भी साहित्यिक पत्रकारिता का योगदान महत्वपूर्ण है-"पत्रिकाओं के साथ–साथ निकलने वाले दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक पत्रों में भी साहित्य, संस्कृति के प्रति एक सुचिन्तित दृष्टि विकसित होती गयी जो साहित्य सर्जन के साथ-साथ व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का हिस्सा भी बनी। यह ध्येय का युग था, मिशन था-स्वाधीनता की प्राप्ति का और अपनी भाषा में साहित्य सृजन और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण का।"[8]

भारतीय आज़ादी के साथ विभाजन की त्रासदी जुड़ गयी जिससे पत्रकारिता की जिम्मेदारी और बढ़ गयी। हिंदी पत्रकारिता ने आज़ादी के बाद फैली वैमनष्य की भावना को ख़त्म कर, आपसी सद्भाव बढ़ाने का भी कार्य किया। हिंदी भाषा के साथ ही पत्रकारिता जनमानस की आवाज़ बनी। समाज का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं था जिससे पत्रकारिता अछूती रह गयी हो या जिसे पत्रकारिता ने अभिव्यक्त नहीं किया हो-"स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी साहित्य तथा संस्कृति में व्यापक परिवर्तन की हवा चली। इन परिवर्तनों को हिन्दी की पत्रकारिता ने न केवल आधार दिया, बल्कि दूर तक उसकी सहचरी भी बनी। हिन्दी पत्रकारिता का अभ्युदय एक सांस्कृतिक आन्दोलन ही था और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उस आन्दोलन की जवाबदेहियाँ भी बढ़ गयी थीं। राजनीति हो या धर्म, दर्शन हो या अध्यात्म, साहित्य हो या कला, सब पर इस पत्रकारिता की दृष्टि गयी जिससे एक स्वस्थ सांस्कृतिक वातावरण बन सका।" [9]

हमारी चेतना की दिशा हमेशा सांस्कृतिक विकास की ओर रही। वह कभी भटकी नहीं। हमारे पिछले स्वाधीनता आंदोलनों को नये सिरे से देखते हुए किसी ने कहा था कि अंग्रेज अब देश का दमन ऐसा करेंगे की सिर उठाना मुश्किल हो जाएगा। इसी संदर्भ में श्री अरविन्द ने जबाव देते हुए लिखा कि- "स्वतंत्रता की मुझे चिंता नहीं है। चिंता तो मुझे इस बात की है कि स्वतंत्रता का हम क्या उपयोग करेंगे।"[10] अर्थात हमारे विचारकों, साहित्यकारों, कलाकारों को भी आज़ादी के बाद नये मूल्यों के प्रसार और पुराने मूल्यों की पुनर्रचना की चिंता सता रही थी। साथ में भौतिक वस्तुओं की बहुज्ञता की बहुलता भी न हो सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण में। राष्ट्र के मन को उन्नत बनाना था। राष्ट्र को किसी एक उद्देश्य में बांधना तथा जागृत करना भी हमारे विद्वानों की चिंता का एक विषय था। तभी सांस्कृतिक मूल्यों का बने रहना संभव है। देश को बचाने की ज़िद सभी में थी इसलिए यह देश बच भी पाया। पत्रकारिता ने भारत की बिखरी हुई सांस्कृतिक चेतना को एक मंच पर खड़ा किया और "साहित्य और संस्कृति को तो तभी जीवित रहना है जब देश जीवित रहेगा, उसकी जनता खुशहाल होगी। पत्रकारिता की सांस्कृतिक दृष्टि का पता ऐसी चिन्ताओं से ही चलता है। जनोन्मुख पत्रकारिता अपनी भाषाई संस्कृति और अपने साहित्य से विमुख नहीं हो सकती। पर उसके पहले उसे व्यापक जन की सुधि भी लेनी होगी जो उसका पाठक है और जिसके कन्धों पर राष्ट्र की अस्मिता, अस्तित्त्व तथा समेकित विकास का भार है।"[11]

भारत की सांस्कृतिक चेतना ने केवल यहाँ के जनमानस को ही नहीं, बल्कि विश्व की वैचारिकी को प्रभावित किया। भाषा, साहित्य और संस्कृति की मूल धारा ने समाज में एकता और अखंडता को महत्त्व दिया। भारतीय संस्कृति का उद्देश्य आम जनता को सुखी रखना है जिससें वह सफल भी है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कोई विचारधारा नहीं, बल्कि सोच है जिसने जन-जन को प्रभावित किया एवं एकता के सूत्र में बांधा। पत्रकारिता का साथ पाकर साहित्य में निखार आया। पत्रकारिता मूलत: समाज में परिवर्तन लाने का कार्य करती है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को मजबूत करने में पत्रकारिता का योगदान अहम् है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता ने हमेशा ही समूचे विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया।

पत्रकारिता समाज का आईना है और इस आईने में हम अपने को देखकर ही सजते-संवरते है। यह संजना-संवरना श्रृंगार कहलाता है। यह श्रृंगार भारतीय संस्कृति का एक न्यूनतम अंश है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी पत्रकारिता, भारतीय संस्कृति के संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आयी है और आगे भी निभाती रहेगी।

संदर्भ

1. विकिपीडिया
2. सांस्कृतिक राष्ट्र का शुक्लपक्ष, चन्दन कुमार, अजय कुमार, वाक, मार्च 2018, पृष्ठ-83
3. चन्दन कुमार, अजय कुमार, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का शुक्ल पक्ष, वाक्, मार्च 2018, पृष्ठ-83
4. वेद प्रताप वैदिक का पत्रकार हरिशंकर व्यास द्वारा 7 जुलाई 2015 को सेंट्रल हॉल में लिया गया साक्षात्कार।
5. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आधारशिला पर खड़ा होता भारत, डॉ. सौरभ मालवीय , प्रवक्ता डॉट कॉम
6. ज्योतिष जोशी, साहित्यिक पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 22
7. वही, पृष्ठ 18 –19
8. वही, पृष्ठ 24 –26
9. वही,पृष्ठ 29
10. कल्पना,मई 1954, पृष्ठ-3
11. वही, पृष्ठ 31

❖

संप्रत्ति: असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली-110006 मो. 8800511895

ईमेल vijayyadav81287@gmail.com

आजादी का अमृत महोत्सव

स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच की अवधारणा और हिंदी रंगमंच

– डॉ. प्रतिभा राणा

स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच एवं रंग आंदोलन को समझने से पहले उन स्थितियों या परिस्थितयों को समझना आवश्यक है जिनसे जूझते और प्रेरणा लेते हुए राष्ट्रीय रंगमंच का स्वरूप बना। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने कलकत्ता, मुंबई और चेन्नई में थिएटर हॉल बनाएं। ये महानगर उस समय प्रशासनिक और व्यापारिक रूप से केंद्रीय भूमिका में थे इसलिए यहाँ रह रहे सैनिकों, व्यापारियों और प्रशासन के लोगों के मनोरंजन हेतु थिएटर हॉल विकसित किए गए। यहाँ अधिकतर अंग्रेजी नाटकों का ही मंचन होता था। बेशक हिंदी का नाटक लेखन और प्रदर्शन इन सबसे प्रभावित तो हुआ, लेकिन नकल नहीं बना। भारतेंदु हरिश्चन्द्र और उनके मंडल के रचनाकार, पत्रकार-नाटककार-अभिनेता-निर्देशक आदि अनेक भूमिकाएं एक साथ निभाते थे, उन्हीं के प्रयासों से नाटकों में संस्कृत, लोक रंगमंच तत्वों के साथ पाश्चात्य तत्व भी भारतीय सन्दर्भों में प्रयोग होकर मिलते हैं। दरअसल यही भारतीय रंगमंच की नींव मानी जा सकती है जहाँ वे भारत को भारतीय भाषा और समाज संस्कार के मेल से स्वाधीनता की अनिवार्यता व् आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। उस वातावरण में "सुरुचि की रक्षा करना बहुत बड़ी सफलता है। भारतेन्दु के हास्य में अश्लीलता या भौंडापन नहीं आने पाया है, यह प्रसन्नता की बात है। "[1]

इनके बाद माधव शुक्ल ने लखनऊ, कोलकाता और इलाहाबाद में नाट्य मंडलियों की स्थापना की। उन्होंने जिस गंभीरता के साथ नाटकों को प्रदर्शित किया उसमें भारतेंदु के ही आदर्श दृष्टिगोचर होते हैं। भारत में वर्ष १९३० के आस-पास जब सिनेमा का आगमन हुआ तो भारतीय रंगमंच विशेषकर हिंदी रंगमंच की गति पर इसका प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप रंगमंच की बजाय सिनेमा आकर्षण के केंद्र में आ गया यहाँ तक कि लोकप्रिय पारसी थियेटर भी प्रभावित हुए बिना न रहा। सोहराब मोदी व पृथ्वीराज कपूर जैसे अनेक कलाकार सिनेमा की

"वैसे उपरोक्त संस्थानों की स्थापना से पहले ही सन् १९३६ में ऑल इंडिया रेडियो की स्थापना हो चुकी थी और कुछ समय बाद लखनऊ रेडियो स्टेशन (१९३९) भी बन गया नतीजतन इससे जुड़े अनेक कर्मी सांस्कृतिक लहर को गति देने में अपना योगदान देने लग गए। शुरुआत में यहाँ उर्दू नाटककारों का प्रभुत्व था परन्तु सन १९४० के बाद से हिंदी नाटककारों की रचनाएँ भी प्रसारित होने लगीं थी। स्वतंत्रता के बाद बनते इस नवीन सांस्कृतिक परिवेश में दिल्ली की भूमिका केंद्रीय रूप में थी। नाटककार जगदीश चंद्र माथुर उस समय के परिदृश्य के सन्दर्भ में जब दिल्ली की पहली सांस्कृतिक संस्था का उल्लेख करते हैं तो अतीत की कई परतें उजागर हो जाती हैं-"नई दिल्ली सांस्कृतिक रूप से अभी सक्रिय ना थी सिर्फ ऑल इंडिया फाइन एंड क्राफ्ट्स सोसायटी ही एक ऐसी संस्था थी जिसे प्रदर्शनकारियों ने संगठन और नृत्य एवं नाट्य प्रदर्शनों के प्रबंध का थोड़ा-बहुत अनुभव था यह संस्था लड़ाई के ज़माने से एक कामचलाऊ इमारत में कार्य करती थी और शायद यह पहली ही सांस्कृतिक संस्था थी जिसे अपने भवन निर्माण के लिए जमीन और ऋण दिया गया निर्माण के बाद यह संस्था सांस्कृतिक क्रियाकलाप का मुखरित केंद्र हो गई।"

तरफ चले गए। हालांकि पृथ्वीराज कपूर ने 'पृथ्वी थिएटर'(१९४४) की स्थापना द्वारा अपनी रंगमंच के प्रति प्रतिबद्धता जारी रखी। इसी बीच भारतीय नाट्य संघ (१९४६) ने भी हिंदी रंगमंच को सामाजिक चेतना से जोड़ने का काम किया। इन्होंने रंगमंच और रंगकर्म से जुड़े कई रूपों को सादगी के साथ मंच और जनता से जोड़ा। लेकिन बाद के वर्षों में हिंदी रंगमंच थोड़ा कम सक्रिय रह गया परिणामत: वह केवल विद्यालयों एवं कॉलेजों के वार्षिक सांस्कृतिक समारोह का हिस्सा मात्र बनकर रह गया।

जब हिंदी रंगमंच को केंद्र में रखकर भारतीय रंगमंच पर विचार करें तो दृष्टिगत होगा कि केवल कानपुर, इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ जैसे हिंदी भाषी नगर ही नहीं, बल्कि कोलकाता और मुंबई जैसे गैर, हिंदी महानगर भी हिंदी रंगमंच को प्रभावित कर रहे थे। इन सभी केन्द्रों के बीच मुख्य केंद्र राजधानी दिल्ली बनी जो स्वतंत्रता के बाद का सांस्कृतिक परिवेश रच रही थी। कुल मिलाकर इन सभी नगरों-महानगरों ने विस्तृत फलक पर रंग दृष्टि की खोज और पहचान की ज़रूरत को रेखांकित किया। इन्होंने उस सोच को भी उभारा जो रंगमंच की रंगदृष्टि से जुडी थी जिसने अपने परिवेश, उससे जुड़े जीवन एवं अनुभव और जटिलताओं को दृश्यात्मक रूप देने के लिए प्रेरित किया। स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच को बनाने में संस्थाओं और सरकारी प्रयास की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। वर्ष १९५३-५४ के आस-पास तत्कालीन भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया जिसमें प्रदर्शनकारी कलाओं के उत्थान के लिए योजनाएं बनाई गईं। इसी प्रक्रिया में अनेक विशेषज्ञों से विचार-विमर्श कर के रंगमंच, संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि कलारूपों के लिए संस्थाओं की आवश्यकता पर कार्य शुरू हुआ। इसलिए संगीत नाटक अकादमी, भारतीय नाट्य संघ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय राष्ट्रीय भूमिका में रहे तो प्रादेशिक स्तर पर, प्रदेशों की अकादमियों , संस्थाओं और शौकिया मंडलियों ने भारतीय रंगमंच को देने का कार्य किया। ये महत्वपूर्ण संस्थान हैं-बिहार संगीत नृत्य नाट्य कला परिषद, पटना(१९५१), भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर(१९५२), मध्यप्रदेश कला परिषद, भोपाल(१९५२), थिएटर यूनिट, मुंबई(१९५४), अनामिका नाट्य मंडली, कोलकाता(१९५५), संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर(१९५७), उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ(१९६३), भारतेंदु नाट्य अकादमी , लखनऊ(१९७५), कालिदास अकादमी, उज्जैन(१९७७), श्रीराम सेंटर, नई दिल्ली(१९८०), नाट्य शोध संस्थान, कोलकाता(१९८१), बिहार राज्य कला अकादमी(१९८१), भारत भवन, भोपाल(१९८२), साहित्य कला परिषद, नई दिल्ली, नटरंग प्रतिष्ठान, दिल्ली(१९८९) आदि। इन सभी संस्थाओं ने विविध स्तरों पर राष्ट्रीय रंगमंच विशेषकर हिंदी रंगमंच एवं अन्य कलाओं को गति देकर सांस्कृतिक वातावरण निर्मित किया।

वैसे उपरोक्त संस्थानों की स्थापना से पहले ही सन् १९३६ में ऑल इंडिया रेडियो की स्थापना हो चुकी थी और कुछ समय बाद लखनऊ रेडियो स्टेशन (१९३९) भी बन गया नतीजतन इससे जुड़े अनेक कर्मी सांस्कृतिक लहर को गति देने में अपना योगदान देने लग गए। शुरुआत में यहाँ उर्दू नाटककारों का प्रभुत्व था परन्तु सन १९४० के बाद से हिंदी नाटककारों की रचनाएँ भी प्रसारित होने लगीं थी। स्वतंत्रता के बाद बनते इस नवीन सांस्कृतिक परिवेश में दिल्ली की भूमिका केंद्रीय रूप में थी। नाटककार जगदीश चंद्र माथुर उस समय के परिदृश्य के सन्दर्भ में जब दिल्ली की पहली सांस्कृतिक संस्था का उल्लेख करते हैं तो अतीत की कई परतें उजागर हो जाती हैं-" नई दिल्ली सांस्कृतिक रूप से अभी सक्रिय ना थी सिर्फ ऑल इंडिया फाइन एंड क्राफ्ट्स सोसायटी ही एक ऐसी संस्था थी जिसे प्रदर्शनकारियों ने संगठन और नृत्य एवं नाट्य प्रदर्शनों के प्रबंध का थोड़ा-बहुत अनुभव था यह संस्था लड़ाई के ज़माने से एक कामचलाऊ इमारत में कार्य करती थी और शायद यह पहली ही सांस्कृतिक संस्था थी जिसे अपने भवन निर्माण के लिए जमीन और ऋण दिया गया निर्माण के बाद यह संस्था सांस्कृतिक क्रियाकलाप का मुखरित केंद्र हो गई।"[2] इस संस्था के बनने के बाद गन्धर्व महाविद्यालय और भारतीय कला केंद्र की स्थापना हुई।

भारत विभाजन से पहले लाहौर देश की सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र हुआ करता था, लेकिन विभाजन ने सब परिवेश को खंडित करने का कार्य किया। टूटे मन और उजड़े घर से अनेक जन इधर से उधर गए और उधर से इधर आए, जिसमें लाहौर से आए अनेक कलाकार भी शामिल थे। इन कलाकारों ने दिल्ली के सांस्कृतिक माहौल को पुन: रचा और उसे गति दी। इस गति में कला और कला के प्रति समर्पण था, लोगों को इससे जोड़ा गया और फिर दिल्ली देश की राजनीतिक राजधानी के साथ-साथ सांस्कृतिक राजधानी में भी तब्दील होने लग गई। इस परिवेश में लोक रंगमंच और लोककलाकारों को केंद्रीय पटल से जोड़ने की कोशिश भी हुई जिसमें गणतंत्र दिवस समारोहों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस सन्दर्भ में जगदीशचन्द्र माथुर भी लिखते हैं- "गणतंत्र दिवस समारोहों में लोकनृत्य पर्व मनाने से भारत के सामाजिक सांचे में ग्रामीण और आदिवासी संस्कृति के स्थान को मान्यता मिली। उसे नगरीय कलाओं के समकक्ष दर्जा दिया गया, जिससे इन लोगों को

अभूतपूर्व उत्साह मिला। क्योंकि इस प्रकार उनकी जीवन पद्धति को एक नई संगति और उनके प्राणों को एक नया आत्मविश्वास प्राप्त हुआ।"[3]

स्वतंत्रता के बाद का यह वो प्रारंभिक दौर था जब भारतीय रंगमंच नए ढंग से आकार ले रहा था। स्वाधीनता आंदोलन में रंगमंच विशेषकर हिंदी नाटकों एवं रंगमंच की महत्वपूर्ण भूमिका सर्वविदित है। लेकिन आज़ादी के बाद भी रंगमंच ने उस परिदृश्य का निर्माण किया जिसके केंद्र में लोकशैली और अन्य भारतीय कलारूप थे। इसी कड़ी में नाटक और रंगमंच के अटूट संबंध की पुन: पुष्टि की गई एवं नाट्यभाषा और रंगभाषा, नाटककार और निर्देशक, भारतीय और पाश्चात्य नाट्य चिन्तन व तत्व आदि पर विस्तार से चर्चा हुई। नाटककार विपिनकुमार अग्रवाल के शब्दों में- "हरकत की भाषा हमारे जीवन का अंग है तथा कभी हम हरकतें ज्यादा करते हैं, कभी बोलते अधिक हैं और इन दोनों का संतुलन ही पूरी भाषा है। "[4]

दरअसल यह वो समय था जब राष्ट्रीय रंगमंच की अवधारणा आकार लेने की तरफ बढ़ रही थी। तब हिंदी रंगमंच ने एक आंदोलन का रूप लेकर अनेक रंगमंचीय पक्षों पर पुनर्विचार करना शुरू कर दिया। इस चिंतन से, अनेक शैलियों और उनके तत्वों के अन्वेषण से राष्ट्रीय रंगमंच की अपनी एक नई पहचान बननी प्रारंभ हो गई। वैसे भी नाटक और रंगमंच केवल मात्र मनोरंजन के साधन कभी नहीं रहे। बल्कि ये तो जीवन के संघर्ष, उसकी समस्याओं का बोध कराने वाले और उन समस्याओं का समाधान की राह सुझाने वाला जीवंत दृश्य माध्यम रहा है। भारत का विविध भाषी परिदृश्य जब रंगमंच से मिला तो तब राष्ट्रीय रंगमंच का स्वरूप उभरकर आया। इस स्वरूप में हिंदी क्षेत्र के मंच से श्यामानंद जालान, सत्यदेव दुबे, इब्राहिम अल्काजी, हबीब तनवीर, वर्तमान में देवेन्द्रराज 'अंकुर', रामगोपाल बजाज, सतीश आनंद, कीर्ति शर्मा, त्रिपुरारी शर्मा, वी.के.शर्मा, रामजी बाली, सुरेन्द्र शर्मा आदि। बांग्ला से शम्भु मित्र, उत्पल दत्त और बाद के वर्षों में ऊषा गांगुली आदि। मराठी से अरविन्द देशपांडे, विजया मेहता और वर्तमान में जब्बार पटेल, वामन केंद्रे आदि। गुजराती से दीना पाठक, चन्द्रिका शाह, तारक मेहता, प्रागजी आदि एवं कन्नड़ से गिरीश कर्नाड और ब.व.कारन्त आदि निर्देशकों(इनमें से कुछ नाटककार और कलाकार भी) ने राष्ट्रीय रंगमंच में सृजनात्मक योगदान दिया है। इन निर्देशकों की रंग चेतना ने पुराना और नवीन का समन्वय कर कथ्य एवं शैली का वो रूप रचा जो संवेदना और जीवन बोध से जुड़ा है। सही मायनों में जुड़ने का यही भाव राष्ट्रीय रंगमंच की शक्ति है; इस रंग-चेतना को नए रंगमंच आंदोलन से जोड़कर रंगालोचक सुरेश अवस्थी कहते हैं- "नए रंगमंच आंदोलन की इस व्यापक लहर का प्रभाव हमारे रंगमंच के क्रियाकलाप के दूसरे पक्षों पर भी पड़ रहा है। प्रदर्शन और अभिनय के साथ-साथ रंगसज्जा, वेशभूषा और प्रकाश योजना में भी पिछले एक दशक में अधिक कलात्मक और कल्पनाशील काम हुआ है....यह भी अपने आप में एक रोचक बात है कि इस आंदोलन में इतनी शक्ति है कि वह एक ओर तो नितांत शौकिया नाट्यकर्म को भी प्रभावित कर रहा है, तो दूसरी तरफ पेशेवर रंगमंच पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा है। "[5]

स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच के विस्तार से ही हिन्दी भाषी दर्शक और पाठक अन्य भाषा के नाटकों से परिचित हुआ जिसमें बांग्ला में बादल सरकार के 'बाकि इतिहास' , 'पगला घोड़ा', 'एवं इंद्रजीत', मराठी में विजय तेंदुलकर के 'शांतता कोर्ट चालू आहे(खामोश अदालत जारी है), 'घासीराम कोतवाल', कन्नड़ में आद्य रंगाचार्य के 'केलु जन्मेजय'(सुनो जन्मेजय), गिरीश कर्नाड के 'तुगलक' , 'रक्तकल्याण', 'अग्नि और बरखा', 'नागमंडल' आदि गिना जा सकता है। इनके साथ गैर-हिंदी भाषी प्रदेश भी हिंदी के महत्वपूर्ण नाटकों से परिचित हुए उन्होंने भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद के अलावा धर्मवीर भारती ('अंधा युग'), मोहन राकेश ('आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' एवं 'आधे-अधूरे') आदि आधुनिक नाटककारों और उनकी रंगदृष्टि से परिचित हुए। नाटक और उसकी प्रस्तुति शैली पर जब एक साथ विचार-विमर्श हुआ तो भौगोलिक सीमाओं के बंधन से अलग राष्ट्रीय रंगमंच की बात की जाने लगी। इस सबमें भारतीय नाट्य शैली को पुन:खोजने और प्रतिस्थापित करने की कवायद भी साफ नजर आने लगी। इस बारे में प्रसिद्ध रंग निर्देशक इब्राहिम अल्काजी लिखते हैं-" भारतीय रंगमंच के विकास में छठा दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण कालों में से माना जाएगा। सबसे स्पष्ट और सबसे प्रमुख कारण यही है कि इन वर्षों से रंग कला की अनुषांगिक शाखाओं- नाट्यलेखन, अभिनय, निर्देशन, मंच परिकल्पना एवं प्रकाश व्यवस्था ने विशिष्ट प्रतिभाओं के जरिए प्रोढ़ता प्राप्त कर ली है। वह व्यापक उत्कर्ष आकस्मिक नहीं था, क्योंकि इसके पीछे धीमे, लेकिन दृढ और समर्पित प्रयत्न के दस-पन्द्रह वर्ष हैं। "[6]

वास्तव में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओँ के नाटककारों एवं निर्देशकों ने ऐसा रंग परिवेश बनाया जो सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय रंगमंच का मूल सूत्र था। अनेक संस्थाओं, शौकिया नाट्य मंडलियों, नाट्य एवं साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा विविध रंग गतिविधियों को रचा गया। इन्हीं प्रयासों के कारण हिंदी रंगमंच पर प्रत्येक भारतीय भाषाओ के महत्वपूर्ण नाटक मंचित हुए। सांस्कृतिक स्तर पर हिंदी रंगमंच का यह

प्रयास अन्य भाषाओँ के रंगमंच से जुड़ने एवं उन्हें अपने साथ जोड़ने का है; आज अपने इसी रूप में हिंदी रंगमंच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और लेखन से लेकर प्रस्तुति के हर स्तर पर अपना प्रभाव स्थापित कर रहा है। राष्ट्रीय रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में अन्य भाषाओँ के पारम्परिक नाट्य रूपों को हिंदी नाटक और रंगमंच ने सहर्ष अपनाया है। इस कड़ी में हबीब तनवीर द्वारा अपनाई छत्तीसगढ़ी शैली(चरणदास चोर, बहादुर कलारिन, मिट्टी की गाड़ी), बाबा कारंत द्वारा यक्षगान शैली (बरनम वन), के.एन. पणिक्कर द्वारा प्रयोग कूडीअटटम शैली (उरुभंग), रतन थियम की मणिपुरी शैली(अंधायुग) और भानु भारती द्वारा राजस्थानी शैली गवरी(पशु गायत्री) आदि उल्लेखनीय रंग प्रयोग हैं।

इन रंग प्रयोगों को दर्शकों तक पहुँचाने में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सन १९५० के बाद नाटक और रंगमंच पर केंद्रित पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिंदी रंग परिवेश को समृद्ध किया है। उस समय आगरा से 'अभिनय' और दिल्ली से नेमीचंद जैन के सम्पादन में 'नटरंग' पत्रिका की शुरुआत हुई, ये दोनों पत्रिकाएं अनेक रंग पत्रिकाओं की प्रेरणा स्त्रोत बनीं। 'नटरंग' पत्रिका तो बाज़ार के तमाम दबाबों को झेलती हुई आज भी बदस्तूर प्रकाशित हो रही है, नेमीचंद जैन के निधन के पश्चात् इसके वर्तमान सम्पादक अशोक वाजपेयी हैं। बहरहाल इन पत्रिकाओं से प्रभावित होकर या प्रेरित होकर नाट्यवार्ता, रंगभारती, कलावार्ता, छायानट, रंग प्रसंग आदि, जैसी अनेक पत्रिकाओं ने रंग क्षेत्र को समृद्ध और उन्नत करने का मोर्चा संभाला। इन पत्रिकाओं ने वो धरातल दिया जिससे राष्ट्रीय रंगमंच की अवधारणा एवं रंगकला के विकास को ठोस आधार मिला है। एक क्षेत्र के रंगमंच को लेखों एवं समीक्षाओं के द्वारा दूसरे क्षेत्र के रंगमंच से जोड़कर वैचारिक स्तर पर भारतीय रंगमंच को समृद्ध किया गया है। इन पत्रिकाओं द्वारा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों का हिंदी अनुवाद पहली बार किया गया। इसके बाद जब इनका मंचन हिंदी में हुआ तो हिंदी एवं भारतीय रंगमंच ने नया स्वरूप लेना शुरू कर दिया। इस तरह हिंदी रंगमंच को एक परिदृश्य से जोड़ने में पत्रिकाएं अपनी प्रेरक भूमिका निभाती हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय परिदृश्य बहुत तेजी से बदला साथ में विभाजन की विभीषिका ने भी यहाँ के जन को हर स्तर पर प्रभावित किया। आधुनिकता, उत्तराधुनिकता के विमर्श भी चले लेकिन इन सबके बीच कहीं-न-कहीं मनुष्य खो गया। सूचना, संचार और जनसंचार ने तरक्की तो की लेकिन "विडम्बना ही है कि जितनी तेजी से संचार माध्यमों के संजाल सघन होते जा रहे हैं उतनी ही तेजी से मनुष्य संवादहीनता की स्थिति में फंसता जा रहा है। जितनी तेजी से सूचनाओं का प्रवाह बढ़ रहा है उतनी ही तेजी से संवेदना छीजती जा रही है। "[7]

संवेदना और मानवता को बचाने का प्रयास सभी कलाओं ने अपने तरीके से किया है। इसी कड़ी में रंगमंच ने भी विविध प्रदेशों से जुड़कर और उन्हें आपस में जोड़कर राष्ट्रीय रंगमंच की संकल्पना को साकार करने का कार्य किया है और लगातार प्रयासरत है। हिंदी रंगमंच इस ध्येय की प्रमुख कड़ी है, जिसमें नाटकों का लेखन, अनुवाद, मंचन द्वारा रंग सक्रियता जारी है। यह रंग सक्रियता ही राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की धुरी है। नाटक और रंगमंच के द्वारा सामाजिक चेतना लाई जा सकती है क्योंकि "बदलते परिवेश में ही नाटक की प्रासंगिकता होती है। समाज में क्या बदलाव आता इसको साहित्य के द्वारा निरुपित किया जाता है। नाटक साहित्य की एक प्रमुख विधा है। "[8] स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रंगमंच इसी सांस्कृतिक चेतना और सक्रियता को लेकर आगे बढ़ा है और निरंतर प्रयासरत है।

संदर्भ

1. हिन्दी नाटककार, प्रो.जयनाथ नलिन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९६१, पृष्ठ-४३
2. सांस्कृतिक परिदृश्य , जगदीशचंद्र माथुर, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जनवरी १९७३, पृष्ठ-३
3. वही, पृष्ठ-४
4. आधुनिकता के पहलू, विपिन कुमार अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण-१९७२, पृष्ठ-८८
5. हे सामाजिक, सुरेश अवस्थी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय , नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०००, पृष्ठ-२३७-२३८
6. 'टूटे आईने के प्रतिबिम्ब', आज के रंग नाटक, इब्राहीम अल्काजी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ-११
7. साहित्य, समाज और जनतंत्र, श्री प्रफुल्ल कोलख्यान, आलोचना सह-स्त्राब्दी अंक-४, जनवरी-मार्च २००१, पृष्ठ-१४३
8. रामगोपाल बजाज, नवभारत टाइम्स, गुरुवार, मार्च २९ २००१

❖

सहायक आचार्या

प्रभारी हिंदी विभाग, स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

जे 1203, 2nd फ्लोर , पालम विहार, सेक्टर-1

गुरुग्राम, हरियाणा -122017

आजादी का अमृत महोत्सव

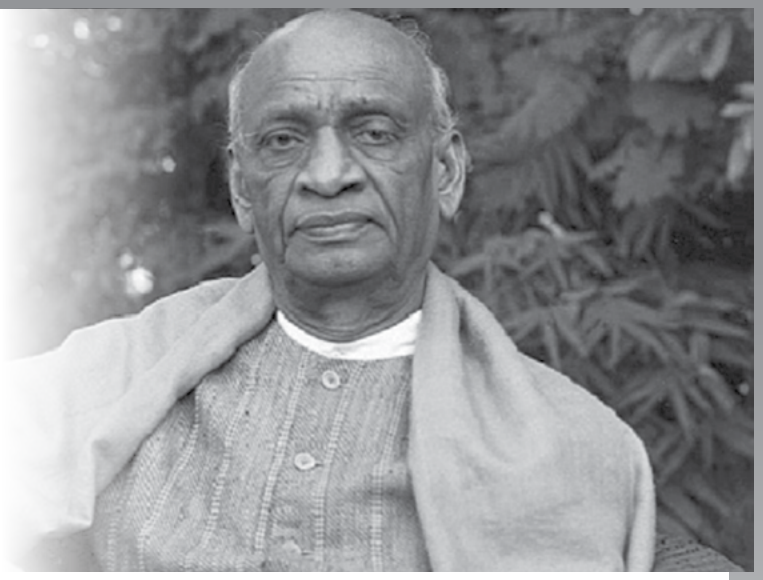

हिंदी साहित्य में सरदार पटेल

– डॉ. नूतन पाण्डेय

साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। युगीन समय की महत्वपूर्ण घटनाएं, इतिहास-पुरुष, व्यक्तित्व और विविध परिस्थितियाँ साहित्य में साक्षात् प्रतिबिंबित देखी जा सकती हैं। किसी कालखंड में रचा गया साहित्य अपने समय में घटित घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी देने के कारण निश्चित ही इतिहास के समकक्ष खड़े होने की क्षमता रखता है। वृहद् सन्दर्भ में देखें तो साहित्य और इतिहास न केवल एक दूसरे के पूरक हैं, बल्कि दोनों में घनिष्ठ संबंध भी है। एक निश्चित समय में उस समाज में विकसित हुई प्रवृत्तियों और प्रवर्तक पात्रों को साहित्य न केवल अपने में सुरक्षित रखता है, बल्कि इतिहास के पन्नों में दर्ज घटनाओं और व्यक्तित्व को मूर्त रूप भी देता है। समय के किसी क्षण को जानने के लिए साहित्य को एक बेहतर माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है, क्योंकि साहित्य में वह क्षमता होती है,जिसके बल पर वह समाज को सीधे –सीधे स्वयं में उतार सकता है और इस तरह किसी देश और समाज के इतिहास को जानने में साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

यह सत्य है कि साहित्य में कल्पना का समावेश होता है, लेकिन इतिहास पर भी सत्तावर्ग की निष्ठाओं से प्रभावित होने के आरोप लगते रहे हैं। प्रायः यह भी देखा गया है जिसे विविध कारणोंवश इतिहास के पन्नों में धुंधली स्याही से लिखा जाता है, वह साहित्य में अपनी पूर्ण उज्ज्वलता के साथ स्थापित हो जाया करता है। इसीलिये शायद आज आलोचकों और चिंतकों का रुझान 'सबल्टर्न हिस्ट्री' की ओर हो रहा है। सबल्टर्न हिस्ट्री' के संस्थापक सदस्यों में से एक डेविड हार्डीमैन इसके पीछे इतिहास के पारम्परिक चिंतन बरक्स एक नए तरह की ऐतिहासिक समझ को लेकर चलने और इतर जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का इतिहास विनिर्मित करने की प्रविधि स्वीकृत करना मुख्य कारक मानते हैं। विश्व इतिहास में हमें ऐसे अनेक चरित्र मिलते हैं, समय जिसका मूल्यांकन निष्पक्ष ढंग से नहीं कर सका। लौहपुरुष सरदार पटेल का चरित्र भी कुछ इसी प्रकार का है जिसका सही और निष्पक्ष मूल्यांकन

> ***"सरदार पटेल भारत के देशभक्तों में एक अमूल्य रत्न थे। वे भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में अक्षम शक्ति स्तम्भ थे। आत्म-त्याग, अनवरत सेवा तथा दूसरों को दिव्य-शक्ति की चेतना देने वाला उनका जीवन सदैव प्रकाश-स्तम्भ की अमर ज्योति रहेगा। वास्तव में वे आधुनिक भारत के शिल्पी थे। इस मितभाषी, अनुशासनप्रिय और कर्मठ व्यक्ति के कठोर व्यक्तित्व में विस्मार्क जैसी संगठन कुशलता, कौटिल्य जैसी राजनीतिक सत्ता तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति अब्राहम लिंकन जैसी अटूट निष्ठा थी। जिस अदम्य उत्साह, असीम शक्ति, मानवीय समस्याओं के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण से उन्होंने निर्भय होकर नवजात गणराज्य की प्रारम्भिक कठिनाइयों का समाधान अद्भुत सफलता से किया, उसके कारण विश्व के राजनीतिक मानचित्र में उन्होंने अमिट स्थान बना लिया।"***

किया जाना अभी शेष है। सरदार पटेल की गणना भारत के उन शीर्षस्थ महापुरुषों में होती है, जिन्होंने अपनी कर्मठता, दूरदर्शिता ,कुशल नेतृत्व और निर्भीकता से देशभक्ति का ऐसा अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। नवभारत के शिल्पी के रूप में पटेल के योगदान को विस्मृत नहीं जा सकता। प्रतिक्षण जीवन के संघर्षो का सामना करने के बावजूद मातृभूमि के प्रति मनसा, वाचा,कर्मणा उनकी अटूट निष्ठा के उदाहारण यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि देश के प्रति उनकी यह निष्ठा जीवनपर्यंत अविचल रही। सरदार पटेल के जीवन के विविध पक्षों को मूल्यांकित करते हुए भारतीय साहित्य में काफी लिखा गया है जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं :

सरदार पटेल : चुना हुआ पत्र-व्यवहार (1945-1950) - दो खंडों में, संपादक- वी० शंकर, प्रथम संस्करण-1976, [नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद]

सरदारश्री के विशिष्ट और अनोखे पत्र (1918-1950) - दो खंडों में, संपादक- गणेश मा० नांदुरकर,प्रथम संस्करण-1981 [वितरक- नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद]

भारत विभाजन (प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली)

कश्मीर और हैदराबाद (प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली)

सरदार वल्लभभाई पटेल व्यक्ति एवं विचार,एन.सी.मेहरोत्रा, रंजना कपूर

महामानव सरदार : दिनकर जोशी

एकता और शक्ति :अमरेन्द्र नारायण ,राधाकृष्ण प्रकाशन (मूल:यूनिटी एण्ड स्ट्रेन्थ)

सरदार : राजेंद्रमोहन भटनागर ,सन 2008,राजपाल एंड संस,नई दिल्ली

कथा विराट: सुधाकर अदीब ,राजकमल प्रकाशन

सरदार पटेल : मीना अग्रवाल,डायमंड बुक्स

सरदार-दि गेम चेंजर (हिंदी,अंग्रेजी, गुजराती): गीता माणेक आदि .....

इस तथ्य की जानकारी शायद कम लोगों को होगी कि गोली ,सोमनाथ,वयं रक्षामः और वैशाली की नगरवधू जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों के रचयिता आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपना प्रसिद्ध उपन्यास गोली लौहपुरुष सरदार पटेल को समर्पित किया था। इस उपन्यास की भूमिका में वे पटेल के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए लिखते हैं:' जिसने बिना शस्त्र ग्रहण किए एक ही वर्ष में इतना बड़ा अखण्ड चक्रवर्ती राज्य स्थापित कर दिया- जितना न राम का था न कृष्ण का, न अशोक का था न अकबर का, न लहरों के स्वामी ब्रिटेन का शरीर उसने अपनी इकलौती बेटी को सौंप दिया और चेतना अपनी जन्म-भूमि को अर्पित की. पुत्री रात-दिन सेवा-रत रहती. समय बचाकर सूत कातती. उसी सूत से उसका कुर्ता बनता, धोती बनती. और जब वह फट जाते तो पुत्री मणि उन्हीं को काट-कूटकर अपनी साड़ी-कुर्ती बनाती. यही था उस परम सत्व का जीवन-वैभव! अपने ही में सम्पन्न, अपने ही में परिपूर्ण!! उन्ही विश्व के अप्रतिम राजनीति-चक्रवर्ती सार्वभौम सरदार वल्लभ भाई पटेल की दिवगंत पावन आत्मा को मेरा यह उपन्यास 'गोली' सादर समर्पित है।"

एन. सी. मेहरोत्रा और रंजना कपूर द्वारा लिखित सरदार वल्लभभाई पटेल व्यक्ति एवं विचार में लेखक द्वय ने सरदार पटेल के प्रति अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त किये हैं: सरदार पटेल भारत के देशभक्तों में एक अमूल्य रत्न थे। वे भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में अक्षम शक्ति स्तम्भ थे। आत्म-त्याग, अनवरत सेवा तथा दूसरों को दिव्य-शक्ति की चेतना देने वाला उनका जीवन सदैव प्रकाश-स्तम्भ की अमर ज्योति रहेगा। वास्तव में वे आधुनिक भारत के शिल्पी थे। इस मितभाषी, अनुशासनप्रिय और कर्मठ व्यक्ति के कठोर व्यक्तित्व में विस्मार्क जैसी संगठन कुशलता, कौटिल्य जैसी राजनीतिक सत्ता तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति अब्राहम लिंकन जैसी अटूट निष्ठा थी। जिस अदम्य उत्साह, असीम शक्ति, मानवीय समस्याओं के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण से उन्होंने निर्भय होकर नवजात गणराज्य की प्ररम्भिक कठिनाइयों का समाधान अद्भुत सफलता से किया, उसके कारण विश्व के राजनैतिक मानचित्र में उन्होंने अमिट स्थान बना लिया।"

हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में समानाधिकार रखने वाले अमरेन्द्र नारायण के नाम से साहित्य जगत भली भांति परिचित है। अमरेन्द्र ने हिंदी में "एकता और शक्ति तथा अंग्रेज़ी में यूनिटी एण्ड स्ट्रेन्थ' नाम से सरदार पटेल के जीवन पर आधारित उपन्यास की रचना की, जिसे साहित्य जगत ने हाथों हाथ लिया। देशी रियासतों के एकीकरण से सम्बन्धित सरदार पटेल के महान कार्य को उल्लेखित करते हुए वे अपने उपन्यास में लिखते हैं : "देशी राजाओं से मिलकर उनको भारत के विलय के लिए, विलय-पत्र पर हस्ताक्षर के लिए सहमत करना, सरदार पटेल के सिवा किसी अन्य नेता के बूते की बात भी नहीं थी। यह विराट्-सा दीखनेवाला लक्ष्य डेढ़ सालों के अन्दर-अन्दर पूरा हो गया। एक-एक राजा से मिलकर, किसी को वार्ता से, किसी को समझा-बुझाकर तो किसी को धमकाकर- अर्थात् जो जिस भाषा को समझता है, उसी भाषा में उत्तर देकर उससे व्यवहार करके उसके राज्य को भारतवर्ष की सीमाओं में ससम्मान सुरक्षित रखने की गारंटी देना— इन सबकी अपनी-अपनी कहानी है। पटेल कहा करते थे,'यदि हम राजाओं को अच्छी तरह समझाएँ और उनके साथ उचित व्यवहार करें, तो वे लोकहित

में स्वयं अपनी सत्ता छोड़ देंगे।' (एकता और शक्ति, पृ. 210) सन 1918 से दिसंबर 1950 में हुए सरदार पटेल के निधन तक की घटनाओं को अमरेन्द्र नारायण ने बड़ी ही कुशलता और भावप्रवणता के साथ अपने इस उपन्यास में अभिव्यक्ति दी है|

हिंदी साहित्य में सरदार पटेल की लोकप्रियता की ये मात्र कुछ झलकियाँ हैं ,जिनको यहाँ उद्धृत किया गया है। आलेख के कलेवर की व्यापकता को देखते हुए यहाँ मात्र महामानव सरदार उपन्यास की चर्चा की जा रही है।

महामानव सरदार उपन्यास मूलतः गुजराती में लिखने वाले डॉ. दिनकर जोशी का सरदार पटेल के जीवन की घटनाओं पर आधारित जीवनी परक उपन्यास है, जिसमें लौहपुरुष पटेल के जीवन के अनछुए और तेजस्वी पक्ष को उजागर किया गया है। दिनकर जोशी ने महामानव सरदार के अतिरिक्त अन्य कई जीवनीपरक उपन्यास लिखे हैं, जिनमें गुरुदेव, प्रश्नों पर पूर्ण विराम और जिन्ना के जीवन पर आधारित प्रतिनायक उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अपने इस उपन्यास में दिनकर जोशी ने पटेल के जीवन से संबंधित उन घटनाओं और विचारों को प्रकाश में लाने की चेष्टा की है जो अभी तक अनखुले /अधखुले कहे जा सकते हैं।

जीवनीपरक उपन्यासों में अक्सर उपन्यासकार अपने नायक के संपूर्ण जीवन का लेखाजोखा प्रस्तुत करते हैं, लेकिन यह उपन्यास इस दृष्टि से भिन्न है। उपन्यास बयालीस वर्ष की अवस्था में पटेल के राजनीति में प्रवेश करने के साथ प्रारंभ होता है और उनके इस संसार से विदा होने के साथ समाप्त हो जाता है। वल्लभभाई पटेल के एक साधारण मानव से सरदार और फिर महामानव बनने की घटनाओं को उजागर करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य था, इसलिए उसने अपने उपन्यास को इस लघु समयावधि में ही सीमित रखा है,ताकि महत्वपूर्ण मुद्दे छूटें न और उन पर गहनता,गंभीरता के साथ बात की जाने के लिए पर्याप्त समय और स्थान मिल सके। उपन्यासकार ने यहाँ कुछ ऐसे मुद्दे भी उठाये गए हैं ,जिन पर विचार करना आज अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक है, अन्यथा हम इतिहास को अपने अनुरूप तोड़-मरोड़कर नई पीढी के समक्ष प्रस्तुत करने के अपराधी कहे जाएंगे। उपन्यासकार ने विभिन्न तर्कों और तथ्यों के आधार पर इस संभावना को भी मजबूती दी है कि क्या पटेल को साम्प्रदायिक ,पूंजीवादी और गांधी जी की मृत्यु के प्रति लापरवाही बरतने के आरोप लगाकार पटेल के साथ समय ,इतिहास और राजनीति ने अन्याय किया है? उपन्यास में उठाया गया एक और महत्वपूर्ण सवाल जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती और जो आज़ादी के बाद से अनगिनत भारतीयों के मन में कौंध रहा है , वह है यदि सरदार देश के प्रधानमंत्री बन जाते !!!

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के नक़्शे का चालीस प्रतिशत पीले रंग से प्रदर्शित किया जाता था, अर्थात् 562 रियासतें और उनकी 8.5 करोड़ जनता की गणना ब्रिटिशराज्य में नहीं की जाती थी| ऐसे समय में भारत के स्वातंत्र्य स्वप्न को साकार करने के लिए पूरे भारत की नज़र सिर्फ और सिर्फ पटेल पर केन्द्रित थी। 80 प्रतिशत कांग्रेसी सदस्यों की सोच भी यही थी| लेकिन गांधीजी की सोच इन 80 प्रतिशत लोगों की सोच से भिन्न थी। और जहां गांधी जी की सहमति नहीं है वहां पटेल नहीं हो सकते ,ये पटेल के साथ-साथ पूरा देश भी बखूबी जानता था।

भारतीय इतिहास में पटेल अपने जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाओं के कारण अमर रहेंगे, एक तो राजनीति में उनके प्रवेश अर्थात सन 1918 से लेकर 10 साल के अन्दर ही बारडोली सत्याग्रह में वल्लभभाई पटेल के अदम्य साहस और दूरदर्शिता के कारण सरदार के रूप में उनकी पहचान स्थापित होना और स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात 562 देशी रियासतों के भारत के मानचित्र में विलयीकरण के लिए कूटनीतिक दृष्टि और अभूतपूर्व साहस के साथ उठाया गया सरदार का अपराजेय कदम। इस अभूतपूर्व कार्य के लिए जर्मनी के बिस्मार्क से पटेल की तुलना की जाती है, लेकिन उपन्यासकार बिस्मार्क और पटेल की इस तुलना से पूर्णतया असहमत है। इसकी वज़ह है कि जर्मनी के तानाशाह बिस्मार्क ने इस कार्य को भयंकर कत्लेआम के माध्यम से पूर्ण किया और तत्पश्चात वह स्वयं ही जर्मनी का सम्राट बन बैठा। लेकिन सरदार पटेल की ऐसी कोई मंशा नहीं थी। यहाँ तक कि उन्होंने रियासतों के विलयीकरण के साथ जिस प्रकार प्रिवीपर्स की सालाना 5.5 करोड़ रकम को स्वीकार किया ,वह उनकी रियासतों के प्रतिनिधियों के प्रति उदारता और सदाशयता का उदाहरण ही कहा जाएगा। यह भी सत्य है कि राजाओं के प्रति इस रवैये के कारण सरदार पटेल को कुछ कांग्रेसी सदस्यों की नाराजगी का सामना भी करना पडा था। आने वाली कोई सरकार अपनी सुविधानुसार प्रिवीपर्स में रद्दोबदल न कर दे,इस आशंका से पटेल ने संविधान में प्रिवीपर्स चुकता करने विषयक मुद्दा भी शामिल करवा दिया। यह अलग बात है कि सरदार की नज़र में जो देश का रियासतों के प्रति सौजन्य और पवित्र कर्तव्य था,वह 25 वर्ष के अन्दर ही अनदेखा कर दिया गया। इन सारे तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए उपन्यासकार के मत में यह कहना उचित है कि सरदार ने एकीकरण की जो सिद्धि प्राप्त की वह वैश्विक इतिहास में ऐसी अद्वितीय है कि बिस्मार्क उसके सामने बौना साबित होता है।

इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों द्वारा समय –समय पर कुछ ऐसी भ्रांतियां फैलाई गईं, जिनसे ये भ्रम होता है कि महात्मा गांधी और पटेल एक दूसरे के धुर विरोधी थे। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में अनेक ऐसे स्थल और घटनाएं हैं जिनसे ये सिद्ध होता है कि भले ही कुछ वैचारिक विभिन्नताओं के चलते सरदार पटेल गांधी जी की नीतियों का समर्थन न करते हों, लेकिन सरदार के दिल में गाँधीजी के प्रति अपार सम्मान था, जो ताउम्र बना रहा। यह भी उल्लेखनीय है कि पटेल का जब भी गांधीजी से मतभेद हुआ वह व्यक्तिलक्षित न होकर देशलक्षित था। गांधी और पटेल के वैचारिक मतभेद

के संबंध में उपन्यास में उद्धृत सन 1918 में गोधरा में आयोजित राजकीय परिषद की घटना का उल्लेख पर्याप्त होगा। इस परिषद् में 43 वर्ष के पटेल एक सामान्य जागृत नागरिक के रूप में उपस्थित थे। गांधी जी के नाम और कार्य से परिचित होने के बावजूद वे उनसे ख़ास प्रभावित नहीं थे। चंपारण की अदालत में गांधी जी द्वारा पढ़े गए वक्तव्य से वल्लभभाई बहुत प्रभावित हुए और उस समय गांधीजी के लिए प्रकट होने वाले उनके उदगार थे कि यह एक मर्द आदमी है। उस दिन से पूरे तीस वर्ष तक पटेल ने गांधी जी का सम्मान करते हुए गांधी जी के आदेश और इच्छा को सर्वोपरि माना फिर चाहे वो राजकोट की वारावाला की लड़ाई हो, खिलाफत आन्दोलन हो,प्रधानमंत्री के पद पर विभूषित होना हो या देश का विभाजन हो। यहाँ इन कुछ घटनाओं का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि ये वे घटनाएं थीं, जब पटेल गांधी जी के निर्णयों से पूरी तरह से असहमत थे, लेकिन गांधीजी का सम्मान करते हुए पटेल ने गांधीजी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

जवाहरलाल नेहरु से भी पटेल के वैचारिक मतभेद जब तब उजागर होते रहे। सन 1948-49 में जब जवाहरलाल नेहरू चीन को अपना परममित्र मान रहे थे तथा तिब्बत पर चीन के आधिपत्य को भी जवाहरलाल नेहरू ने निस्संकोच स्वीकार लिया था, तब पटेल ने चीन के रुख को देखते हुए नेहरूजी से कहा था कि भविष्य में चीन हमारे लिए पकिस्तान से भी अधिक ख़तरा हो जाएगा ,तो नेहरू ने पटेल को जवाबी पत्र में लिखा था कि चीन की ओर से हम पर सैनिक हमला किया जाये,यह तो मुझे असंभव ही लगता है ,चीन ऐसा कर सकता है इसकी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती ,मैं ऐसी किसी भी संभावना से इनकार करता हूँ। यह पटेल की दूरदर्शिता ही थी कि उस समय जो पटेल देख सकते थे वे नेहरू जी नहीं देख पा रहे थे। देशविभाजन के पश्चात् मुस्लिमों में असुरक्षा की भावना का परावर्तित विचार कुछ लोगों द्वारा नेहरूजी के मन में डाला गया,जिसके परिणामस्वरूप नेहरूजी ने मुसलमानों के मन में भय व असुरक्षा की भावना समाप्त करने और उनके बहुमत विस्तार से दिल्ली में बसाने के विशेष प्रावधान करने की बात कही। पटेल इस बात से सहमत नहीं थे और इसके विरोध में अपनी असहमति व्यक्त करते हुए पटेल ने कहा : "जिन्हें पाकिस्तान जाना चाहिए था,उन्हें वह मिल गया है| जिनकी द्विराष्ट्र में श्रद्धा है ,वे वहां चले जाएं और सुख से रहें| अब यहाँ रहने वाले मुसलमानों का कर्तव्य है कि वे अपने कर्मों द्वारा इस देश की बहुसंख्यक जनता को विश्वास दिलाएं कि वे इस देश के वफादार हैं। " देश के गृहमंत्री के इस वक्तव्य में जो दोषदर्शन करते हैं और सम्प्रदायवाद की गंध देखते हैं, वे निश्चित ही दुराग्रही कहे जाएंगे। यह जानते बूझते हुए भी कि पटेल का यह कथन उन परिस्थितियों में कहा गया था जब देश के नब्बे प्रतिशत मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के पक्ष में मतदान किया था। उपन्यासकार ने पटेल का सांप्रदायिक नेता के रूप में आकलन करने वालों को ऐसे कई उदाहरणों द्वारा गलत सिद्ध किया है, जिसमें पटेल ने मुस्लिमों को देश की मुख्यधारा में लाने के प्रयास किये थे। ऐसे प्रयासों में सूचना एवं प्रसारणमंत्री के रूप में आकाशवाणी की उर्दू सेवाओं को नवजीवन देना, भोपाल के नवाब की बेटी को दंगाग्रस्त इलाकों से सुरक्षित निकालकर हवाईजहाज से भोपाल भेजना आदि कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपन्यासकार ने स्थल-स्थल पर इस बात को भी चिहनित किया है कि व्यक्तिगत पसंद-नापसंद के कारण किसी इतिहासपुरुष के महत्त्व को कम करके आंकना और उसके महत्कार्यों की अनदेखी करना तथ्यों और उनमें निहित सत्य को छिपाना मात्र नहीं है, बल्कि ये ऐसा दुष्कृत्य भी है, जिसे इतिहास में सर्वदा निंदनीय की श्रेणी में रखा जाएगा। उपन्यास में चित्रित एक-दो घटनाओं का उल्लेख करना मात्र ही इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त है, जो पटेल के प्रति की गई अनदेखी के प्रति उपन्यासकार के असंतोष और क्षोभ को व्यक्त करता है। प्रथम -भारत सरकार द्वारा 1950 में दिवंगत हुए पटेल को 1991 में भारतरत्न से सम्मानित करना तथा दूसरा- 1954 में मौलाना आज़ाद की मृत्यु के तीसरे महीने में ही उनका तैलचित्र संसद भवन के समक्ष लगवाने की बात चलना। उस समय ग्वालियर के महाराजा सिंधिया ने कहा कि सन 1950 में मृत्यु प्राप्त हुए सरदार पटेल का चित्र अभी तक संसद भवन में नहीं रखा गया है। उन्होंने राष्ट्रपति श्री राजेंद्र प्रसाद से अनुरोध करके सरदार पटेल का चित्र लगवाया। चित्र के अनावरण के समय सिंधिया ने पटेल के प्रति अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त किये थे: Here is the man whom I once hated. Here is the man of whom I was later afraid. Here is the man whom I admire and love!.(पृष्ठ 34) इन महत्वपूर्ण घटनाओं के अलावा सरदार के व्यक्तिगत जीवन की कुछ ऐसी घटनाएं भी उपन्यास में चित्रित हैं ,जो पटेल के सरल,सहज,संवेदनशील और अनुकरणीय व्यवहार को प्रदर्शित करती हैं। सरदार पटेल देश के साथ –साथ अपने परिवारीजनों के प्रति भी पूर्णतया समर्पित थे। उपन्यास में एक प्रसंग से पता चलता है कि इंग्लॅण्ड में बैरिस्टर की पढ़ाई के लिए सरदार ने अपने लिए सारी व्यवस्थाएं कर ली थीं, लेकिन उस व्यवस्था का पूरा लाभ उनके बड़े भाई विट्ठल ने ले लिया था और इंग्लैंड जाकर पढाई की थी। पढाई के दौरान पूरे तीन वर्ष तक विट्ठलभाई के परिवार की जिम्मेदारी सरदार ने अपने कंधे पर उठाई थी। उपन्यास की समाप्ति लेखक ने सरदार पटेल की मृत्यु के समय इन शब्दों में संवेदना प्रकटीकरण के माध्यम से की है : देश के नक़्शे को पहली बार एकसूत्र में बाँधने वाला कर्मयोगी,सन्यासी,अपनी पार्थिव जीवन यात्रा समाप्त करके अनंत की यात्रा में अलख जगाने विदा ले चुका था।

❖

सहायक निदेशक ,केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय,भारत सरकार ,नई दिल्ली
मोबाइल 7303112607, ईमेल pandeynutan91@gmail.com

स्वाधीनता के बाद की हिंदी कहानी : परंपरा एवं प्रकृति

– डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

"इस दौर के प्रमुख कहानीकारों में शेखर जोशी अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। विषय वस्तु के आलोक में देखें तो शेखर जोशी की कहानियां अपने समकालीन रचनाकारों में अलग स्थान रखती हैं। शेखर जोशी ने औद्योगिक क्षेत्र से संबंधित श्रमिक वर्ग को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में पहाड़ी जीवन, व्यक्तिव विभाजन, संत्रास एवं सामाजिक विडंबनाओं को प्रमुखता से रेखांकित किया है। बदबू, कोसी का घटवार एवं दाज्यू जैसी कई कहानियाँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। शेखर जोशी की कहानियों की विशेषता है कि वह अत्यंत सहज और सपाट हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के लिए समाज के उन प्रतिनिधि पात्रों को केंद्र में रखा है, जो सामाजिक संरचना में आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े हैं। गौरतलब है, शेखर जोशी का समय प्रगति और प्रतिक्रिया के तीव्रतर संघर्षों का समय है। शेखर जोशी अपने समय सापेक्ष एक सचेत कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। उनकी रचनाशीलता को समग्रता में देखें तो स्पष्ट है कि शेखर जोशी की कहानियाँ उनके जीवन संदर्भों से गहरे रूप में संपृक्त हैं। उनकी कहानियों में अपने देशकाल के प्रति गहरी चिंता का बोध है, सामाजिक संघर्ष एवं परिवर्तन की आकांक्षा है।"

स्वाधीनता के बाद की हिंदी कहानियों का बहुत ही समृद्ध इतिहास रहा है। इस दौर की कहानियों का सीधा सरोकार स्वाधीन भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों से है। स्वाधीनता के बाद बौद्धिक स्तर पर मूल्यों के विघटन एवं मोहभंग को इस दौर के लेखकों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से रेखांकित किया है। हिंदी कहानी के इतिहास को देखें तो आजादी के बाद के एक महत्त्वपूर्ण कहानी आंदोलन हुआ, जिसे नई कहानी की संज्ञा से अभिहित किया गया। एक प्रकार से देखें तो नई कहानी की चेतना स्वाधीनता के पश्चात भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है। रामदरश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिंदी कहानी अंतरंग पहचान' में नई कहानी की रचनाशीलता के संदर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है- "नई कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति मन की चेतना है। इसलिए वह न तो बाहरी यथार्थ की अनुभूतिहीन फार्मूलाबद्ध कथन कहती है और न ही बाहरी परिवेश से विच्छिन्न होकर या बाहरी परिवेश को अवचेतन की दुनिया से संदर्भित कर मात्र व्यक्ति मन का चित्रण करती है। वह जीवन परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों-मूल्यों एवं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है।"[1] निश्चित रूप से स्वाधीनता के पश्चात की हिंदी कहानी का कैनवास बहुत ही विस्तृत है। इस दौर की कहानियों में अपने परिवेश के प्रति गहरी संवेदना है। इन रचनाकारों ने जीवन की जटिलताओं, विसंगतियों एवं अंतर्विरोधों को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ रेखांकित किया है। अमरकांत के शब्दों में कहें तो- "नई कहानी आंदोलन के दौरान लिखी गई कहानियाँ ऐसी कहानियाँ हैं जिन्होंने बदलते हुए समय में नई भाषा और नए शिल्प के साथ अपनी साहित्यिक परंपरा को विकसित किया। इस आंदोलन से पूर्व ढेर सारी कहानियाँ व्यक्तिगत भावुकता अथवा प्रगतिशील भावुकता से ग्रस्त थीं। नई कहानी के अधिक़तर कहानीकारों ने इस भावुकता से तटस्थ होकर जीवन को जाँचना परखना शुरू किया।"[2] प्रस्तुत प्रपत्र में आजादी

के बाद की हिंदी कहानी के बहाने 'नई कहानी' के परिदृश्य को विशेष रूप से समझने का प्रयास किया है।

आलोचकों द्वारा अब तक नई कहानी में कहानी-त्रयी के रूप में जिन तीन नामों मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव की चर्चा करते हुए इसे सीमित दायरे में बांधकर देखा जाता रहा है, वह कहीं न कहीं एकांगी दृष्टिकोण का परिचायक है। यह एक ट्रेजडी ही है कि नई कहानी उन्हीं लेखकों की कहानियों को समझा जाता रहा है जो नई कहानी के झण्डाबरदार थे। नई कहानी को विकसित करने में इस दौर के कई ऐसे महत्त्वपूर्ण लेखकों का विशिष्ट योगदान रहा है जिन्होंने न सिर्फ इस दौर की कहानियों को विकसित किया, बल्कि उसे समृद्ध एवं नई दिशा देने में भी अपनी महती भूमिका निभाई है। इस दौर की कहानी को प्रवृत्तिगत स्तर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक धारा वह जिसमें शहरों, महानगरों एवं कस्बाई जीवन की अभिव्यक्ति हो रही थी जिसमें निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अमरकांत, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, भैरव प्रसाद गुप्त एवं धर्मवीर भारती आदि थे। दूसरी धारा के अंतर्गत ग्रामीण जीवन के यथार्थ एवं आंचलिक पृष्ठभूमि को चित्रित करने वाले कहानीकार थे जिनमें फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय एवं शेखर जोशी जैसे तमाम लेखक उल्लेखनीय हैं। इस दौर की कहानियों में गाँव के बदलते हुए परिवेश, संबंधों की पहचान एवं आंचलिकता बोध का प्रमुखता से रेखांकन हुआ है।

कमलेश्वर नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। कस्बाई एवं नगरीय संवेदना कमलेश्वर की कहानियों का केंद्रीय बिंदु है। इनकी कहानियों की यह विशिष्टता है कि इन्होंने कहानी को सौंदर्यशास्त्रीय ढांचे से निकालकर व्यापक एवं गहरे सामाजिक बोध से संपृक्त किया। कमलेश्वर की रचनाशीलता के संदर्भ में रामदरश मिश्र की यह टिप्पणी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है- "हिंदी की नई कहानी के कृतिकारों में कमलेश्वर अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में समर्थ हुए हैं और उनका वैशिष्ट्य सामान्य जिंदगी से जुड़े रहने की प्रवृत्ति में है। कमलेश्वर ने अपने लेखन के प्रारंभ से ही सामान्य मनुष्य के दु:ख-दर्द को, उसकी आकांक्षाओं को, उसके अभाव और संघर्ष को उसकी मजबूरी और आदमियत को पकड़ने का प्रयत्न किया है और अपने इस प्रयत्न में वे सपाट नहीं होते क्योंकि वे परिस्थितियों का व्यौरा नहीं पेश करते, बल्कि बाहर-भीतर की परिस्थितियों एवं मनः स्थितियों के गहरे तनाव पर नजर रखते हैं। वे न तो बाहरी परिवेश का तथ्यातथ्य अंकन करते हैं, न ही परिवेश निरपेक्ष मानसिकता की परतें उधेड़कर गहराई का छल पैदा करते हैं। दोनों का द्वंद्वात्मक साहचर्य बनाए रखते हैं। इसलिए वे एक ओर अपनी सामाजिक समस्याओं वाली कहानियों में भी व्यक्ति की इयत्ता की उपेक्षा नहीं करते और दूसरी ओर मूलतः यौन-संबंधों वाली कहानियों में यौन चेतना को परिवेश के संदर्भों से जोड़कर रूपायित करते हैं। आम जिंदगी से जुड़ी होने के नाते कमलेश्वर की कहानियों में वैविध्य है।"[3] निश्चित रूप से यह उद्धरण कमलेश्वर के रचनागत वैशिष्ट्य को समझने हेतु महत्त्वपूर्ण है। कमलेश्वर की कहानियों का मूल स्वर भले ही कस्बाई है, किंतु कमलेश्वर नई कहानी के दौर के ऐसे कहानीकारों में हैं जिनकी दृष्टि सामाजिक प्रश्नों से जुड़ी हुई है।

समकालीन कहानीकारों की तुलना में अमरकांत की कहानियाँ अपना अलग स्थान रखती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे वर्ग का चयन किया जो अब तक कहानी की परिधि से लगभग बाहर थे। अमरकांत की रचनाशीलता के संदर्भ में यदुनाथ की यह टिप्पणी बेहद सटीक नजर आती है- "अमरकांत उन कहानीकारों में से हैं, जिन्होंने कहानी को जिंदगी के लिए जरूरी चीज का दर्जा दिया है और स्पष्ट शब्दों में, वह उनके निकट जीवन-संघर्ष का हथियार रही हैं जिसे उन्होंने सामाजिक जीवन के व्यापक संघर्ष में अपनी भूमिका अदा करने के लिए इस्तेमाल किया है इसीलिए वह उनके समकालीन उन तमाम कहानीकारों की कहानियों से अलग हो गई हैं जो उसे सामाजिक जीवन के संघर्ष से अलग एक स्वयंपूर्ण कलात्मक इकाई के रूप में निर्मित कर रहे हैं। इसीलिए अमरकांत की कहानी अपने समय के फैशनों और आंदोलनों से दूर जा पड़ी है कि उसमें समय और परिवेश के यथार्थ को एक निर्दोष कलात्मक रचाव से विधागत संपूर्णता देने के बजाय उसकी समग्रता में बांधने में कोशिश हुई है, जिससे कथाकार की भी पूर्ति मूल्य-संकट के संदर्भ में हो सकी है।"[4] अमरकांत का मानना है कि लेखकों के चाहे जितने खेमे बने लेकिन लेखन वही श्रेयस्कर है जो अपने समय की सच्चाईयों के प्रति सार्थक हस्तक्षेप कर सके। अमरकांत की रचनाशीलता की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उनके यहां विषय वस्तु का विस्तार नहीं है। उनकी ज़्यादातर कहानियाँ एक ही ढर्रे पर लिखी गई हैं। गौरतलब है, अमरकांत ने भूख, गरीबी, शोषण एवं निरीहता को ही अपनी कहानियों का विषय बनाया है , इसी कारण उनकी कहानियाँ एकरसता से ग्रस्त हैं। उक्त संदर्भ में उपेंद्रनाथ अश्क की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "ज़ोर-शोर, प्रचार-प्रसार और डौंडी और डिडुम की दुनिया से अमरकांत बिल्कुल अलग-थलग, लगभग उससे निरपेक्ष, साहित्य-सृजन में रत रहे हैं, इसलिए उनके नाम का शोर उतना नहीं मचा, लेकिन उनकी पहचान अपने समकालीनों में सर्वथा सुस्पष्ट है। यह ठीक है कि राजेन्द्र यादव जैसा विस्तृत घेराव उनका नहीं है कि

एक ओर 'प्रतीक्षा' जैसी कहानी है तो दूसरी ओर 'पास-फेल' और तीसरी ओर 'टूटना' अथवा 'अभिमन्यु की हत्या' जैसी। न अमरकांत के पास राकेश के अनुभव का विस्तार है कि जहां एक ओर वे 'मलबे का मालिक' जैसी कहानी लिखते हैं तो दूसरी ओर 'मिस्टर भाटिया' और तीसरी ओर 'मंदी', 'मिसपाल' अथवा परमात्मा का कुत्ता जैसी, लेकिन... अमरकांत ने अपेक्षाकृत छोटे घेरे में अपने अनुभव की तमाम संपुटितता से अपने को अभिव्यक्ति दी है। और इसमें कहीं-कहीं वे अपने समकालीनों से आगे चले गए हैं।"[5] ध्यातव्य है, मोहन राकेश की कहानियों में जिस प्रकार से सामाजिक यथार्थबोध उभरा है, एक व्यक्ति का न होकर पूरे समय का है। उन्होंने अपने परिवेश की स्थिति को गहराई के साथ अनुभव किया है। उदाहरण स्वरूप मोहन राकेश की कहानी 'जानवर और जानवर', 'फौलाद का आकाश', 'एक और जिंदगी', 'उसकी रोटी' एवं 'ज़ख्म' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। गहरी अर्थवत्ता के साथ सामाजिक चेतना को विकसित करना एवं शिल्प-संतुलन मोहन राकेश की कहानियों की खूबी है। मोहन राकेश की रचनाशीलता के संदर्भ में दूधनाथ सिंह की यह टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है- "हिंदी कहानीकारों में मोहन राकेश शायद सबसे अधिक लोकप्रिय कहानीकार हैं। प्रमुख कारण यह कि कहानी का सशक्त व्यक्तित्व आलोचकों को अंततः एक साधारण पाठक की तरह अपने में इतना घुला देता है कि उसकी सारी प्रतिक्रियाएँ कहानी के आग्रह और संकेतों पर ही प्रतिफलित होती हैं। आलोचकों ने 'नयी', और 'अच्छी' कहानियों के जितने भी गुण बताएं हैं, वे सभी मोहन राकेश की कहानियों में मिल जाएँगे।"[6] मोहन राकेश की कहानियाँ वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर सशक्त हैं। कहानी के वस्तु और शिल्प के प्रति उनकी धारणा बहुत ही स्पष्ट है- "लेखक का अनुभव जगत ही उसकी कृतियों में रूपायित होता है। इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। हर अनुभूति का अपना अलग शिल्प होता है, जिसे प्रत्येक कलाकार अपनी शक्ति और सीमाओं के अनुसार अपनी कृतियों में छोड़ता या अपनाता है।"[7] निश्चित रूप से मोहन राकेश का यह कथन न सिर्फ उनकी रचनाशीलता बल्कि समग्रता में देखें तो नई कहानी के संदर्भ में भी उल्लेखनीय है।

नई कहानी को नए संदर्भों में संपृक्त करने वाले कहानीकारों में राजेन्द्र यादव का नाम विशिष्ट है। राजेन्द्र यादव की कहानियों से गुजरते हुए यह महसूस होता है कि उन्होंने अपनी कहानियों में परंपरागत सामाजिक ढांचों का अतिक्रमण करते हुए आधुनिक भावबोध को तरजीह दी है। उनकी कहानियाँ अपने समय एवं समाज का अन्वेषण करती हुई मानव मन की जटिलताओं एवं समस्याओं को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। राजेन्द्र यादव की कहानियों में व्यष्टि से समष्टि का बोध है। अपनी पीढ़ी की कहानियों के मूल्यांकन के संदर्भ में राजेन्द्र यादव का यह मंतव्य उनकी कहानियों के संदर्भ में भी बहुत ही सटीक है- "इस पीढ़ी के लेखक की दृष्टि को बाहरी और भीतरी ट्रेजेडियों ने जैसा सूक्ष्मदर्शी और संवेदनशील बना दिया है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ। कितने देवताओं, देव-शिशुओं, आदर्शों सिद्धांतों और दर्शनों के विश्वासघात के जहरीले अनुभवों ने उसे यह दृष्टि दी है, यह साहस दिया है कि यथार्थ जैसा है, उसे वैसा ही झेले।"[8] स्पष्ट है, इस दौर की कहानियों में अभिव्यक्ति की सच्चाई और प्रामाणिकता पर ज़ोर दिया गया है। उदाहरण के तौर पर राजेन्द्र यादव की कहानी 'अपने पार', रेखाएँ , खेल-खिलौने, 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'एक कमजोर लड़की की कहानी' आदि कहानियाँ प्रमुखता से रेखांकित की जा सकती हैं। राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में अनुभूति की सघनता एवं सूक्ष्म संवेदना को विशेष महत्व दिया है। राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में शिल्प के स्तर पर विविध प्रयोग किए हैं। शिल्प विधान की दृष्टि से राजेन्द्र यादव की कहानियाँ समकालीन रचनाकारों के अपेक्षाकृत जटिल एवं दुरूह हैं। एक प्रकार से देखें तो स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों की त्रयी में राजेन्द्र यादव की कहानियों की अंतर्वस्तु एवं बुनावट भिन्न है। नवीन जीवन मूल्यों को स्वीकारने की प्रवृत्ति एवं सामाजिक खोखलेपन के प्रति मुखरता ही राजेन्द्र यादव को अपने समकालीनों से अलग करती है।

नई कहानी में निर्मल वर्मा का नाम उन हस्ताक्षरों में शामिल है जो अपने समकालीन रचनाकारों में शिल्प एवं संवेदना दोनों स्तरों पर सबसे अलग खड़े नजर आते हैं। यथार्थ के बदलते परिवेश की गूढ़ता को अनेक स्तरों पर निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में रेखांकित किया है। नामवर सिंह निर्मल वर्मा की अधिकांश कहानियों को अतीत की स्मृतियों का संकलन मानते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में संवेदना के विभिन्न रूपों को जीवनानुभूति की आत्मिक सच्चाई मानते हुए अपनी स्मृतियों के आधार पर उसे अत्यंत सूक्ष्म ढंग से अभिव्यक्त किया है। कथा की बुनावट के आधार पर देखें तो उनकी कहानियाँ अपने देशकाल एवं वातावरण में लिपटी हुई प्रतीत होती हैं। 'परिंदे', 'लंदन की रात', 'दहलीज', 'पहाड़' एवं 'लवर्स' कहानियों को उक्त संदर्भ में बतौर उदाहरण देखा जा सकता है। नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो- "निर्मल वर्मा की कहानियों के पीछे जीवन की गहरी समझ एवं कला का कठोर अनुशासन है। बारीकियाँ दिखाई नहीं पड़ती तो प्रभाव की तीव्रता के कारण अथवा कला के सघन रचाव के कारण निर्मल वर्मा ने स्थूल यथार्थ की सीमा को पार करने की कोशिश की है।"[9] समग्रतः निर्मल वर्मा की रचनाशीलता के संदर्भ में नामवर सिंह ने

उनकी कहानियों के अंतर्गत दो तरह की स्थितियों की ओर स्पष्ट संकेत किया है- "एक वह जो किसी दिशा की सार्थकता की ओर संकेत करती है तथा दूसरी वे जो आधुनिकता और बौद्धिकता की दृष्टि से प्रासंगिक मूल्यों का सृष्टि करती हैं।"[10] 'परिंदे' कहानी उक्त संदर्भों की बखूबी पुष्टि करती है, जिसमें अकेलेपन, टूटते-जुड़ते मानवीय संबंधों को निर्मल वर्मा ने अत्यंत जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। शिल्पगत स्तर पर भी निर्मल वर्मा की कहानियाँ अपने समकालीनों में अलग ही महत्त्व रखती हैं। निर्मल वर्मा की शिल्प पद्धति के संदर्भ में डॉ. गोरधन सिंह शेखावत की यह टिप्पणी बहुत ही सटीक प्रतीत होती है- "कलात्मक बुनावट के लिए निर्मल वर्मा ने बिंबों एवं प्रतीकों का सहारा लिया है। निर्मल वर्मा के प्रतीकों में भी रूमानियत की छाप है। मकबरे, उड़ते कबूतर, गिरजे की घंटियाँ, भूतैले मकान, भूरे टीले, टेरेस, आदि प्रतीकों के माध्यम से एक ओर जहां आधुनिक संचेतना को अभिव्यक्त करने का सहारा लिया है, वहीं इनसे चरित्रों एवं उनकी मनःस्थितियों को भी प्रतीक रूप में प्रकट किया गया है। शिल्प कौशल के कारण निर्मल वर्मा की कहानियाँ परिवेश को जीवंत एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं।"[11] निर्मल वर्मा की कहानियां आम पाठक को एकबारगी पढ़कर समझने में दुरूहता होती है। इन संदर्भों में अमरकांत की कहानियाँ शिल्पगत ढांचे में पूरी तरह संगुफित होने के बावजूद पाठकों के लिए सुग्राह्य हैं। अमरकांत की यह खूबी है कि वह शिल्प और भाव-बोध के नए स्तरों पर अपने को खतरे से बचाते रहते हैं। उक्त संदर्भों में अमरकांत की रचनाशीलता का अपना अलग ही मानदंड है। अमरकांत के लेखन की यह विशिष्टता है कि वह बहुत ही सामान्य एवं सहज अंदाज में बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं। कहानी-कला के संदर्भ में मोहन राकेश की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "कहानी की वास्तविक सामर्थ्य इसी में है कि बड़ी से बड़ी बात कहने के लिए भी लेखक को असाधारण या असामान्य का आश्रय न लेना पड़े। साधारण जीवन के साधारण से ही विचार की अनुगूंज पैदा कर दे।"[12] निश्चित रूप से अमरकांत की रचनाशीलता के आलोक में मोहन राकेश का यह उद्धरण बहुत ही सटीक है।

नई कहानी के परिप्रेक्ष्य में भैरव प्रसाद गुप्त एक सशक्त कहानीकार के रूप में उल्लेखनीय हैं। गुप्त जी की कहानियों का फ़लक अत्यंत वृहद है। वह अपनी कहानियों में सूक्ष्म संवेदना को व्यक्त करने के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपनी कहानियों के विषयवस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। स्वाधीनता के पश्चात आम आदमी की अभावग्रस्तता एवं मोहभंग को भैरव प्रसाद गुप्त ने अपनी कहानियों का विषय बनाया। गुप्त की कहानियों का परिवेश स्वाधीनता के पश्चात का समस्याग्रस्त समाज है। मधुरेश के शब्दों में कहें तो- "भैरव की कहानियाँ रेणु की कहानियों की तरह ही मानव जीवन और सामाजिक यथार्थ के विविध आयामों का प्रायः सूक्ष्म और जीवंत परिचय देती हैं। अपनी समग्रता में भैरव की कहानियाँ एक ऐसे समाज का मानचित्र प्रस्तुत करती है जहां सामाजिक द्वन्द्वों की प्रकृति अनिवार्यतः मूल संरचना में परिवर्तन की मांग करती है।"[13] 'फरिश्ता', 'इंसान', 'सपनों का अंत', 'मंजिल' आदि कहानियों को इस कड़ी के अंतर्गत रेखांकित किया जा सकता है।

इस दौर के प्रमुख कहानीकारों में शेखर जोशी अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। विषयवस्तु के आलोक में देखें तो शेखर जोशी की कहानियां अपने समकालीन रचनाकारों में अलग स्थान रखती हैं। शेखर जोशी ने औद्योगिक क्षेत्र से संबंधित श्रमिक वर्ग को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में पहाड़ी जीवन, व्यक्तिव विभाजन, संत्रास एवं सामाजिक विडंबनाओं को प्रमुखता से रेखांकित किया है। बदबू, कोसी का घटवार, एवं दाज्यू जैसी कई कहानियाँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। शेखर जोशी की कहानियों की विशेषता है कि वह अत्यंत सहज और सपाट हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के लिए समाज के उन प्रतिनिधि पात्रों को केंद्र में रखा है, जो सामाजिक संरचना में आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े हैं। गौरतलब है, शेखर जोशी का समय प्रगति और प्रतिक्रिया के तीव्रतर संघर्षों का समय है। शेखर जोशी अपने समय सापेक्ष एक सचेत कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। उनकी रचनाशीलता को समग्रता में देखें तो स्पष्ट है कि शेखर जोशी की कहानियाँ उनके जीवन संदर्भों से गहरे रूप में संपृक्त हैं। उनकी कहानियों में अपने देशकाल के प्रति गहरी चिंता का बोध है, सामाजिक संघर्ष एवं परिवर्तन की आकांक्षा है।

नई कहानी को समृद्ध करने में धर्मवीर भारती का सार्थक हस्तक्षेप रहा है। आधुनिक भाव-बोध एवं मध्यवर्गीय समाज के प्रति नवीन जीवन दृष्टि की झलक उनकी कहानियों में स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। धर्मवीर भारती ने व्यक्ति के मन के क्षोभ, असंतोष एवं घुटन को अपनी कहानियों में बहुत ही बारीकी के साथ रखा है। मिसाल के तौर पर 'गुलकी बन्नो', 'मुर्दों का गाँव', 'चाँद और टूटे हुए लोग' आदि कहानियाँ प्रमुखता से देखी जा सकती हैं। 'गुलकी बन्नो' नई कहानी के दौर की चर्चित कहानियों में से एक है। आजादी के बाद की कहानी को नई संवेदना के धरातल पर देखें तो यह कहानियाँ गहरी संवेदनशीलता एवं व्यापक अंतर्दृष्टि की आख्यान हैं।

स्वाधीनता के बाद की कहानियों के विकास में महिला कहानीकारों की भी महती भूमिका रही है। इस कड़ी में मन्नू भण्डारी,

कृष्णा सोबती एवं उषा प्रियंवदा को प्रमुखता से रेखांकित किया जा सकता है। कृष्णा सोबती उन कहानीकारों में हैं जिन्होंने बहुत कम कहानियाँ लिखकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से स्त्री पात्रों के जटिल मनोभावों खासकर सेक्स के प्रति कुंठाओं को वृहत्तर फ़लक पर प्रस्तुत किया है। इसके अलावा उनकी कहानियों में विभाजन के पश्चात की स्थितियों एवं उससे उत्पन्न दंश को बहुत ही जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। 'बादलों के घेरे', डार से बिछुड़ी हुई, और 'मित्रों मरजानी' जैसी कहानियों को कृष्णा सोबती की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों में स्वाधीनता पश्चात के व्यक्ति मन के रेशे-रेशे को सूक्ष्म अभिव्यक्ति दी है।

मन्नू भण्डारी उन महत्त्वपूर्ण लेखिकाओं में शुमार हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों, बदलते परिवेश के अनुसार टूटते परिवार, प्रेम, कुंठा एवं हताशा को प्रमुखता से जगह दी है। इस संदर्भ में 'मैं हार गई' 'तीन निगाहों की तस्वीर' कहानी-संग्रह उल्लेखनीय है। मन्नू भण्डारी की कहानियों का मूल स्वर पारंपरिक नैतिकता के प्रति विद्रोह तथा मानवीय पीड़ा है। उनकी कहानियों के पात्रों की मंशा अतीत की बेचैनी से मुक्ति एवं व्यवस्था परिवर्तन है। मन्नू भण्डारी की विशेषता है कि समय एवं परिवेश के मुताबिक उनकी कहानियों की विषय वस्तु, संवेदना एवं शिल्प भी बदलता गया। उनकी कहानियों के चरित्र आधुनिक स्त्री के अंतर्द्वंद्व, पुरुष मानसिकता एवं तनाव आदि को प्रमुखता से उद्घाटित करने में समर्थ हैं। 'यही सच है' कहानी के पात्र दीपा और निशीथ इस बात के पुख्ता गवाह हैं। इस दौर के कहानीकारों के संदर्भ में मोहन राकेश की यह टिप्पणी बहुत ही सटीक जान पड़ती है- "इस दौर की अधिकांश कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है।"[14] इस संदर्भ में यहाँ प्रमुख महिला कथाकार उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' का ज़िक्र करना समीचीन प्रतीत होता है। इस कहानी के पात्र गजाधर बाबू अपने ही घर में अजनबी हो जाते हैं, यहां तक कि उनकी पत्नी भी उनके साथ न जाकर बेटे के साथ चली जाती है। ऐसी स्थिति में गजाधर बाबू परिवर्तित जीवन-मूल्यों के साथ समझौता न कर पाने के कारण परिवेशगत तनाव से ग्रस्त हो जाते हैं। शिल्प एवं अंतर्वस्तु के स्तर पर अन्य कहानियों से अलग होने के नाते नई कहानी की चर्चा के क्रम में इस कहानी को विशिष्ट दर्जा प्राप्त है। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में स्त्री मन की तमाम अनसुलझी गुत्थियाँ, ऊब, अपराध-बोध, टूटते-बिखरते प्रेम, स्त्री-पुरुष संबंध आदि को प्रमुखता से उद्घाटित किया है। इस क्रम में उनकी कहानी 'पूर्ति', 'मोहबंध' एवं 'कोई नहीं', 'छुट्टी के दिन', 'चाँद चलता रहा' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

इस दौर के रचनाकारों भीष्म साहनी को प्रमुखता से शुमार किया जाता है। रॉल्फ फॉक्स का यह कथन कि साहित्य में जीवन के विषय में लेखक के राय की दरकार नहीं, वहां जीवन की तस्वीर चाहिए, भीष्म साहनी की रचना-दृष्टि के संदर्भ में यह उद्धरण बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सटीक है। वास्तव में तमाम आपाधापी एवं उठापटक के युग में साहनी की रचना-दृष्टि बिल्कुल अलग थी। उपन्यास 'तमस' कहानी 'चीफ की दावत' और नाटक 'कबिरा खड़ा बाजार में' जैसी कालजयी रचनाएँ इस बात की गवाह हैं। भीष्म साहनी ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने स्वतंत्रता-पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर काल के बदलते हुए जीवन की तस्वीर को बड़े ही करीब से देखा है। उनकी लेखकीय संवेदना का मुख्य आधार जनता की पीड़ा है। जीवन के छोटे से छोटे प्रसंगों के माध्यम से बड़ी बात कह देना भीष्म साहनी की अपनी ताकत है। वास्तव में 'चीफ की दावत' कहानी इस बात की मिसाल है- "अब घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, माँ का क्या होगा?"[15] कहानी का बेहद छोटा सा प्रसंग रचना के पूरे मर्म को स्पष्ट कर देता है। शामनाथ के लिए अपनी निरक्षर और बूढ़ी माँ ही एक समस्या हो जाती है जैसे कि घर के अन्य फालतू सामान। शामनाथ अपनी माँ को इस घर से उस घर में कूड़े की तरह छिपाता फिरता है और माँ अपने बेटे की खुशी एवं हित को ध्यान में रखते हुए कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। वास्तव में यह कहानी स्वार्थपरता, संवेदनहीनता, गहरे विसंगतिबोध एवं विडंबना की कहानी है।

जीवन की कसौटी पर ही किसी लेखक की रचनाएँ भी परखी और आँकी जाती हैं। भीष्म साहनी की रचनाएँ जीवन के यथार्थ से गहरे रूप में संपृक्त हैं। वे सदैव मानवीय मूल्यों के हिमायती रहे। भीष्म साहनी का मानना है कि –"जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा न कर लेखक उसे जितना नजदीक से देखेगा, हमारे साहित्य में उतनी ही अधिक सच्चाई और व्यापकता आएगी और इसी के फलस्वरूप साहित्य में अधिक विविधता भी आ पाएगी।"[16] भीष्म साहनी अपनी रचनाशीलता में इन सब चीजों का बेहद ख़याल रखते हैं। 'अमृत सर आ गया है', 'वाङ्चू', 'खून का रिश्ता', 'ओ हरामजादे', 'चीफ की दावत' कहानियों के अलावा उनके उपन्यास 'कुंतों', 'बसंती', 'तमस', कड़ियाँ, 'मैय्यादास की माड़ी' एवं नाटक 'कबिरा खड़ा बाजार में',

'हानूश' आदि जितनी भी रचनाएँ हैं उनमें विषय की वैविध्यता है। इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में ऐसी सहज मानवीय यथार्थवादी संवेदना है जो बगैर किसी कलात्मकता के पाठकों को अभिभूत कर देती है। भीष्म साहनी इस दौर के ऐसे लेखकों में शुमार हैं जिनमें विधागत स्तर विस्तार होने के बावजूद अपनी लेखनी में कहीं कमजोर नहीं दिखते। भीष्म साहनी की प्रसिद्धि कहानीकार के रूप में तो है ही हिंदी साहित्य के इतिहास में एक सधे हुए उपन्यासकार एवं मजे हुए नाटककार के रूप सार्थक हस्तक्षेप है।

स्वाधीनता के पश्चात आंचलिकता एवं ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर कहानी लिखने वाले लेखकों की समृद्ध परंपरा रही है। इस कड़ी में फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह एवं शैलेश मटियानी का नाम उल्लेखनीय है। फणीश्वरनाथ रेणु अपनी पीढ़ी के श्रेष्ठ कहानीकारों मे से एक हैं। रेणु ने अपनी कहानियों में अपने क्षेत्र विशेष के आंचलिक जीवन को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। रेणु की कहानियों में बौद्धिकता का आक्रांत न होकर व्यक्ति मन की सहज अनुभूतियों की कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों की विशेषता है कि उन्होंने यथार्थ और अनुभव को अपने समय एवं समाज की भाषा में गढ़ा है। विद्या भूषण ने अपनी पुस्तक 'रेणु की कहानियों का पुनर्पाठ' में उनकी रचानशीलता के संदर्भ में कहा है- "रेणु की कहानियाँ ऐतिहासिक संदर्भों की उपज हैं। नैरंतर्य के धरातल पर और परंपरा से पृथक हैं- एप्रोच, निर्वाह और दृष्टि के अंतर के कारण। उन्होंने अपनी कहानियों में युग के अनुभूत यथार्थ के सारे अंतर्विरोध, प्रवंचना और असंगति को भोगा और अभिव्यक्त किया है। यह कहानियाँ एक साथ ही मूल्यभंग और मूल्य-निर्माण की कहानियाँ हैं।"[17] एक प्रकार से देखें तो फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में गावों की बदलती हुई स्थितियों की गहराई से पड़ताल हुई है। देशकाल, परिवेश एवं पात्रों के अनुरूप रेणु ने अपनी कहानियों में ठेठ गंवईपन है। जगह-जगह पर रेणु ने आवश्यकतानुसार अपनी कहानियों में लोक-कथाओं एवं लोक-गीतों का सुंदर प्रयोग किया है। यह प्रयोग ही उन्हें अपने समकालीनों से अंतर्वस्तु एवं शिल्प दोनों स्तरों पर अलग करते हैं। उदाहरण के रूप में 'तीसरी कसम', 'पंचलाइट', 'ठुमरी', 'जलवा', एवं 'रसप्रिया' उल्लेखनीय हैं।

ग्रामीण जीवन बोध के कथाकारों में मार्कण्डेय अपने समय के उन कहानीकारों में से एक हैं जिनकी कहानियों के केंद्र में वर्ग वैषम्य के प्रति गहरा आक्रोश, सामाजिक असमानता एवं शोषण के प्रति विद्रोही चेतना का सूक्ष्म अंकन परिलक्षित होता है। 'हंसा जाई अकेला', 'पान-फूल', 'भूदान' एवं 'माही' आदि कहानियों में मार्कण्डेय ने जमीदारी प्रथा का अंतर्विरोध, विकास योजनाओं का खोखलापन एवं विसंगतिबोध को प्रमुखता से उद्घाटित किया है। मार्कण्डेय की कहानियों के वैशिष्ट्य के संदर्भ में नामवर सिंह की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है – "मार्कण्डेय के किसान चरित्र जीवन की जिन परिस्थितियों के संदर्भ में चित्रित हुए हैं वे आधुनिक भूमि सुधारों एवं विकास योजनाओं से संबद्ध हैं और इनकी भूमि समस्याएँ नई जीवन व्यवस्था तथा मानसिक व्यवस्था को व्यंजित करती हैं।"[18] मार्कण्डेय की कहानियों की यह विशेषता है कि उन्होंने ग्रामीण जीवन के ठोस यथार्थ को जीवंत संदर्भों में रेखांकित किया है। ग्रामीण जीवन की कहानियों खासकर मार्कण्डेय की कहानियों के संदर्भ में डॉ. गोरधन सिंह शेखावत की यह टिप्पणी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है- "मार्कण्डेय की कहानियों का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि उनके पास ग्राम्य जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव है और उन्होंने ग्राम्य जीवन की समस्याओं एवं वास्तविकताओं को समझने का प्रयत्न भी किया है लेकिन ग्राम जीवन के परिवर्तित संदर्भों को अपने दृष्टिकोण से देखने के कारण मार्कण्डेय की कहानियाँ फणीश्वरनाथ रेणु और शिवप्रसाद सिंह की आंचलिक कहानियों से भिन्न रूप में उपस्थित होती हैं। ग्राम्य जीवन की स्थितियों, ग्राम्य चरित्रों एवं परिस्थितियों को उन्होंने अपना रंग दिया है इस कारण कई जगह ऐसा प्रतीत होता है मानो ग्राम जीवन के प्रति उनकी बौद्धिक सहानुभूति है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मार्कण्डेय ने आत्मीय सहानुभूति एवं संवेदना के साथ जिन स्थितियों का चित्रण किया है, वे ग्राम्य जीवन के ठोस यथार्थ को रूपायित करती हैं।"[19] मार्कण्डेय की कहानियों का परिवेश समसामयिक परिस्थितियों के यथार्थ से संपृक्त है। शिल्पगत स्तर पर देखें तो मार्कण्डेय की कहानियाँ कई जगहों पर भावुकता के कारण प्रभावित भी हुई हैं। इस कोटि में 'नीम की टहनी' एवं 'दोने की पत्तियाँ' कहानी को बतौर उदाहरण देखा जा सकता है।

मार्कण्डेय की कहानियों में शिल्प और वस्तु का गहरा ताल-मेल है। खगेन्द्र ठाकुर के शब्दों में कहें तो- "मार्कण्डेय हिंदी के उन कहानीकारों में हैं, जिन्होंने देश के स्वतंत्र होने के बाद हिंदी कहानी को नए यथार्थ पर खड़ा किया और इसे नई कलात्मक ऊंचाई दी। मार्कण्डेय के लिए कहानी वस्तुपक्ष और कलापक्ष में विभाजित नहीं। उनके यहां कहानी की कला भाषाबद्ध होने से पहले शुरू हो जाती है।"[20] नई कहानी में दूसरी त्रयी के रूप में अमरकांत, शेखर जोशी एवं मार्कण्डेय का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। भाषा एवं शिल्प के आलोक में इन रचनाकारों में कई स्तर पर साम्यता है। ध्यातव्य है कि इन रचनाकारों ने केवल पात्रों के रागात्मक संबंधों की पड़ताल ही नहीं की वरन् उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भूमिका

की भी पड़ताल की।

शैलेश मटियानी नई कहानी के दौर के प्रमुख आंचलिक कहानीकारों में से एक हैं। पहाड़ी गाँव उनकी कहानियों के केंद्र में है। उन्होंने अपनी कहानियों में लोककथाओं, रीति-रिवाजों, संस्कृति एवं सभ्यता पर पैनी नजर रखते हुए बहुत ही कलात्मक ढंग से अपने समय के यथार्थ को चित्रित किया है। 'दो दुखों का एक सुख', 'पोस्टमैन' एवं 'सुहागिन' जैसी कहानियाँ इस कोटि में उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन की विविध समस्याओं एवं परिवेश को मानवीय संवेदना के धरातल पर प्रस्तुत किया है। मटियानी की कहानियों में अनावश्यक विस्तार नहीं है, इस संदर्भ में अमरकांत कई जगहों पर कमजोर दिखते हैं। कहानियों से गुजरते हुए कई प्रसंग बहुत ही वृहद एवं बोझिल प्रतीत होते हैं।

स्वाधीनता के पश्चात ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर कहानी लिखने वालों में शिवप्रसाद सिंह का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। स्वाधीनता के पश्चात ग्रामीण जीवन में मूल्यों का संक्रमण, गांवों में नगरीय संस्कृति की आवाजाही, बेरोजगारी एवं अकर्मण्यता आदि प्रमुख विषय शिवप्रसाद सिंह की कहानियों के केंद्र में हैं। शिवप्रसाद सिंह की खूबी है कि उन्होंने घटना, चरित्र और शिल्प सभी दृष्टियों से अपनी कहानियों में ग्राम-बोध को आधार बनाया है। महत्त्वपूर्ण बात यह कि इनकी कहानियों में कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर अपेक्षित संतुलन एवं सामंजस्य दिखाई देता है। शिवप्रसाद ने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन को सहज एवं आत्मीयता से परखा है। उदाहरण स्वरूप 'कर्मनाशा की हार', 'मुरदा सराय', 'आर-पार की माला', 'धारा' और 'रेती' आदि कहानियाँ द्रष्टव्य हैं।

इस दौर की रचनाशीलता के संदर्भ में सुरेन्द्र चौधरी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी कहानी प्रक्रिया और पाठ' में बहुत ही महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है- "कहानी में विकास के स्थल को ये सभी कहानीकार एक ही प्रकार से तोड़ या जोड़कर उभरते हैं, मगर उस विकास के निर्माण में वातावरण एवं परिस्थितियों का जो स्वरूप ये गढ़ते हैं उसमें आधारभूत साम्य है। इस प्रक्रियात्मक साम्य के कारण इनकी कहानियों में बोध की स्पष्टता रहती है, ये सभी कहानीकार अनुभव सामान्य बोधों के कहानीकार हैं। इन कथाकारों का बोध व्यक्ति के अनुभव वैचित्र्य का परिणाम नहीं है और न जीवन की असामान्य स्थितियों का ही, फिर उसमें 'भावना' का एक सहज संप्रेष्य रूप अंतर्भुक्त है।"[21] मोटेतौर पर देखें तो सुरेन्द्र चौधरी ने इस दौर की कहानियों में 'भावना के सहज संप्रेष्य' को महत्त्व दिया है। समग्रतः मूल्यांकन से स्पष्ट है कि इस दौर के कहानीकारों ने स्वाधीनता के पश्चात उपजे मोहभंग एवं अन्य समस्याओं को अपनी कहानियों का विषय चुना। यदि स्वाधीनता के पश्चात की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों को समझना हो तो इन कहानियों को ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. मिश्र, रामदरश. (2007). हिंदी कहानी अंतरंग पहचान. पृ. 57
2. अमरकांत. (2005). कुछ यादें, कुछ बातें. पृ.128
3. मिश्र, रामदरश. (1977). कमलेश्वर (संपा., मधुकर सिंह). पृ. 123
4. सिंह, यदुनाथ. (2012). अमरकांत पर कुछ जरूरी नोट्स. अमरकांत एक मूल्यांकन. (सपा. रवींद्र कालिया). पृ.217
5. अश्क, उपेंद्रनाथ. (2012) छोटे दायरे का एक बड़ा रचनाकार: अमर-कांत. अमरकांत एक मूल्यांकन. (सपा. रवींद्र कालिया). पृ. 288
6. सराफ़, रामकली. (1988). नई कहानी विघटन और विसंगति. पृ. 84
7. पाण्डेय, शिवशंकर. (1978). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी: कथ्य और शिल्प, पृ. 188
8. यादव, राजेन्द्र. (1985). एक दुनिया समानांतर. पृ. 27
9. सिंह, ऋचा. (2005). नई कहानी का समाजशास्त्र. पृ. 121
10. सिंह, नामवर. (2012). कहानी नई कहानी. पृ. 32
11. शेखावत, गोरधन सिंह. (1974). नई कहानी उपलब्धि एवं सीमाएं. पृ. 298-299
12. राकेश, मोहन. (1998). कहानी: नए संदर्भ की खोज. नई कहानी संदर्भ और प्रकृति. (संपा; देवीशंकर अवस्थी). पृ. 92
13. मधुरेश. (2010). हिंदी कहानी का इतिहास. पृ. 133
14. शर्मा, डॉ. आभा. (2006). अमरकांत की कहानियों के प्रमुख चरित्र. पृ. 68-69
15. साहनी, भीष्म. (1992). प्रतिनिधि कहानियाँ. पृ.36
16. नई कहानियाँ. (अक्टूबर, 1965). संपादकीय से
17. भूषण, विद्या. (2011). रेणु की कहानियों का पुनर्पाठ. पृ. 65
18. सिंह, नामवर. (2012). कहानी नई कहानी. पृ. 55
19. .शेखावत, गोरधन सिंह. (1974). नई कहानी उपलब्धि एवं सीमाएं. पृ. 303
20. ठाकुर, खगेन्द्र. (मार्च, 2011). मार्कण्डेय की कहानी कला. कथा (संपा.) मार्कण्डेय. पृ. 245
21. चौधरी, सुरेन्द्र. (2010). हिंदी कहानी-प्रक्रिया और पाठ.पृ. 73-74

❖

संपादक कंचनजंघा

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग काज़ीरोड, नीयर इंडियन ओवरसीज़ बैंक, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम पिन- 737101 मो: 6294913900

स्वाधीन भारत और आर्थिक आत्मनिर्भरता का स्वप्न

– मिहिर कुमार मिश्र

भारत अपनी आजादी के 75 वें स्वतंत्रता दिवस के सुअवसर पर अमृत महोत्सव मना रहा है। इन 75 सालों में भारत ने हर मोर्चे पर विकास किया है। भारत आज दुनिया की बड़ी आर्थिक महाशक्तियों में से एक है। 15 अगस्त 1947 को भारत ने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में विश्व पटल पर अपनी जगह बनाई, उसी के साथ भारत ने अपने देश की गणतंत्रीय व्यवस्था को 26 जनवरी 1950 को लागू किया। 14 अगस्त की रात स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए अपने अविस्मरणीय भाषण में भारतीय जनता की भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा कि– " बरसों पहले हमने नियति के साथ एक करार किया था और अब वह समय आ गया है जब हम अपना वादा पूरा करेंगे। आधी रात ठीक बारह के घंटे के साथ, जब दुनिया सोती है भारत जिंदगी और आजादी के लिए जगेगा। कभी ऐसे पल भी आते हैं, जब हम पुराने युग से नए में कदम रखते हैं, जब एक युग समाप्त हो जाता है और जब एक राष्ट्र की लंबे समय से कुचली हुई आत्मा अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। उचित यह है कि इस शुभ अवसर पर भारत, उसकी जनता और संपूर्ण मानवता की सेवा में समर्पित होने की हम कसम खाएँ, आज दुर्भाग्य के एक युग का हमने अंत कर दिया है और भारत ने फिर से अपनी पहचान हासिल कर ली हैं।"

आजादी के तुरंत बाद भारत ने अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में अनेक कदम उठाएं, सर्वजन हिताय की भावना के साथ एक ऐसी आर्थिक प्रणाली अपनाई जो विचार में समाजवाद की श्रेष्ठ विशेषताओं से युक्त, किंतु कमियों से मुक्त थी। उस नीति के तहत भारत एक ऐसा समाजवादी समाज होगा, जिसमें सार्वजनिकक्षेत्रक एक सशक्त क्षेत्रक होगा, एवं निजी क्षेत्र की भी भागीदारी होंगी, जिसे मिश्रित अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया। देश सतत विकासके पथ पर अग्रसर हो इसके लिए प्रधाकी अध्यक्षता में योजना आयोग की स्थापना हुई जो पंचवर्षीय योजनाओं को सही रूप से क्रियांवयन करने हेतु खाका तैयार कर राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया।

> ***"भारत ने प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही आत्मनिर्भरता की तरफ पहला कदम बढ़ाया, जिसका मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न संकट से मुक्ति एवं देश के भीतर मूलभूत संरचना का विकास करना रहा। इस योजना में प्राप्ति लक्ष्यों से अधिक रहीं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पूंजीगत माल तैयार करने वाले उद्योगों में निवेश पर विशेष जोर दिया। वास्तव में औद्योगिक क्षेत्र में निवेश का स्वरूप पी. सी. महालनोबिस के विकास मॉडल से काफी प्रभावित था, इस मॉडल की एक और विशेषता रहीं जिसमें विकास और समानता मुख्य केंद्र रहा। अत: उद्योग और खेती में संकेंद्रण और वितरण पर बहुत गहराई से ध्यान दिया गया, हालांकि इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इस मॉडल में यह माना गया कि उच्चतर विकास से समानता के उच्चतर स्तरों तक पहुंचा जा सकता है, साथ ही इसे गरीबी से निबटने के लिए आवश्यक समझा गया, परिणामस्वरूप तेज विकास पर अधिक ध्यान दिया गया।"***

भारत ने प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही आत्मनिर्भरता की तरफ पहला कदम बढ़ाया जिसका मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न संकट से मुक्ति एवं देश के भीतर मूलभूत संरचना का विकास करना रहा। इस योजना में प्राप्ति लक्ष्यों से अधिक रहीं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पूंजीगत माल तैयार करने वाले उद्योगों में निवेश पर विशेष जोर दिया। वास्तव में औद्योगिक क्षेत्र में निवेश का स्वरूप पी सी महालनोबिस के विकास मॉडल से काफी प्रभावित था, इस मॉडल की एक और विशेषता रहीं जिसमें विकास और समानता मुख्य केंद्र रहा। अत: उद्योग और खेती में संकेंद्रण और वितरण पर बहुत गहराई से ध्यान दिया गया हालांकि इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इस मॉडल में यह माना गया कि उच्चतर विकास से समानता के उच्चतर स्तरों तक पहुंचा जा सकता है, साथ ही इसे गरीबी से निबटने के लिए आवश्यक समझा गया, परिणामस्वरूप तेज विकास पर अधिक ध्यान दिया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था को आर्थिक गतिशीलता की अवस्था तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया, साथ ही राष्ट्रीय आय, खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा उद्योग एवं निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन को बढ़ाना, अवसर की समानता, आदि महत्वपूर्ण लक्ष्य रखे गये लेकिन लक्ष्य के अनुरूप सफलता प्राप्त नहीं हुई जिसके प्रमुख कारण 1962 में चीन के साथ तथा 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ना था। 1965-66 में देश में सूखा पड़ा। सन 1966 से 1969 तक की अवधि में तीन वार्षिक योजनाएं लागू की गई। चौथी पंचवर्षीय योजना के मूल उद्देश्य " स्थिरता के साथ आर्थिक विकास तथा आत्मनिर्भरता की अधिकाधिक प्राप्ति "

जहाँ पाँचवी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य " गरीबी का उन्मूलन और आत्मनिर्भरता " रहा, तो छठी पंचवर्षीय योजना को जनता सरकार ने एक वर्ष पूर्व ही योजना को समाप्त करके 1 अप्रैल 1978 से एक नई योजना प्रारंभ कर दी थी, इस योजना को अनवरत योजना का नाम दिया गया, इस अनवरत योजना के प्रथम चरण के रूप में 1 अप्रैल 1978 से पाँच वर्षों के लिए छठी योजना प्रारंभ की गई किंतु अगले सरकार ने इसे आने के साथ ही समाप्त कर नई छठी योजना पुन: (1980-85) के लिए बनाई जिसके मुख्य उद्देश्य" आर्थिक विकास की दर में पर्याप्त वृद्धि, संसाधनों के प्रयोग से संबंधित कार्यकुशलता में सुधार तथा उत्पादकता को बढ़ाना मुख्य रहें है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य " साम्य एवं न्याय पर आधारित सामाजिक प्रणाली की स्थापना, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को प्रभावी रूप से कम करना, आदि।

उपर्युक्त योजनाओं का मूल्यांकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि योजनाओं के लक्ष्य: संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता रहा। संवृद्धि से तात्पर्य देश में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि, अर्थशास्त्र की भाषा में आर्थिक संवृद्धि का प्रामाणिक सूचक सकल घरेलू उत्पाद(जी.डी.पी) में निरंतर वृद्धि है। जी.डी.पी एक वर्ष की अवधि में देश में हुए सभी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का बाजार मूल्य है। देश का सकल घरेलू उत्पाद देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होता है, ये क्षेत्रक – कृषि,औद्योगिक एवं सेवा। इन क्षेत्रकों से ही अर्थव्यवस्था का ढ़ाँचा तैयार होता है। दूसरा कारक आधुनिकीकरण रहा जिसमें वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादकों को नई प्रौद्योगिकी अपनानी पड़ती है जिसे आधुनिकीकरण कहते है जो केवल नवीन प्रौद्योगिकी के प्रयोग तक ही न सीमित होकर सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना भी है। हमारी प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में आत्मनिर्भरता को बहुत महत्व दिया गया जिसका अर्थ है कि हम सभी मामलों में आत्मनिर्भर हो, विशेषकर उन चीजों में जिसका हम आयात करते है, शुरूआत के योजनाओं में खाद्यान्न के मामलों को ज्यादा ध्यान दिया गया। समानता से अभिप्राय यह है कि आर्थिक समृद्धि के लाभ देश के निर्धन वर्ग को भी सुलभ हो, अर्थात सभी भारतीयों को मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में समर्थ होनी चाहिए।

स्वाधीन भारत में आर्थिक आत्मनिर्भरता के मोर्चे पर हमने हरित क्रांति के द्वारा ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की, जिससे न केवल खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी हुई, बल्कि किसानों की दशा एवं परंपरागत कृषि में सुधार आया। छठे दशक के मध्य में शुरू की गई इस क्रांति का श्रेय नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी कृषि वैज्ञानिक डॉ. नोरमान ई. बोरलॉग एवं डॉ. एम . एस. स्वामीनाथन को संयुक्त रूप से जाता है। उन्होंने ऊँची उपज वाले बीजों एवं रासायनिक खादों व नई तकनीक के प्रयोग के द्वारा यह प्रयोग किया जो भारत जैसे देश के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

विकास के पथ पर अग्रसर भारत के समक्ष सन 1991 में विदेशी ऋण के भुगतान की संकट आ गई, उस समय पेट्रोल आदि आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए विदेशी मुद्रा रिजर्व पंद्रह दिनों के लिए भी नहीं था, तो इस परिस्थिति से निकलने के लिए भारत ने आर्थिक सुधारों एवं ढ़ाँचागत पुनर्गठन का रास्ता अपनाया जिसे आर्थिक क्रांति कहा गया। तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था नियंत्रण में जकड़ी, अंतर्मुखी और सुधार की लंबित आवश्यकताओं से जूझ रहीं थी जिसे वित्तीय सुधार; व्यापार तथा औद्योगिक नियंत्रणों का उदारीकरण जैसे आयात आसान बनाना, औद्योगिक लाइसेंसिंग का सरलीकरण, सार्वजनिक क्षेत्रों में निजीकरण, आदि के द्वारा विश्वव्यापी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के अनुरूप परिवर्तन किये गये, जिसके परिणामस्वरूप 8वीं से 11 वीं

पंचवर्षीय योजना में उच्च आर्थिक वृद्धि और 2005 से 2015 तक गरीबी में पर्याप्त कमी दर्ज की गई।

सतत, समावेशी एवं आत्मनिर्भर आर्थिक नीति कायम करने हेतु 2014 में प्रधानमंत्री बनते ही श्री नरेंद्र मोदी ने आर्थिक ढ़ाँचा में बड़े बदलाव किये जिसमें 01 जनवरी,2015 को योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग का गठन कर एक क्रांतिकारी पहल की गई जिसमें अधिकतम शासन, न्यूनतम सरकार के दृष्टिकोण की परिकल्पना को स्थान दिया गया। समय के साथ योजना आयोग अप्रासंगिक हो चुकी थी| आर्थिक नीति को सुदृढ़ करने के लिए परिवर्तन समय की मांग थी, हमारे संविधान की भी यही मूल भावना है कि आर्थिक नीति का लाभ समाज के निचले पायदान तक मिलें।

किसी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि उसकी प्रगति और विकास का अभिन्न हिस्सा होती है। आज हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं, जहाँ वैश्वीकरण और विश्व एकीकरण विश्व के आर्थिक परिदृश्य को तेजी से बदल रहे हैं। हमारे बुनियादी आर्थिक ढ़ाँचे को भी समयानुसार बदलना आवश्यक है। आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी ने दूरगामी लक्ष्य को साधने हेतु " मेक इन इंडिया " अभियान की शुरूआत 2014 को की, इस अभियान के द्वारा देश-दुनिया के सभी निर्माताओं को " भारत में बनाओ" के लिए आमंत्रित किया गया जिसके माध्यमसे विदेशी निवेशकों सहित भारतीय बाजार का लाभ उठाने के लिए विदेशी कंपनियों को इस मुहिम से जोड़ना है। इस मुहिम को तेज करने के लिए आवश्यक ढ़ाँचागत संरचना में परिवर्तनकिये जा रहे है| विनिर्माण क्षेत्र में सतत विकास किसी भी राष्ट्र के सतत विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ विकल्प होता है। इन अभियान के बदौलत, हमारी अर्थव्यवस्था में समृद्धि देने वाली नई प्रवृत्तियाँ देखने को मिल रही है जो एक शुभ संकेत है। इससे होने वाले लाभ भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर बनाने में मील के पत्थर साबित होंगे। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा लिया गया एक और महत्वपूर्ण कदम "आत्मनिर्भर भारत" मिशन| राष्ट्र को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि

21 वीं सदी को भारत की सदी बनाने के सपने को पूरा करने के लिए यह सुनिश्चित करते हुए आगे बढ़ना है कि देश आत्मनिर्भर हो जाएँ। संकट को एक अवसर में बदलने की बात कहते हुए उन्होंने पीपीई किट और एन -95 मास्क का उदाहरण प्रस्तुत किया, जिनका भारत में उत्पादन लगभग नगण्य से बढ़कर 2-2 लाख पीस प्रतिदिन के उच्च स्तर पर पहुंच गया हैं। भूमंडलीकृत दुनिया में आत्मनिर्भरता के मायने बदल गए हैं। प्रधानमंत्री ने स्पष्ट किया कि जब भारत आत्मनिर्भरता की बात करता है, तो वह आत्मकेंद्रित व्यवस्था की वकालत नहीं करता है। भारत की संस्कृति दुनिया को एक परिवार के रूप में मानती है और भारत की प्रगति में हमेशा विश्व की प्रगति समाहित रही है। आत्मनिर्भर भारत के पांच स्तंभ हैं : अर्थव्यवस्था, बुनियादी ढ़ाचा, प्रणाली, उत्साहशील आबादी और मांग, साथ ही उन्होंने लोकल (स्थानीय) विनिर्माण, बाजार एवं आपूर्ति श्रृंखला को विशेष बल दिया। लोकल उत्पादों का गर्व से प्रचार करने एवं इसे वैश्विक बनाने में मदद करें।

स्वाधीनता के बाद भारत की आर्थिक गाथा का मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि हमारी आर्थिक यात्रा आसान नहीं रही है, हमने बहुत सारे चुनौतियाँ को पार किया है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में सभी को साथ लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है, लेकिन हमने समय के साथ अपनी नीति को परिवर्तन कर दुनिया के समक्ष अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। भारत की युवा जनसंख्या उसके लक्ष्य को प्राप्त करने में प्राणवायु है उसे सही ढंग से कौशल विकास कर उसका सही रूप से दोहन कर सकते हैं। समग्रता से आजादी के पूर्व की स्थिति को देखते है तो पाते है कि हमारा देश लंबे समय तक गुलाम रहा, परिणामत: हम सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर होते रहे, स्वाधीनता पश्चात इन दोनों ही क्षेत्रों में नेतृत्व ने काफी काम किया है इससे हमारा देश सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में अग्रसर है एवं शीघ्र ही समाज के सभी अंगों के सहयोग से हमारा देश सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी सशक्त रूप में उभरेगा जिसमें आर्थिक पक्ष की भूमिका अहम होंगी। आर्थिक महाशक्ति की दिशा में वर्तमान सरकार द्वारा किए जा रहे महत्वपूर्ण पहल मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, जी एस टी की शुरूआत एक सकारात्मक पहल है साथ ही सतत विकास की गति प्रदान करने के लिए औद्योगिक कॉरिडोर की स्थापना की जा रही है| आर्थिक विकास की इस विशद यात्रा में लाल बहादुरशास्त्री के समय की गई हरित क्रांति, 19 जुलाई, 1969 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण एवं पी.वी. नरसिम्हा राव द्वारा 1991 में किए गए आर्थिक उदारीकरण, आदि ऐतिहासिक पहल है। श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा स्वर्णिम चतुर्भुज योजना इस कड़ी के महत्वपूर्ण आयाम है। इसी का परिणाम है कि आज भारत को अग्रणी राष्ट्र एक संभावित महाशक्ति के रूप में देखता है। भारत वैश्विक आर्थिक परिदृश्य पर अग्रसर है और उभरती हुई वैश्विक आर्थिक शक्ति के रूप में खुद को स्थापित करने के लिए हर दिन कड़ी मेहनत कर रहा है। इन सभी परिदृश्यों से प्रतीत होता है कि 21 वीं सदी भारत की सदी होंगी, जो पूर्ण रूप से आर्थिक आत्मनिर्भर होगा।

❖

प्रबंधक,केनरा बैंक,क्षेत्रीय कार्यालय, नोएडा
पता :बी 1/233, एकता गार्डेन अपार्टमेंट, आई.पी.एक्सटेंशन
पटपड़गंज, नई दिल्ली- 110092, मोबाइल-7595927982
ई- मेल : mihirkumarmishra.in@gmail.com

आजादी का अमृत महोत्सव

भारत की आज़ादी में साहित्यकारों का योगदान

– पूजा गुप्ता

"प्रेमचंद्र द्वारा लिखित उपन्यास और कहानियों में देश प्रेम के दर्शन होते हैं। प्रेमचंद्र की कहानी जुलूस हिंदू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीयता व मानवता का संदेश देती है। कर्मभूमि, रंगभूमि उपन्यासों के पात्र ईमानदार, सत्यनिष्ठ एवं समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। कायाकल्प उपन्यास में राष्ट्रीय प्रेम-त्याग, बलिदान देखने को मिलता है। प्रेमचंद्र की कहानी संग्रह 'सोजे वतन' पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया व कई प्रतियाँ जला दी गयी, क्योंकि वह राष्ट्र प्रेम की भावना से भरी हुई थी इसलिए नवाब राय को अपना नाम बदलकर प्रेमचंद्र करना पड़ा और प्रेमचंद्र नाम ही उनके सभी उपन्यासों और कहानियों में प्रसिद्ध हुआ। प्रेमचंद्र एवं उनके बाद अनेक लेखको ने महात्मा गाँधी पर कई जीवनियाँ लिखी, जिसमे महात्मा गाँधी के आंदोलनों (सविनय अवज्ञा आन्दोलनं, असहयोग आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन) एवं सत्य अहिंसा मानवता पाठ पढाया गया है। महात्मा गाँधी की आत्मकथा (सत्य के प्रयोग), सुभाष चन्द्र बोस की आत्मकथा (तरुण के स्वप्न) में इनके जीवन के संघर्ष एवं राष्ट्र की समस्याओ को उजागर किया गया है और देश का गौरव बनाये रखने के लिए महान क्रान्तिकारी एवं साहित्यकारों का योगदान अविस्मरणीय है।"

"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमे रसधार नही
वह हृदय नही है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नही"
गयाप्रसाद शुक्ल 'से नहीं''

साहित्य और स्वतंत्रता खुले विचारों से उन्नति करते है स्वतंत्रता किसी एक देश द्वारा दूसरे देश को अपने आधीन करने, गुलाम बनाने के प्रति विद्रोह है भारत का स्वतंत्रता संग्राम १८५७ की क्रान्ति से शुरु हुआ। साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के माध्यम से देश को एकता, देश प्रेम, मानवता, देश की रक्षा, बलिदान एवं त्याग का सन्देश दिया है। क्रांति सिर्फ तलवार के बल पर नहीं बुद्धि, ज्ञान, साहस के बल पर भी लायी जाती है। साहित्यकार कलम की तलवार के बल पर राजनीतिक, सामाजिक प्रतिरोध को अपने साहित्य में उल्लेखित करते है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भारतेंदु ने व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैले अंग्रेज़ी शासन के दुराचार, अन्याय, विदेशी वस्तुओ के उपयोग का प्रतिरोध किया व समाज में नवीन चेतना फ़ूकने का प्रयास किया। इसी तरह मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, श्यामलाल गुप्ता (पार्षद), सुभद्राकुमारी चौहान अन्य साहित्यकार आदि ने भी देशभक्ति और राष्ट्रीयप्रेम का सन्देश दिया।

हम भारतवासियों को १५ अगस्त १९४७ को आजादी प्राप्त हुई, अंग्रेजों ने भारत पर लगभग ३५० वर्षों तक शासन किया। अंग्रेज भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आये थे, किन्तु मुनाफा ज्यादा पाकर उनका लालच बढ़ा और उन्होंने धीरे-धीरे अपनी फैक्ट्रियों की स्थापना के साथ अपनी हुकूमत भी स्थापित करनी शुरू कर दी। १८५७ की लड़ाई में संपूर्ण भारत में स्वतंत्रता क्रांति शुरू हुई जिसमे - मंगल पाण्डेय (मेरठ), झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, नाना साहिब (कानपुर), बहादुरशाह जफर (दिल्ली), बेगम

हज़रत महल (लखनऊ), कुवर सिंह (बिहार) आदि अन्य क्रान्तिकारियों ने नेतृत्व किया।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल मे गद्य की प्रमुख विधाओं के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म १८५०, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके मंडल ने देशप्रेम, मातृभूमि की रक्षा व राष्ट्रभक्ति से सम्बंधित रचनाये लिखी। भारतेंदु ने अपने नाटक भारत - दुर्दशा और अंधेर नगरी (राजनीतिक व्यंग्य) में अपने देशवासियों को राष्ट्रीय एकता का सन्देश दिया। प्रतीकों (आलस, अहंकार, मदिरा, लोभ व सत्यानाशी फ़ौज) के माध्यम से भारत की दुर्दशा को अभिव्यक्त किया।

"रोवअहु सब मिलि आवहु भारत भाई हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई" भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भारत की समाजिक समस्याओं का चित्रण किया जैसे बेरोजगारी, आलस, भ्रष्टाचार आदि। भारतेंदु मंडल के अन्य रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं एवम् निबंधो के माध्यम से राष्ट्रभक्ति का सन्देश दिया, जैसे प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट।

"साहित्य समाज का दर्पण है" - महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य में समाज की प्रत्येक स्थिति का वर्णन व चित्रण होता है चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक हो।

“भारतेंदु युग की राष्ट्रीय चितंधारा के दो पक्ष है - देशप्रेम और राष्ट्रभक्ति"। क्रान्तिकारी एवं साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी बात को जनसाधारण तक पहुँचाते थे। पत्रिकाओं की शुरुआत भारतेंदु की कविवचनसुधा (१८६८) से हुई इसी धारा में अन्य मुख्य पत्रिकाओं ने भी योगदान दिया जैसे - आनंद कादंबिनी, हिंदी प्रदीप, नागरी प्रचारिणी, केसरी अन्य आदि।

दिवेदी युग को जागरण–सुधार काल कहा जाता है, जिसमें आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, थिओसोफिकल सोसाइटी के फलस्वरूप भारत की सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति में सुधार हुआ, सरस्वती पत्रिका का सम्पादन आरंभ हुआ, नेशनल कांग्रेस की स्थापना (१८८५) हुई। हिंदी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही’, गोपाल शरण सिंह, नाथूराम शर्मा शंकर आदि साहित्यकारों ने देशभक्ति को अपनी रचनाओं में मुख्य स्वर बनाया।

"देशभक्त वीरो, मरने से नेक नही डरना होगा प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा" - नाथूराम शर्मा शंकर (सर्वस्य), कि देशप्रेमियों को अपने देश कि रक्षा के लिये अपने प्राणों को बिना किसी डर के न्योछावर करना होगा।

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक!

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक”

माखनलाल चतुर्वेदी जी कहते हैं कि पुष्प की अभिलाषा है की वह सुरबाला, प्रेमी, देवता को अर्पित ना होकर मुझे उस पथ पर फ़ेक देना वनमाली, जिस पथ पर मातृभूमि की सेवा के लिए वीर अपने प्राणों का बलिदान देने जा रहे हो।

मैथिलीशरण गुप्त जी कहते हैं - "जिसको न निज गौरव देश का अभिमान है, वह नर नहीं नर पशु निरा, और मृतक समान है" कि, जिस मनुष्य को अपने देश पर गर्व नहीं है वह पशु और मृतक के समान है क्योंकि मृत और पशु दोनों क ही मान नहीं होता

भारत भारती १९१२ में लिखी गई जिसमें भारत की जनता को शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, संस्कृति, समाज, जीवन को उच्चता पर ले जाने

एवं देश की उन्नति का सन्देश देते हैं। मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत रचनाओं के लिये दी गयी।

छायावाद युग (१९१८ से १९३६) के प्रसिद्ध साहित्यकार हुए, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, सुभद्रा कुमारी चौहान, निराला, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन व रामनरेश त्रिपाठी आदि। सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित 'झांसी की रानी' कविता आज भी वही जोश, उमंग मन में भर देती है।

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी, बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी

खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी \

प्रसाद के एतिहासिक नाटको का मूल उद्देश्य ही राष्ट्रप्रेम एवं बलिदान की भावना है चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त व अन्य नाटको में कोई न कोई पात्र राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत अवश्य है। कहानियों में भी गुंडा कहानी जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी व राजसत्ता के बीच नंहकू सिंह (मुख्य पात्र) अपने प्राणों को त्याग दे देता है।

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती"

-'चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद)'

प्रेमचंद के उपन्यासो एवं कहानियों में देश की आजादी के संघर्ष, अन्याय, अपराध के बीच भी मानवप्रेम, राष्ट्रप्रेम, एकता, मानवता, सोहाद्र, समन्वय, जाति वर्ण व्यवस्था की परंपरा तोड़ कर प्रेम, गांधीवाद, यथार्थ व अखंड भारत के दर्शन होते हैं। प्रेमचंद्र के उपन्यासों - वरदान, कर्मभूमि, रंगभूमि एवं उनकी कहानियों में भी जैसे जुलूस, राष्ट्रीय प्रेम एवं स्वाधीनता का संघर्ष आदि में हिंदू-मुस्लिम एकता दिखाई देती है।

"साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि उन राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है" - प्रेमचंद्र

प्रेमचंद्र द्वारा लिखित उपन्यास और कहानियों में देश प्रेम के दर्शन होते हैं प्रेमचंद्र की कहानी जुलूस हिंदू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीयता व मानवता का संदेश देती है। कर्मभूमि, रंगभूमि उपन्यासों के पात्र ईमानदार, सत्यनिष्ठ एवं समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। कायाकल्प उपन्यास में राष्ट्रीय प्रेम त्याग, बलिदान देखने को मिलता है। प्रेमचंद्र के कहानी संग्रह 'सोजे वतन' पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया व कई प्रतियाँ जला दी, क्योंकि वह राष्ट्र प्रेम की भावना से भरी हुई थी इसलिए नवाब राय को अपना नाम बदलकर प्रेमचंद्र करना पड़ा और प्रेमचंद्र नाम ही उनके सभी उपन्यासों और कहानियों में प्रसिद्ध हुआ। प्रेमचंद्र एवं उनके बाद अनेक लेखको ने महात्मा गाँधी पर कई जीवनियाँ लिखी, जिसमे महात्मा गाँधी के आंदोलनों (सविनय अवज्ञा आन्दोलनं, असहयोग आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन) एवं सत्य अहिंसा मानवता का पाठ पढाया गया है। महात्मा गाँधी की आत्मकथा (सत्य के प्रयोग), सुभाष चन्द्र बोस की आत्मकथा (तरुण के स्वप्न) में इनके जीवन के संघर्ष एवं राष्ट्र की समस्याओ को उजागर किया गया है और देश का गौरव बनाये रखने के लिए महान क्रान्तिकारी एवं साहित्यकारों का योगदान अविस्मरणीय है।

उपसंहार - देश को एकता में पिरोने के लिए भाषा ही अभिव्यक्ति का माध्यम है जो सभी देशवासियों को एक करती है। भाषा में भी हिंदी साहित्य भारत में 48 % लोगो द्वारा समझी, पढ़ी-लिखी व बोली जाती है फिर भी स्वतंत्रता आन्दोलन के समय हिंदी का प्रयोग कोलकता, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण व पूर्व भारत में भी हुआ। गाँधी जी भी चाहते थे की हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि भारत में ज़्यादातर लोग हिंदी समझते है जिसमे कई बोलिया भी शामिल है, इसलिए हिंदी के साहित्यकार हिंदी और गेरे-हिंदी दोनो प्रदेश में जाने जाते है रविंद्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्या बालगंगाधर तिलक एवं लाला लाजपत राय ने अपने नारों व गीतों में भी हिंदी का प्रयोग किया है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (डॉ. रामचंद्र शुक्ल)
2. भारत भारती (मैथिली शरण गुप्त)
3. हिंदी का गद्य साहित्य (डॉ. रामचंद्र तिवारी)
4. भाषा साहित्य और संस्कृति (डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. मालती)
5. संस्कृति के चार अध्याय (डॉ. रामधारी सिंह दिनकर)
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (डॉ. बच्चन सिंह)

❖

बिल्डिंग न. ४५, दूसरा तल, सेक्टर १०ए, वसुंधरा, ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश, २०१०१२ मोबाइल न. ९९९९७३२४९३

आजादी का अमृत महोत्सव

साहित्य, समाज एवं लोक संस्कृति

– डॉ. सविता डहेरिया

"हिंदी साहित्य में भारतीय जनजीवन के अनेक पहलुओं का विविध एवं व्यापक चित्र उपलब्ध होता है। आदिकालीन साहित्य जनजीवन की अनुभूतियों से अनुप्राणित है। यह भीड़ का साहित्य नहीं है। इसमें एक ओर नारी और युद्ध पर आधारित लोककाव्य की प्रवृत्तियां है, तो दूसरी ओर एक स्वतंत्र जाति के अहंकार की भाव राशि है। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक युग में अमीर खुसरो का विशेष महत्व है। अमीर खुसरो ने हिंदी में रचना करके इस देश की एक भाषा के लिए जो प्रेम प्रदर्शन किया, वह उनकी राष्ट्रीय भावना का एक अंग था। उन्होंने भारत वर्ष को स्वर्ग के रूप में चित्रित किया है। आदिकाल के भक्तिकाल की जो लहर उमड़ी उसमें सारा देश समान रूप से लहलहा उठा। उसमें उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम के सारे भेद मिट गए। भक्तिकाल एक आकस्मिक दैवीय चमत्कार का स्थानीय प्रतिफलन मात्र नहीं वरन् परंपरा के पुनराख्यान का एक देशव्यापी अनुष्ठान है। भक्तिकालीन चेतना ने तत्कालीन जनजीवन को भीतर से टूटने से बचाया तथा उसके मनोबल को ऊँचा बनाए रखा। भक्त कवि वाणी से, आचरण से देश की इसी स्वाधीनता के प्रहरी थे। इन भक्त कवियों ने दिल्ली के समानांतर वृंदावन में आकर एक सांस्कृतिक लोकतंत्र स्थापित किया था"

साहित्य केवल समाज का दर्पण ही नहीं, वह दीपक के रूप में है और मार्गदर्शक भी है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है।' (हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल) साहित्य का सृजन लोक कल्याण की भावना से होता है। साहित्य वह लोक मंगलकारी रचना है, जिसमें शब्द और अर्थ साथ-साथ आकर रचनाकार के भावों, विचारों और आदर्शों को समाज और पाठकों तक पहुँचाने का काम करते हैं। साहित्य के माध्यम से न केवल हमें उस युग, समय और समाज को जानने का अवसर मिलता है, जिसमें उस साहित्य की रचना हुई है, अपितु इस बात की भी जानकारी मिलती है कि साहित्यकारों की वह पीढ़ी किस प्रकार के समाज का निर्माण करना चाहती है। मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्यकारों को संदेश देते हुए बताया कि साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए:

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।'

(भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त)

साहित्य, समय, समाज, संस्कृति और परंपरा तक हमारी पहुँच को भी सुनिश्चित करता है, जहाँ तक हमारी भौतिक पहुंच संभव नहीं रह जाती है। आचार्य शुक्ल और द्विवेदी जी दोनों का संकेत लोकमंगल की ओर है। साहित्य कई बार देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करते हुए वर्तमान संदर्भ में भी अपनी प्रासंगिकता का एहसास दिलाता है। उदाहरण स्वरूप तुलसी के मानस को ले सकते हैं, जो अपनी रचना के इतने वर्षों बाद भी प्रासंगिक है। यह हमारे व्यक्तित्व और रूचियों के परिष्कार और संस्कार में भी सहायक है। कहते हैं कि किसी राष्ट्र की स्थिति जाननी है तो उस राष्ट्र के साहित्य का अध्ययन कर लीजिए। विचारों से साहित्य का जन्म हुआ और साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की और उसे सभ्य एवं सुंदर बनाया। साहित्य हमारे व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायक है। इसी विषय पर रामवृक्ष बेनीपुरी के द्वारा 'गेहूँ और गुलाब' में लिखा गया

कि जहाँ गेहूँ हमारी भौतिक भूख को शांत करता है, वहीं गुलाब हमारी सौंदर्य चेतना का परिष्कार करता हुआ हमारी आत्मिक भूख को शांत करता है। औपनिवेशिक काल में साहित्य ने साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया। भारतेन्दु हरिशचंद्र ने देखा कि अंग्रेज, भारत का धन लूटकर ले जा रहे थे, तो उन्होंने लिखा -

'अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी,

पै धन विदेश चलि जात, इहै अति ख्वारी।'

रंगभूमि का सूरदास नेत्रहीन, अनपढ़, भिखारी होते हुए भी बहुत बड़ा अनौपचारिक शिक्षक है, जो हमें समाज के लिए कुछ सार्थक कार्य करने की प्रेरणा देता है। प्रसाद जी ने कहा कि अन्य देश यदि मानवों की भूमि हैं, तो भारत मानवता की भूमि है -

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'

साहित्य निरंतर ऐसे ही गतिशील है, संस्कृति और समाज के उत्थान के लिए। मानवतावाद का यही स्वर भारतीय राष्ट्रवाद को अंतर राष्ट्रवाद से जोड़ता है, जहाँ तमाम भौगोलिक सीमाएं निम्न पड़ जाती हैं। प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रवाद की झलक है तो संस्कृति का उत्कृष्ट रूप भी प्रस्तुत है। साहित्यकार अपने समाज की विषमताओं को दर्शाकर उसका समाधान भी प्रस्तुत करता है। बिहारीलाल ने अपनी कवित्व-शक्ति से विलासी महाराज को उनके कर्त्तव्य का भान कराया था -

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहीं विकास इहिं काल

अली-कली सी सौं बध्यों, आगे कौन हवाल।'

(साहित्य समाज का यथार्थ है न कि दर्पण-सुशील शर्मा)

'यों तो समाज भी एक स्थूल संरचना है और एक अमूर्त भाव-संरचना, लेकिन जब हम समाज को बदलने की बात सोच रहे होते हैं, तो उसकी स्थूल संरचना ही हमारे सामने होती है, और संबंधों को बदलने की बात कर रहे होते हैं। यही बात बहुत थोड़े परिवर्तन के साथ संस्कृति के विषय में भी कही जा सकती है। उसमें भावना और उसके संस्कारों का महत्त्व कुछ अधिक है, लेकिन बदलने की बात करते समय वहाँ भी हम मुख्यतया आचार-व्यवहार, व्यवस्था को बदलने की सोच रहे होते हैं। लेकिन साहित्य की बात इनसे बिल्कुल अलग है। वहां पर अगर हम संरचना की बात करना चाहें, तो वह तंत्र अथवा तकनीकि कौशल की बात हो जाती है। इसमें परिवर्तन अनिवार्य रूप से होता ही रहता है और अगर हम किसी दूसरे बदलाव की बात सोचना चाहें तो वह अनिवार्यता संस्कृति और समाज के साथ जुड़ जाती है, मूल दृष्टि के साथ जुड़ जाती है, संवेदना के साथ जुड़ जाती है। प्रकारांतर से हम जानते हैं कि समाज और संस्कृति के बदलाव की बात सोचते समय हमारे सामने यह प्रश्न होता है कि ये संसार अथवा व्यवस्थाएं कैसे बदल सकती हैं, साहित्य की चर्चा में यह प्रश्न बन जाता है कि साहित्य अपने को नहीं समाज अथवा संस्कृति को कैसे बदले।'(साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया-अज्ञेय, संपादन-कन्हैयालाल नंदन) सामाजिक रीति-रिवाज़, परंपराएं व संस्कृति तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। किसी भी राष्ट्र व समाज के उत्थान में साहित्य का विशेष योगदान होता है। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के साहित्य ने संस्कृति और समाज के निर्माण में इतना योगदान दिया कि इसे सांस्कृतिक समाज निर्माण की शताब्दी कहा जाने लगा। भारतीय साहित्य संपूर्ण मानवता का साहित्य है। आज़ादी की लड़ाई हो या जनआंदोलन सबमें साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, डॉ. सौरभ मालवीय कहते हैं - 'मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में आज तक जितने भी परिवर्तन आए, वे सब साहित्य के माध्यम से ही आए। साहित्यकार समाज में फैली, कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, विषमताओं, असमानताओं आदि के बारे में लिखता है, इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। साहित्य जनहित के लिए होता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्गदर्शन करता है।'1

साहित्यकार जिस समाज में रहता है तथा जिस परिवेश में जीता है, इसके रहन-सहन, आचार-विचार एवं आदर्शों से किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित होता है। इस प्रकार साहित्य प्रत्यक्षः या परोक्षतः समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न संबंध साहित्य से होता है। साहित्यकार अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन सामाजिक परिवेश में सांस्कृतिक धरातल पर ही करता है। साहित्यिक रचना, सांस्कृतिक क्षितिज की निर्मिति में सहायक सिद्ध होती है। अज्ञेय ने कहा है - 'संस्कृति से साहित्य बनता है। संस्कृति, समाज, साहित्य और ऐसी अन्य अवधारणाओं में 'परस्परता' और अन्योन्याश्रय का गहरा संबंध हैं।'2

हिंदी साहित्य में भारतीय जनजीवन के अनेक पहलुओं का विविध एवं व्यापक चित्र उपलब्ध होता है। आदिकालीन साहित्य जनजीवन की अनुभूतियों से अनुप्राणित है। यह भीड़ का साहित्य नहीं है। इसमें एक ओर नारी और युद्ध पर आधारित लोककाव्य की प्रवृत्तियां है, तो दूसरी ओर एक स्वतंत्र जाति के अहंकार की भाव राशि है। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक युग में अमीर खुसरो का विशेष महत्त्व है। अमीर खुसरो ने हिंदी में रचना करके इस देश की एक भाषा के लिए जो प्रेम प्रदर्शन किया, वह उनकी राष्ट्रीय भावना का एक अंग था। उन्होंने भारत वर्ष को स्वर्ग के रूप में चित्रित किया है। आदिकाल के भक्तिकाल की जो लहर उमड़ी उसमें सारा देश समान रूप से लहलहा उठा। उसमें उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम के सारे भेद मिट गए। भक्तिकाल एक

आकस्मिक दैवीय चमत्कार का स्थानीय प्रतिफलन मात्र नहीं वरन् परंपरा के पुनराख्यान का एक देशव्यापी अनुष्ठान है। भक्तिकालीन चेतना ने तत्कालीन जनजीवन को भीतर से टूटने से बचाया तथा उसके मनोबल को ऊँचा बनाए रखा। भक्त कवि वाणी से, आचरण से देश की इसी स्वाधीनता के प्रहरी थे। इन भक्त कवियों ने दिल्ली के समानांतर वृंदावन में आकर एक सांस्कृतिक लोकतंत्र स्थापित किया था, जिसका नायक कोई मुकुटधर नरेश नहीं, बल्कि मोरपंखियों वाला चरवाहा था, और वह भी मात्र आदर्श कलेवर। किंतु वही दो सौ वर्षों तक जन समुदाय के दिलों पर राज करता रहा। इस सांस्कृतिक लोकतंत्र के सदस्य हिंदू-मुसलमान, औरत-मर्द सब थे, सूर, तुलसी और मीरा, रसखान और रहीम। भक्तिकाल के बाद हिंदी में घटित होने वाला रीतिकाल भी हिंदी की कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि भक्तिकाल के बाद समूचे देश के चिंतन और साहित्य में शृंगार और सजावट की जो पतनोन्मुख वृत्ति आई थी, उसका ही परिणाम है। रीतिकाल के साहित्य में विलासतापूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक हुई थी। रीतिकालीन कवियों ने काव्य को युद्ध कला के रूप में स्वीकार किया। 19वीं शती के मध्य से भारत की समस्त भाषाओं और साहित्य का आधुनिक काल आरंभ होता है। यह नवजागरण काल ब्रिटिश शासन की देन नहीं बल्कि पाश्चात्य संस्कृति और ब्रिटिश शासन की टकराहट की देन था। यह जागरण मुक्ति चेतना के इर्द-गिर्द उठा था, और इस मुक्ति चेतना के साथ-साथ भाषा चेतना भी विकसित होती रही। आधुनिक हिंदी के पितामह भारतेंदु हरिशचंद्र ने हिंदी भाषा और साहित्य को भारत की एकता और जागरण का साधन बनाया, इसलिए जनता ने उनको 'भारतेंदु' की उपाधि दी और बंकिमचंद्र ने 'भारत बंधु' कहा था। आधुनिक धारा के कवियों के पथ और गद्य में भारतीय संस्कृति की सामाजिक गरिमा और उसमें निहित विश्व प्रेम की छवियां नाना रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। 3

विश्व मंच पर भारत की निरंतर बढ़ती भूमिका के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की वैश्विक भूमिका बढ़ती जाएगी। संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकारिक भाषा बनने के साथ भारतीय संस्कृति और भारतीय पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनेगी, यह हमारा दृढ़ विश्वास है। भविष्य में भारत एक सांस्कृतिक महाशक्ति के रूप में उभरकर सामने आयेगा।

आज भारत भूमंडलीकरण के दौर में जी रहा है। भारत जिस समय, जिस वातावरण में रहा, उस समय के भारत का वातावरण का चित्रण साहित्य में हुआ। वातावरण का तात्पर्य समाज से है। आज भारत का समाज बदल रहा है। वैश्विक स्तर पर यदि देखा जाए तो राम पर जितनी कथाएं लिखी गई हैं, उतनी कथाएं, विश्व के किसी अन्य चरित्र पर नहीं लिखी गई हैं। आखिर राम के चरित्र में ऐसी क्या विशेषता है कि विश्व के सभी देशों का ध्यान इस कथा की ओर आकर्षित हुआ और लगभग हर देश की हर भाषा में अपने-अपने हिसाब से रामकथाएं लिखी गई हैं।

शिक्षा संस्कृति और राजनीति कृति में रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए उसकी महत्ता स्वीकार की है। उन्हीं के शब्दों में - 'भारत की संस्कृति किसी एक जाति या धर्म की संस्कृति नहीं है। वह मिली-जुली संस्कृति है और हिंदुस्तान में हम उसे सामयिक संस्कृति कहते हैं। एक-दूसरे धरातल पर संस्कृति विचार है, संस्कृति भावना है। संस्कृति मनुष्य का जीवनव्यापी दृष्टिकोण है। हम जैसे विचारों में विश्वास करते हैं, हमारे कर्म वैसे ही हो जाते हैं। निवृत्ति की माला जपते-जपते हम गुलाम हो गए और प्रवृत्ति की आराधना का आरंभ करते ही हमारी गुलामी चली गई। संस्कृति दुराग्रह नहीं सहनशीलता को कहते हैं। संस्कृति युद्ध नहीं समझौते का नाम है।'[4]

सभी संस्कृतियों का संबंध किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति समन्वयवादी संस्कृति है। यही कारण है कि सांस्कृतिक चेतना की धारा संस्कृति से प्रभावित होती है। साहित्य में विलीन हो गया है। चूंकि साहित्य, समाज से कटकर नहीं चल सकता, इसलिए साहित्य प्रत्यक्षतः और परोक्षतः समाज का ही प्रतिनिधित्व करता है। अतएव संस्कृति और समाज का अभिन्न संबंध होता है, जो साहित्य में भी प्रतिबिंबित होता है। समाज में आदर्श के लिए परिवार व समाज के अतिरिक्त पुस्तकों का सहारा रहता है, जो भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी धरोहर है। समाज में घटित समस्याओं, भावनाओं और जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से ही मिलती है।साहित्य के लिए दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं- कला-कला के लिए और कला जीवन के लिए। पहला दृष्टिकोण सौंदर्यवादी है और दूसरा सामाजिक, सौंदर्यवादी साहित्य को ही साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी बनाना चाहिए, लेखक किसी विशेष सामाजिक मंतव्य को प्रकाशित करने के लिए नहीं, बल्कि सुंदर या चमत्कारपूर्ण उक्ति द्वारा अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए ही लिखता है। उनकी दृष्टि में वस्तु गौण है, और अभिव्यक्ति प्रधान है।5

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।

अर्थात् सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय के साक्षी बनें और कभी किसी को भी दुःख का भागी न बनने पड़े, की कामना करने वाली भारतीय संस्कृति, विश्व की पुरातन संस्कृति है। इसकी विशालता, एकरूपता, प्राचीनता, निरंतरता, सहिष्णुता, गृहणशीलता, आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय और अनेकता में एकता इसके उदात्त एवं गौरवशाली परंपरा की परिचायक हैं। आज की वेदों, पुराणों, उपनिषदों, गीता, रामायण आदि के माध्यम से हजारों वर्ष पूर्व से निरंतर भारतीय संस्कृति आधारभूत तत्वों के साथ विद्यमान है। आज करोड़ों भारतीय अपना जीवन मूल्य इसी में तलाशते हैं। धर्म दर्शन को भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व कह सकते हैं। स्वरूपगत भिन्नता होते हुए भी सात्विक रूप में एक है। इसे ही 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'एको अहं द्वितीयो नास्ति' कह सकते हैं। यही कारण है कि इसे

सनातन् धर्म कहा गया है। सनातन धर्म विश्व का पहला धर्म है, जो एक ईश्वर की बात करता है। हिंदू धर्म का सबसे पुरातन एवं महत्त्वपूर्ण धर्म ग्रंथ वेद है, जिसमें उन ऋषियों तथा मनीषियों के ऐसे उद्गार निहित हैं, जिन्होंने ईश्वरीय सत्ता का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। वेदों में अग्नि, जल, वायु, नदी, वर्षा आदि को देवता मानकर हम प्राकृतिक शक्तियों के नाम से सुंदर स्त्रोत भी मिलते हैं। लेखन कला के अभाव में वेद हजारों वर्षों से श्रुत परंपरा से चली आ रही थी, इसलिए इसे श्रुतियाँ भी कहा जाता है। यह विश्व का एकमात्र प्रथम ग्रंथ है, जिसमें अध्यात्म चिंतन के साथ-साथ राजनीति, प्रशासन, सामाजिक विधान, रीति-रिवाज, खान-पान एवं पहनावा, चिकित्सा एवं अर्थव्यवस्था आदि का उल्लेख मिलता है। वेदों के अंत में वेदांत अर्थात् उपनिषदों का स्थान आता है। उपनिषदों को वेदों का दर्शन कहा जाता है। उपनिषद्, गुरू के पास बैठकर जो आध्यात्मिक चिंतन किए गए उपनिषद् कहलाए। वैदिक धर्म के पांच प्रमुख सिद्धांतों में पहली अवधारणा ब्रह्म की है। दूसरी ब्रह्म और आत्मा के अस्तित्व की अनुभूति है। वैदिक ऋषियों की तीसरी अवधारणा जीवन का परम लक्ष्य आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति में है। पांचवीं अवधारणा कर्म ही है। कर्मवाद का सिद्धांत ही पुनर्जन्म की अवधारणा को जन्म देती है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है - 'जैसे मनुष्य अपने जीर्ण-शीर्ण कपड़े उतारकर नए शरीर को धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा अपने कर्मों के अनुसार पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर को धारण करता है, रामानंद ने लिखा है - 'जाति पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' आधुनिक युग में धार्मिक पुनर्जागरण के फलस्वरूप अनेक सामाजिक, आर्थिक सुधारवादी आंदोलन हुए, जिनमें ब्रह्म समाज, ने एकेश्वरवाद का नारा दिया तो 'आर्य समाज' ने वेदों की ओर लौटो, का नारा दिया। रामकृष्ण मिशन अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को लेकर चले। कहा गया है -'सत्यं एकः विप्र बहुधा वदंती।' सत्य एक है विद्वान लोग अलग-अलग व्याख्या करते हैं। संस्कृति में वह सब कुछ शामिल है जो समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिया जाता है। जैसे- ज्ञान धार्मिक विश्वास कला, कानून, नैतिक नियम, रीति-रिवाज़, तौर-तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा इत्यादि। भारतीय संस्कृति सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' विचारधारा की मौलिक प्रणेता है।

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

हे परमात्मा हमें अज्ञान के अंधकार से ज्ञान रूपी ज्योति की ओर ले चलिए। 'ज्ञानामुक्ति' ज्ञान से ही मनुष्य की मुक्ति होती है।

महात्मा बुद्ध ने तो कहा है -

न पुष्पगंधः प्रति वातमेति / च चंदनं तगरं मल्लिकेवा

संतो गंधः प्रतिवातमेति / सर्वादिशः सत्य पुरूषः प्रवाति।

फूल की सुगंध हवा से उल्टी दिशा की ओर नहीं जाती। न चंदन, तगर या चमेली की गंध ही वैसा करती है, किंतु सज्जनों की सुगंध हवा से विपरीत की ओर भी बह जाती है। वह अपने शिष्ट व्यवहार से दूसरों को खुश करते ही है, साथ ही अपने को दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठा लेते हैं।

'इस दौर में ड्रेस कोड (पहनावा) में काफी बदलाव आया है। लोग विदेशी कपड़ा पहनने में अधिक दिलचस्पी दिखा रहे हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार यहां के लोग धोती-कुर्ता, पायजामा-कुर्ता, पहनते थे एवं बड़ी शान से कंधे पर गमछी भी रखा करते थे। महिलाएं पर्व-त्यौहारों में नई-नई साड़ी पहनती थीं, लेकिन आज अब वैसी बात नहीं रह गई है। इस बदलते परिवेश में महिलाएं व खासकर युवतियां भी विदेशी पहनावे की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर रही हैं।6 संस्कृति के दो भाग हैं। एक भौतिक दूसरा अभौतिक। भौतिक संस्कृति उन विषयों से नहीं है, जो हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से संबद्ध है, जैसे हमारी वेश-भूषा, भोजन, घरेलू सामान आदि। अभौतिक संस्कृति का संबंध विचारों, आदर्शों, भावनाओं और विश्वासों से है। वर्तमान समय में विदेशी संस्कृति का प्रभाव हमारे देश के युवाओं पर अधिक पड़ा है, इसमें कोई बुरी बात नहीं, लेकिन हमारी कोशिश होनी चाहिए कि वहां की अच्छी चीजों को अपनाते हुए, गलत चीजों से दूर रहें, क्योंकि यह कभी भी हमारी संस्कृति से उन्नत नहीं हो सकती, इसलिए जरूरी है कि हम सोच-समझकर समय के आगे बढ़े और अपने आदर्श को बनए रखें। इसकी उदारता तथा सर्वसमावेशी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को भी अपने में समाहित करते हुए, अपने अस्तित्व के मूल को भी सुरक्षित रखा है। हमारी सांस्कृतिक एकता की महानता के कारण ही आज पश्चिमी लोग हमारी संस्कृति के प्रति आकर्षित हो रहे हैं।

सद्विचारों को साहित्य में प्रश्रय मिलता है। साहित्य द्वारा मनुष्य के मूल्य पुनस्थापित होते हैं। साहित्यकारों को स्वार्थ परायणता के स्थान पर सामाजिकता को दृष्टि में रखकर रचना करनी चाहिए। जब मानवीय मूल्यों का पदार्पण होगा और हम अखण्ड भारत के निर्माण में साक्षी और सहभागी होंगे।

संदर्भ

1. भारतीय साहित्य और लोक संस्कृति, प्रो. खेमसिंह डहेरिया, साहित्य संचय शोध संवाद फाउंडेशन, दिल्ली, पृ. 59.
2. वही, पृ. 62.
3. वही, पृ. 68-69.
4. संपादक- नंद किशोर नवल, तरूण कुमार- रामधारी सिंह दिनकर, रचनावली भाग-8, पृ. 99.
5. शिवदान सिंह चैहान, आलोचना के मान, पृ. 46.
6. जागरण.कॉम: आधुनिकता के दौर में तेजी से बदल रही है संस्कृति, गणेश पांडेय।

❖

विश्वविद्यालय परिसर अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
पता - डी /25, 74 बंगला , तुलसी नगर , भोपाल (म. प्र.) 462003
मो. 9424684608

आज़ादी का अमृत महोत्सव

हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता

– डॉ. महेन्द्र प्रजापति

भाषाएँ मानव जीवन यात्रा की सबसे प्रमाणिक साक्षी होती हैं। समाज की अस्मिता भाषा से बनती है और देश की संरचना भी भाषा द्वारा निर्मित होती है। इसमें कोई शक नहीं है कि हिंदी भाषा ने पिछले एक दशक में विश्व की अन्य भाषाओं को लगभग चुनौती देते हुए अपना सम्मान जनक स्थान बनाया है। किसी भी भाषा का भविष्य इस बात से तय होता है कि उसे प्रयोग करने वाले कौन हैं और उस देश के शीर्ष पर बैठे लोग उस भाषा को कितना सम्मान देते हैं। भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने इसे अपने वक्तव्यों और भाषणों के माध्यम से न केवल लोकप्रिय बनाया, बल्कि उसके प्रति लोगों में सम्मान का भाव भी जगाया। आज़ादी से पहले हिंदी भारत में गुलाम भाषा थी। कार्यालय की भाषा भी हिंदी नहीं थी। भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक विविधता ने एक तरफ हमें गौरवान्वित किया तो दूसरी तरफ हमारा नुकसान भी किया। हमारी ज्ञान विज्ञान पद्धति और कला-संस्कृति से सीखकर दुनिया ने बहुत कुछ प्राप्त किया, लेकिन हिंदी भाषा को प्रयोग करने में हिचकिचाते रहे। अंग्रेजों ने हिंदी को हीनता की भाषा बनाकर छोड़ दिया था, जिसे तत्कालीन प्रधानमंत्री ने सम्मान का विषय बना दिया। यह सदी 'विश्व ग्राम' में बदल चुकी है। सारा देश एक सूत्र में बंध चुका है। हिंदी इसमें पुल का काम कर रही है। वर्तमान में हिंदी को 'अंतर्राष्ट्रीय भाषा' की स्वीकृति मिल चुकी है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, अरबी, चीनी भाषाएं अब हिंदी से हाथ मिलाने को बेताब हैं। अगर हम आंकड़ों की माने तो वर्तमान में विश्व के लगभग डेढ़ सौ विद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन जारी है। यह संख्या लगातार बढ़ रही है। मॉरीशस की संसद ने हिंदी के वैश्विक प्रचार हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने

> ***"हिंदी की लोकप्रियता में भारत की सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्त करने वाले पौराणिक ग्रंथों की भूमिका भी अहम् रही है। रामायण और महाभारत सहित गीता के अनुवाद ने विदेशी लोगों को इसके मूल रूप को पढ़ने के लिए उकसाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी लोगों ने रामचरितमानस और गीता का न केवल अध्ययन शुरू किया, बल्कि उसे अपने यहाँ के शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में भी लगाया- "लंदन में प्राच्य भाषा के अध्ययन के लिए स्थापित शोध संस्थान द्वारा हिंदी के लिए श्लाघनीय कार्य हुआ है तो उनकी रुचि सहज ही समझी जा सकती है। रूसी लोगों के हृदय में हिन्दी के प्रति लगाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वहां रामायण का अनुवाद आप कराया गया है। चीनियों में हिन्दी अनुराग उफान पर है। वहां पीकिंग विश्व विद्यालय में हिंदी की पढ़ाई समुचित ढंग से करायी जा रही है, जो काफी समय पहले से उपलब्ध है।"***

के लिए विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की है। मॉरीशस का विश्व हिंदी सचिवालय आज विश्व की मुख्य संस्थाओं के साथ मिलकर हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन्न पक्षों पर कार्यक्रम कर रहा है। भारत की बोलियाँ भी अब अपनी सीमाओं को तोड़कर विदेशों में पहुँच रही हैं। भोजपुरी की लोकप्रियता ने पूरी दुनिया को मंत्रमुग्ध किया है।

हिंदी की लोकप्रियता जिस गति से पिछले एक दशक से बढ़ी है उसमें किसी जादू या मंतर का हाथ नहीं, बल्कि भारत की हिंदी संस्थाओं ने सरकार के सहयोग और निर्देश पर कार्य किया है। हिंदी के चिंतकों ने हमेशा यह याद रखा कि हिंदी भाषा केवल बात व्यवहार में न रह जाए बल्कि लोग उसको सीखें भी। इस दिशा में बड़ी सफलता भी मिली। अगर हम भारत द्वारा विदेशी छात्रों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करने के डाटा पर विचार करें बड़ा परिवर्तन देखने को मिलेगा- "हिन्दी शिक्षण के वैश्विक परिदृश्य की ओर आंख फेरते हैं तो विशाल और संतोषजनक आभा मंडल गौरव की अनुभूति कराता है। घर से ही गिनना प्रारंभ करें तो हमारा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा हिन्दी का एक ऐसा अध्ययन संस्थान है जहां 42 देशों के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा सहित अनेक संस्थान और विद्यालय, विश्व विद्यालय भी कम नहीं हैं लेकिन यहां बात वैश्विक परिदृश्य से बंधी है।"

हिंदी की लोकप्रियता में भारत की सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्त करने वाले पौराणिक ग्रंथों की भूमिका भी अहम् रही है। रामायण और महाभारत सहित गीता के अनुवाद ने विदेशी लोगों को इसके मूल रूप को पढ़ने के लिए उकसाया जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी लोगों ने रामचरित मानस और गीता का न केवल अध्ययन शुरू किया, बल्कि उसे अपने यहाँ के शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में भी लगाया- "लंदन में प्राच्य भाषा के अध्ययन के लिए स्थापित शोध संस्थान द्वारा हिन्दी के लिए श्लाघनीय कार्य हुआ है तो उनकी रुचि सहज ही समझी जा सकती है। रूसी लोगों के हृदय में हिन्दी के प्रति लगाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वहां रामायण का अनुवाद आप कराया गया है। चीनियों में हिन्दी अनुराग उफान पर है। वहां पीकिंग विश्व विद्यालय में हिन्दी की पढ़ाई समुचित ढंग से करायी जा रही है, जो काफी समय पहले से उपलब्ध है।"

आज जब भाषाओँ का अस्तित्व ख़त्म हो रहा है तब हिंदी अबाध गति से निरंतर आगे बढ़े रही है। वर्तमान सरकर ने हिंदी को शिक्षण संस्थानों और संस्थाओं में अनिवार्य कर न केवल उसका मान बढ़ाया है बल्कि वैश्विक स्तर पर हिंदी को स्थापित करने में अहम् भूमिका निभाई है। -"भाषाओं के इस विलुप्तीकरण के दौर में हिंदी अपने को न केवल बचाने में सफल हो रही है, बल्कि उसका उपयोग-अनुप्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह भाषा लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुरानी है और इसमें डेढ़ लाख शब्दावली समाहित है। संप्रति हिंदी को अंतरराष्ट्रीय दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह अनेक विदेशी भाषाओं को न केवल स्वीकार करती, बल्कि विश्व की समस्त भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। हिंदी के विकास के लिए विश्व की पैंतीस सौ विदेशी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया जा चुका है। यह संख्या भी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। विश्व हिंदी का केंद्रीय सचिवालय मॉरीशस में बनना और हिंदी को प्रौद्योगिकी से जोड़ने के लिए किए जाने वाले सतत प्रयास इसे संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में स्थान दिलाने का प्रयास है। बाजार के कारण भी हिंदी का प्रचार-प्रसार व्यापक हो रहा है।"

सिनेमा के विकास में सिनेमा ने निर्णायक भूमिका निभाई है आज विश्व भर में हिंदी की स्थिति मजबूत हुई है तो उसमें सिनेमा की लोकप्रियता और स्वीकार्यता भी है। हिंदी सिनेमा के गीतों की लोकप्रियता विश्व के अन्य देशों में भी है। विदेशों में रहने वाले भारतीय ही नहीं बल्कि विदेशी लोगों द्वारा भी हिंदी सिनेमा के गीतों को केवल-"अमेरिका में हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से पढ़ाई जाती है और प्रवासी भारतवंशी हिंदी की अलख

और संस्कृति को जगाए रखे हैं। अमेरिका में हिंदी के विकास में चार संस्थाएं प्रयासरत हैं, जिनमें अखिल भारतीय हिंदी समिति, हिंदी न्यास, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति प्रमुख हैं। अमेरिका की भाषा नीति में दस नई विदेशी भाषाओं को जोड़ा गया है, जिनमें हिंदी भी शामिल है। हिंदी शिक्षा के लिए डरबन में हिंदी भवन का निर्माण किया गया है और एक कम्युनिटी रेडियो के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। वे सोलह घंटे सीधा प्रसारण हिंदी में देते हैं। इसके अलावा हिंदी के गाने बजाए जाते हैं।"

जनसंचार माध्यमों ने हिंदी के मूल स्वरुप को कुछ बिगाड़ा तो उसे आम जनता तक पहुँचाया भी है। हिंदी अब व्याकरण और मानकता से ऊपर उठकर समन्वय की भाषा बन चुकी है। उसे जहाँ जो सही लगता है कर लेती है। वर्तमान में अंतरजाल पर संचालित लाखों ब्लाग्स और हिंदी वेबसाईट यह बताने के लिए काफी हैं कि हिंदी अब केवल हिंदुस्तान की भाषा नहीं रह गई है। फेसबुक, व्हाट्स अप, ट्विटर, इन्स्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया के संसाधनों पर हिंदीसवार हो चुकी है। हिंदी के विमर्शों को व्यापक स्पेस इन्हीं माध्यमों से मिला है। आज गाँव-गाँव का व्यक्ति रील पर अपनी वीडियो बनाकर विदेशों में लोकप्रिय हो रहा है तो केवल हिंदी के कारण ही। अब वह समय गया जब हिंदी विकल्प के रूप में प्रयोग की जाती थी। बहुत जल्द ऐसा समय आएगा जब हिंदी विश्व की अन्य भाषाओँ को समझने का माध्यम बनेगी। वर्तमान परिवेश में हिंदी अपनी परंपरागत छवि से बाहर निकलकर बाज़ार की सबसे ताकतवर भाषा बन चुकी है। अंग्रेजी के चैनल, अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओँ के चैनल अपने कार्यक्रमों का अनुवाद हिंदी में करके प्रस्तुत कर रहे हैं। हिंदी को अब केवल भाषा के तौर पर देखना उचित नहीं बल्कि उसे संस्कृति के रूप में देखना होगा। 'हिंदी संस्कृति' अब विश्व में स्वीकार्य हो रही है।

विश्व में लगभग सत्तर हज़ार भाषाएँ अस्तित्व में हैं लेकिन इनमें से नब्बे प्रतिशत भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है। लगभग तीन हज़ार मातृभाषाएं अपनी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। ऐसे में हिंदी लगातार आगे बढ़ रही है तो उसमें हिंदी के साहित्यकारों, हिंदीसेवियों और शोधार्थियों की भूमिका अहम् है। प्रवासी साहित्य पर होने वाले शोध और लेखन ने भी विदेशों में हिंदी की लोकप्रियता को नया आयाम दिया है। विश्व के हर क्षेत्र में हिंदी का वर्चस्व बढ़ा है। मीडिया संस्थान, बैंकिंग क्षेत्र, सॉफ्टवेयर कंपनियां तथा सोशल मीडिया ने हिंदी को स्वीकार कर लिया है। अब तो विज्ञान और गणित की पढ़ाई भी हिंदी में होने लगी है।

अमेरिका जैसे देशों में हिंदी के प्रति नया माहौल बना है। वहाँ की संस्थाओं में हिंदी साहित्य का अध्ययन किया जा रहा है। भारत के लोकप्रिय साहित्यकारों को अनुवाद के माध्यम से पढ़ा जा रहा है। इंग्लैंड में भी हिंदी अमेरिका की भांति पसंद की जा रही है। इग्लैंड में हिंदी सेवी संस्थानों की गरिमामयी परम्परा है। गीतांजलि संस्था द्वारा प्रोफ़ेसर कृष्ण लगभग पांच दशकों से हिंदी के लिए कार्य कर रहे हैं। वहां के छात्रों के मन में हिंदी के प्रति आदरभाव जगाने में गीतांजलि की भूमिका निर्णायक है। इसके आलावा भारतीय भाषा संगम, यू.के. हिंदी ने हिंदी साहित्यकारों को सम्मानित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। बहुभाषिक साहित्य समुदाय, समिति, हिंदी भाषा समिति, चौपाल, कृति यू.के., कृति इंटरनेशनल कथा यू.के., हिंदी राईटर ग्रिल्ड आदि संस्थाएँ इग्लैंड में लगातर कार्य कर रही है। यहाँ के साहित्यकार लगातार अपनी गतिविधियों से पूरी दुनिया में हिंदी का विस्तार कर रहे हैं है। दिव्या माथुर की 'वातायन' संस्था ने इस महामारी में भी निरंतर कार्य किया है। यहाँ उषा राजे सक्सेना, नीना पॉल, उषा वर्मा, महेंद दवेसर, कादंबरी मेहरा, तेजेंद्र शर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इस तरह से देखें तो निश्चित ही हिंदी भाषा विश्व की सबसे मजबूत भाषा बनकर उभरी है। इसमें भारत की अहम् भूमिका है। टेलीविज़न, सिनेमा, सोशल मीडिया और जनसंचार के अन्य लोकप्रिय माध्यमों ने हिंदी को नया मुकाम दिया है। आज विश्वभर में शिक्षण के माध्यम से हिंदी संस्कृति का प्रचार हो रहा है। पौराणिक और ऐतिहासिक रचनानाओं के माध्यम से हिंदी की लोकप्रियता ने नए मानक स्थापित किए हैं। बाज़ार की भाषा के रूप में भी हिंदी की स्वीकृति आनंदित करती है। हिंदी अब हीनता, पराधीनता नहीं, बल्कि आस्था और सम्मान की भाषा बन चुकी है।

❖

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
हंसराज कॉलेज, दिल्ली। मो. 9871907081

आज़ादी का अमृत महोत्सव

जयशंकर 'प्रसाद' की सांस्कृतिक चेतना

– डॉ. उदय प्रताप सिंह

छायावादी काव्य चेतना को 'प्रसाद', पंत, निराला और महादेवी वर्मा ने एक विशिष्ट प्रकार का उत्कर्ष प्रदान किया था। छायावाद भारत का चिन्मय कालखण्ड बन गया। वह नव्यता का मांगलिक पुनर्जागरण, अभिनवता का वसंत, और काव्य चेतना का देवदूत जैसा है। वह सब कुछ नया, आत्मनिर्भर व स्वतंत्र देखने की कामना करता है। उसकी अभिनव चेतना एक सौ वर्षों बाद, भी उसे प्रासंगिक बनाए हुए है।

प्रारंभ से ही हिन्दी साहित्य सांस्कृतिक चेतना का संवाहक रहा है। जैनपंथ में अहिंसा व प्रेम, बौद्ध धर्म में मानव कल्याण व विश्वशांति की कामना, नाथपंथ में आचरण प्रवणता और समरस जीवन, भक्तिकाल में परमात्मा के रस में भींगी बानियाँ, रीतिकाल में श्रृंगार और वीर रस में गोते लगाते दोहरे, भारतेन्दु काल में स्वत्व को झंकृत करता गद्य साहित्य, मर्यादा की भित्ति पर खड़ा द्विवेदी युग और पुनर्चेतना की अभिव्यक्ति करता छायावाद संस्कृति की अन्तर्चेतना से आप्लावित दिखता है। जयशंकर 'प्रसाद' छायावाद के प्रतिनिधि रचनाकार हैं।

समाज अथवा साहित्य में कोई वाद-विवाद-संवाद, विचारधारा या प्रवृत्ति अकस्मात् नहीं जन्म लेती है। उसकी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है। संघर्ष, विसंगति, सार्थक संवाद उसके उद्भव में सहायक बनते हैं। छायावाद का जन्म इसी पृष्ठभूमि में हुआ। वह वस्तुतः द्विवेदी युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का बहुरंगी विस्तार और अस्थिर पड़ाव है। किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति के उद्भव व विकास की यही सनातन प्रक्रिया है। संक्षेप में छायावाद ऐसा काव्यांदोलन है जो प्राचीन धरोहरों को नवीन चेतना द्वारा मुखरित करता है। छायावादी साहित्य में संस्कृति की गहरी जड़ें 'ठहरा जिसमें जितना बल है' की चुनौती देती हैं। बीसवीं शती साहित्यिक आंदोलनों की सदी कही जाती है। कहना है कि उज्ज्वल अतीत, इतिवृत्तात्मकता, कल्पनाशीलता, साहित्यिक नवाचार की तड़प, यथार्थ को भी अतियथार्थ में व्यक्त करने की चाहत, आमजन की अभिव्यक्ति को स्वर देने की कोशिश, व्यक्ति से अधिक समष्टि चेतना को महत्व प्रदान करने की प्रवृत्ति में आधी

"जयशंकर 'प्रसाद' की सांस्कृतिक चेतना को डॉ. प्रेमशंकर ने बड़ी ही कुशलता से देखने का प्रयास किया है-'' इतिहास के साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति भी कवि का अनुराग है। वास्तव में इतिहास संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे के अधिक समीप हैं, और उनमें एक विभाजन रेखा खींचना कठिन है। इस दृष्टि से प्रसाद में उनका समन्वित रूप देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास को प्रकाश में लाने के साथ कवि ने प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की नयी व्याख्या की है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की रेखाएँ उनके साहित्य में सबसे अधिक बलवती दिखती हैं। देश के इतिहास व संस्कृति के प्रति उन्हें जो मोह था, प्रबल लगाव था उसकी अभिव्यंजना के लिए उन्होंने कई माध्यम चुने। कथावस्तु के अतिरिक्त पात्रों का नियोजन भी उन्होंने किया। बाबा रामनाथ, दाण्डायन, चाणक्य आदि पात्र संस्कृति के प्रतीक बनकर आये हैं। महाराणा का आदर्श पराक्रम, चाणक्य की अदम्य नीति अपने सम्मुख सभी को नतमस्तक करा लेती हैं। हिन्दू धर्म से उन्होंने जीवन दर्शन ग्रहण किया। बौद्धों की करुणा, शैवधर्म का प्रतिभिज्ञा दर्शन उनके काव्य में दिखाई देता है।"

सदी तक का कालखण्ड संलग्न रहा है। इन वादों-विवादों से वाद-संवाद स्थापित करता छायावाद अपने जीवन का शताब्दी वर्ष पूर्ण कर चुका है। शांति, सौहार्द्र, राष्ट्रीय चेतना, सौमनस्य एवं प्रेम का संदेश देता छायावाद सौ वर्ष बाद पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के चार चरण-द्विवेदी युग, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद हैं। ये आधी सदी तक साहित्य का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। यह कहना तो अतिरेक होगा कि चार चरणों में ही बीसवीं सदी का सम्पूर्ण साहित्य सिमट गया, पर साहित्यांदोलन के इन समुल्लासों ने एक साहित्यिक वातावरण का घना जाल अवश्य बुना था। छायावादी साहित्य में भारत की सांस्कृतिक चेतना पहली बार अँगड़ाई लेती दिखती है। भाषा की प्रयोगधर्मिता, वक्रता व लाक्षणिकता की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कालखण्ड है और भावात्मक दृष्टि से परिपक्वता का आभास कराता है। इस अवधि में संस्कृति का विस्तार दूर तक दिखता है। छायावादी युग में 'कामायनी' और 'लोकायतन' जैसे महाकाव्य रचे गये। कालजयी रचनाओं में 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा', तुलसीदास, 'उच्छवास', 'युगांत', 'यामा' और 'संधिनी' की गणना की जाती है। 1920 ई0 में 'श्री शारदा' पत्रिका जबलपुर से हिन्दी में 'छायावाद' नामक चार निबंध प्रकाशित हुए। ये निबंध मुकुटधर पाण्डेय द्वारा लिखे गये थे। एक वर्ष बाद जून 1921 में पहली बार 'सरस्वती पत्रिका' में 'छायावाद' नाम का उल्लेख हुआ। पर हिन्दी आलोचकों ने इसे गंभीरता से नही लिया। रामचंद्र शुक्ल ने तात्विक दृष्टि से इसे रहस्यवाद और रूपविधान की दृष्टि से छायावाद कहा। किसी ने कहा कि 'जो समझ में न आये वह छायावाद है।' 'रहस्यवाद का दूसरा नाम छायावाद है'। 'छायावाद रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है'। 'छायावाद लाक्षणिक प्रयोग, प्रस्तुत विधान और अमूर्त्त उपमान की एक मात्र शैली है'। प्रकृति में मानवीय चेतना का विकास और स्थूलता के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोह भी छायावाद की परिभाषा बताई गयी। यूरोपीय रोमैन्टीसिज्म का छायावाद भारतीय संस्करण है जिसे स्वच्छन्दतावाद कहना चाहिए। उसके उदय और अस्त की भविष्य वाणी तो होती रही; पर छायावाद की प्रवृत्तिगत विशेषताओं एवं सांस्कृतिक विकास को समझने का प्रयास विद्वानों ने नहीं किया।

काव्य की दृष्टि से छायावाद एक समृद्ध कालखण्ड है। छायावादी कवियों की सर्जना में शीतल-दाह का दर्प, नयी उत्तेजना, नये विषय, नवीन शैली, नया छंद, उक्ति वैचित्र्य, नयी भावभंगिमा, नया पद-विन्यास, स्वच्छंद प्रवाह, लाक्षणिक भाषा और नये युग की स्थापना हुई है। निःसंदेह छायावाद ने काव्यभाषा को नई शक्ति, जीवंतता और सौन्दर्य-बोध प्रदान किया है। नयेपन से घबराये तत्कालीन आलोचकों ने छायावाद को समझ में न आने वाला काव्यांदोलन कह दिया तो आश्चर्य क्या? वस्तुतः कविता के क्षेत्र में छायावाद काव्य-रूढ़ियों पर आक्रमण जैसा था। यह तत्कालीन साहित्यकारों को रास नहीं आया। इस तथ्य को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी स्वीकार करते हैं-'' छायावाद की शाखा के अन्दर धीरे-धीरे काव्य शैली का अच्छा विकास हुआ इसमें संदेह नहीं कि उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध का चमत्कार, कोमल पद विन्यास इत्यादि काव्य संगठन करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ती है''।

छायावाद पर वायवीय होने का आरोप भी लगा। 'प्रसाद' की पंक्तियों का हवाला देते हुए अपरिपक्व आलोचकों ने उन्हें पलायनवादी तक कहा। 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे।' प्रतिबद्ध आलोचकों और पाठकों को यह समझने की जरूरत है कि साहित्य का उद्देश्य मनुष्यता का विकास व उसका संरक्षण है। आग्रहमुक्त दृष्टि से देखा जाय तो 'प्रसाद' की वह पंक्ति पलायन नहीं शांति की तलाश है। वैसे भी साहित्य, समाज का अविकल अनुवाद नहीं होता। वस्तुतः छायावाद दो विश्व युद्धों के बीच का काव्यकाल है। उस समय राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर युद्ध के बादल मडरा रहे थे। मानवता संकट में थी। युद्ध में लोग मारे जा रहे थे। युद्ध, अशांति, और हिंसा, के वातावरण में रामधारी सिंह 'दिनकर' की चिंता स्वभाविक दिखती थी। वह छायावाद के समापन व द्वितीय विश्वयुद्ध का शुरुआती दौर था-

प्रेम का दीपक दया का दीप!

कब जलेगा कब जलेगा विश्व में भगवान्।

उक्त वातावरण में जयशंकर 'प्रसाद' जैसा कालजयी कवि खण्डहरों से धर्म की गुफाओं से, शौर्य की कथाओं और आर्षग्रथों के प्रकाश में संस्कृति की धरोहर को गंभीरता से खोज रहा था। इसीलिए 'प्रसाद' के साहित्य को भारतीय संस्कृति की अभिनव अभिव्यक्ति कहा जाता है। संस्कृति की अभिनवता में लोक-जीवन की शक्ति निहित होती है। सामाजिक जीवन की कलाएँ, आस्थाएँ और विश्वास संस्कृति के आधार बनते हैं। जातीय स्मृतियों के श्रेष्ठतम तत्वों से ही जीवंत संस्कृति का निर्माण है। प्राचीनता एवं नवीनता के परिपाक से शक्तिशाली ऊर्जा का जन्म होता है। ऐसा भी नहीं कि हर प्राचीन प्रवृत्ति या जीवन शैली संस्कृति कहलाती हो। लोक में जीवन मूल्यों की स्वीकार्यता ही श्रेष्ठ संस्कृति की पहचान है। संस्कृति एक कालखण्ड से दूसरे को जोड़ती है, सार्थक संवाद करती हुई सेतु का निर्माण करती है। कहना है कि प्रसाद का साहित्य प्राचीन-अर्वाचीन के मध्य सार्थक संवाद की भूमिका निभाता है। कवि 'प्रसाद' ने अपने साहित्य में मानवीय विवेक पर आधारित जीवन मूल्यों की स्थापना की है। प्रेम समन्वित सांस्कृतिक चेतना और पौराणिक आख्यानों पर रचित कविताओं में इतिहास और संस्कृति का जबर्दस्त विम्ब दिखता है। उनकी कहानियाँ व उपन्यास भी उसी भाव की प्रतिपूर्ति करते हैं। कहना अनुचित न होगा कि भक्ति काव्य की सांस्कृतिक चेतना का अभिनव संस्करण है जयशंकर 'प्रसाद' का काव्य!

'प्रसाद' के साहित्य में छायावादी प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुई हैं। कवि, निबंधकार, नाटककार, कथाकार, तथा चम्पू रचनाकार के रूप में प्रसाद की एक अलग पहचान है। वैसे 'प्रसाद' मुख्यतः कवि हैं। यही कारण है कि गद्य में उनके कवि रूप की झलक दिख जाती है। नाटकों में कवि 'प्रसाद' ने संस्कृति, दर्शन और इतिहास का जबरदस्त आख्यान किया है। रचनाकार के रूप में उनकी प्रमुख विधा काव्य ही है। उनका काव्य ब्रजभाषा से प्रारम्भ होकर खड़ीबोली के परिष्कृत रूप तक पहुँचता है। काव्य और गद्य के माध्यम से 'प्रसाद' ने रचना का एक विशाल संसार निर्मित किया है- 'अयोध्या का उद्धार' और 'रघुवंश' इत्यादि ब्रजभाषा तथा 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'प्रेम-पथिक', 'कानन कुसुम' प्रथम चरण की कविताएँ हैं। आँसू, झरना, लहर, गीत-प्रगीति हैं। 'विशाख, 'अजातशत्रु' 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', 'एक घूँट' 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख नाटक हैं। 'कामायनी' जयशंकर प्रसाद ही नहीं पूरे कालखंड की प्रतिनिधि रचना है। भाव, भाषा, शिल्प, संस्कृति-सभ्यता, इतिहास, मनोविज्ञान और आधुनिक दृष्टि की मानक रचना है- 'कामायनी'।

इतिहास भविष्य का पथ-प्रदर्शक और वर्तमान की प्रेरणा होता है। हर जाति अपने अतीत पर गर्व करती है। जयशंकर प्रसाद का साहित्य इतिहास के गह्वरों से संस्कृति की जीवंत प्रतिमा खोज निकालता है। 'प्रसाद' का जन्म ऐसे कालखण्ड में हुआ जब पाश्चात्य सभ्यता अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी थी। अतः उन्होंने इतिहास के भग्नावशेषों से कथावस्तु ग्रहण कर जातीय-गौरव की स्थापना की। 'भरत', 'कुरुक्षेत्र', 'महाराणा का महत्व', 'अशोक की चिंता', 'प्रलय की छाया', आदि की प्रेरणा उन्हे भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों से मिली है। 'प्रसाद' की दृष्टि मूलतः सांस्कृतिक है इसलिए उन्होंने इतिहास का अन्वेषण किया है। संस्कृति की बिखरी सामग्री को एकत्र करने के अतिरिक्त उन्होंने 'कामायनी' की पृष्ठभूमि को सनातन इतिहास से सजाया है। प्रथम मानव का जन्म इसी भारत भूमि पर हुआ। मातृगुप्त के 'भारत गीत' में कवि ने देश के इतिहास से संस्कृति की नयी चेतना को खोज निकाला है। 'प्रसाद' जी कहते हैं-

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं।।

रामचंद्र तिवारी ने 'प्रसाद' के इतिहास प्रेम को संस्कृति का माध्यम कहा है- 'प्रसाद' ने केवल इतिहास का ही उद्धार नहीं किया, भारतीय संस्कृति के उदात्त- अनुदात्त स्वरूप का उद्घाटन भी किया। महाभारत युग के अन्त से हर्षवर्धन के उद्भव तक का सम्पूर्ण सांस्कृतिक वातावरण उनके नाटकों में प्रतिबिम्बित हो उठा है। आर्यों और नागों का संघर्ष, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की प्रतिस्पर्धा, ब्राह्मणों एवं बौद्धों का द्वन्द्व, बौद्धों की तांत्रिक परिणति और देशव्यापी कुचक्र सम्राटों का शौर्य, विलासिता, देश-भक्ति और स्वाभिमान, सामाजिक सुधार, धर्मभीरुता तथा वीरपूजा की प्रवृत्ति आदि भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल-अनुज्ज्वल पक्ष उनके नाटकों में साकार हो गये हैं''। संस्कृति के प्रति 'प्रसाद' का आग्रह विदेशी बालिका कार्नेलिया में दिखता है- 'अरुण यह मधुमय देश हमारा'। उसे भारत भूमि व यहाँ की संस्कृति से बेहद लगाव है। आदि पुरुष मनु को हिमालय के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित कर कवि ने मानसरोवर में आर्य संस्कृति के विकास का स्रोत भी खोज लिया है। कवि प्रसाद संस्कृति की प्रभूत सामग्री इतिहास से प्राप्त करते हैं। भारतीय संस्कृति नदियों के किनारे विकसित हुई और नारी उसे अपने आँचल में भरकर युग-युगों से संरक्षित करती रही है। उनकी दृष्टि में नारी भारतीय संस्कृति का कोष है। मनु की पुरुषवादी सोच में परिवर्तन की जरूरत है-

मनु तुम श्रद्धा को गये भूल।
तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।।

भारतीय जीवन में नदी और नारी संस्कृति की पर्याय हैं। नारी के पक्ष में व्यक्त पंक्तियाँ गुलामी की जंजीरों को तोड़ने से कम महत्वपूर्ण नहीं है। नारी की प्रतिष्ठा में संस्कृति का जीवंत रूप दिखता है। पुरुष के जीवन रूपी मरुस्थल में नारी पीयूषधारा की तरह बहती है। वह देवि, माँ, सहचरि, प्राण तो है ही, श्रद्धा-विश्वास और पुरुष की सफलता का शक्ति केन्द्र भी है। नारी के प्रति कवि प्रसाद के शब्द ऋषियों के मंत्र से कम पवित्र नहीं है। वह पुरुष की प्राणशक्ति है, भोग्या नही चेतना का प्रतीक व विश्वास का अक्षय कोष है-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।।

नारी के बहाने 'प्रसाद' भारतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य का आख्यान करते हैं। नारी के जीवन की भावनात्मक गहराई, उसकी विवशता और पराश्रयता पुरुष के साथ समरस होने में सुंदर समाधान पाती है। भारतीय संस्कृति का यह निदर्शन कम से कम हिन्दी साहित्य में तो पहली बार दिखता है। नारी के अधिकार और कर्तव्य के बाद भी उसे पुरुष की सहधर्मिणी बनने में ही जीवन की सार्थकता दिखती है। प्रसाद कहते हैं-

आँसू से भीजे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह संधि पत्र लिखना होगा।
(कामायनी)

आज का उथला नारी विमर्श और 'प्रसाद' का सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न नारी बोध इनमें कितना अन्तर है! एक में जीवन है, प्रेम है, स्नेह है,

आलिंगन है, दूसरे में प्रतिकार, अधिकार और प्रतिशोध है। 'प्रसाद' की सांस्कृतिक सर्जना की सबसे बड़ी निधि 'कामायनी' महाकाव्य है। भोग-विलास में आकण्ठ डूबी देव जाति का जलप्लावन में सबकुछ समाप्त हो जाता है। देव संस्कृति का प्रतिनिधि पुरुष मनु अपनी आँखों से इस विनाश लीला को विवश हो देख रहा है। संयोग से ही उसके प्राण बचे हैं। इस संकट काल में उसे अनुभव होता है कि-सम्पूर्ण संसार परिवर्तनशील। विलासिता के उद्दाम वेग में देव जाति इसे विस्मृति कर गई थी। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रह-रहकर मनु को स्मृत हो उठती है। हमारी संस्कृति 'त्येन त्यक्तेन भुंजीथा' की रही है। देवजाति का असंयमित भोग उन्हें विनाश के कगार पर खड़ा कर देता है-

देव न थे हम और न ये हैं, सब परिवर्तन के पुतले।

हाँ कि गर्व रथ में तुरंग सा जितना जो चाहे जुतले।।

भारतीय संस्कृति में भोग-विलास का स्थान नहीं है। विलासिता का अतिरेक ही साम्राज्य का विलीन होना था। सम्राट मनु की आँखे विनाश लीला को देखकर भर आई। उन्हें अन्तर्मन चेतावनी देता है कि भोग और त्याग का संतुलन ही जीवन है। एक ही तत्व सर्वत्र व्याप्त है। वही जीवन का संचालन करता है। उसे विस्मृत करना, मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी भूल होती है।

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह।

एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।।

नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन।

एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।।

जीवन में मनुष्य का विगलित अहंकार संस्कृति की मूल चेतना से जुड़ जाता है। 'प्रसाद' की काव्य यात्रा संस्कृति की चेतना को जाग्रत करने की ही भूमिका है। चन्द्रगुप्त नाटक में सैल्युकस की पुत्री कार्नेलिया का संस्कृति प्रेम छिपा नही है। विदेशियों में संस्कृति के प्रति यह चाहत उत्पन्न कर देना उनके नाम का भारतीयकरण कर देना- (अलक्जेंडर का अलक्षेन्द्र) प्रसाद की उर्वर प्रतिभा का परिचायक है-

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

भारत जैसा मधुमय देश कहाँ है? भारत की सुबह में उषा भरी लाली और सायंकाल में 'मेघबन बीच गुलाबी रंग' का सौन्दर्य कहाँ मिलता है? नयी सुबह आशा भरी किरणों के साथ प्रकट हो रही है। उषःकाल का पनघट, उसमें नायिका द्वारा घट को डुबोना कितना सांस्कृतिक दृश्य उपस्थित करता है। रात का व्यतीत होना- दुख की विदाई है और पनघट पर गागर भर लेना- आशा एवं जागरण का प्रतीक है। दोनों में संस्कृति का अद्भुत अपूर्व चित्र उभरता है-

बीती विभावरी जाग री!

अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी।।

लो यह लतिका भी भर लाई, मधुमुकुल नवल रस गागरी।

तू अब तक सोई है आली, आँखों में भरे विहाग री।।

जयशंकर 'प्रसाद' के साहित्य में सांस्कृतिक प्रतीकों द्वारा मानवमन के अन्तरतम की तलाश हुई है। उनके नाटकों और कहानियों में सनातन संस्कृति से बौद्ध संस्कृति पर्यन्त व्यापक विवेचन सम्पन्न है। 'ध्रुवस्वामिनी', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'जनमेजय का नागयज्ञ' इत्यादि कृतियों की भूमिकाओं में इतिहास की नाव संस्कृति के पतवार से चल रही है। उनकी रचनाओं में इतिहास व संस्कृति की विभाजन रेखा खींचना कठिन है। वह नाटकों में विशेषतः कविताओं के माध्यम से सांस्कृतिक पुनरुत्थान की पीठिका का निर्माण करते हैं। चुद्रगुप्त नाटक में सांस्कृतिक शौर्य का चित्र कितना आकर्षित करता है-

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,

स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती,

अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,

प्रशस्त पुण्य पंथ हैं बढ़े चलो-बढ़े चलो।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में भूमि को आर्य संस्कृति की उद्भव भूमि कहा गया है। उसके विजयी होने की कामना संस्कृति के प्रति आत्मीयता व्यक्त करती है-

जय आर्य भूमि की आर्य जाति की जय हो।

अरिगण का भय हो विजयी जनमेजय हो।।

कृष्ण भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड हैं। उनके मुरली वादन में जीवन का राग है और मंगलमय, सनातन सांस्कृतिक जागरण के कई स्वर जन्म लेते हैं-

बजा दो वेणु मन मोहन बजा दो,

हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।

-स्कंदगुप्त पृ0 138

भारतीय संस्कृति की एक छवि एकांत अकेले मनु की है; पर वहाँ भी प्रसाद सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से उनके त्याग, तप और यज्ञ की महत्ता को संस्कृति से जोड़ देते हैं-

जलने लगा निरंतर उनका अग्नि होत्र सागर के तीर।

मनु ने तप में जीवन अपना किया समर्पण होकर धीर।।

सनातन संस्कृति की उदारता, सर्वस्पर्शिता, बुद्ध की करुणा, प्रेम, अहिंसा एवं शांति से 'प्रसाद' का साहित्य भरा पड़ा है। वाराणसी में निवास करते हुए उनकी सांस्कृतिक चेतना पर बुद्ध का गहरा प्रभाव परिलक्षित

होता है। सदियों से वरुणा, अस्सी और गंगा के सहारे वाराणसी ने संस्कृति का एक विशाल वितान खड़ा किया है। ढाई तीन हजार वर्ष पूर्व बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के उपरांत वाराणसी के उपनगर सारनाथ में मानव कल्याण हेतु पहला धर्मोपदेश दिया था। उस समय सारनाथ वरुणा नदी की कछार में स्थित एक घना वन प्रान्त था। वहाँ बुद्ध का प्रथम-उपदेश भारतीय संस्कृति की धरोहर बन गया। 'प्रसाद' ने 1933 ई0 में मूलगंध 'कुटी विहार' सारनाथ की स्थापना के अवसर पर 'अरी वरुणा की शांत कछार' का काव्य-पाठ कर शांति, त्याग, विराग की सनातन संस्कृति को झंकृत कर दिया था-

अरी! वरुणा की शांत कछार। तपस्वी के विराग की प्यार।
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज।
जगत नश्वरता से लघु त्राण, लता पादप, सुमनों के पुंज।
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ण की बसुधा से शुचि संधि गूँजता था जिससे संसार।
छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मो का व्यापार।
विश्व मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर मंद्र।
मिला था वह पावन आदेश आज भी साक्षी हैं रविचंद्र।

जीवन को भरपूर जीना भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है। यही आनंदवादी दर्शन है। जीवन आनंद का प्रदाता है। वह कर्म को महत्व देता है। व्यक्ति की अन्तर्शक्ति जीवन में सफलता प्रदान करती है। त्याग का तात्पर्य विवेक पूर्वक त्याग से है, जीवन से संन्यास लेकर वन जाने से नहीं। 'प्रसाद' इसकी अभिव्यक्ति कामायनी में प्रबलता के साथ करते हैं-

यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंग स्थल है,
है परम्परा लग रही यहाँ, ठहरा जिसमें जितना बल है।

भारतीय संस्कृति का मुख्य स्वर सर्वकल्याण है। सभी सुखी, नीरोग हों, सभी मनुष्य के कल्याण की कामना करें और किसी को भी दुख का भागी न बनना पड़े। हृदय का विस्तार जितना ही अधिक होगा मनुष्यता की मुस्कान उतनी ही प्रगाढ़ होगी। अपने सुख को समाज सापेक्ष अथवा विस्तार देने पर सुखानुभूति शीतल हवा का झोंका बन जाती है। मनुष्यता के संदर्भ में 'प्रसाद' का यह गहन चिंतन संस्कृति की चिन्मय चेतना को उदबुद्ध करता है। इस चिंतन की अनुभूति और उत्पत्ति भारतीय संस्कृति की उदारता में देखी जा सकती है। सौहार्द्र की कामना ही 'प्रसाद'-साहित्य का लक्ष्य है। मनु सुख पाने की लालसा में स्वकेन्द्रित हो गये हैं। कामायनी के कर्म-सर्ग में श्रद्धा का यह कथन कितना सार्थक लगता है। मनुष्य का ईर्ष्यालु होना स्वयं और समाज दोंनों के लिए हितकर नहीं-

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।।

परोपकार, प्रेम, त्याग, बलिदान, शान्ति और करुणा (दया) का आत्यंतिक विस्तार ही संस्कृति के आदर्श हैं। श्रद्धा इस मार्ग पर चलती है और मनु को चलने के लिए प्रेरित करती है। स्त्री पुरुष का यह सामंजस्य एक सुंदर समाज का कारण बनता है। भारतीय संस्कृति की ये विशेषताएँ प्रसाद साहित्य को महत्वपूर्ण बना जाती हैं। श्रद्धा और मनु की पारस्परिक प्रीति कितनी स्पृहणीय बन जाती है-

हृदय बन रहा था सीपी सा।
तुम स्वाती की बूँद बनी।
मानस शत दल झूम उठा।
जब तुम उसमें मकरंद बनीं।

जयशंकर 'प्रसाद' की सांस्कृतिक चेतना को डॉ. प्रेमशंकर ने बड़ी ही कुशलता से देखने का प्रयास किया है-'' इतिहास के साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति भी कवि का अनुराग है। वास्तव में इतिहास संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे के अधिक समीप हैं, और उनमें एक विभाजन रेखा खींचना कठिन है। इस दृष्टि से प्रसाद में उनका समन्वित रूप देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास को प्रकाश में लाने के साथ कवि ने प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की नयी व्याख्या की है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की रेखाएँ उनके साहित्य में सबसे अधिक बलवती दिखती हैं। देश के इतिहास व संस्कृति के प्रति उन्हें जो मोह था, प्रबल लगाव था उसकी अभिव्यंजना के लिए उन्होंने कई माध्यम चुने। कथावस्तु के अतिरिक्त पात्रों का नियोजन भी उन्होंने किया। बाबा रामनाथ, दाण्डायन, चाणक्य आदि पात्र संस्कृति के प्रतीक बनकर आये हैं। महाराणा का आदर्श पराक्रम, चाणक्य की अदम्य नीति अपने सम्मुख सभी को नतमस्तक करा लेती हैं। हिन्दू धर्म से उन्होंने जीवन दर्शन ग्रहण किया। बौद्धों की करुणा, शैवधर्म का प्रतिभिज्ञा दर्शन उनके काव्य में दिखाई देता है। 'प्रसाद' देश की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील रहने वाले पहले कवि प्रतीत होते हैं। वे सर्वात्मवाद तथा सार्वभौमिकता के पक्षपाती हैं। सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक मनु का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने 'स्वस्थ रक्त' प्रवाहित किया है। कामायनी में मानव संस्कृति विजयी घोषित की गई है।'' मानवता संस्कृति का प्राणतत्व है। उसकी विजय-यात्रा 'प्रसाद' की सांस्कृतिक चेतना का अंतिम पड़ाव है-

शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।।

अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
12-डी, कमला नेहरू मार्ग, प्रयागराज - 211001
मो.-9415787367

समकालीन कविता और लय–छंद का प्रश्न

– प्रो. वशिष्ठ अनूप

समकालीन कविता में एक ओर जहाँ नितान्त गद्यात्मकता बढ़ी है, वहीं कवियों और पाठकों में छंदमुक्त कविता के प्रति लगाव भी बढ़ा है जो आश्वस्तकारी है। मुझे यह अक्सर महसूस होता रहता है कि हिन्दी कविता में पिछले साठ-सत्तर सालों से कुछ गिनती के कवियों की कविताओं को छोड़कर निरन्तर ह्रास हुआ है। मुक्तछंद की शुरुआत के बाद कविता छंद और तुक से तो दूर हुई ही, साथ ही उसने कविता की मूल शर्त लय से भी नाता तोड़ लिया और सपाट गद्य में तब्दील हो गयी। जिन कवियों ने मुक्तछंद में अच्छी कविताएँ लिखी हैं, उन्होंने आरंभ में छंद-बद्ध कविताएँ भी लिखी हैं। उन्हें छंदों का ज्ञान था। इसलिए उनकी मुक्तछंद की कविताओं में भी लय और प्रवाह है। किन्तु इधर की अधिकांश कविताएँ शुष्क, रुक्ष और बेसिर-पैर के गद्य के टुकड़ों जैसी हो गयी हैं। तुक कविता का जरूरी अंग है, किन्तु तुकाग्रह के कारण कभी-कभी कुछ समस्याएँ भी आती हैं और कविता तुकों के कारण वह सब कहने लगती है जो कवि का ध्येय नहीं होता। किन्तु लय तो कविता की आत्मा होती है और हमारी संस्कृत की तथा बाँग्ला एवं अन्य कई भाषाओं की कविताएँ लयाधारित ही हैं। लोकगीत भी इसी कोटि में आते हैं। ये कविताएँ अपनी लय के कारण ही हजारों सालों से जनमानस की स्मृति और कंठ में निवास करती आ रही हैं। आदिकाल से लेकर छायावाद और प्रगतिवाद की कविताएँ भी हमें इसी कारण से रुचती और याद होती रही हैं।

लेकिन आज की कविता का लय से कोई रिश्ता नहीं रह गया है। प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में 'छंद मुक्त', 'मुक्त छंद', 'मुक्ति युक्त छंद', 'आंतरिक लय', 'अर्थ की लय' और विचारों की लय आदि की काफी चर्चा हुई थी। लेकिन हुआ यह कि आगे चलकर धीरे-धीरे तथाकथित कविता हर प्रकार के लय से दूर होती चली गयी और इतनी

> ***"यह सुखद है कि पिछले कुछ वर्षों से इस विषय पर चर्चाएँ होने लगी हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों मुखर होने लगे हैं। इस चर्चा के निहितार्थ को समझा जाना चाहिए। थोड़ा पीछे चलकर देखें तो सत्तर के दशक में नई कविता के प्रमुख कवि दुष्यंत कुमार ने नई कविता की असंप्रेषणीयता और कवियों के दावों के खोखलेपन को देखकर कहा था कि- 'मैं महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता चला गया है। कविता से पाठकों के बीच इतना फासला कभी न था जितना आज है।... इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति की भूमिका तैयार कर रही है। मेरी समझ में यह दलील खोटी और वक्तव्य भ्रामक है। जो कविता लोगों तक पहुँचती ही नहीं, वह किसी क्रान्ति की संवाहिका भला कैसे हो सकती है।'[1] इन्हीं कारणों से दुष्यन्त कुमार मुक्तछंद की कविता से ग़ज़ल की ओर आये थे और उसके बाद उनकी ग़ज़लों की लोकप्रियता से हम सभी परिचित हैं।"***

दूर चली गयी कि पाठक से ही दूर हो गयी। जब मैं यह बातें कह रहा हूँ तो इस समय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, निराला, अज्ञेय, जगदीश गुप्त और नई कविता के स्थापना काल की कविता-सम्बन्धी तमाम बहसें, टिप्पणियाँ और रचनाएँ मेरी स्मृति में हैं। गद्य का अपना महत्व है। उसे 'कवियों की कसौटी' कहा गया है। वह 'जीवन-संग्राम की भाषा है।' लेकिन इसका मतलब यह कहीं से नहीं निकलता कि कविता जीवन-संग्राम की भाषा नहीं है। आ़जादी के दीवाने 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है', 'झंडा ऊँचा रहे हमारा', 'मेरा रँग दे बसंती चोला' और 'सर पे बाँधे कफनवाँ हो शहीदों की टोली निकली' जैसे गीत गाते हुए जब स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों की आहुति दे रहे थे तो उस समय की कविता महासंग्राम लड़ रही थी। एक जमाने में गीत लिखने वाले आदरणीय डॉ० केदारनाथ सिंह ने कुछ साल पहले बीएचयू में वक्तव्य देते हुए कहा था कि 'कविता ने गद्य में जगह चुराई'। यह कथन कलात्मक और आकर्षक लग सकता है लेकिन यह प्रश्न बनता है कि गद्य में जगह चुराने की क्या विवशता थी, सीधे-सीधे गद्य लिखने से कौन मना कर रहा था? इस सोच के बावजूद उन्होंने मुक्तछंद में बेहतरीन कविताएँ लिखी हैं। वैसे जिसकी गद्य लिखने में गति और रुचि है, उसे गद्य लिखना ही चाहिए। गद्य लिखना भी बहुत महत्वपूर्ण और कठिन कर्म है। इसमें कोई शर्म की बात नहीं है। काव्य-भाषा, गद्य-भाषा से अलग होती है। गद्य के टुकड़े लिखकर उसे कविता कहने का मोह, भ्रम और दंभ पालने तथा वास्तविक कविता का विरोध करने की गिरोहबन्द सा़जिश का विरोध होना चाहिए। वह कविता जिसकी पंक्तियाँ स्वयं कवि की भी स्मृति में नहीं ठहरतीं, वह पाठक की स्मृति में रह ही नहीं सकती। यही कारण है कि कविता के नाम पर विगत कुछ दशकों में जो कुछ परोसा गया जनता ने उसे अस्वीकार कर दिया। पाठक तो पाठक ये कवि भी दूसरों की कविताएँ नहीं पढ़ते। इन कारणों का विश्लेषण और आत्मालोचन न करके कवि-आलोचक-सम्पादक चिन्तित हैं कि कविता के पाठक समाप्त हो गए हैं। यदि जनता ने आपको अस्वीकार कर दिया है तो आप उन कारणों की तलाश करके उन्हें सुधारने की कोशिश करेंगे या अपने लिए नई जनता चुनेंगे? क्या कारण है कि दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी की ग़जलें पाठ्यक्रमों में लगे बिना भी लोगों की जबान पर हैं। कबीर, तुलसी, रहीम तथा मीर औऱ गालिब बार-बार क्यों याद आते हैं? हमें कविता और गद्य में कोई निर्णायक रेखा तो खींचनी ही पड़ेगी। हमें नई पीढ़ी को यह बताना पड़ेगा कि कोई रचना कविता है तो क्यों और कविता नहीं है तो क्यों?

निराला ने जब मुक्तछंद का आह्वान किया था, तो छंदों की जकड़न से मुक्त होने और उसे लचीला बनाने की बात थी और वह जरूरी कदम था। उस समय के जिन कवियों ने मुक्तछंद में कविताएँ लिखीं, उन्हें छंदों की समझ तो थी ही वे छंदोबद्ध रचना में पारंगत थे। इसलिए मुक्तछंद के बावजूद उनकी कविताओं में लय और काव्यत्व है। मुक्तछंद की व्याख्या मुक्तियुक्त छंद के रूप में की गई जिसे कुछ लोगों ने आंतरिक लय तथा विचारों की लय से भी जोड़ा। यहाँ तक तो ठीक था लेकिन आगे चलकर कुछ धूर्त और चतुर लोगों ने मुक्तछंद को उलटकर 'छंदमुक्त' कर लिया और कविता के नाम पर गद्यांश लेखन शुरू हो गया। बेतरतीब गद्य को कविता कहा जाने लगा। कुछ भी लिखा और कह दिया यह कविता है। गद्यांश तो ठीक है क्योंकि वहाँ एक व्यवस्था और तारतम्यता होती है लेकिन यह कविता तो गद्य भी नहीं है एक बेतरतीब और ऊलजलूल गद्य है। एक बार जब इस विषय पर वरिष्ठ साहित्यकार बलदेव वंशी और ब्रजेन्द्र त्रिपाठी से मेरी बात हो रही थी तो बलदेव वंशी जी ने कहा कि 'इधर की तमाम कविताओं को मैं भ्रष्ट किस्म का गद्य कहता हूँ।' हर तरफ ऐसी ही अराजक कविता और कवियों का जमावड़ा है। इस समय की अधिकांश कविताएँ ऐसी ही हैं जिन्हें कविता तो क्या गद्य भी नहीं कह सकते।

'लय' और काव्य भाषा ही है जो कविता को गद्य से अलग करती है। अंतर्वस्तु, कविता की आत्मा छंद या अभिव्यक्ति पद्धति उसकी देह और लय उसकी साँस होती है। साँस गई तो सब गया। सन् २०१० में बी०एच०यू० के एक आयोजन में मेऱे ग़जल-संग्रह 'रोशनी की कोपलें' पर बोलते हुए प्रसिद्ध कथाकार प्रो० काशीनाथ सिंह ने कहा था कि 'कविता की पहली शर्त है कि वह जबान पर चढ़े। इसकी तलाश होनी चाहिए कि पिछले ७० सालों में कविता पाठक से क्यों दूर होती गई है? इस संदर्भ में उन्होंने कविता में लय-छंद की चर्चा की थी जिसके कारण कोई कविता हमारी स्मृति में बची रहती है। यह बातें साहित्य के तमाम अध्येता कहते रहे हैं और कह रहे हैं। इन सबके बावजूद गद्यांश को ही कविता की मुख्यधारा मानने वाले कवियों तथा तथाकथित आलोचकों पर कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा है।

इसके विपरीत ग़जल और गीत व दोहे हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं में खूब पढ़े व सुने जा रहे हैं। वह बिना पाठ्यक्रमों में लगे लोगों के कंठ और जीवन में मौजूद हैं। इसका मतलब यह भी नहीं कि छंदों में लिखा जा रहा सब कुछ स्तरीय है या छंद में होने से ही कोई रचना अच्छी हो

जाती है, छंदों में भी बहुत खराब और कबाड़ लिखा जा रहा है। सिर्फ तुकबंदी भी कविता नहीं होती।

निराला से भी पहले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मुक्तछंद की बात उठाई थी। निराला ने जब यह बात उठाई तो उस समय हर क्षेत्र में स्वाधीनता की आकांक्षा थी। होता यह है कि कोई भी चीज़ जब सिद्धान्तों से जकड़ जाती है, वह समाज हो या साहित्य, तब उसका विरोध जरूरी हो जाता है और उस जकड़न या बंधन से मुक्ति या स्वतंत्रता जब अराजकता या स्वेच्छाचारिता में बदलने लगती है, तब फिर उसका भी विरोध अनिवार्य हो जाता है और एक अनुशासन की जरूरत पड़ती है। शास्त्रीयतावाद और स्वच्छन्दतावाद के संघर्ष और आवाजाही का भी यही मामला है। कुछ लोग निराला के हवाले से बार-बार यह कहते रहते हैं कि कविता गद्य में लिखी जानी चाहिए क्योंकि गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है। ठीक है, यदि 'गद्य जीवन संग्राम की भाषा है' और आपको गद्य ज्यादा अच्छा लगता है तो गद्य ही क्यों नहीं लिखते? गद्य को कविता कहने का प्रपंच क्यों कर रहे हैं? या गद्यांश लिखकर कवि कहलाने का मोह क्यों है?

कोई निराला की ओट ले या विदेशी विद्वानों की, कविता की स्थिति काफी बदतर हो चुकी है। कविता को काफी बर्बाद किया जा चुका है। पानी नाक के ऊपर चढ़ गया है। प्रबुद्ध पाठकों और विद्यार्थियों का धैर्य अब जवाब देने लगा है। सच्चाई से आँखें फेरने वाले कवियों और शिक्षकों की आँखों में उँगली डालकर छात्र अब पूछने लगे हैं कि आप गद्य लिखकर उसे कविता क्यों कह रहे है? इस बेतरतीब गद्य को हम कविता क्यों मानें? कविता-पाठ का कार्यक्रम होता है और वहाँ लघुकथा, गद्यखंड और निबन्ध पढ़ा जाता है।

यह सुखद है कि पिछले कुछ वर्षों से इस विषय पर चर्चाएँ होने लगी हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों मुखर होने लगे हैं। इस चर्चा के निहितार्थ को समझा जाना चाहिए। थोड़ा पीछे चलकर देखें तो सत्तर के दशक में नई कविता के प्रमुख कवि दुष्यंत कुमार ने नई कविता की असंप्रेषणीयता और कवियों के दावों के खोखलेपन को देखकर कहा था कि- 'मैं महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता चला गया है। कविता से पाठकों के बीच इतना फासला कभी न था जितना आज है।... इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति की भूमिका तैयार कर रही है। मेरी समझ में यह दलील खोटी और वक्तव्य भ्रामक है। जो कविता लोगों तक पहुँचती ही नहीं, वह किसी क्रान्ति की संवाहिका भला कैसे हो सकती है।'[1] इन्हीं कारणों से दुष्यन्त कुमार मुक्तछंद की कविता से ग़जल की ओर आये थे और उसके बाद उनकी ग़जलों की लोकप्रियता से हम सभी परिचित हैं।

इस विषय पर समय-समय पर बहसें होती रही हैं। पिछले साल वरिष्ठ आलोचक डॉ० मैनेजर पाण्डेय से सूर्यनाथ सिंह, नीरज कुमार मिश्र, मनोज कुमार सिंह और मिथिलेश श्रीवास्तव ने साहित्य के कई पक्षों पर बात की थी जिसमें कविता की गद्यात्मकता और उसमें लय-छंद की जरूरत पर भी बात की थी। इस विषय पर पाण्डेय जी की लय छंद के विषय में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं- 'छंद और लय ये दोनों कविता की कभी ताक़त रहे हैं। आम लोग छंद में ही तो आसानी से कविता को कविता मानते हैं। गद्य कविता या गद्य की तरह कविता या गद्यवत कविता को लोग जल्दी कविता के रूप में स्वीकार नहीं करते। ...निराला जी ने कहा था कि लय होनी चाहिए मुक्तछंद के बावजूद। लय कविता की आयु बढ़ाती है। कविता की स्मरणीयता बढ़ाती है। हाल के कवियों की स्थिति ऐसी है कि आपसे ही कोई कह दे आप अपनी कोई कविता सुनाओ तो सुनाने के नाम पर सुनाएँगे नहीं, उसे किताब निकालकर पढ़ने लगेंगे जबकि पुराने जमाने में लय और छंद के कारण लोग याद कर लेते थे। कबीर, सूर और तुलसी की तमाम पंक्तियाँ मुझे इसी वजह से याद हैं। ...एक और मेरी अपनी धारणा है कि अच्छी कविता वही है जो संकट के समय याद आये पर याद नहीं रहेगी तो याद कैसे आयेगी? जो संकट के समय याद आये और काम आये वही बड़ी कविता होती है। ऐसी कविता कबीर की है, तुलसीदास की है। इसलिए छंद और लय का उपयोग कविता के लिए उसे जनप्रिय बनाने के लिए जरूरी है। ...कविता रहते हुए प्रयोग हो, ये एक बात है और काव्यत्व को नष्ट करने वाला प्रयोग हो, ये दूसरी बात है।'[2]

इस मुद्दे पर पिछले दिनों (१४.०६.२०२०) मैंने वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी से फोन पर बात की। उस बातचीत में एक बात उन्होंने यह साफ़ की कि १९८२ में 'पूर्वग्रह' में 'कविता की वापसी' की बात मैंने छंद की वापसी के संदर्भ में नहीं की थी, बल्कि उस साल बहुतेरे कवियों के संग्रह प्रकाशित हुए थे इसलिए गद्य की इतनी विराट उपस्थिति के समय में कविता की वापसी की बात की थी। दूसरी बात उन्होंने कही कि छंद का ज्ञान बहुत जरूरी है लेकिन ज्ञान के साथ कौशल भी जरूरी है। छंद में होने या न होने से कोई कविता महत्वपूर्ण

नहीं बनती, संवेदना और विचारों से कविता बनती है। उन्होंने कहा कि हमने छंद को जानकर उसे छोड़ा। बहुत से लोगों ने छंद को अज्ञान के कारण छोड़ दिया। सितम्बर २००१ में 'आजकल' में संजीव श्रीवास्तव को दिये गए एक साक्षात्कार में बाजपेयी जी के ये विचार इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं- 'छंद का हमने जिस बेरहमी और अज्ञान से परित्याग किया है, वह आश्चर्यजनक है। कम से कम ऐसे लोग छंद छोड़ें, जिनका छंद पर अधिकार हो। मैं कहता हूँ कि नये लोगों को इस दिशा में नयी सम्भावनाओं की तलाश करनी चाहिए। वे छंद की तरफ मुड़ें छंद में ही आधुनिकता और समकालीनता लाने का प्रयास करें। संसार में बहुत सारी श्रेष्ठ कविताएँ छंद में लिखी गई हैं। डब्लू०एच० ऑडेन ने छंद में लिखा है, जोसेफ ब्राउस्की ने छंद में लिखा है, यहाँ तक कि रूस की अधिकांश महान कविताएं छंद में लिखी गई हैं। फ्रेंच में भी काफी कविताएँ छंदबद्ध मिलती हैं।'[3]

अच्छे भाव तथा लय और छंद में होने के कारण कविता व़क्त पर हमारा साथ देती है, बल देती है, प्रेरणा देती है। प्राचीन और मध्यकालीन कविताओं के बाद भी इधर की भी अच्छी कविताएँ यह काम करती आ रही हैं। निराला के बाद नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, दिनकर, नेपाली, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय, शमशेर, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, नीरज, दुष्यन्त कुमार, केदारनाथ सिंह, धूमिल, उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्रीराम सिंह, रमेश रंजक, माहेश्वर तिवारी, गुलाब सिंह, गोरख पाण्डेय, देवेन्द्र कुमार बंगाली, नरेश सक्सेना, वीरेन डंगवाल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, अष्टभुजा शुक्ल, मदन कश्यप, विज्ञान व्रत, अदम गोण्डवी, बल्ली सिंह चीमा, अनामिका, कमलेश भट्ट कमल, जहीर कुरैशी, राजेश रेड्डी आदि की कविताएँ हमें अक्सर याद आती रहती हैं। इन कवियों को छंद की अच्छी समझ है और इन्होंने छंदों में भी कविताएँ लिखी हैं। ऐसे कवि जब विषयवस्तु की माँग के कारण मुक्तछंद में भी लिखते हैं तो वहाँ भी एक लय होती है और काव्यत्व बना रहता है। यह बड़ा सत्य है कि जिसे छंद में जोड़ना आता है, वही छंद को तोड़ भी सकता है अर्थात् जो छंदबद्ध कविता लिख सकता है, वही मुक्तछंद में भी लिख सकता है। नहीं तो कविता के नाम पर निबंध, लघुकथा और गद्यांश लिखा जाएगा। यही कारण है कि समकालीन कविता के प्रातिभ कवि लयाधारित कविता के साथ ही, गीत, ग़जल और दोहे भी लिख रहे हैं और ये कविताएँ पढ़ी और सराही भी जा रही हैं। विस्तार से बचने के लिए मैं यहाँ सोदाहरण चर्चा नहीं कर रहा हूँ। ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर छंद में नहीं लिखा गया है। यह कहना कि आज के जटिल जीवन की अभिव्यक्ति छंदों में नहीं हो सकती निरर्थक और अज्ञानता-भरी बात है। ऐसा कहने वाले कवियों ने अपने अलावा किसी और को पढ़ा ही नहीं है। मुझे कोई भी विषय बताइये मैं तमाम छांदस कविताओं से उसके उदाहरण दे दूँगा।

विगत दशकों में काव्य-शिल्प और काव्य-भाषा में भी कई तरह के प्रयोग और परिवर्तन हुए हैं। कविता पाण्डित्य-प्रदर्शन को छोड़कर सहज मार्ग पर चली है। संस्कृत और अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों की जगह तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग बढ़ा है। घर-परिवार और बोलचाल की सम्वादी भाषा का प्रचलन बढ़ा है। पोथी ज्ञान और किताबी शब्दावली के बजाय लोक और समाज ज्ञान और व्यावहारिक शब्दावली ने अपनी जगह बनायी है। कह सकते हैं कि कविता में लोक की दखल ब़ढी है। खेती-किसानी के लुप्त हो रहे शब्दों और संज्ञाओं के प्रयोग की ललक के साथ ही संस्कारों, रीति-रिवा़जों और उनके क्रिया-कलापों का उन्हीं प्रचलित शब्दों और प्रतीकों के साथ वर्णन की प्रवृत्ति बढ़ी है। ध्यान देने की बात यह भी है कि इधर कंप्यूटर, लैपटाप, मोबाइल, ईमेल, ऑनलाइन टीचिंग, ऑनलाइन रिजर्वेशन आदि के प्रचलन के साथ ही इनसे सम्बन्धित अन्य क्रियाकलापों तथा उपकरणों के नामों के प्रयोग भी कविता में धड़ल्ले से हो रहे हैं। कविता के मुहावरे और प्रतीक बदल रहे हैं और नये ढंग के बिम्बों का निर्माण हो रहा है। कई तरह की एकरसता और नीरसता ने कविता में लोकोन्मुखता की प्रवृत्ति बढ़ाई है। नितान्त गद्यात्मकता ने लय के प्रति ललक बढ़ाई है इसलिए छंदों, नवगीतों, ग़जलों, दोहों, मुक्तकों आदि की रचना ज़्यादा होने लगी है और पाठक भी उनका स्वागत कर रहे हैं। कविता का यह सन्तुलित होता रूप और पाठकों से उसका जुड़ाव सुखद है।

संदर्भ :

1. दुष्यन्त कुमार, सारिका, मई १९७६, पृ० २६
2. मैनेजर पाण्डेय का साक्षात्कार, आजकल, सितम्बर २०१९, पृ० ११-१२
3. अशोक वाजपेयी का साक्षात्कार, आजकल, सितम्बर २०२०

❖

हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
204/11, राजेन्द्र अपार्टमेंट, रोहित नगर (नरिया) वाराणसी-221005
मो 9415895812

संस्कृति-संवाद

सांस्कृतिक समन्वय का श्रेष्ठ माध्यम होती हैं यात्राएँ

– डॉ. एस.डी. वैष्णव

यात्राएं जीवन में उत्साह का संचार करती हैं। वे हमारे जीवन की एक रसता को सरसता में बदलती हैं । जब यात्रा विदेश की हो तो हृदय में और भी स्फूर्ति और उत्साह का संचार होता है। ये यात्राएं केवल बाह्य जगत की ही नहीं होती, बल्कि इन यात्राओं के साथ-साथ हमारा हृदय पक्ष भी यात्रा करता है। यात्राओं से हम दूसरे देश की प्रकृति, सभ्यता और संस्कृति से जुड़ते हैं, जिससे परस्पर एक मैत्री भाव का विकास होता है। यात्राएँ अपनी खुद की तलाश और स्वयं से साक्षात्कार करवाती हैं। घूमने से आदमी एक बेहतर मनुष्य बनता है। कुछ ऐसा ही महसूस किया मैंने अपनी नेपाल और चीन यात्रा के बाद ।

दोस्तों! जिंदगी क्या है..? इन घटाओं में नहाकर देखो। घर से बाहर निकला तो मुझे एहसास हुआ कि जिंदगी में बहुत कुछ चीजें अभी देखनी बाकी बची हैं।.. एक चीनी कहावत याद आती है - दस हजार किताबें पढ़ने से बेहतर है, दस हजार मील की यात्रा करना..।

मुझे पश्चिमी चीन में स्थित एक स्वायत्तशासी राज्य-शिंजियांग की राजधानी उरुम्क़ी जाना था। इस बीच तिब्बत में स्थित ल्हासा और नेपाल की राजधानी काठमांडू शहर की छवि दिमाग में बैठी हुई थी। सोचा, जब यात्रा की जा रही है, तो क्यों न नेपाल और तिब्बत होते हुए जाया जाए..!

ल्हासा का नाम जहन में आया तो, विश्व पथिक राहुल जी की ल्हासा की यात्रा ताजा हो उठी । राहुल जी को खूब पढ़ा था। तभी से ल्हासा मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। पर राहुल सांकृत्यायन होना सबके बस की बात नहीं है। राहुल सांकृत्यायन में हिमालय-सा विस्तार है, वैसी ही ऊँचाई और विविधता है। आधुनिक भारत का नवजागरण उन्हीं में फूला-फला है।

"काठमांडू में दो मुख्य स्थान प्रसिद्ध है-भगवान पशुपतिनाथ का मंदिर और पोखरा। मंदिर तो शहर के मध्य भाग में स्थित है जिसे देखते ही भारतीयों के हृदय में तत्क्षण उज्जैन के महाकाल मंदिर का दृश्य बिम्ब उभरता है। पोखरा शहर से दूर पड़ता है। दुर्गम पहाड़ों से होते हुए वहां पहुंचा जाता हैं। रात को बस से चलते हैं तो सुबह पहुंचते हैं। काठमांडू में बौद्ध मंदिर भी बने हुए हैं। शहर से बीस किलोमीटर बाहर की ओर सांगा नाम का एक गांव है, जहां भगवान शिव की विशालकाय प्रतिमा लगी हुई है। कहा जाता है कि यह विश्व में दूसरे नंबर की सबसे ऊंची शिव प्रतिमा हैं। यह बहुत ही सुंदर स्थान है। यहां पर लिखा हुआ है कि धनराज भंसाली एवं केशर देवी जैन तथा उनके पुत्रों ने 2004 से 2010 के मध्य में इसका निर्माण करवाया था। एक दिन हमने यहीं बिताया। यह मंदिर बड़ी ही सुरम्य वादियों के बीच स्थित है।"

लेकिन मेरी यह यात्रा घुमक्कड़ी स्वभाव से भी नहीं की गई, क्योंकि इस यात्रा की जगहें और प्रयोजन तय था। अत: इसमें घूमने का भाव कम था। लेकिन यात्रा तो यात्रा होती है।

भगवान पशुपति नाथ का घर काठमांडू

16 मई 2018 को रात आठ बजे काठमांडू जाने वाली फ्लाइट दो घंटे लेट चल रही थी। मैं देर रात काठमांडू के त्रिभुवन इंटरनेशनल हवाई अड्डे पर पहुंचा। बाहर निकलते-निकलते बारह बज आए थे। झमाझम बारिश की झड़ी लगी हुई थी। होटल से आया टैक्सी ड्राइवर बाहर इंतजार कर रहा था। रात एक बजे होटल पहुंचे। थकान के मारे मैंने तो जाते ही पैर पसार लिए। रात से शुरू हुई तेज बारिश सुबह तक जारी थी। भारत में मई का महीना बहुत गर्म रहता है। और यहां काठमांडू में बारिश और ठंड सब एक साथ। गर्मी से तो निजात मिली यहां आकर।

काठमांडू बहुत बड़ा शहर है और नेपाल की राजधानी भी। बेहद खूबसूरत शहर होते हुए भी यहां सड़कों पर धूल-मिट्टी बहुत उड़ती रहती हैं। आपको हर पल मुंह पर मास्क लगाकर बाहर निकलना पड़ता है। नेपाल का मुख्य शहर और राजधानी होते हुए भी यहां सड़कों के हाल बहुत खराब हैं। पहाड़ों के बीच में बसा हुआ शहर है। पहाड़ों पर छाई हरियाली तो देखते ही बनती है। नेपाल में भारतीय मुद्रा की बहुत वैल्यू है, परंतु अधिकांश सामान बाहर से आयात किया जाता है। अतः टैक्स बहुत ज्यादा होने के कारण यहां से कुछ खरीदना हमारे लिए महंगा पड़ता है।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण लोग पहाड़ों पर सीढ़ीनुमा छोटे-छोटे खेत बनाकर खेती करते हैं। पहाड़ों पर बहुत ऊंचाई पर लोगों ने अपने घर बना रखे हैं। उन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि यह लोग इन दुर्गम पहाड़ों से कब और कैसे नीचे आते होंगे! कैसे राशन का सामान ऊपर ले कर जाते होंगे! भूकंप की संभावना भी यहां बनी रहती है। मई 2015 में यहां आए भूकंप के निशान पूरे काठमांडू में जगह-जगह अब तक मौजूद हैं। मैं तो इन पहाड़ी लोगों को देखकर स्तब्ध रह गया था। इनकी जीवटता की मिसाल देना चाहूं तो शब्द कम पड़ते हैं।

काठमांडू में अब तक गगनचुंबी इमारतें और मॉल संस्कृति देखने को नहीं मिलती है। एक-आध छोटे-मोटे मॉल अवश्य दिख जाते हैं। बिजी मॉल नेपाल में बहुत चर्चित है। यह एअरपोर्ट से गोरखपुर जाने वाली मुख्य सड़क पर पड़ता है। इसी मॉल में कई भारतीय फिल्मों का संचालन होता है। लोग यहां भारतीय फिल्मों के दीवाने हैं। तब लगे हाथ मैंने भी रेस-3 देख ली।

नेपाल में सभी लोग थोड़ी बहुत हिंदी बोलते हैं। इसलिए हमारे लिए भाषा की कोई समस्या नहीं थी, वरना तिब्बत और चीन में तो भाषा को लेकर मुझे सिर पकड़ना पड़ा। भाषा के साथ लिपि भी समझ में नहीं आती है। अंग्रेजी से तो चीन में कोई वास्ता ही नहीं।

नेपाल, तिब्बत और चीन में शाकाहारी लोगों के लिए भोजन की बड़ी समस्या है। कई बार तो चावल, फल और ड्राई फ्रूट्स खाकर काम चलाना पड़ता है। भोजन को लेकर गंभीर समस्या से मुझे कई बार जूझना पड़ा। समोसा, कचोरी, पोहा, जलेबी यहां कहीं नज़र ही नहीं आते। जहां देखो वहां नॉनवेज ही नॉनवेज ।

मैं सात दिन यहीं ठहरा। नेपाल के लोग हिंदी बोलते हैं, लेकिन लिखने में भाषा का बड़ा अनर्थ कर देते हैं। अब आप देखिए कि गेस्ट हाउस को गेष्ट हाऊस लिखते हैं। कई जगह इसी तरह शब्दों को अपमानित होते देखा तो मेरा भी दिल दुखा। वहां पर एक 'कांतिपुर' नाम से नेपाली भाषा का अखबार निकलता है, मैं उसके संपादक महोदय से मिलने गया और इन भाषा संबंधी त्रुटियों से अवगत करवाया।

काठमांडू में दो मुख्य स्थान प्रसिद्ध है-भगवान पशुपतिनाथ का मंदिर और पोखरा। मंदिर तो शहर के मध्य भाग में स्थित है जिसे देखते ही भारतीयों के हृदय में तत्क्षण उज्जैन के महाकाल मंदिर का दृश्य बिम्ब उभरता है। पोखरा शहर से दूर पड़ता है। दुर्गम पहाड़ों से होते हुए वहां पहुंचा जाता हैं रात को बस से चलते हैं तो सुबह पहुंचते हैं। काठमांडू में बौद्ध मंदिर भी बने हुए हैं। शहर से बीस किलोमीटर बाहर की ओर सांगा नाम का एक गांव है, जहां भगवान शिव की विशालकाय प्रतिमा लगी हुई है। कहा जाता है कि यह विश्व में दूसरे नंबर की सबसे ऊंची शिव प्रतिमा यह बहुत ही सुंदर स्थान है यहां पर लिखा हुआ है कि धनराज भंसाली एवं केशर देवी जैन तथा उनके पुत्रों ने 2004 से 2010 के मध्य में इसका निर्माण करवाया था। एक दिन हमने यहीं बिताया। यह मंदिर बड़ी ही सुरम्य वादियों के बीच स्थित है।

18 मई को शाम चार बजे तक तेज बारिश पड़ी, फिर थोड़ा मौसम खुला तो पशुपतिनाथ के दर्शन करने निकल गए। बागमती नदी

के किनारे स्थित है यह मंदिर। नदी के दोनों छोर पर घाट बने हुए हैं। नदी के एक ओर शाम को भस्म आरती और भजन संध्या होती है तो दूसरी ओर कई श्मशान बने हुए हैं, जहां लाशें जलती रहती हैं। करुण, वीभत्स और भक्ति रस एक साथ यहां देखने को मिलते हैं। यहां जो भी दर्शन को आता है, शाम को उन सब की भीड़ लग जाती हैं। देर रात तक जमघट लगा रहता है। ऐसा भावविभोर करने वाला दृश्य मैंने जिंदगी में पहली बार देखा।

अगले दिन शाम को सात बजे की बस से हम पोखरा के लिए निकल गए। बड़े ही खतरनाक, पहाड़ी और तंग रास्तों से होते हुए पोखरा पहुंचा जाता है। कई जगह सड़क पर पहाड़ों से पत्थर गिरते रहते हैं और मिट्टी के बहाव से बसें इस कीचड़ में फंस जाती हैं। मात्र दो सौ किलोमीटर की दूरी तय करने में सुबह के सात बज जाते हैं। पोखरा देखते समय राजस्थान के उदयपुर शहर में स्थित फतेह सागर और पिछोला झील अनायास ही हृदय में हिलोरे लेने लगती हैं।

23 मई की सुबह नौ बजे हम तिब्बत-चीन सीमा की ओर निकल गए। तिब्बत बॉर्डर काठमांडू से 150 किलोमीटर दूर पड़ता है। यहां पहुंचने के लिए कई दुर्गम पहाड़ों, नदियों, नालों और ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार करना पड़ता है। यह बहुत जोखिमपूर्ण यात्रा थी लेकिन यात्रा का असली रोमांच भी यहीं मिला। रास्ते में नुवाकोट चेक पोस्ट पर एक रेस्टोरेंट पर लंच किया। फिर आगे के सफ़र पर निकल गए। शाम सात बजे हम बॉर्डर पहुंचे। इस जगह को रुसुवागढ़ी बॉर्डर के नाम से जाना जाता है। रात्रि विश्राम यहीं पर एक होटल में किया। इस जगह पर बहुत ज्यादा ठंड पड़ती है। पहाड़ों पर बर्फ जमी रहती है और धुंध छाई रहती है।

त्रिशूली नदी यहीं से होकर नेपाल में प्रवेश करती है। इसी नदी के किनारे एक ओर नेपाल तो दूसरी ओर चीन वालों ने अपने बॉर्डर बना रखे हैं। चीन सरकार ने इस बॉर्डर पर उनकी सीमा में बहुत बड़ी बिल्डिंग बनाई हैं। बहुत ही अत्याधुनिक उपकरणों से सुसज्जित है यह बिल्डिंग। चीनी अधिकारियों की परमिशन के बिना कोई परिंदा भी यहां पर नहीं मार सकता। यहीं पर चीन के सहयोग से नेपाल सीमा में त्रिशूली किनारे बहुत बड़ा विद्युत प्लांट लगाया जा रहा है।

अगले दिन सुबह दस बजे बॉर्डर पहुंचे। चीनी सैनिकों ने आधे घंटे तक हमारी तलाशी ली। हमारे डॉक्यूमेंट चेक किए, फिर अंदर जाने दिया। चीन की सीमा में एक चीनी नागरिक लाप्सन जो हमारा टूरिस्ट गाइड था, अपनी कार लेकर हमारा इंतजार कर रहा था। भारत में जो ड्राइविंग के नियम होते हैं, यहां के रूल्स उसके बिल्कुल विपरीत होते हैं। यहां पर स्टेरिंग बांई ओर होती है। पहाड़ी क्षेत्र होते हुए भी चीन सरकार ने क्या गज़ब का रोड नेटवर्क बिछाया है। रोड पर जगह-जगह कैमरे लगे हुए हैं और जहां-जहां पर यू-टर्न आता है, वहां पर इस तरीके से कांच लगाए हुए हैं कि किसी भी ओर से आने वाली गाड़ी के ड्राइवर को दूर से ही पता चल जाता है कि मोड़ के दूसरी ओर से कोई वाहन आ रहा है। दुर्घटना होने की तो कोई संभावना ही नहीं बनती।

बॉर्डर से एक घंटे का सफर तय करते हुए, हम जीलांग सिटी पहुंचे। यहां पर हमारे लिए होटल 'थाई ही' बुक था। ल्हासा यहां से आठ सौ किलोमीटर दूर है। नॉन स्टॉप चलें तो कम से कम पन्द्रह घंटे का समय लगता है ल्हासा पहुंचने में। जीलांग सिटी बहुत ही खूबसूरत शहर है। यह चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ है। यहां के पहाड़ क्रिसमस ट्री और बर्फ से ढके रहते हैं। यहां पर ठंड बहुत ज्यादा पड़ती हैं, इसलिए हर पल शरीर को ऊनी कपड़ों से ढक कर रखना पड़ता है। यहां पर गाय और याक पाए जाते हैं। उनके शरीर पर घने और लंबे बाल होते हैं जो ठंड से उनका बचाव करते हैं। ये जानवर पहाड़ों की उपत्यका में घास चरते रहते हैं। यह शहर नदी के किनारे बसा हुआ है। बिल्कुल बर्फ की भांति सफेद-झक पानी इस नदी में बहता है।

यहां पर पाई जाने वाली सब्जियां गोभी, आलू, टमाटर, मूली, करेला, प्याज आकार में भारतीय सब्जियों से तीन गुना बड़ी होती हैं। यहां पर समुद्री जीव बहुत अधिक खाए जाते हैं। जिनमें केकड़े, घोंघा, मछली, सांप आदि मुख्य हैं। इसके साथ ही यहां पर दीमक और चीटियों को मसल कर हरे धनिए की तरह चावल पर डाल दिया जाता है तथा जिंदा केकड़े को गरमा-गरम बनी हुई कढ़ी में डाल देते हैं, इससे उनके खाने का स्वाद बढ़ता है। अब ऐसे माहौल में शाकाहारी व्यक्ति क्या करें..! ऊपर से भाषा का अतिरिक्त बोझ तो झेलना ही है। यहाँ पर सुअर की चर्बी से च्विंगम बनाने की फैक्टरी भी है। मांस का बड़े स्तर पर यहाँ व्यापार होता है।

मैं दस दिन यहां ठहरा। यहां पर हर समय गर्म पानी पिया जाता है और सुबह चाय की जगह गर्म पानी में एक तरह के हरे रंग के सूखे पत्ते

डाल कर पिया जाता है। यह स्वाद में कड़वा होता है। मेरे लिए सुखद बात यह थी कि होटल की मालकिन यांग ली इतनी मिलन सार थी कि मुझे पल भर के लिए नहीं लगा कि मैं भारत से बाहर हूँ। हर पल उसने मेरी आवश्यकताओं का ध्यान रखा और जब मैं ल्हासा के लिए रवाना होने लगा तब भागी-भागी गई और मेरे लिए ड्रेस लेकर आई। लड़ाइयां सरहदों पर हैं, दिलों में नहीं।

यहाँ पर एक जगह से दूसरी जगह पर जाने के लिए परमिट बनवाना पड़ता है। यह काम गाइड कर लेता है। चार जून को हम ल्हासा के लिए निकल गये। रास्ते में कई किलोमीटर तक हरियाली से आच्छादित पहाड़ नज़र आते हैं, तो कई किलोमीटर तक मरुस्थलीय पहाड़ और सूखा समतल मैदानी भाग नज़र आता है। इसे तिडंरी का मैदान कहा जाता है। इस भाग से यात्रियों को बड़ी सावधानी से गुजरना पड़ता है, अन्यथा उतराई में राह से भटक जाने का खतरा भी रहता है।

इस रूट पर जो सबसे पहला शहर आता है, उसका नाम किरोंग है और उसके बाद सागा शहर आता है। सागा शहर ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसा हुआ है। ब्रह्मपुत्र आगे चलकर भारत में प्रवेश करती है। एक घंटा हमने ब्रह्मपुत्र के किनारे बिताया और स्नान भी किया। सागा बिल्कुल सूखे भू- भाग में स्थित है। यह शहर कई ऊंचे-ऊंचे और सूखे पहाड़ों के बीच और समुद्र तल से बहुत ज्यादा ऊंचाई पर बसा होने के कारण यहां पर ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती है। यहां होटल वेस्टर्न पोस्ट में हम सिर्फ एक रात रूके और अगले दिन सुबह ल्हासा के लिए निकल गए। मुझे तो रात को ऑक्सीजन चढ़ाने की नौबत आ गई थी।

विकास की राह पकड़ता ल्हासा

पाँच जून शाम 6 बजे तक हम पहुंच गये। ल्हासा चीन के स्वायत्त प्रांत तिब्बत की राजधानी एवं मुख्य शहर हैं। चीनी भाषा में ल्हासा का मतलब-देवताओं का स्थान माना गया है। हम यहां तीन दिन होटल ग्रांड अलमाड़ा में ठहरे। चीन की मुद्रा को युआन रॅन्मिन्बी कहा जाता है। एक युआन भारत के दस रुपये के करीब होता है। यहां थ्री स्टार होटल का औसत मूल्य लगभग पाँच हजार रुपये के करीब आता है। यहाँ पर चाय में मक्खन एवं सोड़ा कूटकर डालने की परम्परा है। रात में यहां का नज़ारा देखते ही बनता है। यहां के फुटपाथ, रोड लाइटिंग, सफाई व्यवस्था की जितनी तारीफ की जाए, वह कम है। भारत में फुटपाथ पर जिस तरह अतिक्रमण किया जाता है, दुकानें सजाई जाती हैं; वैसा नज़ारा यहाँ देखने को नहीं मिलता। हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करने वाला पठारीय शहर है ल्हासा। हमारे यहाँ के फुटपाथ के बारे में सोचकर ही कमलेश्वर का उपन्यास 'फुटपाथ के फरिश्ते' जहन में आता है।

बोध विहार और मठों का शहर

यहां पर बड़ी संख्या में मठ, बौद्ध विहार एवं मंदिर बने हुए हैं। तिब्बती लोग इन दर्शनीय स्थानों को रंग-बिरंगी झंडियों से सजाते हैं। यहां पर बड़ी संख्या में बौद्ध विहारों के लिए चोडी तैयार किए जाते हैं। इन बौद्ध मठों को देखकर फाह्यान, ह्वेनसांग, और इत्सिंग की याद हो आती है। इन सब ने धार्मिक उद्देश्य से यात्राएँ किं थीं। इन यात्राओं से बौद्ध धर्म की व्यापकता का विस्तार हुआ। भारत में भी कपिलवस्तु, बोधगया, सारनाथ, नालंदा आदि बोद्ध धर्म के केन्द्र रहे हैं।

नॉरबुलिंगका, पोताला महल, सेरा मठ यहां के प्रमुख दर्शनीय स्थान हैं। सेरा मठ-महान तीन गेगल विश्वविद्यालय मठों में से एक हैं। यहां पर दो-गांधी मठ व डेपंग मठ भी बहुत प्रसिद्ध हैं। पोताला महल बहुत ही शानदार बुर्जनुमा भवन है। जिसका तिब्बती वास्तु शैली में निर्माण किया गया है। नॉरबुलिंगका दलाई लामा के ग्रीष्मकालीन निवास के रूप में जाना जाता रहा है। परंतु अब यहां पर दलाई लामा के विचारों की खुलकर चर्चा करना, खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि दलाई लामा को यहां से निर्वासित किया जा चुका है। अब तिब्बत पर पूर्णतया चीन का नियंत्रण है। 1959 में चीनी सेना द्वारा ल्हासा के तिब्बती राष्ट्रीय संघर्ष को बड़ी क्रूरता से कुचले जाने के कारण दलाई लामा को भारत में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। परंतु अब भी बहुत बड़ी संख्या में उनके अनुयाई यहां पर मौजूद हैं।

यहां का मानक समय भारतीय समय से 2 घंटे 15 मिनट आगे चलता है। ल्हासा से मुख्य चीन की सीमा तक पहुंचने में चार दिन का समय लगता है। यहां पर सामान्यतया 10:15 पर अंधेरा होता है, उस समय भारत में रात के आठ बजते हैं। यहां पर अब पूर्णतया चीनी सरकार की साम्यवादी व्यवस्था लागू हो चुकी है, अतः यहां जात- पाँत, ऊंच-नीच कहीं भी नज़र नहीं आता। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने तिब्बतियों को अपने आप का मालिक बना दिया है। ल्हासा पिछले छः दशकों में

सामंती भू-दास व्यवस्था से छलांग लगाकर विकास की राह पर आगे बढ़ा है। और समाजवादी समाज में प्रवेश कर गया है। 9 जून को सुबह हम दस बजे गोंगगर एअरपोर्ट से चाइना एयरलाइंस से वाया चेंगडु होते हुए उरुम्क़ी के लिए निकल गये।

शिंजियांग, जनवादी गणराज्य चीन का स्वायत्तशासी क्षेत्र है। यह रेगिस्तानी और शुष्क भाग है। भारत का अक्साई चीन का इलाका भी, जिस पर चीन का कब्ज़ा है; प्रशासनिक रूप से शिंजियांग में शामिल है। इसकी राजधानी उरुम्क़ी और सबसे बड़ा शहर काशगर है। इस पूरे भाग की सीमा रसिया, तिब्बत, भारत, मंगोलिया, किर्गिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान से मिलती हैं ।

9 जून को शाम पाँच बजे हम दीवोपु एअरपोर्ट पहुँच गये। यह उरुम्क़ी से सोलह किलोमीटर उत्तर- पश्चिम में स्थित है। यहाँ से मंगोलिया की सीमा मात्र 510 किलोमीटर पड़ती है।

यहां पर मुझे रुकने के लिए अलग से होटल नहीं लेना पड़ा। यहां पर मेरी मित्र वांगमु का घर है। बारह दिन मैं यहीं ठहरा। लेकिन यहां रुकने के लिए मुझे आवश्यक सारी कानूनी कार्रवाई पूरी करनी पड़ी। यहां सारा कार्य पुलिस और सुरक्षा बलों की बंदिशों के बीच करना पड़ता है, क्योंकि यहां पर 2009 में बहुत बड़े दंगे हुए थे; जिसमें 200 लोग मारे गए थे। उसके बाद से चीन के किसी भी प्रांत में खुलकर अपने धर्म का प्रचार- प्रसार करना अथवा कट्टरपन को बढ़ावा देने पर पूर्णतया प्रतिबंध लगा हुआ है। यहां की कम्युनिस्ट सरकार ने कई सारी सोशल साइट्स पर भी प्रतिबंध लगा रखा है। यहां पर वीचैट का बहुत ज्यादा चलन है। जिस पर आसानी से एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। कम्युनिकेशन के लिहाज से यह बहुत ही उपयोगी माध्यम है, अन्यथा चीनी भाषा को सुनकर ही हाल बेहाल हो जाते हैं।

यहां के दर्शनीय स्थलों में दक्षिणी जीईफांग रोड पर ग्रांड बाज़ार, हाँग शान पार्क, लाल पहाड़, कोह तयानि का मैदान, पब्लिक स्क्वायर आदि प्रमुख हैं। यहाँ पर पानी की दो झीलें बहुत प्रसिद्ध हैं-हैवनली लेक (स्वर्गीय झील) और चाईवोपु झील। चाईवोपु झील चाइना नेशनल हाइवे 312 पर, इस क्षेत्र में शुद्ध जल की सबसे बड़ी झील है। यह दक्षिण-पूर्व भाग में उरुम्क़ी से 35 किलोमीटर दूर स्थित है। स्वर्गीय झील, हैवनली पहाड़ के समानांतर बहती है, इसी कारण इसे हैवनली लेक कहा जाता है। यह उरुम्क़ी से 110 किलोमीटर पूर्व में स्थित है। यह झील 4.9 स्क्वायर क्षेत्र में फैली हुई है। गर्मियों में यह झील पर्यटकों के मुख्य आकर्षण का केंद्र होती है।

उरुम्क़ी शहर का प्रतीक है रेड माउंटेन

उरुम्क़ी विशेष रूप से खनिज तेल के उत्पादन के लिए जाना जाता है। यह समुद्र तल से 900 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। कई मुस्लिम देशों की सीमाओं से लगा होने के कारण यहां पर उइगर मुस्लिमों का बाहुल्य है। इस शहर में स्थित कई सारी बड़ी-बड़ी मस्जिदें अपने आप में इस्लाम के वाज़िह असरात की गवाही देती हैं। शबीना बाज़ार तो मुस्लिम सभ्यता, संस्कृति और इतिहास से भरा पड़ा है। यहां का रेड माउंटेन (लाल पहाड़) उरुम्क़ी के प्रतीक के रूप में जाना जाता है । यहां पर कई गगनचुंबी कंक्रीट की इमारतें मुंह फैलाए खड़ी हैं। यहां के निवासियों में फेंग शुई शब्द का व्यापक उपयोग किया जाता है। जिसका अभिप्राय निवास स्थानों, मकबरों, इमारतों तथा अन्य सरंचनाओं को बनाने के लिए किया जाता है। यह एक प्रकार की कला भी मानी जाती है।

भारत-चीन के बीच बढ़ते तनाव की कई खबरें हम अखबारों में पढ़ते हैं, परंतु यहां आने के बाद लेशमात्र भी एहसास नहीं हुआ कि दोनों देशों के बीच कई मुद्दों पर खींचतान चलती रहती है।

मैं 23 जून को यात्रा की सुखद स्मृतियों के साथ भारत लौट आया। इतना बता दूँ कि आप जब भी चीन की यात्रा पर जाएं, तो अपने मोबाइल में वीचैट यहीं से अवश्य डाउनलोड करके लेकर जाएँ। कम्युनिकेशन के लिहाज से यह आपके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इस यात्रा से मुझे यह एहसास हुआ कि अक्सर सीमा विवाद को लेकर तनाव की जिस तरह की खबरें अखबारों में पढ़ने को मिलती हैं, वैसा तनाव यात्रा में नहीं दिखता। सरहदें युद्ध का कारण बनती हैं और यात्राएँ परिंदों की तरह शांति का संदेश लिखती हैं। यात्राएँ संस्कृतियों के समन्वय का महत्त्वपूर्ण माध्यम सिद्ध होती हैं।

❖

फ्रीक्वेंट ट्रैवलर, स्टोरीटेलर
243 दुर्गा भवन, यूनिवर्सिटी रोड गणेश नगर, पहाड़ा, उदयपुर
मो. 9799828291 ईमेल - sohanvaishnav@gmail.com

भाषा-चिंतन

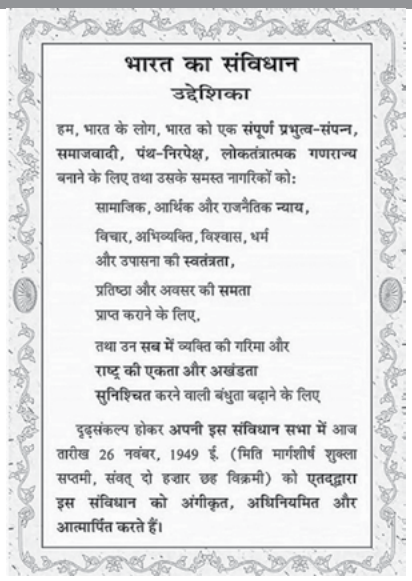
भारत का संविधान
उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

संविधान में हिंदी

– इन्दुशेखर 'तत्पुरुष'

राष्ट्रभाषा या राजभाषा-जिस भी रूप में हम मानें-हिन्दी के प्रति राज्य के (और हमारे) कर्तव्य को निर्धारित करने वाले संविधान के भाग-17 के अनुच्छेद 351 से हिंदी के विचारक और प्रचारक परिचित ही होंगे। किन्तु इस अनुच्छेद में निहित आशयों और अभिप्रायों की चर्चा गहराई के साथ की जानी आवश्यक है। यह इसलिए जरूरी है कि हिन्दी को समृद्ध करने के संकल्प के साथ ही उसकी सीमाओं एवं सामर्थ्य तथा उसके समक्ष आने वाली चुनौतियों के संकेत भी हमें इसी अनुच्छेद में मिलते हैं। ये वे महत्त्वपूर्ण संकेत हैं जिनको पकड़े बिना हिंदी की विकास यात्रा का कोई भी प्रारूप अधूरा ही रहेगा। अस्तु, उक्त अनुच्छेद-पाठ का विखण्डन-विश्लेषण करते हुए हम उनमें अन्तर्निहित अर्थों का अवलोकन करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अंतर्गत हिन्दी भाषा के प्रति भारतीय संघ का कर्तव्य इस प्रकार निर्धारित किया गया है-

"हिन्दी भाषा की प्रचार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि, वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और आठवीं सूची में उल्लेखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ तक आवश्यक एवं वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

इस पूरे अनुच्छेद को हम तीन प्रश्नों के उत्तर के रूप में बाँट कर देखते हैं-(अ) संघ का कर्तव्य क्या है?? (आ) ऐसा क्यों निर्धारित किया गया? (इ) इसे कैसे किया जाना है। इस प्रकार इस अनुच्छेद को हम क्या,

"हिंदी को समृद्ध करने के लिए निर्दिष्ट इस अनुच्छेद का अगला चरण भी इस जटिलता को कम नहीं करता, उलटे कुछ और बढ़ा ही देता है। इसके अनुसार "जहाँ तक आवश्यक एवं वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से" शब्द ग्रहण करने की बात कही गयी है। (गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की बात को फिलहाल छोड़ते हुए मुख्य बात पर ही अपनी बात केन्द्रित करें तो-) क्या यह अजीब-सी स्थिति नहीं है कि हिन्दी अपने रूप, शैली, पदावली के लिए (मुख्यतः) उर्दू पर और शब्द भण्डार हेतु (मुख्यतः) संस्कृत पर निर्भर रहे। वह भी इस शर्त के साथ कि "उसकी (हिन्दी की) प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना"। किसी भाषा की प्रकृति उसकी रूप, शैली, पदावली और शब्द-सम्पदा से इतर भी रह सकती है क्या? भाषा की प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना उसके रूप, शैली, शब्द भण्डार आदि को अन्य भाषाओं से समृद्ध करना उसी तरह की उलझाऊ चुनौती है जैसे जल का स्पर्श किये बिना स्नान करने की पहेली।"

क्यों और कैसे में बाँट कर देखते हैं।

(1) क्या?-

इस अनुच्छेद में सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि भारत संघ का हिन्दी के प्रति क्या कर्तव्य है। यह इस प्रकार है-

1. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना

2. हिन्दी भाषा का विकास करना

3. और उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना।

यहाँ हिन्दी के प्रसार, विकास और समृद्धि का उल्लेख हुआ है। ये तीनों अलग-अलग कार्य हैं। इनके प्रयत्न और प्रतिफल भी अलग-अलग होते हैं। परस्पर अन्योन्यापेक्षी होते हुए भी ये अनिवार्यतः समानुपाती नहीं होते। भाषा के प्रसार में समाचार-पत्र, प्रसार माध्यम, फिल्म, गीत, भजन, कवि सम्मेलन, विविध प्रतियोगिता आदि की सर्वाधिक भूमिका रहती है। जबकि उसके विकास में शिक्षण एवं शोध संस्थानों तथा वैयाकरणों की विशेष भूमिका रहती है। इसी तरह भाषा की समृद्धि में लेखकों और साहित्यकारों की सर्वाधिक भूमिका रहती है। उल्लेखनीय है कि जिन कारकों से भाषा का प्रसार होता है आवश्यक नहीं कि वे भाषा समृद्ध या विकसित भी करें। अथवा जो भाषा के विकास में सहायक हैं वे भाषा का प्रसार भी करें। ये तीनों आयाम एक-दूसरे से सम्बन्ध होते हुए भी भिन्न हैं।

(2) क्यों?-

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी के प्रति संघ का उक्त कर्तव्य क्यों निर्धारित किया गया? यह किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं? हिन्दी को भारत की अन्य सभी भाषाओं से बढ़कर एक सम्मानप्रद और दायित्वपूर्ण स्थान किसलिए दिया गया? संविधान का अनुच्छेद 351 हिन्दी की महत्ता को प्रतिपादित करता हुआ यह स्पष्ट संकेत करता है कि यह केवल एक राजकाज की भाषा को विकसित करने का प्रयोजनभर नहीं है। यह राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मकता और उससे जुड़ी हुई अभिव्यक्ति का प्रश्न है। इस अनुच्छेद में जब कहा गया कि "हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना....." तो इसी के साथ इसके मूल हेतु का भी उल्लेख किया गया "ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।" अभिप्राय यह है कि हिन्दी के प्रसार और विकास का उद्देश्य एक सम्पर्क भाषा का उन्नयन करना मात्र नहीं है अपितु यह भारत की महान संस्कृति- जो कि सामासिक संस्कृति के रूप में पहचानी गई है-को समग्रता के साथ अभिव्यक्त करने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित है।

अर्थात् भारत की संस्कृति अपनी सम्पूर्णता से जिस भाषा में सर्वाधिक अभिव्यक्त हो सकती है वह केवल और केवल हिंदी है। आधुनिक भारत का समवेत स्वर जिस विश्वसनीयता और प्रमाणिकता के साथ हिंदी में मुखरित हो सकता है वह न अंग्रेजी में हो सकता है, न संस्कृत में, न उर्दू में, न ही अन्य किसी भी भारतीय भाषा में। इस ध्रुव सत्य को हमारे संविधान निर्माताओं ने तत्वतः समझ लिया था। इसलिये यों तो प्रत्येक भाषा का विकास एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, किन्तु भारत के संदर्भ में हिंदी का विकास एक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो कि लोकतांत्रिक मूल्यों की संवाहक भी है। "सामासिक संस्कृति के सब तत्वों" की बात कहकर यहाँ हिन्दी के सर्वस्पर्शी एवं सर्वसमावेशी चरित्र की ओर संकेत किया गया है। संविधान सभा के इन विद्वानों को इस बात पर गहरा विश्वास था कि हिन्दी अपनी उत्पत्ति से लेकर आज तक भारत की समन्वयी प्रकृति और समावेशी प्रवृत्ति के अनुरूप भारतीय संस्कृति के बहुविध आयामों, रूपों और स्तरों को स्वर देती आई हैं।

साम्प्रदायिक तुष्टिकरण की दृष्टि से हर मुद्दे को तोलने और उछालने वाले कुछ व्याख्याकार "सामासिक संस्कृति के सब तत्वों" का अर्थ हिन्दू-मुस्लिम नजरिये से गंगा-जमुनी संस्कृति के रूप में देखते हुए हिन्दी के स्वभाविक व्यापन को संकुचित कर देते हैं। इनमें प्रायः वे लोग है जो हिन्दी को उर्दूमुखी बनाना चाहते हैं। यह हिन्दी की शक्ल में उस 'हिन्दुस्तानी' को पुनजीर्वित करने का पुनरुत्थानवादी प्रयास है जिसे संविधान सभा में ही अस्वीकृत कर दिया गया था। अलबत्ता तुष्टिकरण के राजनैतिक अभिप्रायों से प्रेरित कुछ व्याख्याकार 'सामासिक संस्कृति' को 'मिश्र संस्कृति' कहकर भ्रामक निष्कर्ष निकालते हैं। यद्यपि इन दोनों शब्दों का अर्थ मिलता-जुलता प्रतीत होता है, किन्तु दोनों शब्द अलग-अलग अर्थों के अभिव्यंजक हैं।

सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों को अभिव्यक्त करने वाली हिन्दी हर आम-खास, अनपढ़-विद्वान, ग्राम्य-नागर, उत्तरवासी-दक्षिणवासी, तटवासी- वनवासी, हिन्दू-मुसलमान, पुराचीन-अर्वाचीन आदि सभी समूहों और उपसंस्कृतियों का समावेश करती है। हिन्दी

के इस महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य को केवल हिन्दू-मुस्लिम के अर्थ में निःशेष करना व्यापक क्षमता वाली हिन्दी के पंख नोंच लेने के समान है।

सर्वसाधारण भारतीय जनता ने हिन्दी के इसी रूप को स्वीकार किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि महात्मा गाँधी को पूरे देश के सम्मान के साथ राष्ट्रपिता का गौरव दिया, किन्तु उनके द्वारा सुझाई गई 'हिन्दुस्तानी' जनता के गले नहीं उतरी। जनता ने हिन्दी के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' नाम स्वीकार नहीं किया। इसी तरह भारत की गौरवशाली परम्परा को प्रतिबिम्बित करने वाली संस्कृत भाषा के प्रति अटूट श्रद्धा होने पर भी डॉ. रघुवीरकृत संस्कृतमुखी हिन्दी को भी भारतीय जन-मन ने स्वीकार नहीं किया।

(3) कैसे?-

भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति हिन्दी के माध्यम से ही हो सकती है, यह स्वीकार कर लेने के उपरांत इस अनुच्छेद का शेष अंश इस बात का पता देता है कि हिन्दी को समृद्ध बनाने का उपक्रम हमें किसी विधि से, किस प्रक्रिया से करना है? देश की अनेक भाषाओं, बोलियों की जीवन्त परम्परा से हिन्दी किस तरह संबंध रखेगी? इn

प्रश्नों के उत्तर बिन्दु इस प्रकार निर्दिष्ट हैं-

1.उसकी (हिन्दी की) प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और आठवीं सूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए।

2.जहाँ तक आवश्यक एवं वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए।

यहाँ हिन्दी को समृद्ध करने का प्रथम निर्देश तो यह है कि वह हिन्दुस्तानी और आठवीं अनुसूची की भाषाओं (जो कि आरम्भ में 14 थीं और अब 22 हैं) का सहयोग लें। किन्तु यहाँ सबसे पहला ध्यान इस बात पर जाता है कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। यह दोनों कितनी समान हैं और कितनी असमान? यह दो स्वतंत्र भाषाएँ हैं या एक ही भाषा की दो प्रवृत्तियाँ हैं?-फिलहाल इस विवाद में न जाते हुए, हमें यहाँ यह स्वीकार करना है कि संविधान का यह अनुच्छेद हिन्दी और हिन्दुस्तानी को दो अलग-अलग भाषाएँ मानते हुए हिन्दुस्तानी के रूप, शैली एवं पदावली को हिन्दी में आत्मसात् करने का निर्देश देता है। यद्यपि इसी निर्देश में आठवीं अनुसूची की भाषाओं का उल्लेख भी साथ ही किया है, परंतु यहाँ हिन्दुस्तानी का उल्लेख प्रमुखता से हुआ है। यहीं से यह उलझन होती है कि जब आठवीं अनुसूची में उर्दू शामिल है तो हिन्दुस्तानी का अलग से और प्रमुखता के साथ उल्लेख करना क्यों जरूरी रहा होगा? इतना तो साफ है कि उर्दू बहुल हिन्दी ही हिन्दुस्तानी के रूप में मानी जाती है। आखिर ऐसी क्या विवशता रही होगी अथवा कोई हड़बड़ाहट या अनवधानता; कि हम एक ही सांस में दो बातें कह बैठे जो एक-दूसरे को काटती हैं, अथवा किसी एक को अनावश्यक ठहराती है। यह समझना मुश्किल हो जाता है कि आठवीं अनुसूची के माध्यम से जब अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उर्दू के द्वारा हिन्दी को समृद्ध करने की बात आ ही गई तो अलग से हिन्दुस्तानी के उल्लेख की क्या जरूरत थी?

निश्चय ही इस उलझन का उद्गम आजादी के आंदोलन के दौरान हिन्दी-हिन्दुस्तानी का विवाद है जिसकी अतार्किक और औचित्यहीन परिणिति इस अनुच्छेद में हुई है। और यही नहीं, अपितु "अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए" यह लिखने से पूर्व इस वाक्य में अतिरिक्त सतर्कता बरतते हुए "उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना" यह जोड़ा जाना इस उलझन को और जटिल बना देता है।

हिन्दी को समृद्ध करने के लिए निर्दिष्ट इस अनुच्छेद का अगला चरण भी इस जटिलता को कम नहीं करता, उलटे कुछ और बढ़ा ही देता है। इसके अनुसार "जहाँ तक आवश्यक एवं वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से" शब्द ग्रहण करने की बात कही गयी है। (गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की बात को फिलहाल छोड़ते हुए मुख्य बात पर ही अपनी बात केन्द्रित करें तो-) क्या यह अजीब-सी स्थिति नहीं है कि हिन्दी अपने रूप, शैली, पदावली के लिए (मुख्यतः) उर्दू पर और शब्द भण्डार हेतु (मुख्यतः) संस्कृत पर निर्भर रहे। वह भी इस शर्त के साथ कि "उसकी (हिन्दी की) प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना"। किसी भाषा की प्रकृति उसकी रूप, शैली, पदावली और शब्द-सम्पदा से इतर भी रह सकती है क्या? भाषा की प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना उसके रूप, शैली, शब्द भण्डार आदि को अन्य भाषाओं से समृद्ध करना उसी तरह की उलझाऊ चुनौती है जैसे जल का स्पर्श किये बिना स्नान करने की पहेली।

किसी भाषा को अनेक सहयोगी भाषाओं की रूप, शैली, शब्दावली आदि से पुष्ट करना कोई अजीब स्थिति नहीं है। यह तो भाषा को समृद्धतर और व्यापक ही बनाता है। किन्तु यहाँ स्थिति बिल्कुल अलग और विषम है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राजनैतिक और भाषाई वर्चस्व को लेकर हुए विवाद और संघर्ष की प्रेतछाया से हम अभी तक मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। अनुच्छेद 351 की इस शब्दावली ने उस विवाद को शांत करने के स्थान पर उसे जगाये रखने की चाबी उसमें भरकर रख दी।

कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन (1925) में यह प्रस्ताव पारित किया था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और वर्किंग कमेटी की कार्रवाई आमतौर पर हिन्दुस्तानी में चलेगी। अगस्त 1928 में पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें हिन्दुस्तानी को सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रस्तावित किया गया। यह अलग बात है कि अंग्रेजी में प्रस्तुत की गई इस रिपोर्ट का हिन्दुस्तानी अनुवाद बरसों तक उपलब्ध नहीं हुआ। जबकि दूसरी ओर जनमानस और हिन्दी के प्रतिनिधियों का बड़ा समूह हिन्दी को ही स्वीकार करने के पक्ष में था। इस अंतर्द्वंद और अनिर्णय की झलक हमें जवाहरलाल नेहरू के उस वक्तव्य में मिलती है जो उन्होंने सन् 1937 में प्रांतीय सरकारें बनने के बाद दिया था, "हर प्रांत की सरकारी भाषा राज्य के कामकाज के लिए उस प्रांत की भाषा होनी चाहिए। परंतु हर जगह अखिल भारतीय भाषा के नाते हिन्दुस्तानी को सरकारी तौर पर माना जाना चाहिए। अखिल भारतीय भाषा कोई हो सकती है तो वह सिर्फ हिंदी या हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।"

अखिल भारतीय भाषा के रूप में 'हिन्दुस्तानी' की वकालत और 'कुछ भी कह लीजिए' में व्यक्त ढुलमुलपन यहाँ साफ देखा जा सकता है। वस्तुतः कांग्रेस के कुछ बड़े नेता और मुस्लिम नेता जहाँ हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे, वहीं अधिकतर नेता और अहिन्दी भाषी प्रदेशों के प्रतिनिधि हिन्दी के पक्षधर थे। देश के महान कवि, लेखक, साहित्यकार और पत्रकारों का बड़ा समूह भी था, जो हिन्दुस्तानी नहीं हिन्दी के लिए संघर्ष कर रहा था। वह हिन्दी रच रहा था, हिन्दी गढ़ रहा था, हिन्दी को प्रतिष्ठापित कर रहा था और देशभर में एक विशाल हिन्दीभक्त पाठक वर्ग जिनके कारण खड़ा हो रहा था। साम्प्रदायिक दवाबों से मुक्त यह हिन्दी प्रेमी पाठक वर्ग हिन्दी का ही पक्षधर था।

आधुनिक हिन्दी के निर्माता आलोचकगण यदि हिन्दुस्तानी या उर्दूमुखी हिन्दी के पक्ष में नहीं थे तो वे इस ओर भी सजग थे कि यह संस्कृतमुखी हिन्दी न बन जाए। वस्तुतः भाषाएँ जीवन्त इकाई की तरह होती हैं। इनका विकास भी जीवधारियों की तरह होता है। हर भाषिक इकाई का चेहरा-मोहरा, चाल-ढ़ाल और बुनावट अपने उद्गम स्रोतों से मिलती-जुलती है। उसका डी.एन.ए. अपने मूल से अभिन्न होता है परन्तु उसकी देह स्वतन्त्र और मौलिक होती है। हर नयी भाषा का अपना निजी दिक्, काल और आत्म होता है, जो कि अपनी उद्भव पूर्व की भाषा/बोली से पृथक् एवं भिन्न होता है।

जो नवजात शिशु नौ महीने माँ के गर्भ में रहता है उसके बाहर आते ही उसका नाभिनाल काट दिया जाता है। यह उस नवजात के स्वतन्त्र दैहिक अस्तित्व का पहला सोपान है, किन्तु वह इतनी जल्दी अपनी जन्मदात्री से पृथक् नहीं हो पाता। अब वह माता के गर्भाशय के स्थान पर उसकी गोद में रहकर अपनी विकास यात्रा आगे बढ़ाता है। माता के शोणित से पुष्ट हुआ यह जीव अब उसके स्तन्य पर निर्भर रहता है। कुछ ही वर्षों में यह भी छूट जाता है और वह अब माता की दृष्टि और शब्दों के घेरे में पलता-बढ़ता है। कालान्तर में वह इससे भी पृथक हो अपने पैरों पर खड़ा (जो कि उसे उसकी माँ ने ही सिखाया होता है) होकर अपनी स्वाधीन और अनाश्रित यात्रा प्रारम्भ कर देता है। सर्वत्र यही विकास क्रम पाया जाता है वयस्क होने पर भी अपनी माँ के पल्लू से चिपके रहने वाले बच्चे या तो हीनभावना से ग्रस्त होते हैं या अविकसित रहे होते हैं। हिन्दी को संस्कृतमुखी या उर्दूमुखी या अन्य किसी चक्कर में कृत्रिम बनाने की धुन रखने वाले हिन्दी प्रेमियों को यह विचार अवश्य करना चाहिए।

किन्तु हिन्दी अपने व्यावहारिक रूप में जिस सहजता के साथ संस्कृतनिष्ठ शब्दों से मुक्त हो जाती है उसी सहजता के साथ उनसे युक्त भी हो जाती है। इसका यह सहज अंकुठ और उदार मन अद्भुत है। यह विद्वान समालोचकों की पकड़ से छूट जाता है और राह चलता एक साधारण आदमी इसे पढ़-समझ लेता है। मैंने संस्कृत के अनेक ऐसे प्रकाण्ड पंडितों को देखा है जो घंटों तक धाराप्रवाह संस्कृत में वार्तालाप कर सकते हैं, वे भी परस्पर हिन्दी में बात करते समय यह कभी नहीं कहते कि, "हमारे गृह पधारिये" या कि "आपका गृह कितनी दूर है"। वे यही कहते हुए पाये जायेंगे कि "हमारे घर पधारिये" या "आपका घर कितनी दूर है"। अब इससे उलट स्थिति देखें। हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ

शब्दों से मुक्त करने का दृढ़ निश्चय कर बैठे, उर्दूबहुल भाषा के प्रबल आग्रही महानुभाव भी अपने नये बने घर के उत्सव के निमंत्रण पत्र पर ''घर घुसाव'' या ''घर घुसाई'' जैसे शब्दों का कभी उल्लेख करते नहीं देखे गये। इस अवसर पर वे भी 'गृह प्रवेश' जैसा संस्कृतनिष्ठ शब्द ही लिखते हैं।

इसी तरह हम 'ऊँचा' या 'नीचा' शब्दों को लें। अनपढ़ हो या विद्वान अपनी बातचीत में इन शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करते हैं। वे ''इसे उच्च जगह रख दो'' के स्थान पर ''इसे ऊँची जगह रख दो'' ही कहते हैं। किन्तु ''सर्वोच्च'' या ''उच्चतम'' शब्द भी उनकी बातचीत में सहजता से समा जाते हैं। किसी बालक के कक्षा में ''सबसे ऊँचा स्थान'' प्राप्त करने की बात ''सर्वोच्च स्थान'' प्राप्त करने द्वारा भी उसी सहजता से अभिव्यक्त होती है। यहाँ कोई दुरूहता नहीं प्रतीत होती।

वस्तुतः यह संस्कृत से प्राप्त उपसर्ग, प्रत्यय, संधि, समास आदि का सौंदर्य है जो हिन्दी को संस्कृत के रिक्थ के रूप में मिला है और हिन्दी ने इसे बड़ी सहजता के साथ समाविष्ट कर लिया। यही कारण है कि जहाँ हमें संस्कृत के शब्दों की अपेक्षा लोकप्रचलित बोली-वाणी के शब्द अधिक सहज लगते हैं, वहाँ उन्हीं शब्दों के बहुप्रचलित सामासिक या उपसर्ग-प्रत्ययों से बने हुए शब्द आने पर हम उन्हें भी सहजता के साथ स्वीकार कर लेते हैं। लोक प्रचलन इस प्रक्रिया में बड़ी भूमिका निभाता है। अनपढ़ और निरक्षर लोगों के बीच भी ''मिष्ठान्न भंडार'' जैसे क्लिष्ट शब्द (यद्यपि मिष्ठान्न अशुद्ध प्रयोग है इसका शुद्ध रूप 'मिष्टान्न' है।) कैसे लोकप्रिय हो जाते हैं, यह सोचने-समझने की बात है, जबकि न केवल लेखन अपितु उच्चारण की दृष्टि से भी यह कठिन शब्दों की श्रेणी में आता है। यही हमारी गतिशील-विकासशील हिन्दी की विशेषता है।

भारत एक बहुभाषिक राष्ट्र है। भारत ही नहीं, विश्व के सभी राष्ट्र बहुभाषिक हैं। लगभग दो सौ राष्ट्रों में हजारों भाषाओं का प्रचलन होना राष्ट्रों की बहुभाषिकता को ही पुष्ट करता है। यह भाषिक वैविध्य मानवीय सर्जनशीलता का अमूल्य उपहार है, जो कि मानव सभ्यता के साथ चिरकाल से मानवीय विकास यात्रा का न केवल साक्षी अपितु साधन भी बना है।

भाषाओं को लेकर ऐसी ही उदात्त भावना और उदार-मनस्कता प्राचीनकाल से भारत की थाती रही है। किन्तु पराधीनता के काल में अंग्रेजों ने अपनी कुटिता चालों और तुष्टिकरण के कारण साम्प्रदायिक विघटन का जो विष-बीज बोया, वह फैलता फूटता ही गया। कालान्तर में हमारे ही नेताओं द्वारा कहीं जानबूझकर, कहीं अनजाने में इसे खाद पानी दिया गया और उर्दू के नाम पर एक विदेशी लिपि को जबर्दस्ती हमारे सिर पर थोप दिया गया।

सच्चाई यह है कि हिन्दी अपने मूलतः और देशीय स्वभावतः संस्कृत एवं अनेक भारतीय भाषा-बोलियों के जितना प्रभाव में रही है उतना अरबी, फारसी के प्रभाव में नहीं रही। अरबी, फारसी के साथ उसकी जो भी निकटता रही, वह लोक-आधारित कम राज्य-आधारित अधिक थी। अतः यह स्वभाविक ही है कि उसने अपना स्वतंत्र विकास भी संस्कृत के संस्कारों के साथ प्रारंभ किया। इनमें से कई संस्कार तो उसके व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन गये। किन्तु यह भी सत्य है कि इस्लाम के साथ आयी एक नई भाषा के साथ सहजीवन-सहवर्तन के कारण अरबी और फारसी के तथा कालान्तर में अंग्रेजों के साथ आई अंग्रेजी भाषा के शब्दों के जो संस्कार इसके रक्त और नाडिय़ों में सहजतापूर्वक घुल-मिल गये, उनको भी हिन्दी ने आत्मीयता के साथ अंगीकार किया है। जन-मन ने उन्हें सहजता से स्वीकार किया है।

अथर्ववेद की एक ऋचा में मातृभूमि द्वारा विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले और विभिन्न धर्मों के लोगों को एक ही परिवार के लोगों के समान धारण करने की ऐसी वैश्विक संकल्पना की गई है जो विभिन्न भाषाओं के मध्य एक आत्मीय संवाद और पारस्परिक विनिमय भाव को व्यक्त करती है।

जनं विभ्रती बहुधा विवचासम्।

नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।।

हिन्दी के सभी लेखकों, साहित्यकारों, आलोचकों, शिक्षकों, सम्पादकों, पत्रकारों, प्रचारकों, शोधार्थियों, विद्यार्थियों को इसी भावना को हृदयंगम करते हुए हिन्दी के विकास, प्रसार और उसकी समृद्धि में अपना योगदान करना चाहिए।

❖

6ए, नालन्दा विहार, महारानी फॉर्म, दुर्गापुरा,
जयपुर - 302018, मो. 8387062611

भाषा-चिंतन

आज़ादी का अमृत महोत्सव

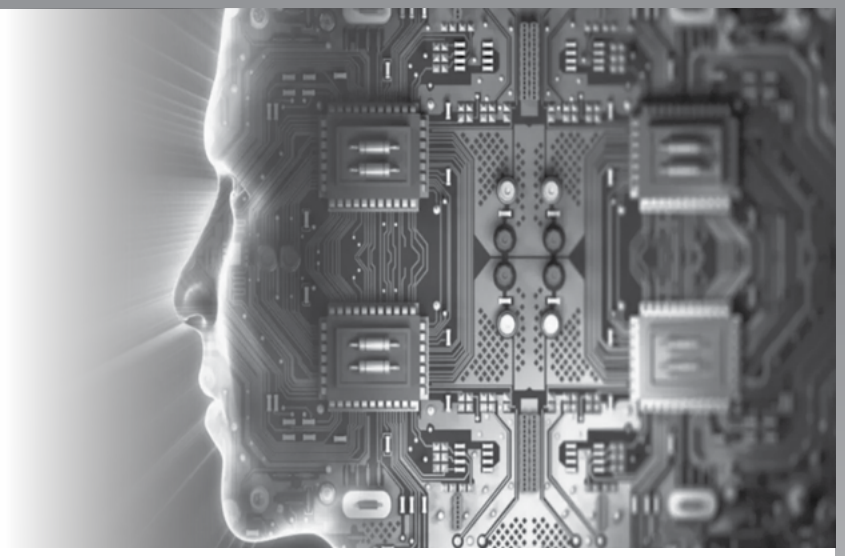

हिंदी क्षितिज का विस्तार और प्रौद्योगिकी

– संजय कुमार

"सूचना प्रौद्योगिकी ने भाषा को कागज़ और कलम के बंधन से मुक्त किया है। जब कलम-दवात का चलन था, उस समय हिंदी लिखना एक कठिन काम था। बच्चों को कई महीने तो सही से कलम पकड़ना सिखाने में लग जाते थे, तब कहीं जाकर वे हिंदी लिख पाते थे। अच्छी राइटिंग लाने में तो वर्षों लग जाते थे। कागज़ और कलम की मदद से हिंदी अक्षर बनाना उन लोगों के लिए तो और भी कठिन था जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। यही कारण है कि जब सरकारी कार्यालयों में कंप्यूटर नहीं थे और पत्र, नोट आदि हाथ से लिखे जाते थे तो उस समय हिंदीतर भाषी अक्सर अंग्रेजी में काम किया करते थे। किंतु यूनिकोड के आगमन और फोनेटिक की-बोर्ड की उपलब्धता ने उनकी मुश्किल आसान कर दी और अब वे अंग्रेज़ी की-बोर्ड का प्रयोग करते हुए दक्षता के साथ हिंदी में काम कर सकते हैं।"

नब्बे के दशक में जब भारत में सूचना प्रौद्योगिकी ने दस्तक दी और लोगों ने कंप्यूटरों पर काम करना शुरू किया तो कुछ भविष्यवक्ताओं ने इसे हिंदी के अवसान की शुरुआत मान लिया था। उस समय यह बात सही भी थी, क्योंकि कंप्यूटरों पर सिर्फ अंग्रेज़ी में काम होता था और जो कोई कंप्यूटर पर काम कर रहा होता था, उसके बारे में यह सहज अनुमान लगा लिया जाता था कि उसे अंग्रेज़ी आती है। चाहे एटीएम हों या अन्य डिजिटल डिवाइस सब के सब अंग्रेज़ी समर्थित थे।इन उपकरणों पर अंग्रेज़ी से इतर भाषा में काम हो सकता है, इसकी कल्पना शायद ही किसी ने की थी। पर आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। भारत जैसे दुनिया के दूसरे सबसे बड़ी आबादी वाले देश जहाँ अधिकांश जनसंख्या हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं का व्यवहार करती है, में लोगों की ज़रूरतों को लंबे समय तक नज़रंदाज़ कर पाना प्रौद्योगिकी के लिए संभव नहीं था। लिहाज़ा प्रौद्योगिकी ने कुछ छिटपुट तरीकों से हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं की ओर कदम बढ़ाए। तरह-तरह के सॉफ्टवेयरों के माध्यम से हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं में काम होने लगा। हिंदी के लिए अक्षर, लीप ऑफिस, आकृति जैसे कई सॉफ्टवेयर बने, जिनकी सहायता से लोग कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने लगे। पर जैसे-जैसे इंटरनेट के चलन ने जोर पकड़ा इन सॉफ्टवेयरों की सीमाएं भी उजागर होने लगीं। इनकी मदद से हिंदी में मेल कर पाना संभव नहीं था और यदि कोई वर्ड फाइल अटैचमेंट के रूप में भेज भी दी जाती थी तो गंतव्य स्थल पर वह तब तक नहीं पढ़ी जा सकती थी, जब तक वहाँ के पीसी में वही हिंदी सॉफ्टवेयर/फॉन्ट इंस्टॉल न हो। यहाँ तक के सफर में हिंदी का प्रौद्योगिकी के संग गठजोड़ उतना प्रभावकारी नहीं रहा कि हिंदी के प्रयोग क्षेत्र में कोई खास

बढ़ोतरी हो पाती या हिंदीतर भाषी हिंदी में काम करने लगते। इसके उलट वे लोग जो पहले कागज़ और कलम से हिंदी में काम किया करते थे,कंप्यूटर पर विशेषकर ई-मेल में अंग्रेज़ी के अभ्यस्त होने लगे। पर जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि हर नई आवश्यकता नए आविष्कार का कारण बनती है, नतीजतन 1991 में यूनिकोड का आविष्कार हुआ। यूनिकोड के आ जाने से हिंदी सहित सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के कैरेक्टर्स की यूनीक कोडिंग हो गई जिसके कारण इंटरनेट पर जो भी, जिस भाषा में लिखा जाता था, पूरी दुनिया द्वारा उसे उसी रूप में पढ़ा जाने लगा। यूनिकोड ने धीरे-धीरे हिंदी के क्षितिज को विस्तारित किया और वह लोकल से ग्लोबल बन गई। चूँकि प्रौद्योगिकी का काम ही है व्यक्ति को सुख- सुविधा पहुँचाना, और वह अपने को तभी धन्य मानती है, जब सबके काम आए, इसी परंपरा का निर्वहन करते हुए प्रौद्योगिकी ने हिंदी को उन क्षेत्रों में भी पहुँचाया जहाँ वह पहले नदारद थी। प्रौद्योगिकी ने किस तरह से हिंदी की परिधि का विस्तार किया है, इसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे:

हिंदी लिखना हुआ सुविधाजनक :

सूचना प्रौद्योगिकी ने भाषा को कागज़ और कलम के बंधन से मुक्त किया है। जब कलम-दवात का चलन था, उस समय हिंदी लिखना एक कठिन काम था। बच्चों को कई महीने तो सही से कलम पकड़ना सिखाने में लग जाते थे, तब कहीं जाकर वे हिंदी लिख पाते थे। अच्छी राइटिंग लाने में तो वर्षों लग जाते थे। कागज़ और कलम की मदद से हिंदी अक्षर बनाना उन लोगों के लिए तो और भी कठिन था जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। यही कारण है कि जब सरकारी कार्यालयों में कंप्यूटर नहीं थे और पत्र, नोट आदि हाथ से लिखे जाते थे तो उस समय हिंदीतर भाषी अक्सर अंग्रेजी में काम किया करते थे। किंतु यूनिकोड के आगमन और फोनेटिक की-बोर्ड की उपलब्धता ने उनकी मुश्किल आसान कर दी और अब वे अंग्रेज़ी की-बोर्ड का प्रयोग करते हुए दक्षता के साथ हिंदी में काम कर सकते हैं। लेखन में हिंदी प्रयोग बढ़ने की एक अन्य वजह ऑनलाइन शब्दकोशों और ट्रांसलेशन एप्लीकेशनों की उपलब्धता तथा सटीकता से अनुवाद करने की क्षमता है। वर्तमान समय में गूगल ट्रांसलेट, बिंग ट्रांसलेट, मंत्र राजभाषा जैसे तमाम एप्लीकेशन्स हैं, जिनकी मदद से हिंदी न जानने वाला भी हिंदी में काम कर रहा है। आज कई सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से हिंदी में संप्रेषण की चाहत रखने वाला दुनिया का कोई भी व्यक्ति हिंदी में अपनी बात रख सकता है और दूसरों की बात समझ सकता है। इसके कारण न सिर्फ सरकारी क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग बढ़ा है, बल्कि घर, समाज, बाज़ार जैसी आम जगहों पर भी इसके प्रयोग में वृद्धि हुई है।

हिंदी सीखना हुआ आसान:

पहले यदि किसी अहिंदीभाषी को हिंदी सीखनी होती थी, तो उसे किसी हिंदी-शिक्षक के सान्निध्य की आवश्यकता होती थी किंतु आज की वर्चुअल दुनिया में ज़रूरी नहीं कि गुरूजी के चरणों में बैठकर ही भाषा सीखी जाए। आज यू-ट्यूब, वेबिनार, स्काइप, वीसी, वीडियो कॉलिंग जैसे तमाम ऑनलाइन शिक्षण-माध्यम हैं, जिनसे दुनिया के किसी भी छोर पर बैठा व्यक्ति आसानी से हिंदी सीख सकता है। वहीं ऑनलाइन हिन्दी प्रशिक्षण हेतु लीला जैसे सॉफ्टवेयर भी हैं जिनके इस्तेमाल से प्रशिक्षार्थियों को घर बैठे ही भाषा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंगों (जैसे वर्ण परिचय, वर्णों का स्वर और व्यंजनों में वर्गीकरण,उच्चारण भेद,अनुनासिक,अनुस्वार एवं संयुक्त व्यंजनों का स्वरूप, काल विभाजन,कारक चिह्नो का सटीक प्रयोग सहित मानक वर्तनी आदि) की जानकारी सहज रूप से हो जाती है। दृश्य एवं श्रव्य उपकरणों की सहायता से प्रयोगकर्ता अपनी मातृभाषा में ही लक्ष्यभाषा हिन्दी को बड़ी आसानी से सीख सकता है।

प्रौद्योगिकी ने जगाया हिंदी में काम करने का आत्मविश्वास:

पहले जब कम्प्यूटर नहीं थे उस समय लोग हाथ से लिखा करते थे और कई बार लिखावट इतनी घसीट में होती थी कि अहिंदी भाषी तो क्या हिंदी भाषी का दिमाग भी चकरा जाता था। एक जज को एफआईआर या हलफ़नामे की हस्तलिखित प्रति पढ़ने में बार-बार चश्मा ऊपर-नीचे करना पड़ता था, तो ऋण बांटने वाला एक बैंक-प्रबंधक स्याही से लिखे प्रापर्टी के दस्तावेज़ों/हक विलेखों में ऋणी के मालिकाने, हिस्से आदि की पड़ताल में जूझता नज़र आता था। हस्तलिखित दस्तावेज़ों की अस्पष्ट लिखावट के कारण

उनके आधार पर वित्तीय/प्रशासनिक/न्यायिक निर्णय लेने वाला हमेशा ऊहा-पोह की स्थिति में रहता था और पूरे आत्मविश्वास के साथ काम नहीं कर पाता था। किंतु जब से कंप्यूटर पर हिंदी में काम होने लगा, लोगों को न केवल लिखावट के द्वंद से मुक्ति मिली, अपितु वे अल्प समय और अल्प प्रयास से बहुत कुछ लिख-पढ़ पाने में सक्षम हुए। हिंदी-कामकाज में प्रौद्योगिकी के प्रवेश से अखिल भारतीय सेवाओं से जुड़े अधिकारियों/कर्मचारियों, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी, की भाषा-संबंधी परेशानियाँ भी कम हुई हैं। आज बैंक, बीमा कंपनियों सहित हिंदी भाषी राज्यों के कैडर में बहुत से हिन्दीतर भाषी अधिकारी पदस्थ हैं जो हिंदी में अपना काम पूरी दक्षता के साथ कर रहे हैं।

सर्च में सुविधा :

यूनिकोड के कारण अब इंटरनेट पर हिंदी में सर्च की सुविधा भी उपलब्ध है। इसके कारण लोग इंटरनेट पर पड़ी हिंदी की अकूत सामग्री को एक्सेस कर सकते हैं। आज लगभग सभी विषयों/विधाओं पर हिंदी विकिपीडिया उपलब्ध है। हिंदी के लगभग सभी समाचार पत्र, पत्रिकाएं ऑनलाइन उपलब्ध हैं। कविताकोश, गद्यकोश, हिंदी समय जैसी वेबसाइटों पर कवियों और लेखकों का विपुल साहित्य पड़ा हुआ है, जो पाठकों के लिए हर समय सुलभ है। इंटरनेट पर हिंदी-साहित्य की व्यापक मौज़ूदगी न केवल लोगों का ज्ञान-संवर्धन कर रही है, अपितु उन्हें हिंदी से जोड़े हुए भी है। वर्तमान युग एक आर्थिक युग है जिसमें हरेक चीज़ को उपयोगिता की कसौटी पर परखा जाता है। ऐसे में भारतीय भाषाओं का विस्तार तो दूर, भाषायी आधार को बरकरार रख पाना चुनौतीपूर्ण है। कल्पना कीजिए यदि आज के डिजिटल पटल पर हिंदी न आई होती, तो न जाने कितने हिंदी भाषी हिंदी से दूर हो चुके होते। हिंदी अब केवल साहित्य की भाषा नहीं है, अपितु अर्थ, वित्त, चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग जैसे ज्ञान-विज्ञान के हरेक क्षेत्र में अपनी पैठ बना चुकी है।

सोशल मीडिया बना हिंदी के लिए बूस्टर :

हिंदी के फलक का विस्तार करने में सोशल मीडिया का कोई सानी नहीं है। अक्तूबर 2021 की स्थिति के अनुसार भारत में 600 मिलियन लोगों के पास स्मार्टफोन हैं, 349.2 मिलियन (जनवरी 2021 की स्थिति) लोग फेसबुक का इस्तेमाल करते हैं, 487 मिलियन लोग व्हाट्सएप चलाते हैं , 247 मिलियन टेलीग्राम पर हैं, 24.45 मिलियन लोग ट्विटर का उपयोग करते हैं, 140 मिलियन लोग इंस्टाग्राम से जुड़े हैं और बड़ी संख्या में लोग ब्लॉग लिखते हैं। यदि हिंदी की जनसांख्यिकी को देखें तो वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में हिंदी मातृभाषियों की तादाद 52.83 करोड़ थी और हिंदी जानने वालों की संख्या इससे भी अधिक थी। आज जिसके पास स्मार्टफोन है वह किसी न किसी सोशल मीडिया प्लेटफ़ार्म से भी जुड़ा हुआ है। जब इतनी बड़ी संख्या में हिंदी भाषी इन पर हिंदी में पोस्ट डालेंगे तो ज़ाहिर है कि उसका प्रसार भी बड़े पैमाने पर होगा। ऐसा भी नहीं है कि हिंदी भाषी द्वारा डाली गई पोस्ट हिंदी भाषी तक ही सीमित रहती हो। आज हर कोई व्हाट्सएप, टेलीग्राम पर किसी न किसी समूह से जुड़ा हुआ है और इन समूहों में हिंदीतर भाषी भी होते हैं। ऐसे में जब इन पर कोई हिंदी पोस्ट डाली जाती है तो वे लोग भी पढ़ते हैं जो हिंदी भाषी नहीं है। इससे इन लोगों की भी शनै: शनै: हिंदी के प्रति रुचि और समझ बढ़ती है। आज देश-विदेश में ट्विटर पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के 7 करोड़ से अधिक फ़ॉलोअर हैं और फ़ॉलोअर्स के मामले में वे दुनिया में नम्बर वन पर हैं। ऐसे में जब उनके द्वारा कोई पोस्ट डाली जाती है (जो अधिकतर मामलों में हिंदी में ही होती है) तो हिंदी भाषियों के साथ-साथ अहिंदी भाषी भी उसे पढ़ते हैं। यहाँ तक कि मित्र और शत्रु देश के लोग भी उनके एक-एक शब्द का मायने निकालते हैं। इससे परोक्ष रूप से ही सही , पर हिंदी का प्रचार-प्रसार अवश्य हो जाता है। कहते हैं कि हम उन चीज़ों को बेहतर ढँग से सीखते हैं जो हमें कभी सिखाई नहीं जाती है। यही काम सोशल मीडिया भी कर रहा है जो जाने-अनजाने लोगों के समक्ष हिंदी परोस-परोसकर उन्हें इसका चस्का लगा रहा है।

मनोरंजन और मीडिया से हिंदी को लगे पंख :

सैटेलाइट टेक्नॉलॉजी के विकास के साथ मीडिया और मनोरंजन के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति आई है। तीस- चालीस बरस पहले जहाँ मीडिया और मनोरंजन के नाम पर दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो होता था, वहीं आज न्यूज़ और इंटरटेनमेंट के अनगिनत चैनल हैं। घर-घर में डीटीएच या ब्रॉडबैण्ड लगे हुए हैं

जिन पर चौबीसों घण्टे समाचार और मनोरंजन कार्यक्रम चलते हैं। कपिल शर्मा का शो, राजू श्रीवास्तव के हंसगुल्ले अथवा कौन बनेगा करोड़पति जैसे हिंदी कार्यक्रमों को पूरा देश देखता है। फिल्में, धारावाहिक और न्यूज़ चैनल्स अब एक कारोबार का रूप ले चुके हैं, और कारोबार हमेशा बड़े उपभोक्ता समूह को ध्यान में रखकर किया जाता है। चूँकि भारत में सबसे अधिक दर्शक हिंदी भाषी हैं, अतएव ज़्यादातर फिल्में व धारावाहिक हिंदी में तैयार किए जाते हैं। यही स्थिति हिंदी न्यूज़ चैनलों की भी है। पिछले तीन दशकों के भीतर नोएडा एक बहुत बड़ा मीडिया हब बनकर उभरा है, जहाँ ज़्यादातर न्यूज़ चैनलों के कार्यालय हैं। आजतक, ज़ी न्यूज़, एबीपी न्यूज़, इंडिया टीवी, रिपब्लिक भारत, न्यूज़ 24, न्यूज़ 18, एनडीटीवी, ज़ी हिन्दुस्तान जैसे न जाने कितने हिंदी चैनल हैं जो खबरों के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर पैनल चर्चाएं भी प्रसारित करते हैं, जिन्हें पूरा देश सुनता और गुनता है। इन चैनलों का विकास और पल-पल की खबरें हम तक पहुँचाने में टेलीकॉम एवं वायरलेस टेक्नोलॉजी का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यापक नेटवर्क कनेक्टीविटी के चलते अब सुदूर ग्रामीण इलाके से भी एक रिपोर्टर ख़बरों को लाइव दिखा रहा होता है। टेलीविज़न मीडिया के क्षेत्र में जो एक अन्य महत्वपूर्ण बदलाव आया है और जिससे हिंदी का प्रसार बढ़ा है, वह है हेडलाइंस/ब्रेकिंग न्यूज़ को टीवी स्क्रीन पर लिखित रूप में प्रदर्शित करना। दृश्य और श्रव्य का यह माध्यम लोगों को हिंदी सिखाने में काफी कारग़र हो रहा है। हिंदी मीडिया के बढ़ते वर्चस्व के कारण हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के राजनेता जो पहले बिरले ही हिंदी में बात करते थे, अब हिंदी में अपनी बात रख रहे हैं। कोविड-19 के दौर में ऑनलाइन संपर्क और संवाद का जो नया आयाम खुला उसमें हिंदी ने खूब तरक्की की। मिसाल के तौर पर पहले किसी मुद्दे पर चर्चा के लिए विभिन्न पार्टियों के प्रवक्ता न्यूज़ स्टूडियो जाते थे और एक दिन में अधिक से अधिक तीन-चार चैनलों पर ही चर्चा में भाग ले पाते थे, किंतु कोविड-19 और वर्क फ्रॉम होम के माहौल में अब वे घर बैठे दर्जनों चैनलों पर चर्चाओं में भाग ले रहे हैं। यही नहीं नेता या प्रवक्ता सफर में होते हुए भी इन चैनलों पर होने वाली चर्चाओं में अपनी लाइव उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, जिसके कारण इन चैनलों पर हिंदी कंटेंट में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। जब मीडिया द्वारा प्रचुर मात्रा में हिंदी कंटेंट परोसा जाएगा तो ज़ाहिर है कि पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों का आधार भी बढ़ेगा। मीडिया की एक खूबी यह भी है कि वह शब्द बनते ही उसे जनता में परोस देती है और उसके द्वारा गढ़े गए शब्द जनता के ज़ेहन पर भी खूब चढ़ते हैं। 'विमुद्रीकरण' के लिए 'नोटबंदी', सोशल डिस्टेंसिंग के लिए 'सामाजिक दूरी', अपने ही देश में घर वापसी करते मज़दूरों के लिए 'प्रवासी मज़दूर' जैसे शब्द मीडिया की ही देन थे जो जनता को शाब्दिक अर्थ के बजाए भाव समझाने में सफल रहे। मनोरंजन जगत में यू-ट्यूब (जिसके देश में 459.23 मिलियन यूज़र हैं) तथा ओटीटी जैसे प्लेटफार्म भी हिंदी की पहुँच को इसी तरह से व्यापक व विस्तृत बना रहे हैं। उल्लेखनीय है कि मीडिया या मनोरंजन जगत यदि यह सब कर पा रहा है तो यह सूचना प्रौद्योगिकी की बदौलत ही संभव हुआ है।

सूचना प्रौद्योगिकी ने बढ़ाई हिंदी के प्रसार की गति:

जब पत्रों और चिट्ठियों का व्यवहार होता था तो इन्हें गंतव्य तक पहुँचने में समय लगता था। दुतरफा संप्रेषण में तो महीनों लग जाते थे। चूँकि पत्र और चिट्ठियों में अंकित संदेश किसी न किसी भाषा में होते थे, अतएव भाषा-प्रसार की गति भी वही रहती थी जो पत्र की गति होती थी। किंतु वर्तमान समय में मोबाइल और इंटरनेट के चलते पलक झपकते ही पत्र/संदेश दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में पहुँचाया जा सकता है। इसका यह भी मतलब है कि अब एक भाषा को दूसरे छोर तक बगैर किसी देरी के पहुँचाया जा सकता है। जिस प्रकार अर्थव्यवस्था में पैसों का मूवमेंट तेज़ होने से अर्थव्यवस्था गतिमान होती है, उसी तरह संदेश के साधन तीव्र होंने से भाषा का प्रवाह भी तीव्र होता है।सूचना-प्रौद्योगिकी के प्लेटफ़ार्म पर आरूढ़ होकर हिंदी अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ी हैं।

प्रौद्योगिकी से वैश्वीकरण और हिंदी हुई वैश्विक:

वैश्वीकरण जो कि दुनिया को एक ग्लोबल विलेज बनाने का दूसरा नाम है, के मूल में भले ही आर्थिक निहितार्थ रहे हों, लेकिन इसे संभव किया है; सूचना प्रौद्योगिकी ने। सूचना प्रौद्योगिकी ने दुनिया के बीच की दूरियाँ घटाई हैं, रियल टाइम आधार पर सूचनाओं को साझा करना संभव बनाया है और भुगतान प्रणाली को तीव्र किया है। मुक्त बाज़ार

व्यवस्था के दौर में अधिक मुनाफ़े वाले बाज़ारों की तलाश और निवेश पर अधिकतम प्रतिफल अर्जित करने की ख्वाहिश ने व्यावसायिक गतिविधियों का दायरा बढ़ाकर पूरा विश्व कर दिया है। कारोबार भाषा के बिना नहीं चल सकता। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जितनी तेज़ी से कारोबारी गतिविधियाँ बढ़ी हैं, भाषा का प्रसार भी उसी रफ्तार से हुआ है और वे सरहदों के पार भी पहुँची है। दुनिया में हिंदीभाषी उपभोक्ताओं की तादाद काफी अधिक है और फिर यदि भारत में कारोबार करना हो तो यह हिंदी के बिना संभव नहीं है। विश्व के इस बड़े उपभोक्तावर्ग तक माल और सेवाएं पहुँचाने के लिए हिंदी को अपनाना अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मजबूरी बन गयी है। यही कारण है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ न केवल अपने प्रोडक्ट का हिंदी में प्रचार कर रही हैं, बल्कि अपने कर्मचारियों को भी हिंदी सीखने को प्रेरित कर रही हैं। आज सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी का जो विकास हुआ है,वह उन देशों/बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रयासों से हुआ है, जिनकी भाषा तो हिंदी नहीं थी, पर कारोबार के लिए अहम ज़रूरत थी। माइक्रोसॉफ्ट द्वारा हिंदी सहित विभिन्न भाषाओं के कैरेक्टर्स की जो यूनिकोडिंग की गई, उसका मूल उद्देश्य कारोबार की आधार भूमि तैयार करना था। ठीक उसी तरह से, जिस तरह अंग्रेज़ों ने भारत में अपनी कारोबारी ज़रूरतों के लिए रेल, डाक, तार जैसी बुनियादी सुविधाएं विकसित की थीं। आज 'स्पीच टू टेक्स्ट'और 'टेक्स्ट टू स्पीच'जैसे कई ऐप्लिकेशन हैं, जहाँ ट्रांसलेशन टूल की मदद से एक अहिंदी भाषी कारोबारी एक हिंदी भाषी कारोबारी से संवाद स्थापित कर सकता है। माइक्रोसॉफ्ट के इंजीनियर डॉ. बालेंदु शर्मा दाधीच कहते हैं कि हम कारोबार के क्षेत्र में भाषा-तकनीक की पराकाष्ठा तब समझेंगे, जब भारत का एक अनपढ़ हिंदीभाषी किसान टेक्सास के कारोबारी को अपने उत्पाद फ़ेस-टू-फ़ेस मोलतोल के ज़रिए बेच रहा होगा। प्रौद्योगिकी ने यह संभव कर दिखाया है कि कोई एक भाषा जानने पर आप सब भाषाभाषियों के बीच कारोबार कर सकते हैं। हिंदी भाषियों की तादाद ही उनकी सबसे बड़ी मज़बूती है, जो अंतर्राष्ट्रीय कारोबार में हिंदी को हमेशा केंद्रीय भूमिका में रखेगी।

हिंदी को भारतीय आईटी पेशेवरों ने भी देश-दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया है। आज अमेरिका, बिट्रेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे दुनिया के विकसित देशों में भारतीय आईटी इंजीनियर्स की बहुत मांग है। ये लोग भले ही अंग्रेज़ी ज्ञान के सहारे विदेशों में रोज़गार पा रहे हैं, लेकिन एक हिंदुस्तानी होने के कारण हिंदी भी गाहे-बेगाहे इनके अनौपचारिक परिवेश को महका रही है। केवल विदेश की ही बात नहीं; देश में भी दक्षिण भारत के शहरों विशेषकर बंगलूरू, हैदराबाद, चेन्नै आदि के आईटी हब के रूप में विकसित होने के कारण तमाम उत्तर भारतीयों का दक्षिण की ओर प्रवासन हुआ और इस क्रम में हिंदी भी उत्तर से दक्षिण की ओर अग्रसर हुई। विज्ञान की एक थ्योरी है- डिफ़्यूज़न, जिसके अनुसार पार्टिकल्स हाई कंसेंट्रेशन से लो कंसेंट्रेशन की ओर मूव करते हैं। चूँकि उत्तर भारत में जनसंख्या घनत्व अधिक है और बेरोज़गारी भी अपेक्षाकृत अधिक है, अतएव, रोजगार की खातिर बहुत सारे उत्तर भारतीय कामगार भारत के दक्षिण, पूर्व और पश्चिम का रूख कर रहे हैं। आज से लगभग 30-40 बरस पहले जो मजदूर घर से 50 मिलोमीटर दूर जाने के लिए दस बार सोचते थे, अब वे देश तो क्या, विदेश जाने में भी संकोच नहीं कर रहे हैं। इसका एक बड़ा कारण सूचना और संचार की उन्नत सुविधाओं का होना है। हर व्यक्ति अपने गाँव, घर और परिवार से जुड़ा रहना चाहता है और पल-पल की ख़बर से वाकिफ़ रहना चाहता है। मोबाइल फोन ने यह संभव कर दिया है। अब व्यक्ति कितनी भी दूर हो, अपने परिवार को कभी भी कॉल/वीडियो कॉल कर सकता है और यूपीआई जैसी सुविधाओं से पैसे भेज सकता है। इन सबके कारण हिंदीभाषी क्षेत्र के कामगारों/पर्यटकों के भ्रमण का दायरा बढ़ा है और इसके साथ ही हिंदी के प्रयोग का दायरा भी बढ़ा है।

अंत में सारांश के तौर पर कहा जा सकता है कि सूचना प्रौद्योगिकी का हिंदी के प्रचार-प्रसार में अतुलनीय योगदान रहा है। जिस प्रकार सूचना और संचार क्रांति ने देश-दुनिया को परस्पर जोड़ने का काम किया है, उसी तरह इसने हिंदी भाषा से भी अन्य भाषा-भाषियों को जोड़ा है। आज यदि हिंदी ने विश्वमंच पर अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है तो उसमें कहीं न कहीं सूचना-प्रौद्योगिकी की भूमिका अवश्य रही है।

❖

फ्लैट न. सी 807, रॉयल नेस्ट-2 त्रिपुरा नगर, से. 3 एक्सटेंशन,
जम्मू180020 मो 8840193383

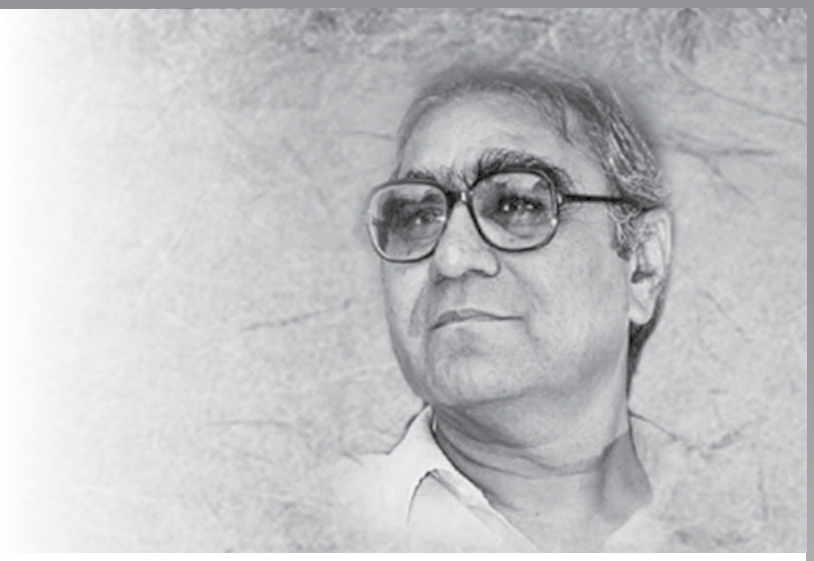

नंदकिशोर आचार्य के नाटकों का रंगशिल्प

– डॉ. लहरी राम मीणा

"नंदकिशोर आचार्य का नाटक 'किमिदम् यक्षम्' व्यक्ति की अस्मिता की तलाश का नाटक है जिसमें फ्लैश-बैक का बार-बार प्रयोग होता है और यही स्थिति हस्तिनापुर में भी बार-बार देखने को मिलती है। यह संरचनागत तकनीकी नाटक के रंगशिल्प में भराव लाती है और उसकी अन्तर्वस्तु को और भी गहराई प्रदान करती है। क्योंकि इसके एक टेक्स्ट में कई सब-टेक्स्ट होते हैं और सब-टेक्स्ट-टेक्स्ट में मिलते चले जाते हैं एवं इस प्रकार आचार्य के नाटकों में शिल्पविधन बहुत सशक्त ढंग से उभरकर हमारे सामने आता है। रीतारानी पालीवाल का कहना है- ''रंगशिल्प की दृष्टि से आचार्य के नाटक हिन्दी में एक नई शुरूआत लिए हुए हैं। वे भाषा की नाट्यात्मक संभावनाओं को पहचानते हैं। नाटक की संरचना के सूक्ष्मबोध से वह कथ्य की जटिलता को सघनता और गहराई से उभारते हैं। इसके लिए कभी फ्लैश बैक, तो कभी सूच्यसंवाद शैली जैसी युक्तियों को अपनाते हैं।"

नाट्यशिल्प अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली कौशल है जहाँ हम अपनी बात को अधिक-से-अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली रूप में सम्प्रेषित करने के लिए 'टेक्नीक' अथवा विधियाँ अपनाते हैं। यही शिल्प विघन हिन्दी नाट्य साधना के क्षेत्र में वस्तुविधान का शिल्प और रंगशिल्प के नाम से जाना जाता है। वस्तुविधान के शिल्प के अन्तर्गत नाटक के कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, भाषा उद्देश्य आदि तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है। जबकि रंगशिल्प में नाटक के प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया और निर्देशक की भूमिका को रेखांकित किया जाता है। दृश्यबंध, प्रकाश-योजना, ध्वनि-संगीत व्यवस्था, नाटकीय तनाव, संघर्ष, द्वन्द्व, चरित्र सृष्टि, कार्य-व्यापार, वेशभूषा, रेखाओं, छायाओं आदि तत्त्वों को रंगशिल्प के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है।

जिस कलापक्ष के अन्तर्गत 'शिल्प' का उल्लेख किया गया है- शिल्प, शैली, शिल्पतन्त्र, शिल्पविधान सभी उनके पर्यायवाची शब्द है। शिल्प विधि शिब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'टेक्नीक' शब्द के पर्याय के रूप में होता है जिसका अर्थ है विधान। एक सुव्यवस्थित तरीका जिसके माध्यम से नाटककार अपनी अमूर्त अनुभूति व विचारधरा को नाटक में स्पष्ट एवं निश्चित मूर्त रूप प्रदान करता है।

नाट्यशिल्प में निर्देशक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है जो नाट्य प्रदर्शन के विविध तत्त्वों को पिरोता है और उनकी समग्रता को एक समन्वित बल्कि हमेशा स्वतंत्रा-कला रूप का दर्जा देता है। सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप में दर्शकों तक पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कला-बोध, सौंदर्य-बोध और जीवन-बोध को ही प्रकट करता है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार निर्देशक ही रंगशिल्प के अन्य तत्त्वों

को अभिनेताओं की मुख्य-सज्जा, वेशभूषा, दृश्यबंध, प्रकाश योजना और ध्वनि तथा संगीत-योजना को भी अपनी पूर्व-कल्पित और नाटक के स्वीकृत अर्थ-निर्णय से जुड़ी हुई अन्विति में बाँधता है, और इस प्रकार एक समग्र समन्वित प्रभाव दर्शक तक सम्प्रेषित करता है।''

रंगशिल्प, भाषा, संवाद और नाटक के कथ्यबोध इन सभी स्तरों पर इतनी विविधता किसी एक नाटककार में मुश्किल से मिलेगी। आचार्य जी ने छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से अपनी बात नाटकों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन्होंने अपने नाटकों में प्रथम अंक, द्वितीय अंक की जगह 'प्रवेश' शब्द का प्रयोग किया है। शिल्प के स्तर पर इनके नाटकों में कोई उलझाव देखने को नहीं मिलता है। देवेन्द्रराज अंकुर का कहना है कि, ''आचार्य जी के नाटकों में अतिरिक्त या आयातित शिल्प का होना ही उनका गुण है। क्यों गुण है? क्योंकि शिल्प के स्तर पर इतना सहज होने, इतना जटिल न होने के कारण कथ्य की जटिलता इतनी मुखरित होकर हमारे सामने आ पाती है कि हम उसको अलग से अनुभव कर पाते हैं। इतने छोटे-छोटे संवाद हैं कि संवाद लिखना भी इस तरह से नाटकीय बना देते हैं। कोई भी संवाद सीधे-सीधे लिखा ही नहीं गया। शायद हिन्दी-नाट्य लेखन को एक नये तरह का शिल्प अनायास ही दे दिया। उन्होंने बहुत कम नाटकों में अंक-विभाजन किया है। उन्होंने इनके लिए एक नया शब्द दे दिया है- प्रवेश। यह एक तरह का एपिसोडिक ट्रीटमेंट है।''

नंदकिशोर आचार्य का नाटक 'किमिदम् यक्षम्' व्यक्ति की अस्मिता की तलाश का नाटक है जिसमें फ्लैश-बैक का बार-बार प्रयोग होता है और यही स्थिति हस्तिनापुर में भी बार-बार देखने को मिलती है। यह संरचनागत तकनीकी नाटक के रंगशिल्प में भराव लाती है, और उसकी अन्तर्वस्तु को और भी गहराई प्रदान करती है क्योंकि इसके एक टेक्स्ट में कई सब-टेक्स्ट होते हैं। और सब-टेक्स्ट-टेक्स्ट में मिलते चले जाते हैं और इस प्रकार आचार्य के नाटकों में शिल्पविधान बहुत सशक्त ढंग से उभरकर हमारे सामने आता है। रीतारानी पालीवाल का कहना है- ''रंगशिल्प की दृष्टि से आचार्य के नाटक हिन्दी में एक नई शुरूआत लिए हुए हैं। वे भाषा की नाट्यात्मक संभावनाओं को पहचानते हैं। नाटक की संरचना के सूक्ष्मबोध से वह कथ्य की जटिलता को सघनता और गहराई से उभारते हैं। इसके लिए कभी फ्लैश बैक, तो कभी सूच्यसंवाद शैली जैसी युक्तियों को अपनाते हैं। इस तरह नाट्यालेख में पाठ के भीतर अंतर्पाठ (सब-टेक्स्ट) को बड़े ही प्रभावशाली और सार्थक ढंग से विकसित करते हैं।''

'देहान्तर' नाटक में नंदकिशोर आचार्य ने ययाति के जीवन की विडम्बना को बहुत ही कुशलता पूर्वक प्रस्तुत किया है। कुछ नाटक एक सशक्त कुशल निर्देशक के रंग-शिल्प के परिज्ञान पर आश्रित होते हैं। आचार्य जी के ऐसे ही नाटक हैं। हालांकि ऐसा नहीं है कि किसी नाटक को अच्छे निर्देशक की जरूरत नहीं पड़ती सभी नाटकों को पड़ती है। परन्तु आचार्य के देहान्तर, किमिदम् यक्षम् एवं हस्तिनापुर कुशल निर्देशक की मांग करते हैं।

नाटकों की भाषा व संवाद सटीक तथा छोटे-छोटे होते हैं। जहाँ इनकी भाषा ययाति के समय के सांस्कृतिक वातावरण को निर्मित करने में समर्थ है, वहीं अपने प्रेक्षकों के लिए भी बोधगम्य है। इन नाटकों में नाटक सूक्ष्म अनुभूतियों तथा बारीक मनःस्थितियों को सम्प्रेषित करने के लिए महत्त्वपूर्ण लक्ष्य को हमारे सामने उजागर करते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्यतः नाटककार बिम्बों और प्रतीकों का सहारा लेता है किन्तु आचार्य ने नाटकीय स्थितियों में विविधता लाकर पात्रों की मनःस्थिति की परतों को उद्घाटित किया है। छोटे-छोटे तीन अंकों वाले इस नाटक में छः दृश्यों की योजना शायद इसी उद्देश्य से की गयी लगती है, इसमें छोटे-छोटे संवाद एक दूसरे के मन को टटोलने लगते हैं। कहीं कोई स्वगत नहीं है और न ही कोई लम्बी वार्तालाप। 'देहान्तर' नाटक के शिल्प-विधान को लेकर आचार्य के मन में अनेक समस्याएँ कोंधती रहती है। इसी सन्दर्भ में भारत रत्न भार्गव अपने लेख 'नाटक का शब्द, अर्थ, लय और भंगिमा में' जिक्र करते हैं कि देहान्तर के शिल्प विधान से संबंधित अनेक समस्याएँ उनके मन मस्तिष्क में कौंधती है। यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि वैचारिक स्तर पर वे शिल्पगत समस्या को लेकर कितने चिन्तित दिखाई देते हैं। लेखक (नाटककार) को मानव शरीर के माध्यम से प्रकट होने वाली भाषा को शरीर से जोड़ते हुए सूक्ष्म एवं प्रतीकात्मक विश्वसनीयता अर्जित करनी होती है। अतः अनिवार्यतः उस भाषा की व्यंजना को बहुआयामी होना होता है। दूसरे शब्दों में, भाषा का इकहरापन नाट्यात्मकता को भाषा के माध्यम से सत्य के नाट्यात्मक उद्घाटन को सीमित करता है। इसलिए भाषिक स्तर

पर आलेखकार की असली चुनौती यही है कि वह किसी तरह उस भाषा को रच सके जो एक ओर दैहिक अस्तित्त्व के साथ जुड़ी हो जो केवल बौद्धिक अवधारणाओं की भाषा नहीं बल्कि गतिशील दैहिक संवेगों के साथ एकमेव हुई भाषा हो और दूसरी ओर उस देह को भी किसी मानव गम्य सत्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की तरह प्रस्तुत कर सकें।'' देहान्तर की तरह ही 'किमिदम् यक्षम्' भी छोटे आकार का पूर्णांक नाटक है। इसे आचार्य ने तीन अंकों और चार दृश्यों में विभाजित किया है। इस नाट्य सन्दर्भ में लवकुमार लवलीन का कहना है- ''हिन्दी नाट्य क्षेत्र में यह नाटक ;किमिदम् यक्षम् नयी प्रवृत्ति का परिचायक है, अपने कथ्य की नवीनता और रंगशिल्प प्रयोग के कारण आधुनिक हिन्दी नाटकों में इसका स्थान विशिष्ट हो जाता है।''

रंगशिल्प की दृष्टि से इन्हें एक सफल रचना मानना होगा। इसमें सारी नाटकीय स्थितियों का ऐसा कुशल संयोजन है कि दर्शक मन्त्रमुग्ध भाव से पूरा नाटक देखता रहेगा। किन्तु देहान्तर की तरह ही शिल्पगत सादगी इस नाटक में देखने को नहीं मिलती है। पूर्व दीप्त (फ्लैश बैक) की योजना रंगतंत्र की कुशलता को बार-बार कमजोर करती हुई दिखाई देती है। लेकिन नाटक में निहित अन्दरूनी तनाव की सृष्टि में इनकी कुशलता अतुलनीय है। किसी भी नाटक की पहचान उसके कथ्य के कारण हुआ करती है और इसी दृष्टि से 'जिल्ले-सुब्हानी' एकदम खरा उतरता हुआ दिखाई देता है। यह नाटक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नाटक है इसमें तीन पक्ष देखने को मिलते है पहला सत्ता (शासक), दूसरा चाटूकारिता या चापूलस तथा तीसरा आम आदमी का शोषण। इस नाटक में 'जिल्ले-सुब्हानी' एक ऐसा शासक है जिसे अपनी कुर्सी एवं सत्ता से मतलब है इस दौरान प्रजा का कहीं कोई स्थान नहीं है। यह नाटक चैदहवीं शताब्दी की ही नहीं समकालीन राजनीति को भी यथार्थ रूप से उजागर करता हैं।

आचार्य के नाटकों की प्रमुख विशेषता यह है कि वह छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं। रंगकर्मी नरेन्द्र तोमर का कहना है नंदकिशोर आचार्य अपने छाटे-छोटे वाक्यों से तब के ही नहीं आज के सच को भी उजागर करते हैं- ''हुकूमत का फर्ज है जाने-माल की हिफाजत, जिसके पास दोनों है उसकी हिफाजत ज्यादा जरूरी है। सिर्फ जान की वैसे भी क्या कीमत है इसी तरह नाटक में सत्ता के चरित्र को भी बेनकाब किया गया है। अपने कृपापात्रों को बचाने के लिए सुल्तान का यह कथन मानो सबकुछ स्पष्ट कर देता है। ...नहीं हसन सजा तो उनको मिलेगी। वरना हमें तुमको सजा देनी पड़ेगी। आखिर किसी न किसी को कसूरवार ठहराना होगा... लेकिन हम तुम्हें सजा कैसे दे सकते हैं।'' छोटे-छोटे असरदार वाक्यों में चुटकीली, सारगर्भित तथा अन्दर तक गहरे में जाने वाली बातें, मजबूत एवं सूक्ष्म दृष्टि से गढ़े गए ऐतिहासिक पात्र तथा समय की सीमाओं को लांघती दृष्टि इस नाटक को महत्त्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ बनाती है। आचार्य ने अंतर्पाठों को विकसित करने में विशेष दक्षता हासिल की है।

आचार्य के नाटकों की केन्द्रीय समस्या चाहे कुछ भी क्यों न रही हो, किन्तु यथार्थ और फैंटेसी का मिला जुला प्रभाव छोड़ने वाला यह नाटक 'किमिदम् यक्षम्' अन्दर तक झकझोरता है और परेशान करता है। छोटे-छोटे संवादों और कम से कम शब्दों के माध्यम से अधिक से अधिक बात कहना इनके नाटकों की विशेषता रही है। जिस तरह से धय का यह कथन इस ओर संकेत करता है- हूँह... बताना होगा।... कौन सह पायेगा वह सब... और क्या जान लेगा फिर भी? हर कोई अपनी तकलीफ भुगत रहा है।... कोई नहीं जानता मैं क्या भुगत रही हूँ। जो देखता है वह भी तो भोगता है... वह जानना चाहता है... समझता है मैं जानती हूँ... कौन क्या जानता है?... जिसने देखा उसने भी कुछ नहीं जाना... न उसने जिसने भोगा।''

ग़ुलाम बादशाह नाटक एक ऐतिहासिक, राजनीतिक घटनाक्रम पर आधारित है। जिसमें इल्बरी वंश के बल्बन के अन्तिम दिनों के जीवन के अंतर्द्वंद को लेकर लिखा गया नाटक है इसके केन्द्र में बल्बन और इसके अलावा सारा का सारा राजनीतिक परिदृश्य दिखाई देता है। बारह-दृश्य (प्रवेशों) में विभक्त यह नाटक पूरी तरह से ऐतिहासिक परिवेश लिए हुए है।

रंगमंचीय-काव्य से समृद्ध प्रभावशाली संवाद और सुगठित संरचना इस नाट्यलेख की प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं। इनके संवाद काफी प्रभावशाली एवं सशक्त जान पड़ते हैं। बल्बन के इस कथन से समझ सकते हैं- ''सत्ता मेरी रूहानी जरूरत

है यानी केवल गुलामी से मुक्त होना वह नहीं चाहता है यानि उसके अन्दर सत्ता की झलक उतनी नहीं जितना कि उसका डर। यानि खुद सुल्तान बनने के बावजूद गुलामी का डर उसके मन से निकल नहीं पाया। खुद बल्बन के ही शब्दों में, हाँ, ये दरबार की शान शौकत, ये नंगी तलवारों के घेरे उमरा के खौफजदा चेहरे, बाजार में लटकती हुई लाशे हमारी रूहानी जरूरियात हैं फ़खरूद्दीन। वजूद ही बेमानी है इनके बिना।'' जो व्यक्ति बाहर से इतना साफ-इन्साफ पसंद करने वाला, बहादुर पाक साफ तथा अटूट तथा भीतर से घोर स्वार्थी, आत्मसीमित चालाक, क्रूर, लालची, नफरत से कूट-कूट भरा, अकेले एवं डरे हुए बल्बन के अन्तर्विरोधी चरित्र का मूल उसकी इस कुण्ठा में ही दिखाई देता है। इसी वजह से वह अपने करीबी तथा शम्सी खानदान के किसी भी व्यक्ति को जिन्दा नहीं देखना चाहता है। बल्बन की क्रूर राजनीति पर शहजादी बेगम और बुगरा खां के बीच हुए संवाद के जरिए इस तथ्य को और बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

बुगरा खाँ: कितना बदकिस्मत है वह बाप, जिसे बेटे की जरूरत है, पर उसे बुलाना उसकी सियासत को रास नहीं आयेगा और कितना बदकिस्मत है वह बेटा, जो अपने भाई की मौत पर बाप से मिल नहीं सकता क्योंकि उसका बाप सुल्तान है।

शहजादी बेगम: सुल्तान बेटे पर तो क्या खुद पर भी शायद ही भरोसा करते हैं।

बुगरा खाँ: तंज नहीं, बेगम। आखिर मेरे वालिद हैं वे तुम्हारे ससुर।

शहजादी बेगम: जैसे सुल्तान मरहूम मेरे वालिद और आप के ससुर नहीं थे?

बुगरा खाँ: खुदा गवाह है मेरा। तुम्हारे आगे हमेशा गुनहगार पाता हूँ खुद को।

शहजादी बेगम: जानती हूँ। आप हर्गिज जिम्मेदार नहीं है उस सबके।

बुगरा खाँ: पफर मेरी तकलीफ को समझती क्यूँ नहीं?

शहजादी बेगम: उसकी भी तो तकलीफ होगी कोई जो अपने वालिद के कातिल के लिए बद्दुआ भी नहीं कर सकती क्यूँकि इससे उसके शौहर को तकलीफ होगी।

बुगरा खाँ: जानता हूँ बेगम। और इसके लिए मम्नून हूँ तुम्हारा।''

लम्बे-लम्बे संवादों की भूमिका इस नाटक में देखने को मिलती है। छोटे-छोटे दृश्यों की भूमिका, समय और स्थान का फैलाव, नाटक में बाईस-तेइस पात्रों का होना, बल्बन के अन्तर्मन का द्वन्द्व और असहायता जैसे उद्घाटित करने वाले प्रसंगों की कमी की वजह से यह नाटक एक प्रकार से जटिल नाट्यानुभव का अहसास कराता है। इस नाटक में लम्बे-लम्बे संवाद नाट्य के अभिनय को और अधिक कठिन कर देते हैं। यह नाटक समकालीन भाषा राजनीति पर तीखा व्यंग्य करता है और इस तरह से प्रभावशाली काव्य-संवाद इस नाटक की मुख्य और प्रभावशाली विशेषता मानी जाती है।

'हस्तिनापुर' नाटक महाभारत कालीन पौराणिक पात्रों पर आधारित एक ऐतिहासिक नाटक है। इसमें भी गुलाम बादशाह नाटक की तरह राज्य के सिंहासन पर एक राजा के होने की चिंता है। सत्यवती, अम्बिका, विदुर, भीष्म, व्यास के रक्त-कुल का गहरा विश्लेषण है। यह तत्कालीन स्त्री की त्रासदी की सीमा और सम्भावना की कथा कहता है। इस नाटक के केन्द्र में अम्बिका, शुभा, विदुर, भीष्म आदि पात्रों के प्रसंग के रूप का सूक्ष्म चित्राण किया गया है। लेखक ने शुभा, व्यास के प्रसंग को शुभा कुंती प्रसंग से कुशलतापूर्वक जोड़कर अतीत और वर्तमान की तारतम्यता को रेखांकित कर दिया है। यद्यपि नंदकिशोर आचार्य का यह मानना है- ''अतीत की शैलियों की बजाए हमें उनकी मूल भाव दृष्टि और नाट्य सम्वेदना के आधार पर समकालीन रंग प्रक्रिया और शैलियों का आविष्कार करना होगा।'' यह पूरा नाटक विदुर के घर के एक ही दृश्यबंध पर एक ही रात में शुभा और कुंती के वार्तालाप के रूप में घटित होता है। जिस तरह राजसत्ता पर उपयुक्त उत्तराधिकारी का चयन जहाँ भीष्म और सत्यवती के तर्कों पर ही जाता हुआ दिखाई देता है अम्बिका और सत्यवती के बीच के संवाद को इस तरह से समझा जा सकता है-

सत्यवती: सो तो जानती हूँ। पर कुछ बातें तो तुमसे ही करनी होगी, बेटी। मुझे तो चिन्ता खाये जा रही है कि इस राज्य का क्या होगा।

भीष्म किसी भी स्थिति में राज्य का दायित्त्व लेने में सहमत नहीं। बिना राजा के राज्य कैसे चल सकता है? कुरुवंश को एक उत्तराधिकारी मिले तभी इस समस्या से छुटकारा है। अब तुम्ही सहायता करो, बेटी।

अम्बिका: मैं अभागी कर ही क्या सकती हूँ माँ?

सत्यवती: तुम्हीं कर सकती हो, बेटी। बचन दो कि मुझे निराश नहीं करोगी।

अम्बिका: आपकी इच्छा का मुझसे कभी उल्लंघन हुआ है माँ?

सत्यवती: इसी विश्वास पर तो अभी तय कर आयी हूँ।

उत्तराधिकारी आवश्यक है, बेटी। राज्य के लिए भी और वंश के लिए भी। तुम बहिनों में से किसी को भी सन्तान होती तो समस्या नहीं थी। अब यही हो सकता है कि विचित्र वीर्य के क्षेत्र में नियोग से पुत्र प्राप्त किया जाय। इसलिए तुम्हारे पास आयी हूँ बेटी। भीष्म की भी इस में स्वीकृति है।

अम्बिका: लेकिन... इतना शीघ्र...

सत्यवती: मैंने कहा न, तुम्हारा यह तुस्नान व्यर्थ नहीं जाने देना चाहती मैं। पूरे मन से सेवा करना अपने देवर की। वह पूर्ण सन्तुष्ट तभी होगा जब नियोग सार्थक हो सकेगा। नियोग में दोनों की पूर्ण सन्तुष्टि होनी चाहिए। मुझे यही कहना है। बाकी तुम स्वयं समझती हो। मेरे विश्वास को ठेस न पहुँचे, अम्बिका।'' उत्तराधिकार के प्रश्न को इस तरह से अम्बिका और सत्यवती के बीच आपसी वार्तालाप नाटक को और भी प्रभावशाली एवं सार्थकता के साथ दर्शकों तक सम्प्रेषित करने में सफल होता है। परन्तु नाटककार ने चार फ्लैश बैक दृश्यों के माध्यम से इस एकरस श्रव्यता को तोड़कर जीवंत दृश्य में बदल दिया है। लेकिन नाटककार की स्त्री पुरुष सम्बन्ध सम्बन्धी मूल्य दृष्टि, मौलिक व्याख्या विशेषतः अम्बिका, भीष्म प्रसंग में, और 'देवर' शब्द की गलतफहमी के कारण भीष्म के साथ नियोग के लिए तैयार होना और अम्बिका के सामने अचानक मुनिव्यास का आना आदि प्रसंग नाटक को अत्यंत जीवंत एवं प्रभावशाली सिद्ध करते हैं। इस नाट्य संदर्भ में डॉ. जयदेव तनेजा का कहना है कि, ''नंदकिशोर आचार्य का दूसरा नाटक 'हस्तिनापुर में संस्कृतनिष्ठ, काव्यधर्मी, बिम्बात्मक, मिताव्ययी, प्रवाहपूर्ण और तनाव वहन कर सकने में समर्थ व्यंजनामयी रंगभाषा का सार्थक उपयोग करके स्वयं को आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य का एक महत्त्वाकांक्षी नाटककार सिद्ध कर दिया है।''

'पागलघर' नाटक में स्वतंत्राता के उपरान्त उत्पन्न अव्यवस्था का विरोध करने वाले स्वतंत्र लेखक को पुलिस, नेता एवं प्रशासन सभी मिलकर पागल करार देते हैं। यहां पांच दृश्यों (प्रवेशों) एवं छः सात पात्रों के बीच निर्मित नाटक में संवादों को बड़े सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रत्यक्ष रूप से राजनीति व्यंग्य या सत्ता पर प्रहार दिखाई देने वाले संवाद प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के अन्तर्मन का भय सामने लाते हैं। इसलिए जो आरोप, प्रत्यारोप लगाये जाते रहे हैं, वह बहुत ही भोंथरे, थोथे दिखाई देते हैं, जैसे- टी.वी. नहीं देखते, पतलून नहीं पहनते, देर रात तक पढ़ते हैं, गिलास बाएँ हाथ से क्यों उठाते हो?

इन सब आधारहीन आरोपों का विरोध करता है लेखक।

अफसर: आप फिर भूलते है। कानून तो सजा देता है। अपराध हम करते हैं।

लेखक: तो कर लो मुझे गिरफतार। दिला दो सजा।

अफसर: नहीं जनाब। गिरफतार क्यों करेंगे आप को? हम आप का इलाज करवायेंगे।

लेखक: इलाज?

सिपाही: हाँ, इलाज।''

'पागलघर' नाटक में इस तरह के छोटे-छोटे संवाद शैलियों से युक्त शब्द इसको सारगर्भित एवं प्रभावशाली तरीके से अपनी बात को पाठकों एवं दर्शकों के सामने प्रदर्शन करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

'पागलार', 'जूते' तथा 'किसी और का सपना' जैसे नाटकों में भाषा, संवाद शैली और शिल्प पूर्व चर्चित नाटकों से भिन्न प्रकार के हैं। इनमें व्यंग्य के साथ-साथ फैंटेसी का अचूक मिश्रण भी देखने को मिलता है।

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो.: 8010776556

नाट्य-चिंतन

आज़ादी का अमृत महोत्सव

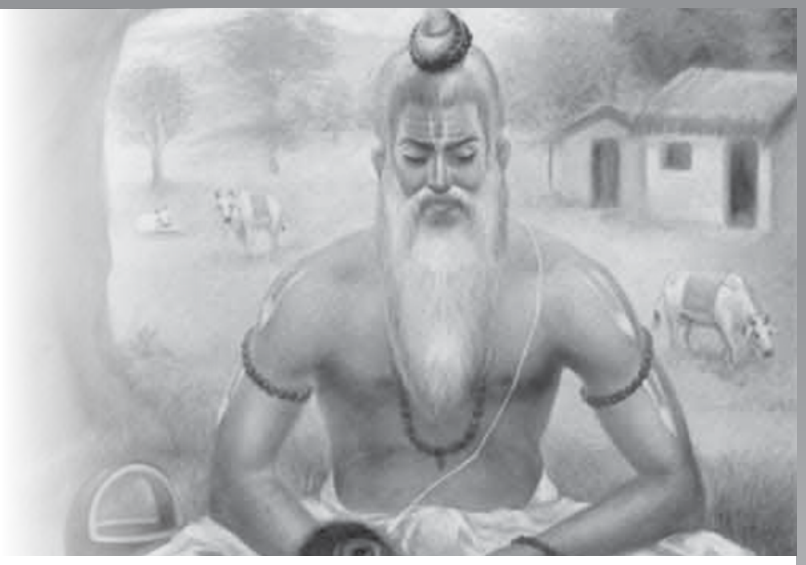

भरतमुनि, भारतेन्दु की नींव पर खड़ा रंगमंच

– चित्रा देसाई

"भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के बाद कुछ सालों तक हिंदी में कलात्मक और मौलिक नाटकों का अभाव रहा। १९१२ में फिर नाटकों का पुनरुत्थान हुआ। जयशंकर प्रसाद के साहित्यिक नाटकों की परम्परा से नाटक साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। फिर देश स्वतंत्र हुआ। २८ जनवरी, १९५३ को संसद का सेन्ट्रल हॉल राजनेताओं और कलाकारों से भरा हुआ था। ये सत्र भारतीय संस्कृति के लिए समर्पित था। उस दिन दिल्ली में 'संगीत नाटक अकादमी' का गठन हुआ। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा "जिस सांस्कृतिक विरासत को हमने अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में पाया है उसे हमें न केवल सुरक्षित रखना चाहिए वरन् उसे हम समृद्ध बना सकें, ऐसा प्रयास करना है।" अकादमी की स्थापना से देश में संगीत और नाटक जगत में आशा की एक लहर जागी। अकादमी ने देश की कला परम्पराओं और रूपों की तमाम बिखरी सामग्री का संकलन किया।"

नाटक, कथाओं की यात्रा का एक पड़ाव है। कहानी के पात्र वेशभूषा, हाव-भाव और संवाद के माध्यम से एक कहानी सुनाते हैं; कभी पौराणिक, ऐतिहासिक और कभी अपने वर्तमान समय की। मंच से कही जाने वाली कथा पहले वाचिक रूप में आयी। अनौपचारिक रूप से हमारे घरों और गाँव की चौपाल से शुरू होकर मंच पर पहुँची होंगी कथाएँ। कहीं कविता, गीत गूँजे, कहीं वाक्, चौपाई और कहीं कहानी किस्से.....। बाँसों के ऊपर लकड़ी के पट्टे बिछा, सामने पर्दा टांग, दर्शकों में कौतूहल जगाना कब शुरू हुआ होगा ? पर्दा खुलते ही पात्रों के संवाद बोलते कलाकार कब से हमें आनंदित कर रहे हैं? बात यहाँ ७५ सालों की है, लेकिन हमारी कलाएँ तो सदियों पहले जन्मीं, धीरे-धीरे बढ़ीं। अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हर राज्य में अलग-अलग रूप में विकसित हुईं, पर यहाँ हिंदी रंगमंच की बात है। वर्तमान को समझने के लिए चलिए थोड़ा अतीत में झाँकते हैं–

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक के विकास की प्रक्रिया लिखी है। नाट्यकला की उत्पत्ति दैवी है अर्थात दुःख रहित सतयुग बीत जाने पर त्रेता युग के आरम्भ में देवताओं ने ब्रह्मा से मनोरंजन का कोई ऐसा साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की, जिससे देवता लोग अपना दुःख भूल कर आनंद प्राप्त कर सकें। इसके फलस्वरूप उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाटक का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने रंगमंच बनाया। 'नाट्यशास्त्र' ही नाट्यविधा का सबसे मौलिक ग्रन्थ माना जाता है। नाटकों का विकास चाहे जिस प्रकार हुआ हो, संस्कृत साहित्य में नाट्यग्रन्थ और अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे गए। साहित्य में नाटक लिखने की परंपरा संस्कृत से ही हुई। नाट्यशास्त्र की एक महत्वपूर्ण कड़ी कालिदास को कैसे भुलाया जा सकता है! उनकी अन्य रचनाओं के साथ 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' सबसे प्रसिद्ध रचना है। यह नाटक कुछ उन भारतीय साहित्यिक कृतियों

में से है जिनका सबसे पहले यूरोपीय भाषा में अनुवाद हुआ। यह नाटक आज भी मंच पर अपनी जगह बनाए हुए है।

साहित्य में नाटक लिखने की परम्परा संस्कृत से होती हुई फिर हिंदी में आयी। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार "तेरहवीं शताब्दी में एक ओर कण्हपा काल से चली आनेवाली 'स्वांग' की नाट्य परम्परा थी, जिसके नाटक डोम और डोमनियों द्वारा अभिनीत होते थे। दूसरी परम्परा 'रास' की थी जिसका अभिनय बहरूपिये तथा जिणसेवक किया करते थे। मध्यम वर्ग में दूसरी परम्परा अधिक प्रचलित हुई। इनके विषय धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, अध्यात्मिक, नैतिक और लौकिक प्रेम सम्बन्ध होते थे।

बौद्ध दर्शन के दुखवादी दृष्टिकोण से प्राचीन संस्कृत नाटकों की रसवादी या आनंदवादी परम्परा पर गहरा आघात पहुँचा। उसी तरह मुगल काल में नाटकों को बिल्कुल प्रोत्साहन नहीं मिला और उनकी कट्टर सामाजिक नैतिकता ने हिंदी नाटकों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। ढाई- तीन सौ सालों तक प्रेक्षागारों का लगभग लोप सा हो गया था परन्तु भारत में लोककला के माध्यम से नाटक जीवित रहे। सांस्कृतिक समृद्धि धीरे-धीरे जन-जन के मन में पनपती रही। पूरे भारत में किसी न किसी रंग में मंच सजते रहे। उत्तरभारत में 'लीला', 'रास', 'नौटंकी', 'रामलीला', मध्यभारत में 'माच' राजस्थान में 'खयाल' गुजरात में 'भवाई', बंगाल में 'जात्रा', बिहार में 'किर्तिनिया', महाराष्ट्र में 'दशावतार' दक्षिण में 'यक्षगान' ... सबने मिलकर हिंदी रंगमंच को समृद्ध किया। जनता अपनी धार्मिक, वीरपूजा की प्रवृत्ति को 'रासलीला', 'स्वांग', 'पूरन भगत', 'आल्हा-ऊदल', इंदल राजा का ब्याह आदि के अभिनय से संतुष्ट करती रही|

मुगल काल में नाटक की बंजर भूमि को खाद-पानी दिया ईस्ट इंडिया कम्पनी ने। अंग्रेजों ने अपने मनोरंजन के लिए बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पटना आदि बड़े-बड़े नगरों में अभिनयशालाओं की स्थापना की। उन्होंने सन् १७७६ में प्रथम रंगशाला 'प्ले हाउस' नाम से कलकत्ते में स्थापित की। १७७७ में 'कलकत्ता थियेटर' की स्थापना हुई। भारतेन्दु के अनुसार हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक नाटक 'नहुष' उनके पिता गोपालचंद्र ने १८५९ में लिखा। ३ अप्रैल, १८६८ को बनारस में मंचित पंडित शीतल प्रसाद त्रिपाठी के नाटक 'जानकीमंगल' को हिंदी का पहला मंचित नाटक माना जाता है। इस प्रकार हिंदी नाटकों और उसके मंचन का डेढ़ सौ वर्षों का इतिहास हमारे सामने है।

हिंदी नाटकों का भाग्योदय तो 'भारतेन्दु' के साथ ही हुआ। भारतेन्दु ने कितने ही नाटकों की सृष्टि की! ये नाटक सामाजिक, राजनैतिक, पौराणिक और प्रेमतत्व सम्बंधित थे। भारतेन्दु की यह देन हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। समय को पहचानने की इनमें अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने हिंदी के साहित्यिक नाटकों की परंपरा को जन्म दिया। सन् १८८३ में इन्होंने हिंदी में नाट्यशास्त्रों की रचना की। भारतेन्दु की अकेली प्रतिभा ने हिंदी नाटक साहित्य, हिंदी नाट्यशास्त्र, हिंदी रंगमंच की स्थापना की। इस दौरान कितने ही नाटकों का मंचन हुआ परन्तु पहले नंबर पर आता है भारतेन्दु का अंधेर नगरी। कहा जाता है कि बनारस की किसी नाट्य मंडली के आग्रह पर एक रात में इस नाटक को लिखा गया था। दूसरे दिन दशाश्वमेध घाट पर इसका मंचन हुआ। सन् १८८१ से लेकर आज तक यह नाटक लगातार खेला जा रहा है और आज भी उतना ही प्रभावशाली और प्रासंगिक है।

भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के बाद कुछ सालों तक हिंदी में कलात्मक और मौलिक नाटकों का अभाव रहा। १९१२ में फिर नाटकों का पुनरुत्थान हुआ। जयशंकर प्रसाद के साहित्यिक नाटकों की परम्परा से नाटक साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। फिर देश स्वतंत्र हुआ। २८ जनवरी, १९५३ को संसद का सेन्ट्रल हॉल राजनेताओं और कलाकारों से भरा हुआ था। ये सत्र भारतीय संस्कृति के लिए समर्पित था। उस दिन दिल्ली में 'संगीत नाटक अकादमी' का गठन हुआ। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा "जिस सांस्कृतिक विरासत को हमने अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में पाया है उसे हमें न केवल सुरक्षित रखना चाहिए वरन् उसे हम समृद्ध बना सकें, ऐसा प्रयास करना है।" अकादमी की स्थापना से देश में संगीत और नाटक जगत में आशा की एक लहर जागी। अकादमी ने देश की कला परम्पराओं और रूपों की तमाम बिखरी सामग्री का संकलन किया। अकादमी ने सारे देश के नाटककारों, नाट्य समीक्षकों, अभिनेताओं और निर्देशकों को एक सूत्र में बाँधा। अकादमी ने नाटक परम्परा को बढ़ावा देने के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। १९५९ में रंगमंच का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना की। १९७५ में इसे स्वतंत्र संस्थान का दर्जा दिया। भारत में अपनी तरह का यह एक मात्र संस्थान है। इसका उद्देश्य रंगमंच का इतिहास, प्रस्तुतीकरण, दृश्य डिजाइन, वस्त्र डिजाइन, प्रकाश व्यवस्था और रूपसज्जा सहित रंगमच के सभी पहलुओं का प्रशिक्षण देना है। इस संस्थान के नाम के साथ ही श्री इब्राहीम अल्काज़ी का जिक्र करना जरूरी हो जाता है। अनुशासन के साथ-साथ उन्होंने

नाटकों को बहुत बड़ा फलक दिया। १९६३ में फ़िरोज शाह कोटला के खंडहरों को मंच बना उन्होंने डॉ. धर्मवीर भारती के काव्य नाटक 'अंधा युग' को एक अलग ही ऊँचाई पर पहुँचा दिया। एक लेखक और निर्देशक या कहें कल्पना और यथार्थ का ऐसा अद्भुत समन्वय कभी-कभी होता है।

'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' ने हिंदी रंगमंच को पंख दिये और विदेशी और क्षेत्रीय भाषाओं के नाटकों का हिंदी में अनुवाद और मंचन कर अलग-अलग परिवेश से दर्शकों का परिचय कराया। एक तरफ डॉ. धर्मवीर भारती का ऐतिहासिक काव्य नाटक 'अंधा युग' था, दूसरी तरफ़ मोहन राकेश थे जिन्होंने 'आधे-अधूरे' जैसे मौलिक हिंदी नाटकों की रचना की। इस दौरान नाट्य रचना क्षेत्र में ही नहीं नाट्य निर्देशन और अभिनेताओं के क्षेत्र में भी नयी प्रतिभाओं का उदय हुआ। एक अन्य महत्वपूर्ण बात का उल्लेख करना जरूरी है, 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' का एक 'रंगमंडल' है, जो हर साल देश के छोटे-छोटे कस्बों और नगरों में चार-पाँच नाटक लेकर जाता है। यहाँ पिछले सात दशक में लोकप्रिय निर्देशक, लेखक, अभिनेता और नाटक की परिकल्पना में नेपथ्य से जुड़े कलाकारों का नाम दें तो पूरी पत्रिका ही कम पड़ जायेगी। इतना कहना काफी है कि इस नाट्य यात्रा में बहुत से सक्रिय और प्रतिष्ठित कलाकारों का योगदान रहा है।

एक और बड़ी बात जो स्वतन्त्रता के बाद सामने आयी वह है, अव्यावसायिक रंगमंच का विकास। इससे पहले रंगमंच की गतिविधियाँ व्यावसायिक संस्थाओं तक सीमित थीं परन्तु स्वतन्त्रता के बाद अनेक अव्यावसायिक संस्थाओं ने गहन रूप से रंगमंच के प्रति दिलचस्पी दिखाई। आज रंगमंच का असली रूप इन संस्थाओं के समर्पित प्रयास की देन है। सरकारी संस्थाएँ अपना कार्य अपनी तरह से कर रही हैं, पर कलाओं को सहजने के लिए ग़ैर सरकारी संस्थाओं को भी अपनी भूमिका निभानी चाहिए। एक अहम् बात- हिंदी रंगमंच की अनेक समस्याओं की जब भी बात होती है तो 'दर्शक' वर्ग की समस्या सबसे पहले आती है और यह प्रश्न उठता है कि हिंदी रंगमंच का दर्शक कहाँ है? एक विशेष वर्ग हिंदी नाटक देखने जाता है परन्तु मानवीय सम्बन्धों के आख्यान सुनने के लिए कलाओं के प्रति दर्शक की सम्वेदना बनी रहनी भी बहुत आवश्यक है|

लोकमंच की विशेषता यह होती है कि इसमें समसामायिक जीवन की झलक मिलती है। नौटंकी, स्वांग, तमाशे में समाज के सारे पक्ष जुड़ते चले जाते हैं और हम अपनी बात कहने के अवसर तलाश ही लेते है। मुझे अपने गाँव में ठिठुरती सर्दियों में, खुले मैदान में आल्हा ऊदल सुनना अभी भी याद है। बहुत कम महिलाएँ सुनने जाती थीं पर खेस ओढ़कर बड़ी-बड़ी लालटेन की रौशनी में बिखरी कथाएँ अभी भी याद हैं। 'नरसिंह भगत' का 'भात' सुनते हुए नम आँखों की संवेदना अभी भी मन को गीला करती है। पर शुरुआत से पहले एक पात्र हँसी-मज़ाक करता हुआ आस-पास की घटनाओं पर कुछ कहता। फिर ठहाके लगते। बड़ी हुई तो पाया कि संभ्रांत मंच की भाषा बिल्कुल अलग है और वह अपने विशिष्ट होने का दम भी भरता है। हिंदी के लोकमंच की स्थिति शहरी प्रभाव के कारण बदली लेकिन रामलीला, जो युगों से चली आ रही है उसने लोकमंच की प्रतिष्ठा बनाए रखी। गाँव में रामलीला से पहले कितनी बार छोटे-छोटे प्रसंग दिखाते थे। वे सब स्वरचित, तात्कालिक, अनौपचारिक वार्तालाप होते। यही लोक रूपों की विशेषता थी और शक्ति भी। गाँव में नट, बहुरूपिये होते, पर उनकी आनेवाली पीढ़ी ने यह सब नहीं सीखा क्योंकि हमने उनकी कला को सम्मान नहीं दिया। आर्थिक सुरक्षा भी नहीं। बहरहाल यदि नाटक से जुड़े सभी कलाकार, रचनाकार आर्थिक सुरक्षा और दर्शक की वाजिब माँग करते हैं, तो उनसे भी अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह हमारी लोक-संस्कृति और वर्तमान समस्याओं तथा संबंधों एवं संवेदनाओं की भी बात करें।

पिछले ७५ सालों में हिंदी रंगमंच खूब फला-फूला। यूँ तो इसकी जड़ें 'रामलीला' और 'रासलीला' से जुड़ी हैं पर आज महानगर के साथ-साथ शहर, कस्बों में भी सरकारी और ग़ैर सरकारी सांस्कृतिक संस्थानों की सहायता से नाटक अपने विभिन्न रूपों में दर्शकों को आनंदित कर रहा है। सामाजिक मुद्दे हों, व्यक्तिगत संबंधों की बुनावट की बात हो या पौराणिक चरित्र की, सभी विषयों पर बड़े नाटकों के साथ-साथ 'एकांकी नाटक', 'नुक्कड़ नाटक' और 'एकल' प्रस्तुतियाँ भी हो रही हैं। हम आशा करते हैं कि आनेवाले समय में नाटक मनोरंजन के साथ-साथ लोक चेतना और बदलाव के लिए भी प्रेरित करेंगे और हिंदी रंगमंच समाज में सकारात्मक ऊर्जा बनाए रखने में सफल हो सकेगा।

❖

3ए-302, ऑकलैंड पार्क, यमुना नगर, लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (वेस्ट) मुंबई - 400053 मो. 9820059147

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मीडिया के बदलते प्रतिमान

– डॉ. ऐश्वर्या झा

साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है जिसमें समाज के अलग-अलग पक्षों को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'पत्रकारिता 'भी समाज का ऐसा दर्पण है जिसमें विश्व, देश, समाज या आस -पास घटने वाली समस्त सत्य घटनाओं को देखा जा सकता है, यदि यह दर्पण मैला हो जाये या टूटने लगे अर्थात घटनाओं की सत्यता, निष्पक्षता संदेहास्पद हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ खतरे में है। 'उदन्त मार्तण्ड 'से उदित हुआ हिंदी पत्रकारिता का सूर्य लगातार अपनी चमक बिखेर रहा है, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों, इंटरनेट के प्रसार, डिजिटल क्रांति ने उसकी रोशनी में वृद्धि ही की है परन्तु उसकी चमक भी कई बार मद्धिम होती दिखाई देती है। इसका प्रमुख कारण पत्रकार और सम्पादकों का व्यवसाय केंद्रित होना है।" समाज और समाज के सन्दर्भ में सजग रहकर नागरिकों में दायित्वबोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं ... असत्य, अशिव और असुंदर पर सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की शंख ध्वनि ही पत्रकारिता है।"[1]

पत्रकारिता का उद्देश्य इससे इतर कुछ हो ही नहीं सकता। पत्रकारिता के प्रारम्भ से ही उसकी स्वतंत्रता, उसकी नीतियों, समाज के प्रति उसके कर्तव्यों पर लगातार बहस होती रही है। किन्तु इक्कीसवीं सदी में जब इंटरनेट के प्रसार के कारण और मोबाइल क्रांति के कारण हर व्यक्ति पत्रकार होता जा रहा है, ऐसे समय में अख़बारों और चैनलों की आपसी प्रतिस्पर्धा, खुद को सबसे बेहतर दिखाने की होड़ पत्रकारिता को एक दलदल में फंसाती जा रही है। आज जब हम स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव मना रहे हैं तब इस पर विचार करना और भी आवश्यक हो जाता है कि लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ आज क्यों प्रश्न के घेरे में है या जन सरोकार की भावना क्यों समाप्तप्राय है। पत्रकारिता का स्वर्णिम अतीत क्यों नहीं

> ***"जनता को जानकारी देना, उसे जागरूक बनाना हर समय में पत्रकारों की ज़िम्मेदारी है। लेकिन आज की स्थिति विपरीत होती जा रही है। अब यह 'पुनीत वृत्ति' नहीं, बल्कि विज्ञापन के जाल में उलझी नौकरी बन कर रह गयी है।पत्रकार का न्यायाधीश के समान निष्पक्ष और सिपाही के समान निडर होना अपेक्षित है। सरकार के द्वारा या अन्य संस्थानों की बनायी आचार संहिता की बजाय उसे स्वयं की आचार संहिता को लागू करना चाहिए।संकल्प, प्रतिबद्धता, जनसेवा, कर्तव्यनिष्ठा कभी पत्रकार और पत्रकारिता के उद्देश्य रहा करते थे । पत्रकार कभी राजनीति या पूंजीवाद के मोहरे नहीं बनते थे। उनका काम जनता को जागृत, सूचित करना था। स्वतंत्रता से पूर्व के पत्रकारों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बिना डरे लोहा लिया था। हिंदी पत्रकारिता के पितामह कहे जाने वाले गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने पत्र 'प्रताप 'के पहले अंक में ही ' प्रताप की नीति 'शीर्षक लेख से पत्रकारिता के मानदंड ही निर्धारित कर दिए थे।"***

आदर्श बन पा रहा है। स्वतंत्रता का यह अमृत वर्ष पत्रकारिता के आदर्श मानकों और प्रतिमानों को पुनर्जीवित करने का वर्ष होना चाहिए।क्योंकि भारतीय पत्रकारिता का उच्चादर्श राष्ट्रीयता की चेतना से अनुप्राणित रहा है स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारों के त्याग और बलिदान की कहानियां आज भी प्रेरणादायक हैं। भारतीय पत्रकारिता के विकास की कहानी को भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी कहा जाये तो गलत नहीं होगा।

आज पत्रकार और पत्रकारिता के प्रतिमान बदल गए हैं या बदल दिए गए हैं। बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, विष्णुराव पराड़कर, धर्मवीर भारती जैसे महान सम्पादकों की श्रृंखला आज समाप्तप्राय सी हो गयी है जिसका प्रमुख कारण मीडिया और पत्रकारिता का घोर व्यावसायिक होना है। डिजिटल क्रांति के तकनीकों ने मीडिया के क्षेत्र को पूरी तरह बदलकर रख दिया है। विज्ञापन के प्रभाव से यह क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। चाहे वो अखबार का पहला पृष्ठ हो या न्यूज़ चैनल का समाचार बुलेटिन, खबरें नहीं होतीं। पहले पृष्ठ पर ही रंग -बिरंगे विज्ञापन और चैनलों में 'स्पोंसर'(प्रायोजक)।समय और स्थान जब विज्ञापन ले रहे हैं तब उनमें ख़बरों की सत्यता की जगह ही कहाँ रहती है। गरीब जनता के सुख -दुःख तक न कैमरा पहुँच पा रहा और न उनकी बेहाल ज़िन्दगी पर खबर ही छप रही है। "पूरी पत्रकारिता अमीरों के आंगन में नाच रही है। मीडिया की वर्तमान स्थिति बहुत भयानक है। जैसे माफिया डॉन होते हैं, वैसे मीडिया डॉन बन रहे हैं। फिर सवाल उठता है कि यह लोकतंत्र का स्तम्भ कैसे बन सकता है? आज भारत में देखें तो समाचार -पत्र के मुख्य पृष्ठ पर सामाजिक सरोकार की खबर का स्थान विज्ञापनों ने ले लिया है, कई अख़बार के पहले पन्ने पर विज्ञापन के रूप में बाज़ार की चकाचौंध से भरे पड़े होते हैं। पहले महत्वपूर्ण खबरें बड़े अक्षरों में रहती थीं एवं विज्ञापन छोटे अक्षरों में। अर्थात यहाँ पैसा काम करता है। इस क्षेत्र में देश, जनता, अस्मिता नाम की चीज़ अब नहीं मिलेगी। मीडिया के घरानों का असली चेहरा यह है कि जो पैसा हमें मालामाल कर रहा है उसके खिलाफ मत बोलो। खबर भी पैसे के हित के सामने रखकर तैयार करो। अर्थात पत्रकार अपने विवेक और चिंतन का उपयोग कर ही नहीं सकते।''[2] जब समाचार पत्र निकालने के साधन सीमित थे, आर्थिक सहायता न के बराबर थी फिर भी अखबार और पत्रकार अपने दायित्व का निर्वाह कर रहे थे। सम्पादक निर्भीक, स्वतंत्र थे, उन पर किसी तरह का कोई दबाव नहीं था। उनका'टारगेट ' मनुष्य था, पूँजी कमाना नहीं। आज की पत्रकारिता की विडंबना यह है कि नए तकनीक की सुविधाओं ने मीडिया की व्यापकता को विस्तार तो दिया किन्तु उसकी वस्तुपरक स्थिति और साख में निरंतर गिरावट आयी है।गैब्रिएल गार्सिआ मार्खेज़ ने कहा है कि "यदि कविता में एक भी सच हो तो पूरी कविता महत्वपूर्ण हो जाती है और समाचार में एक भी झूठ हो तो पूरा समाचार बेकार हो जाता है।''[3] इसलिए पत्रकारों को समाचार की वस्तुपरकता, संवादपरकता, सत्यता की विशेषता को बरकरार रखने की आवश्यकता है। अख़बार हों या टी.वी.चैनल के समाचार उन्हें निर्जीव, मात्र आकर्षक पैकेजिंग की वस्तु बनने से रोकना आज के पत्रकारों और सम्पादकों का दायित्व होना चाहिए। वे पत्रकार और संपादक जो आज किसी कॉर्पोरेट कंपनी के मैनेजर ज़्यादा लगने लगे हैं, उनकी वापसी का मार्ग बनाना अत्यंत आवश्यक है तभी बाजार के वर्चस्व पर नियंत्रण सम्भव हो पायेगा।इंटरनेट की उपस्थिति ने पत्रकारिता और मीडिया के स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। परिवर्तित स्वरूप में अवसर की व्यापकता तो निस्संदेह बढ़ी है साथ ही चुनौतियों ने भी विस्तार पाया है। आज पत्रकारिता और मीडिया के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना। कॉर्पोरेट घरानों के शिकंजे से निकले बिना खोया सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता।

आधुनिक मीडिया का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। वह सूचना देने के साथ साथ शिक्षित भी करता है। जनता को सरकार की नीतियों के बारे में अवगत कराता है।जनमत निर्धारित करने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है और इसी कारण सम्पादकों, रिपोटरों से निष्पक्षता अपेक्षित होती है। पत्रकारिता की स्थिति किसी देश की सरकार की प्रगति, स्वतंत्रता का पैमाना तय करती है। समाज, राजनीति, साहित्य, खेलकूद किसी भी क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाओं का विशलेषण करती हुई मीडिया भविष्यद्रष्टा का महती कार्य करती है। वस्तुतः पत्रकारिता के उद्देश्य की महानता पत्रकार एवं संपादक के कन्धों पर होती है। इस कारण उसे समय और समाज की सही परख होनी आवश्यक है और दायित्वबोध की भावना ही

उसे अन्य पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करनेवालों से अलग करती है। महान सम्पादक विष्णुराव पराड़कर ने पत्रकार की कर्म की शुचिता के सम्बन्ध में लिखा है "पत्रकार का स्थान आधुनिक समाज में बड़े महत्व का है। समाज के जीवन में जिन प्रश्नों पर उचित निर्णय की आवश्यकता होती है और जिन निर्णयों पर समाज का जीवन अंत में निर्भर रहता है, उसके बारे में जनता को योग्य जानकारी कराना, उनके सम्बन्ध में जनता का निर्माण और नेतृत्व करना, उस मत को प्रकट करना तथा उससे अधिक-से-अधिक लाभ जनता को पहुँचाना एक आदर्श पत्रकार का कर्तव्य है। भारत जैसे परतंत्र देश में तो इस कर्तव्य का महत्व और बढ़ जाता है। सच्चे भारतीय पत्रकार के लिए पत्रकारिता केवल एक कला या जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं होनी चाहिए, उसके लिए वह कर्तव्य साधन की एक पुनीत वृति भी होनी चाहिए, क्योंकि हमारे राष्ट्र को परतंत्रता से छुड़ाने के लिए जनजागृति को आवश्यक और अनिवार्य करना भारतीय पत्रकार का उत्तरदायित्व है।"[4]

उक्त कथन अवश्य ही स्वतंत्रता पूर्व लिखा गया है किन्तु इसकी प्रासंगिकता कालातीत है। जनता को जानकारी देना, उसे जागरूक बनाना हर समय में पत्रकारों की ज़िम्मेदारी है। लेकिन आज की स्थिति विपरीत होती जा रही है। अब यह 'पुनीत वृत्ति' नहीं बल्कि विज्ञापन के जाल में उलझी नौकरी बन कर रह गयी है। पत्रकार का न्यायाधीश के समान निष्पक्ष और सिपाही के समान निडर होना अपेक्षित है। सरकार के द्वारा या अन्य संस्थानों की बनायी आचार संहिता की बजाय उसे स्वयं की आचार संहिता को लागू करना चाहिए।संकल्प, प्रतिबद्धता, जनसेवा, कर्तव्यनिष्ठा कभी पत्रकार और पत्रकारिता के उद्देश्य रहा करते थे । पत्रकार कभी राजनीति या पूंजीवाद के मोहरे नहीं बनते थे। उनका काम जनता को जागृत, सूचित करना था। स्वतंत्रता से पूर्व के पत्रकारों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बिना डरे लोहा लिया था। हिंदी पत्रकारिता के पितामह कहे जाने वाले गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने पत्र 'प्रताप 'के पहले अंक में ही ' प्रताप की नीति 'शीर्षक लेख से पत्रकारिता के मानदंड ही निर्धारित कर दिए थे। इस लेख के ज़रिये उन्होंने पत्रकार की नीति, उद्देश्य स्पष्ट कर दिये थे इसलिए इसे 'पत्रकारिता के घोषणा पत्र ' के रूप में आज भी याद किया जाता है। "किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा, किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेगी. सत्य और न्याय हमारे भीतरी पथ प्रदर्शक होंगे. सांप्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से 'प्रताप' सदा अलग रहने की कोशिश करेगा. उसका जन्म किसी विशेष सभा, संस्था, व्यक्ति या मत के पालन-पोषण, रक्षण या विरोध के लिए नहीं हुआ है, किन्तु उसका मत स्वातंत्र्य विचार और उसका धर्म सत्य होगा।"इसी घोषणा पत्र में उन्होंने पत्रकारिता के उद्देश्यों से भटकाव वाली स्थिति को अपनी मौत माना है। उन्होंने लिखा है कि "जिस दिन हमारी आत्मा ऐसी हो जाए कि हम अपने प्यारे आदर्श से डिग जावें. जान-बूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरुता दिखावें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अंत हो जाए।''[5] ये थी पत्रकारिता और सम्पादकों का महान उद्देश्य।जो अब कहीं भी दिखाई नहीं देती।इंटरनेट क्रांति और बाज़ारवाद ने मीडिया के क्षेत्र को पूरी तरह से बदल के रख दिया है। मध्यम वर्ग के तेज़ी से विस्तार के कारण भी मीडिया का दायरा बढ़ता जा रहा है और इसी कारण मीडिया और पत्रकारिता के बाजार का भी विस्तार हो रहा है। बाज़ार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ही मीडिया का भी बाज़ारीकरण हो रहा है। अखबार, रेडियो, टी.वी.न्यूज़ सभी विस्तार के रास्ते में हैं लेकिन इसी विस्तार ने ही इसका व्यापारीकरण भी किया है। लाभ कमाने को ही मुख्य उद्देश्य मानने वाले पूंजीवादी वर्ग ने मीडिया के क्षेत्र में प्रवेश किया।बाजार में मुनाफ़ा पाने की होड़ में समाचार मीडिया और मनोरंजन जगत के बीच अंतर नहीं के बराबर रह गया है। समाचार के नाम पर मनोरंजन बेचने के कारण आज समाचारों और जन सरोकारों से सम्बंधित सूचनाओं का आभाव होता जा रहा है। ऐसी पत्रकारिता के स्वरूप के कारण हम जानकार नागरिक के स्थान पर गुमराह उपभोक्ता बनते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि समाचार उद्योग के लिए समाचार भी पेप्सी कोक या सैमसंग का कोई उत्पाद हो गया है जिसकी ओर उपभोक्ता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए उसे सुसज्जित किया

जाता है। सनसनीखेज़, पेज थ्री, पीत पत्रकारिता पहले भी इस क्षेत्र में मौजूद रही हैं लेकिन मीडिया के कारोबार ने इसे ही मुख्यधारा में ला दिया है और वास्तविक घटनायें कहीं खो गई हैं। आज कहने को अनेक अखबार, कई न्यूज़ चैनल हैं लेकिन सब एक जैसे ही हैं, विविधता समाप्त हो गयी है।"विविधता समाप्त होने के साथ साथ समाचार माध्यमों में केन्द्रीकरण का रुझान भी प्रबल हो रहा है। हमारे देश में परंपरागत रूप से कुछ बड़े राष्ट्रीय अख़बार थे। इसके बाद क्षेत्रीय प्रेस था और अंत में जिला -तहसील स्तर के छोटे समाचारपत्र थे। नयी प्रौद्यौगिकी आने के बाद पहले तो क्षेत्रीय अख़बारों ने जिला और तहसील स्तर के प्रेस को हड़प लिया और अब राष्ट्रीय प्रेस क्षेत्रीय पाठकों में अपनी पैठ बना रहा है और क्षेत्रीय प्रेस राष्ट्रीय रूप अख्तियार कर रहा है। आज चंद समाचारपत्रों के अनेक संस्करण हैं और समाचारों का कवरेज अत्यधिक आत्मकेंद्रित, स्थानीय और विखंडित हो गया है। समाचार कवरेज में विविधता का अभाव तो है ही, साथ ही समाचारों की पिटी -पिटाई अवधारणाओं के आधार पर लोगों की रुचियों और प्राथमिकताओं को परिभाषित करने का रुझान भी प्रबल हुआ है। भारतीय पत्रकारिता पर कुछ दशक से विचारधारा के संकट का बादल गहराता जा रहा हैं। आम जन के मानस में मीडिया को देखने वाले चश्मे में केवल दो फ्रेम सत्ता के साथ या सत्ता के खिलाफ हो गए हैं जबकि आदर्श स्थिति ये होनी चाहिए थी कि ना सत्ता के साथ ना सत्ता के खिलाफ। स्वतंत्र मीडिया राष्ट्र, समाज और संस्कृति की निरंतरता और भलाई के लिए काम कर ही अपनी विश्वसनीयता को पुनः स्थापित कर सकती हैं । बाजार के दबाव में, भारतीय पत्रकारिता उन मूल्यों को भी लगातार किनारे लगा रही है जिस आधार पर वह खड़ी थी । भारतीय पत्रकारिता में लोकहित से ज्यादा चिंता अपने अपने वैचारिकता के विस्तारवाद को लेकर है। निष्पक्ष पत्रकारिता एवं पावर सेंटर के बीच रिश्ते का स्वरूप गठजोड़ जैसा दिखें ये असंभव असहज स्थिति है। किंतु पत्रकारिता को सरकार का दुश्मन वाली छवि भी नहीं होनी चाहिए । विपक्षी दल का कोई सांसद अगर कुछ गलती कर रहा तो उस से प्रश्न पूछना गलत नहीं हो सकता है किंतु सत्ता की गलती को माफ़ कर, विपक्ष की पुरानी गलती को याद दिलाना कभी भी तर्कसंगत नहीं हो सकता है। सरकार के काम काज के प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी तंत्र का माध्यम मोटे बजट के साथ मौजूद है, मीडिया का काम उनकी जय जय करना नहीं बल्कि उनकी कमजोरियों को ढूंढ़ने और उन्हें उजागर करने के लिए होती है। मीडिया सूचना का सबसे बड़ा एवं सशक्त माध्यम है। प्रेस की स्वतंत्रता का सीधा रिश्ता मीडिया स्वामित्व संरचना से है। यदि स्वामित्व एक कॉर्पोरेट समूह के हाथों में रहता है, जिसका जुड़ाव एक ख़ास राजनीतिक दल से हो तो इसका परिणाम प्रेस स्वतंत्रता में गिरावट और अस्वस्थ लोकतंत्र का रूप ही हो सकती है ।

"पत्रकारिता के समक्ष चुनौतियां हमेशा से आती रही हैं और हर चुनौती का सामना करते हुए आज वह इस स्वरूप तक पहुंचा है। आज सबसे बड़ी चुनौती है उसकी गिरती साख। पत्रकारिता की गिरती साख लोकतंत्र के लिए भी शुभ संकेत नहीं है। जनसरोकारों से दूर जाने के कारण इसकी प्रभावशीलता भी संदेह के घेरे में है। आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता को पुनः उसके उचित स्थान पर प्रतिस्थापित, प्रतिष्ठित करना होगा। समय रहते मीडिया समूह तथा संपादक वर्ग आत्मचिंतन कर पत्रकारिता के बदलते प्रतिमान को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ -सूची

1. जाधव रविन्द्र, मोरे केशव (सं.):मीडिया और हिंदी बदलती प्रवृत्तियां, वाणी प्रकाशन, 2016, पृ.सं.30
2. वही, पृ.सं.20
3. नाथ शम्भू, (सं.):आज का मीडिया, वाणी प्रकाशन, 2000, पृ.सं.11
4. जैन रमेश, मीडिया समग्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2014, पृ.सं.52
5. https://ncert.nic.in/textbook/pdf/kham102.pdf&ved, (10 दिसंबर को उपलब्ध)
6. वही

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)
पता-193, गंगोत्री अपार्टमेंट एफ -ब्लॉक, विकासपुरी, दिल्ली 110018
मोबाइल: 9810407023 ईमेल : aishwarya@ss.du.ac.in

भारतेंदुयुगीन हिंदी पत्रकारिता की प्रकृति

– डॉ. शैलजा

हिंदी केवल एक भाषा नहीं, यह एक जाति है। एक आंदोलन है। जातीय चेतना का विकास तथा सांस्कृतिक आंदोलन की महागाथा है- हिंदी का इतिहास। हिंदी के इतिहास में अनेक मोड़ आए और ये सभी मोड़ नई जातीय चेतना से संपृक्त मोड़हैं तथा राष्ट्रीय धारा और राष्ट्रीय बोध तथा चेतना को नए सांस्कृतिक आंदोलन से प्रभावित करने वाले मोड़हैं। मेरे कथन का साक्षी है भक्तिकालीन आंदोलन और आधुनिक कालीन नवजागरण की चेतना। यह सच है कि रीतिकाल के दौर में हिंदी साहित्य लोक से कटा किंतु ऐसा भी नहीं है कि उसमें लोक पूर्णतया अनुपस्थित हो। यद्यपि इस काल के साहित्यिक विकास में एक नवीन जीवन-शैली, एक नई संस्कृति-दरबारी संस्कृति पुष्पित और पल्लवित हुई। बोध का धरातल बदला किंतु रीतिकाल के उत्तरार्ध के पहले ही गद्य-साहित्य का प्रादुर्भाव हो चला था। गद्य-लेखन का सूत्रपात कहीं-न-कहीं मुद्रण और यांत्रिक उत्पाद का आधार भी बना और उसमें इसे सहायता भी मिली। यह काल अंग्रेजों के स्थापित होने का समय था। वे व्यवस्थित हो चुके थे। भारत की शासन-सत्ता उनके हाथ में थी। एक तरफ जहां वे भारतीय संसाधनों के शोषण में लीन थे वहीँ अपने औद्योगिक प्रचार-प्रसार द्वारा भारतीय शिल्प और कला को नेस्तनाबूद करने में भी जुटे हुए थे। उनकी नई खोजों और औद्योगिकीकरण का ही परिणाम था भारत में मुद्रण मशीनों का आयात और निर्माण। यद्यपि इन सबका विकास उन्होंने अपनी सुविधा और अपने उपयोग के लिए किया,किंतु भारतीयों ने भी इसका लाभ उठाया।

शोषण की चक्की में पिसती भारतीय जनता को आवश्यकता थी ऐसे सशक्त नेतृत्व की जो उसे एकत्रित कर वाणी दे सके। इस दिशा में सबसे पहले समाज-सुधारक अग्रसर हुए और ये समाज-सुधारक भी उस स्थान से अर्थात बंगाल से, जहाँ अंग्रेजों के शोषण का शिकंजा पर्याप्त कसा हुआ था और जनता 'त्राहिमाम' कर रही थी, से आये। यद्यपि

"हिंदी पत्रकारिता का भारतेंदु युग उस दरबारी संस्कृति और रीतिकालीन साहित्य पर एक प्रश्नचिह्न था जो एक छोटी सी सीमा में बंधकररुग्ण हो गया था। भारतेंदु युग की हिंदी पत्रकारिता ने इस सीमा को तोड़कर राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत वास्तविक जन-साहित्य की सृष्टि की। भारतेंदुयुगीन लेखकों की इसी विशिष्टता को लक्ष्यकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि,''आजकल के समान उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदेशी ने उनकी आंखों में इतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने देश का रूप-रंग उन्हें सुझाई नहीं पड़ता। काल की गति को वे देखते थे सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे पर पश्चिम की एक-एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन के संधि-स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु''।7"

समाज सुधारकों का प्रयास भी जारी था वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम करअपना उपदेश देते थे किंतु इससे अधिक समय लगने की संभावना थी। मुद्रण के प्रचार-प्रसार ने यह कार्य सरल और सुलभ बनाया। इन समाज सुधारकों ने यह अनुभव किया कि सबसे पहले भारतीय समाज की बुराइयों को दूर करना आवश्यक है तभी भारतीय समुदाय एकजुट होकर विदेशी शासनसत्ता का विरोध कर पाएगा और उन्होंने इसके लिए सहारा लिया उपलब्ध प्रकाशन तकनीक का। प्रकाशन तकनीक ने ही सर्वप्रथम पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन को जन्म दिया। मुद्रण की सुविधा तो थी ही एक साथ सैकड़ों प्रतियां छापकर लोगों में वितरित की जाती थीं।

भारतीय पत्र-पत्रिका का यह प्रारंभिक दौर हैऔर आश्चर्य की बात तो यह है कि हिंदीतर भाषी क्षेत्र बंगाल में हिंदी पत्रकारिता का जन्म हुआ। कारण और कोई नहीं केवल एक ही है कि कलकत्ता उस समय आधुनिक तकनीक का केंद्र था। इन पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक विरूपता पर प्रहार, जातीय भावना का उद्घोष, सांस्कृतिक नवजागरण का प्रयास तो रहता ही था किंतु इन सबके साथ इन सबको प्रस्तुत करने के माध्यम भाषा पर भी विस्तृत चर्चा होती रही और इस काल में यह मान्यता सर्वमान्य हो चुकी थी कि हिंदी ही इस देश को एकजुट रखने में तथा देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने में समर्थ है। फलस्वरूप लोगों को जागृत करने वाले अनेक आलेख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों तक पहुँचाए जाने लगे और हिंदी के स्वरूप पर भी निरंतर चर्चा होने लगी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का आगमन हिंदी साहित्याकाश में एक अद्भुत घटना है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने देश-दशा को अनुभव ही नहीं किया अपितु प्रत्यक्ष भोगा और उन्होंने यह भी अनुभव किया कि आधुनिक हिंदी के विकास अथवा हिंदी भाषा के स्वरूप-निर्धारण का प्रयास हिंदी पत्रिका से ही संभव है। भारतेंदु के आगमन के पूर्व हिंदी पत्रकारिता का उदय हो चुका था किंतु तब वह अपने शैशवाकाल में थी और उसे किशोरावस्था तक पहुँचाया भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने।

पत्रकारिता आज हिंदी साहित्य की एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में जानी जाती है। देश की सामाजिक, धार्मिक और विशेषकर राजनीतिक गतिविधियों को समाज के सम्मुख ले आने में महत्वपूर्ण भूमिका पत्र-पत्रिकाओं ने निभाई। इसके अतिरिक्त इतना उपयुक्त और सफल दूसरा कोई सफल सम्प्रेषणीय साधन नहीं रहा है। यह एक ऐसा अस्त्र था जिसका उपयोग साहित्यकारों ने अपने साहित्य-क्षेत्र में साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान हेतु और राजनीतिज्ञों ने राजनीतिक क्षेत्र में राजनीतिक जागरण के उद्देश्य से प्रयुक्त किया।

भारत में प्रमुखतः शिक्षा और राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने का श्रेय पत्रकारिता को ही जाता है। 'बर्क' ने पत्रकारिता को इस तत्कालीन उन्नति को चौथी सत्ता की संज्ञा दे डाली क्योंकि इसकी शक्ति लोकमत पर आश्रित है। पत्रकारिता अपने परंपरागत अर्थों जैसे समाचारों का समूह, विशेष समाचारों पर प्रकाशित टिप्पणी और विज्ञापनों के रंग-बिरंगे आकर्षक प्रकाशनों जैसे क्षेत्र से अधिक विस्तृत सीमा को स्पर्श करने लगी। ऑस्कर वाइल्ड ने पत्रकारिता की बढ़ती हुई सत्ता को देख कर कहा कि-''आज तो प्रेस ही एकमात्र रियासत है''।[1] और इंद्रवाचस्पति ने इसे वर्तमान युग का सबसे बड़ा आविष्कार ही कह डाला है जो अपने निरंतर बढ़ते परिवेश में प्रत्येक क्षेत्र को समेट लेने के लिए लालायित था और अपनी व्यापक उपलब्धि पर नए युग के पाँचवें वेद की तुलना में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा था। और आज वर्तमान काल में वही पत्रकारिता आधुनिक युगबोध, राष्ट्रीय चेतना, बौद्धिक जागरूकता एवं व्यापक जन-संवेदना को संप्रेषित करने का सर्वप्रमुख उन्नत जन-माध्यम बना हुआ है। ''यह लोक मानस की सामुदायिक सहभागिता की वह जीवंत विधा है जिसमें जनता की आत्मा के स्वर, उसके दु:ख-सुख, जय-पराजय आशा-आकांक्षा तथा सामयिक एवं सनातन सत्य मुखर हो उठते हैं''। 2

आरंभ में पत्रकारिता का क्षेत्र विशेष अर्थों में सीमित था परंतु इसके निरंतर लोकप्रियता और अविराम उन्नति ने वर्तमान समय में पत्रकारिता की रूप-रेखा ही बदल दी है। आज की पत्रकारिता समाज के प्रति पूर्णत: समर्पित है और वह गंभीरतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी निभा रही है। अर्जुन तिवारी ने लिखा है कि''राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से संदर्भित सत्कार ही पत्रकारिता है। जिससे देशवासियों की नस-नस में स्वतंत्रता, समानता और विश्व-बंधुत्व की भावना का संचार होता है''।[3] आज की पत्रकारिता हमें सामाजिक समस्याओं से परिचित कराते हुए उसके लोक-जीवन की संवेदना और मानवीय भावनाओं को सूक्ष्मता से रेखांकित तो करती है साथ ही टूटते मानवीय मूल्यों की तारतम्यता को बनाए रखने की प्रेरणा देती है। वह समाज की बिखरती हुई व्यवस्था को जोड़ने वाली एक ऐसी श्रृंखला है जिसके बंधन में कोमल स्पर्श है तथा उसका प्रभाव पूँजीगत होते हुए भी सुखानुभूति प्रदान करने वाला है।

राष्ट्रीय विकास के माध्यम के रूप में पत्रकारिता का प्रयोग किया-राजा राममोहन राय ने। राजा साहब ने दिसंबर 1821 में 'संवादकौमुदी'

नामक बंगला साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसके पूर्व श्रीरामपुर मिशनरी के तत्वावधान में 'समाचार-दर्पण' और दिग्दर्शन का प्रारंभ हुआ था। राजा राममोहन राय ने देश की निरंतर गिरती हुई अवस्था को महसूस किया और समाज को निगलती हुई भयंकर समस्याओं से आगाह कराया जिसमें प्रमुख थी सती-प्रथा। इस प्रथा के अंत का श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। उनकी इस उपलब्धि की हकदार पत्रकारिता भी है।

इसी प्रकार भारतीय पत्रकारिता क्रमश: सिर उठाती रही कभी 'उदंन्तमार्तण्ड' के रूप में कभी 'बंगाल- गजट' के रूप में। कभी ईसाई मिशनरियों के माध्यम से। पर ब्रिटिश शासन की कुदृष्टि के कारण किसी भी पत्रिका को पनपने का अवसर नहीं मिला। राजा साहब ने अपने विचारों को अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से फारसी में 'बंगाल गजट' निकाला पर अपनी तेजस्विता के कारण सरकारी दमन-नीति का शिकार होना पड़ा। उन्होंने अपनी नीति तथा संपादकीय दायित्व को स्पष्ट करते हुए कहा-''मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूँ जो उनके अनुभव को बढ़ाएँ और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों। मैं अपनी शक्ति-भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूँ और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित कानून और तौर-तरीकों से परिचित कराना चाहता हूँ ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता और उपायों से परिचित हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पाई जा सके और उचित माँगें पूरी कराई जा सकें''। 4

राजा राममोहन राय ने सरकार की कुरीतियों की ओर और पत्रकारिता जगत पर थोपी गई सरकारी शर्तों की कठोरता की ओर संकेत करते हुए कहा कि-''जो परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है उसमें पत्र को रोक देना ही एकमात्र मार्ग रह गया है। जो नियम बने हैं उनके अनुसार किसी यूरोपियन सज्जन के लिए जिनकी पहुंच सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी तक सरलता से हो जाती है। सरकार से लाइसेंस लेकर पत्र निकाल लेना आसान है पर भारत के किसी निवासी के लिए, जो सरकारी भवन की देहरी लाँघने में भी समर्थ नहीं हो पाता, पत्र-प्रकाशन के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करना भी दुस्तर कार्य हो गया है। फिर खुली अदालत में हलफनामा दाखिल करना भी कम अपमानजनक नहीं है। लाइसेंस के लिए जाने का खतरा भी सदा सिर पर झूला करता है। ऐसी दशा में पत्र-प्रकाशन रोक देना ही उचित है''। 5

राजा साहब ने 'बंगाल हेरल्ड' के साथ देशी भाषा में भी एक पत्र निकाला था। बंगला, हिंदी और फारसी में निकलने वाले इस पत्र के संपादक नीलरतन हालदार थे और इसका नाम 'बंगदूत'(9 मई 1829) था। राजा साहब के मतों का विरोध करने के लिए रूढ़िवादियों ने बंगला साप्ताहिक 'समाचार चंद्रिका' का प्रकाशन किया। कवि ईश्वरचंद्र गुप्त के संपादकत्व में बंगला का प्रथम दैनिक 'संवाद भास्कर'(14 जून 1839) प्रकाशित हुआ था।

हिंदी पत्रकारिता का भारतेंदु युग उस दरबारी संस्कृति और रीतिकालीन साहित्य पर एक प्रश्नचिह्न था जो एक छोटी सी सीमा में बंधकर रुग्ण हो गया था।[6] भारतेंदु युग की हिंदी पत्रकारिता ने इस सीमा को तोड़कर राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत वास्तविक जन-साहित्य की सृष्टि की। भारतेंदुयुगीन लेखकों की इसी विशिष्टता को लक्ष्यकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि,''आजकल के समान उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदेशी ने उनकी आंखों में इतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने देश का रूप-रंग उन्हें सुझाई नहीं पड़ता। काल की गति को वे देखते थे सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे पर पश्चिम की एक-एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन के संधि-स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु''। 7

इस आंदोलन में भारतेंदु हरिश्चंद्र की पूरी मंडली थी। इनमें प्रमुख थे- प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त आदि। इन विद्वानों ने पत्रकारिता के जीवन में परिवर्तन कर दिया। अपने आंदोलन की ओर संकेत करते हुए प्रतापनारायण मिश्र का कथन है कि-''हम और हमारे सहयोगी गण लिखते हार गए कि देशोन्नति करो पर यहाँ वालों का सिद्धांत है कि अपना ही अपना भला हो, देश चाहे चूल्हे में जाए, यद्यपि देश जब चूल्हे में जाएगा तो हम बच ना रहेंगे। पर समझना तो मुश्किल काम है-ना। सो भाइयों यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है। आखिर कपड़ा पहनोगे ही, एकबेर हमारे कहने से एक-दो जोड़ी देसी कपड़ा बनवा डालो। यदि कुछ सुभीता देख पड़े तो मानना-दाम कुछ इन्हें ना लगेंगे चलेगा तिगुने से अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिलेप के उद्धार का फल सेंत-मेंत। यदि अब भी न चेते तो तुमसे ज्यादा शकुआ कौन? नहीं-नहीं हम सबसे अधिक जो ऐसों को हितोपदेश करने में व्यर्थ जीवन खपाते हैं''। 8

भारतेंदु युग के लेखकों के इसी जातीयवैशिष्टय को लक्ष्यकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि-''आजकल के समान उनका

जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदेशी अंधड़ों ने उनकी आंखों में इतनी धूल नहीं झोकी थी''।[9] भारतेंदु युग हिंदी साहित्य के विकास को नई दिशा देने वाला युग था। पर यह विकास बड़ी-बड़ी, मोटी- मोटी कृतियों के सहारे कम हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के सहारे तमाम नई विधाओं को जन्म मिला। इस दृष्टि से अग्रणी पत्रिकाएं रही हैं- 'कविवचनसुधा','हरिश्चंद्र मैगजीन','हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'हिंदी प्रदीप','ब्राह्मण','हिंदुस्तान','भारत मित्र', 'सारसुधानिधि','उचितवक्ता', 'बालबोधिनी', 'भारत जीवन' आदि। इन पत्रों का एकमात्र उद्देश्य था कलुष प्रक्षालन और जातीय उन्नयन। कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले पत्रों में भारत मित्र 'सारसुधानिधि' और 'उचित वक्ता' में अपार राजनीतिक तेजस्विता, जीवंतता और प्रहारात्मक शक्ति थी। यह भी सच है कि अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के पश्चात देश की दशा, राजनीतिक छल-प्रपंच से परिचय प्राप्त करने की उत्कंठा हर भारतीय में उत्पन्न हो चुकी थी, परंतु हिंदी के पाठकों का अभाव था। बड़ी कठिनाई से ये पत्र प्रकाशित हो पाते थे। पर संघर्ष की इसी क्षमता ने इन पत्रों और इनके संपादकों को संजीवनी दी। वे घर-घर जाकर पत्रों को बाँचकर सुनाया करते थे। 'भारत मित्र' की चर्चा करते हुए संपादकाचार्य अंबिका प्रसाद बाजपेयी ने लिखा है-''उन दिनों हिंदी पाठक बहुत कम थे, इसलिए ग्राहक तो लोग बन जाते थे, पर पत्र न पढ़ सकते थे। यह समस्या इस तरह हल की गई कि पं. दुर्गा प्रसाद कई गद्दियों में जाकर 'भारत मित्र' पढ़कर सुना आया करते थे''।[10]

किशोरी दास बाजपेयी ने 'भारतमित्र' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है-कलकत्ते के वेपूज्यजन्य धन्य हैं, जिन्होंने,'भारत मित्र' समाचार पत्र प्रकाशित करने की कल्पना की और बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर उसे आगे बढ़ाया। आगे चलकर यह'भारतमित्र'ही हिंदी-जगत की एक प्रधान संस्था बन गया। गुप्त जी के पँहुचने पर 'भारतमित्र' का प्रभाव अत्यधिक बढ़ा। गुप्तजी ने इस पत्र के द्वारा संपूर्ण हिंदी जगत में राष्ट्रीय चेतना पैदा की,उमड़तीहुई विदेशी भावना को रोककर भारतीय संस्कृति की रक्षा की और अपने देश तथा धर्म के प्रति सम्मान की भावना पैदा की''। 11

'सारसुधानिधि' के प्रत्येक शब्द में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध की स्पष्ट ध्वनि है। साथ ही इसमें देश दशा की दुरावस्था, सामाजिक समस्याओं के यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर उन्हें दूर करने का प्रयास भी है। और है- एक नई सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना। सांप्रदायिकता पर प्रहार भी है- इस पत्र में। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने'हरिश्चंद्र मैगजीन','हरिश्चंद्र चंद्रिका' तथा 'बाला-बोधिनी' का प्रकाशन कर हिंदी पत्रकारिता के लिए एक नया मार्ग खोला। हरिश्चंद्र मैगजीन का प्रकाशन 15 अक्टूबर 1873 को हुआ तथा आगे चलकर यही 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के रूप में परिवर्तित हो गई। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय सम्मान की भावना जगाने, साहित्यिक रुचि फैलाने, हिंदी साहित्य के विभिन्न भागों को समृद्ध करने और हिंदी भाषा को देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उचित स्थान दिलाने के लिए संघर्ष में प्रशंसनीय काम किया।[12] सरकार भी इसकी सौ प्रतियाँ खरीदती थी किंतु 'कविवचन सुधा' की भाँति जब इसमें भी देशभक्ति पूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे तो इसे लेना बंद कर दिया गया।[13] ये पत्रिकाएँअंग्रेजों के अत्याचार से मूक पड़ी जनता की तत्कालीन दशा का चित्र समाज के सम्मुख लाने में सफल हुई। इसके साथ-ही-साथ 'भारतमित्र','सारसुधानिधि' जैसी पत्रिकाएँ भी क्रांति की चेतना को प्रस्फुटित करने में सहयोगरत थीं। इनके संपादकों की प्रबल शक्ति और दृढ़ संकल्प नहीं प्रतिकूल परिस्थितियों में इसे जीवित रखा और जितना साहस और निर्भीकता भारतेंदु युग के पत्रकारों में थी वह एक असाधारण बात ही थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पत्रकारों का एक आदर्श निर्मित किया और सत्य के सामने सब कुछ त्याग देने का उदाहरण स्वयं के रूप में प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र युग में समाज के चौतरफा विकास और उसमें परिवर्तन को ध्यान में रखा गया। समाज का सबसे प्रमुख अंश है नारी। नारी जीवन और उसकी शिक्षा-दीक्षा की ओर किसी का ध्यान ही नहीं था। देश के वीर-सपूतों को जन्म देने वाली नारी अशिक्षित और समाज के दुर्व्यवस्थाओं की निरंतर शिकार हो रही थी। उसकी मर्यादा की रक्षा तथा दर्दनाक स्थितियों से उसे मुक्त कराने की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। ऐसी विकट स्थिति में भारतेंदु की नजर नारी की दीन दशा पर पड़ी। उन्होंने नारी-जीवन से संबंधित समस्याओं और उनके सुधार के उद्देश्य से 'बाला बोधिनी' जो स्त्री-जनों की प्यारी हिंदी भाषा से सुधारी मासिक पत्रिका थी- का प्रकाशन कर नारी की स्थिति में आशा और सुख की ज्योति जला दी तथा पुरुष के साथ-साथ नारी की शिक्षा को अनिवार्य बताते हुए 'कविवचनसुधा' के एक लेख 'स्त्री-शिक्षा' में कहा कि ''यह बात तो सच है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि यहां की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी, क्योंकि पुरुष विद्वान और पंडित होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख होंगी तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा''। इस प्रकार भारतेंदु

हरिश्चन्द्र ने वैदिक साहित्य को नारी के प्रति सम्माननीय भावना को पुन: नारी-जीवन से जोड़ने का प्रयास किया कि 'जहां नारी की पूजा की जाती है देवता वहीँ वास करते हैं और वहीं सुख-समृद्धि भी वास करती है'।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहसपूर्ण कदम के साथ अनेकों कदम उठे सबके हृदय में दबी हुई चिंगारी ने एक विशाल धधकती अग्नि का रूप ले लिया जिसे बुझाना किसी के वश में नहीं था। भारतेंदु मण्डल के ही वरिष्ठ सदस्य बालकृष्ण भट्ट ने 1877में प्रयाग से 'हिंदी प्रदीप' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। और पत्रकारिता की दृष्टि से तो हिंदी प्रदीप का जन्म हिंदी साहित्य के इतिहास में क्रांतिकारी घटना थी।[14] भट्ट जी का प्रदर्शन भी भारतेंदु हरिश्चंद्र की ही भाँति था जिसमें देश की स्वाधीनता और सुरक्षा की भावना भरी हुई थी। भारतीय जनता अब तक अंग्रेजों की दासता से पूर्णतया उठ चुकी थी। भारतेंदु मंडल ने अंग्रेजों के प्रति जनता की इस भावना को पहचाना और अपनी सशक्त लेखन शैली के माध्यम से जनवाणी को साकार रूप प्रदान किया। इस समय के सहयोगी प्रेमघन, मिश्र आदि ने बहुआयामी साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय और साहित्य के इस यज्ञ में पूरी शक्ति से इसमें भाग लिया।

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में हरिश्चंद्र का युगांतकारी महत्व है, जिन्होंने अपने प्रदेश की सभी आवश्यकताओं को पहचाना। उन्होंने हिंदी भाषा के लिए भी संघर्ष किया, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भी उनका व्यवहार दृढ़ किया। हिंदी भाषा के विकास के उद्देश्य से जो आंदोलन हरिश्चंद्र ने चलाया था वह इतनी तीव्रता से प्रगति करेगा इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता था। भारतेंदु की पत्रकारिता ने चौतरफा विकास को हवा दी। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हुए समाज में व्याप्त रुढियोंको दूर करते हुए औद्योगिक विकास, नारी शिक्षा,राष्ट्रभाषा हिंदीके विकास उनकी पत्रकारिता के केंद्र-बिंदु थे। दूसरी ओर ये पत्रिकाए भी मनोरंजन करती थीं। इनकी भाषा का पैनापन, व्यंग्य, सजीवता, मुहावरेदार, रोचक शैली कविता की रोचकता पाठकों को पढ़ने के लिए बाध्य करती थी। जहाँ प्रारंभिक चरण में (1820 -1850 के बीच) केवल 10-12 पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं किंतु भारतेंदु युग के प्रतिभा-संपन्न साहित्य-सर्जकों ने पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से सुषुप्त हिंदी समाज को जगा दिया। परिणाम यह हुआ कि इस काल में लगभग 350 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। भारतेंदु युग के पत्र-संस्थान केवल समाचार छापने की एजेंसी ही नहीं थे अपितु जनता के टूटते मनोबल और उनकी धराशाई होती हुई आस्था को सहारा देने वाले सेतु थे जिन्होंने हिंदी भाषा को दरबारी परिवेश के संकुचित दायरे से निकालकर नवयुग तथा नवजीवन के साथ जोड़ा। इन्होंने समाज में जाति, धर्म की आड़ में भ्रष्टाचार को आदर्शोन्मुख अंदाज से उठाया और उनमें छिपे हुए मूल कारणों को भी उद्घाटित करने की चेष्टा की। इस युग की पत्रकारिता ने अंग्रेजों की कूटनीतिक चालों, सुनियोजित प्रचार तंत्र तथा भारतीयों को सभ्य और उन्नत बनाने के मुखौटों को उघाड़कर रख दिया। पत्रकारों का मुंह बंद करने के लिए अंग्रेजों ने वर्नाक्युलर एक्ट पारित कर एक नई चाल चली। परन्तुपत्रकारों ने सरकारी नीति का दमन किया और विभिन्न यातनाओं, कष्टों को झेलते हुए राष्ट्रीय नवजागरण में एक दूसरे के साथ जुड़कर समाज में व्याप्त कुप्रथाओं बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, वेश्या-वृत्ति, अंधविश्वास, बेगार-प्रथा, जाति-प्रथा इत्यादिके विरुद्ध असंतोष और आक्रोश को उभारकर समाज शोधन और सांस्कृतिक, आध्यात्मिक नवोत्थान के लिए पत्रकारिता जगत को अखंड ज्योति से आलोकित किया।

संदर्भ:

1. पत्र और पत्रकार : श्री कमलापति त्रिपाठी, पृष्ठ-13.
2. राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता : डॉ. मीना रानी बल, पृष्ठ-60.
3. स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता : डॉ. अर्जुन तिवारी, प्राक्कथन, पृष्ठ-13.
4. हेमेंद्र प्रसाद घोष : द न्यूज़पेपर इन इंडिया, पृष्ठ-25-26.
5. कमलापति त्रिपाठी : पत्र और पत्रकार, पृष्ठ-92.
6. कृष्ण बिहारी मिश्र : हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ-92.
7. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास,पृष्ठ-308.
8. डॉ. रामविलास शर्मा : भारतेंदु युग, पृष्ठ-20.
9. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-308.
10. अंबिका प्रसाद बाजपेयी: विशाल भारत, मई,1931.
11. किशोरी दास बाजपेयी : बालमुकुंद गुप्त, स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-407-408.
12. रामविलास शर्मा : भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृष्ठ-63.
13. लक्ष्मी शंकर व्यास : उत्तर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता,द्रष्टव्य-वैदिक (डॉ.) वेद प्रताप (संपादित)
14. रामरतन भटनागर : हिंदी पत्रकारिता की उत्पत्ति और विकास, पृष्ठ-115.

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, श्री गुरू नानक देव खालसा कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय),
नई दिल्ली-110005 ईमेल drshailjamohan@gmail.com
मोबाइल- 9868617559

कथा-कहानी

कोने वाला कमरा

– मुक्ता

निवेदिता को हॉस्टल में निर्धारित कमरा नहीं मिला था और विभा दी को भी। दोनों ' वेटिंग ' वाली सूची में थीं। विभा दी मनोविज्ञान में एम.ए. कर रही थीं। निवेदिता ने इंटरमीडिएट करने के बाद बी.एच.यू. के फार्मास्युटिकल इंजीनियरिंग विभाग में दाखिला लिया था। नए हॉस्टल का सुंदरीकरण हो रहा था जिसे उनका स्थायी निवास होना था। दोनों को ' वेटिंग रूम ' की तरह एक कमरे में ' रूम मेट ' बनकर रहना पड़ा था। विभा एक हफ्ते पहले ही कमरे में आ चुकी थी। अपनी सुविधानुसार उसने अपनी कुर्सी-मेज और बिस्तर चुन लिया था। उम्र और कक्षा के हिसाब से वह सीनियर थी और कभी भी निवेदिता की रैगिंग कर सकती थी। इस बात से निवेदिता डरी हुई थी और अतिशय विनम्रता का प्रदर्शन कर रही थी। न्यू हॉस्टल के जिस कमरे में दोनों रह रही थीं वह पूरी कतार लगभग खाली थी। दाखिले अभी भी चल रहे थे।

मम्मी .... जरा फोन दीजिये, रोशनी ने हाथ बढ़ाते हुए कहा। निवेदिता ने मेज पर रखा मोबाइल फोन बेटी की ओर बढ़ा दिया।

" अभी समय है मम्मी .... आप थोड़ा आराम कर लीजिये। " रोशनी के स्वर में आग्रह था।

" ठीक है ..... आराम ही कर रही हूँ .....। "

रोशनी डॉक्टर से बात करने लगी। फोन रखकर माँ की ओर मुखातिब हुई " डॉक्टर कल सुबह सलाइन में दर्द की दवा इंजेक्ट करेंगी। रात भर इंतजार करने के लिए कह रही हैं ..... हो सकता है स्वाभाविक लेबर पेन शुरू हो जाये ..... ड्यू डेट तो आज है ही ..... "

" ठीक है ..... तुम आराम करो ..... मैं कैंटीन से चाय पीकर आती हूँ। "

" आप .... कितनी बार चाय पीती हैं मम्मी .... हमें तो बचपन में मना करती थीं ..... काली हो जाओगी .....। "

" लेकिन हैरानी है ..... तुमने कभी चाय को हाथ नहीं लगाया ..... बचपन में तो सभी माएं कहती हैं ... "

" आप की आज्ञाकारी बेटी जो हूँ ..... "

दोनों खिलखिला पड़ीं।

निवेदिता सीढ़ी की ओर बढ़ी। मैटरनिटी हॉस्पिटल छोटा होते हुए भी काफी प्रसिद्ध था। कैंटीन में भीड़ थी। कूपन से चाय लेकर वह खाली कुर्सी पर बैठ गई। चाय की चुस्कियों के के बीच कैंटीन में बैठे लोगों पर उसने सरसरी निगाह डाली। उसकी दृष्टि एक महिला के चेहरे पर अंटक गई। वही तो लग रही हैं ..... हू ब हू वही चेहरा ..... हाँ .... वही हैं ....

विभा सिन्हा। शरीर थोड़ा भर गया है ..... पैंतीस साल बीत गए ..... अन्तराल भी इतना लम्बा। निवेदिता के गले में चाय अंटकने लगी ..... कहीं फिर से गुम न हो जाये। उनके साथ और भी लोग हैं या अकेली हैं .... इससे क्या फर्क पड़ता है ..... पीछे से जाकर एक धौल जमाएगी " अरे ..... पहचाना नहीं ..... "

इतने वर्षों बाद क्या सब कुछ वैसा ही होगा ..... क्या यह उचित होगा ? इसी उधेड़्बुन में निवेदिता चाय पीती जा रही थी। उसे लगा वह महिला उठने वाली है। वह अकेली ही उठ खड़ी हुई। यह देखकर निवेदिता आश्वस्त थी। बिना समय गँवाए वह महिला के सामने जा खड़ी हुई।

" आप ..... विभा सिन्हा हैं ? "

महिला की आँखों में चमक कौंधी " हाँ ..... पहचान तो मैं भी रही हूँ लेकिन नाम भूल रही हूँ ....."

" निवेदिता ..... "

" निवेदिता शर्मा ..... "

" हाँ ..... लेकिन अब ..... निवेदिता द्विवेदी ..... "

" मैं भी विभा श्रीवास्तव हो गई हूँ ..... हमारा समय भी कितना पिछड़ा था .... शादी होते ही नाम बदल गया ... पहचान बदल गई ..... हमारी बहू ने कुछ नहीं बदला , उसका सरनेम पहले वाला ही है ..... "

" मेरी बेटी ने भी नहीं बदला ..... " निवेदिता के स्वर में उत्साह था।

" हमारी बहू-बेटियाँ हमसे बहुत आगे हैं ..... " विभा के स्वर में निवेदिता का स्वर भी शामिल प्रतीत हुआ।

" मेरी बेटी फर्स्ट फ्लोर में मैटरनिटी रूम नम्बर थर्टीवन में भर्ती है ..... आज उसकी ' ड्यू डेट ' है .... डॉक्टर ने एडमिट कर लिया है ..... "

" मेरी बहू ने कल बेटी को जन्म दिया है .... मैं दादी बन गई हूँ .... बच्ची अभी नर्सरी में है ....."

" दादी बनने की बधाई .... नार्मल है या सिजेरियन .... "

" आजकल नार्मल कहाँ .... सब सिजेरियन होते हैं ..... "

" वैसे डॉक्टर तो कोशिश करती हैं , नार्मल डिलेवरी हो .... लेकिन ..... चलती हूँ , बहू अकेली है .... कुछ दवाएँ भी लेनी है , रूम नम्बर मुझे याद है ..... मिलूँगी ....." कहते हुए विभा बढ़ गई।

निवेदिता ने पर्स उठाया तो देखा प्याले में आधी चाय ठंडी हो चुकी थी। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट तैर गई।

कमरे में आकर निवेदिता बेड पर तकिये के सहारे टिक गई। दूसरे बेड पर रोशनी सो रही थी। बेटी का मातृत्व से छलकता रूप निवेदिता के अंतस को भिगो गया। विभा दी से अचानक हुई मुलाकात निवेदिता को रोमांचित कर रही थी। कितना कुछ पूछना था लेकिन काल के अंतराल को औपचारिकता से भरने में ही समय चला गया , पता नहीं अब मुलाकात होगी भी या नहीं ? ऐसे ही एक दिन विभा दी गुम हो गई थीं , बिना कुछ कहे ..... बिना बताये ..... आज मिलीं तो फिर वही अनिश्चय ..... ? पता नहीं विभा दी को याद भी है या नहीं ? निवेदिता अतीत की स्मृतियों में में खो गई।

निवेदिता को हॉस्टल में निर्धारित कमरा नहीं मिला था और विभा दी को भी। दोनों ' वेटिंग ' वाली सूची में थीं। विभा दी मनोविज्ञान में एम.ए. कर रही थीं। निवेदिता ने इंटरमीडिएट करने के बाद बी.एच.यू. के फार्मास्युटिकल इंजीनियरिंग विभाग में दाखिला लिया था। नए हॉस्टल का सुंदरीकरण हो रहा था जिसे उनका स्थायी निवास होना था। दोनों को ' वेटिंग रूम ' की तरह एक कमरे में ' रूम मेट ' बनकर रहना पड़ा था। विभा एक हफ्ते पहले ही कमरे में आ चुकी थी। अपनी सुविधानुसार उसने अपनी कुर्सी-मेज और बिस्तर चुन लिया था। उम्र और कक्षा के हिसाब से वह सीनियर थी और कभी भी निवेदिता की रैगिंग कर सकती थी। इस बात से निवेदिता डरी हुई थी और अतिशय विनम्रता का प्रदर्शन कर रही थी। न्यू हॉस्टल के जिस कमरे में दोनों रह रही थीं वह पूरी कतार लगभग खाली थी। दाखिले अभी भी चल रहे थे। छात्राएँ धीरे-धीरे हॉस्टल में आ रही थीं। कमरे बड़े थे। एक कमरा दो छात्राओं के लिए आवंटित था। निवेदिता और विभा कमरा नम्बर तिरालिस में थीं। ' कोने वाले कमरे ' नम्बर चौवालिस का ताला सीलबंद था। छः माह पहले इंजीनियरिंग कॉलेज की निवेदिता के विभाग फार्मेसी की ही एक लड़की ने आत्महत्या कर ली थी। कमरा पूरी तरह निषिद्ध और रहस्यमय घेरे में था और हॉस्टल में " कोने वाला कमरा " के नाम से पुकारा जाता था। निवेदिता को डिपार्टमेन्ट में सब कुछ इतना सामान्य , सुचारु और व्यवस्थित लगता था कि इस कमरे में घटी आत्महत्या एक पैबंद की तरह लगती थी। विदेशी छात्रों की अधिक संख्या औपचारिक मुस्कान और अँग्रेजी का बोलबाला फार्मेसी विभाग को पूरे इंजीनियरिंग कॉलेज

में चमकदार बनाए हुए था। निवेदिता ने कई लोगों से तहकीकात की तब जाकर आश्वस्त हो पाई की मृतका सीता पिल्लई उसकी सीनियर थी। अभी इस घटना को घटित हुए मात्र छः महीने ही बीते थे। कहीं कोई शिकन , कोई खरोंच नहीं दिखाई दे रही थी। बार-बार एक प्रश्न निवेदिता के मन में उमड़ता था , आखिर आत्महत्या का कारण क्या था ? जीवन को समाप्त कर लेना एक निहायत कायरता पूर्ण काम है। परम्परा से चली आ रही सोच की निवेदिता कायल भी थी।

एक दिन विभा ने बात छेड़ी , जीवन को हमने प्रकाश पुंज में लपेट रखा है मृत्यु को काले घेरे के अंदर राख से ढक दिया है जबकि दोनों ही सामान्य घटनायें हैं। वह लड़की बहुत अकेली थी इसीलिए ऐसा कदम उठा लिया। मद्रास से यहाँ पढ़ने आई थी। कोई मित्र नहीं। किसी से स्वयं को बाँट नहीं पाई ।यह भी सही है कि कोई दुख ऐसा नहीं है जिसके लिए आत्महत्या को नैतिक ठहराया जाए। निवेदिता ने प्रश्न किया " क्या आपको पता है उसके साथ क्या हुआ था .... कुछ तो घटा ही होगा ... "

" सुना है किसी टीचर ने डाँटा था "

" बस इतना ही ..... "

" मुझे इतना ही मालूम है .... लेकिन तुम गलत ढंग से सिरे को पकड़ने का प्रयास कर रही हो .... मेरा मतलब है बड़ा दुख और छोटा दुख , ऐसा कोई विभाजन ' आत्महत्या ' में नहीं हो सकता। क्या एक बच्चे की मृत्यु पर माँ के आत्महत्या करने को उचित कहा जा सकता है ? ..... और कितनी माओं को आत्महत्या करते हुए सुना है ..... यह केवल ' एक क्षण ' है। इधर या उधर , जीवन या मृत्यु।

विभा की बातों से निवेदिता आश्वस्त नहीं हुई लेकिन उसका भय कुछ कम हो गया। पहले रात में उस कमरे के सामने से जाते वह भयभीत हो जाती थी। विभा की बातों ने काफी हद तक उसका डर दूर कर दिया था। एडमिशन में देरी की वजह से निवेदिता प्रैक्टिकल्स में पिछड़ गई थी। उसे दोगुनी मेहनत करके सभी विषयों के प्रैक्टिकल्स को पूरा करना पड़ रहा था। उसका अधिकतर समय प्रयोगशाला में बीतता था। उसका सीनियर राहुल उसकी सहायता कर रहा था। राहुल से निवेदिता की नज़दीकियाँ बढ़ती जा रही थीं। विभा से वह अपनी निजी बातें भी साझा करने लगी थी। विभा का घर बनारस में ही था। घर से दूरी होने के कारण और पढ़ाई में ध्यान केन्द्रित हो सके इसीलिए वह छात्रावास में आ गयी थी। राहुल और निवेदिता के बढ़ते रिश्ते विभा को रोमांचित कर रहे थे। वह रस लेकर उनकी अंतरंगता टटोलने की कोशिश करती थी। निवेदिता सरलता से राहुल की बातें विभा को बताती थी। विभा ने राहुल का नाम ' रोमियो ' रखा था। राहुल और निवेदिता के प्रेमिल क्षणों से विभा ऊर्जास्वित होती थी। लगभग रोज ही जुमला उछालती " आज क्या किया तुम्हारे रोमियो ने ? " निवेदिता के चेहरे पर लाली छा जाती और वह अपने अंतरंग क्षणों की तस्वीर खींचने लगती। लगभग एक माह का समय बीत चला था। मौसम बदल रहा था, बारिश की शुरुआत थी। निवेदिता सुबह सात बजे ही हॉस्टल छोड़ देती थी। शाम को लौटने पर वह विभा के साथ ही मेस में नाश्ता करती और रात को भोजन। विभा की कक्षा देर से होती थी लेकिन उसकी भी आदत सुबह जल्दी उठने की थी। दोनों ही रात लगभग दस बजे निद्रामग्न हो जाती थीं।

उस रात भी सब सामान्य था। लगभग एक बजे रात अजीब सी सीटी बजने की आवाज से निवेदिता की नींद खुली। सीटी की आवाज सामान्य सीटी की आवाजों से बिलकुल अलग थी। आँख खुलते ही निवेदिता का ध्यान ' कोने वाले कमरे ' पर अंटक गया। भ्रम ने आकार ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। सीटी बजाते चेहरे कमरे में दीवारों पर रेंगते दिखाई देने लगे। घबड़ाकर निवेदिता ने बत्ती जला दी। बत्ती जलाने के बाद वह बाहर आकर मुआयना करने लगी। बरामदे में चाँदनी का प्रकाश फैला हुआ था। एक छोटा बल्ब भी जल रहा था। पूरा वातावरण शान्त था। कहीं कोई आवाज नहीं थी। विभा उठ बैठी थी " तुमने लाइट क्यों जला दी , मुझे रोशनी में नींद नहीं आती ?" उसके स्वर में झल्लाहट थी।

" कहीं से सीटी की आवाज आ रही थी ..... मैं डर गई .... "

" इसमें डरने की क्या बात है .... चौकीदार सीटी बजा रहा होगा।"

" लेकिन ..... आवाज अलग थी ....."

" तुम्हारा वहम है ..... सो जाओ ..... " विभा ने कहा और करवट बदल कर सो गई।

" कल मैं नाइट बल्ब ले आऊँगी ..... अंधेरा कमरा और डरावना लगता है ....." कहकर निवेदिता भी सोने की कोशिश करने लगी।

अपनी व्यस्त दिनचर्या में भी निवेदिता को नाइट बल्ब की याद थी। विभाग से लौटते के बाद वह लंका जाकर बल्ब ले आई थी। तख्त पर स्टूल रख कर उसने दीवाल वाले खाली साकेट में नीले रंग का नाइट बल्ब लगा दिया था।

लगभग एक बजे रात निवेदिता को ऐसा प्रतीत हुआ उसके कान के आस-पास से ही सीटी की आवाज आ रही है। वह चौंक कर उठ गई। विभा को जगाने के लिए उसके हाथ बढ़े लेकिन यह देख कर वह अवाक थी कि सीटी की आवाज विभा के मुँह से निकल रही है। विभा साँस अन्दर की ओर खींच रही थी , साँस छोड़ते समय उसके होंठ गोल हो जा रहे थे जिससे पतली खरखराहट भरी तीखी सीटी जैसी आवाज सन्नाटे में गूँज रही थी। निवेदिता असमंजस में पड़ गयी यदि वह विभा को जगा कर बताती है तो वह मानने वाली नहीं। क्या करे क्या न करे , इसी उलझन में रात बीत गई। सुबह उसने अपनी एक मित्र रेखा से अपनी समस्या साझा की। दोनों ने मिलकर इसका हल ढूंढ लिया।

रेखा भी निवेदिता के साथ ही कमरे में पढ़ाई के बहाने सोई। तख्त काफी चौड़े थे जिन्हें सटाकर डबल बेड से भी अधिक जगह निकल आती थी। रात में जैसे ही विभा के मुँह से सीटी की आवाज शुरू हुई , निवेदिता ने लाइट जला दी और विभा को झकझोर कर जगाया" यह सीटी आपके ही होंठों से निकलती है। विश्वास न हो तो रेखा से पूछ लीजिये।

विभा हतप्रभ थी। उसने स्वयं को कठघरे में महसूस किया।

रेखा ने कठोर स्वर में कहा " आपको घरवालों ने कभी नहीं टोका ..."

" नहीं ..... ऐसा होता तो माँ ने जरूर टोका होता ....."

रेखा के चेहरे पर भी भय की रेखाएँ खिंच गयीं " मुझे तो यहाँ अब कुछ भुतहा लग रहा है ..... यह सब कोने वाले कमरे की खुराफात है ..... मैं तो बाबा अपने कमरे में चली ....."

निवेदिता ने टोका " बकवास मत करो रेखा ..... पहले बात समझने की कोशिश करो।"

" मुझे नहीं समझना ..... " कहती हुई रेखा तेजी से कमरे के बाहर हो गई।

विभा माथे पर हाथ रखे बैठी थी। निवेदिता ने कोमलता से कहा " विभा दी .... आप डॉक्टर को दिखाइए ..... यह जरूर किसी बीमारी का लक्षण है ....."

विभा रोने लगी। तेजी से रोते हुए बोली " अब यह बात पूरे हॉस्टल में फैल जाएगी ..... तुम्हें रेखा को लाने की क्या जरूरत थी ?"

" आप परेशान न हों ..... मैं रेखा को रोकूंगी ..... " कहते हुए निवेदिता रेखा के कमरे की ओर चल दी। रेखा को समझाने में काफी समय व्यतीत हो गया। लौटी तो दरवाजा बंद था। केवल कुंडी लगी थी। विभा कहीं जा चुकी थी। सबेरा हो चुका था। निवेदिता की कक्षा आठ बजे शुरू हो जाती थी। उसका विभाग इंजीनियरिंग कॉलेज के अन्तिम छोर पर था। सायकिल से चालीस मिनट लगते थे। निवेदिता अकेली ही कैंटीन की ओर बढ़ी। नाश्ते के बाद भी विभा नहीं दिखाई दी। निवेदिता ने बाहर से कमरे में कुंडी लगाई और सायकिल स्टैण्ड की ओर चल दी। कॉलेज में भी वह अनमनी रही। राहुल ने पूछने का प्रयास किया तो उसने बात टालने की कोशिश की।

" लड़कियों को बहुत इमोशनल नहीं होना चाहिए ..... नतीजा कभी-कभी खतरनाक हो जाता है ....."

" कैसा खतरा ..... ? " राहुल की बात सुनकर निवेदिता चौंकी।

" सीता पिल्लई भी काफी इमोशनल थी ..... भावुकता में ही वह किसी लड़के के चक्कर में पड़कर प्रेग्नेंट हो गई ..... और सारा दोष शाह सर के मत्थे मढ़ दिया गया कि उनके डाँटने से उसने आत्महत्या कर ली .... भला डांट खाना किसी आत्महत्या का कारण हो सकता है ?"

" यह घटना तुम्हारे सामने घटी थी ..... तुम कैसे जानते हो ?"

" वह मेरी क्लास मेट थी। साँवली , तीखे नाक नक्श वाली , चुप्पा लड़की ....."

" चुप्पा लड़की ... ?" निवेदिता की आँखों में कौतूहल था।

" वह किसी से बात ही नहीं करती थी ....."

" अपने ब्याय फ्रेंड से भी नहीं ..... ?"

" पता नहीं ..... मैं उसके ब्याय फ्रेंड को नहीं जानता , न उसे देखा ....."

" तब वह प्रेग्नेंट कैसे हो गई ..... ? '

" यार .... सब कुछ मेरी आँखों के सामने हो ..... यह जरूरी तो नहीं ....."

" तुम्हारी आँखों के सामने क्या हुआ ..... ?" निवेदिता का स्वर तीखा था।

" शाह सर गुस्से वाले हैं ..... उन्होने तो डांटने के रिकार्ड बनाये

हैं ..... डिपार्टमेन्ट में ..... लेकिन आत्महत्या किसी ने नहीं की ..... उस दिन सीता पिल्लई को सर ने डाँटा जरूर था और कॉपी भी फेंक दी थी। सीता ने चुपचाप कॉपी उठाई , थैले में डाला और क्लास से बाहर हो गई। फिर सुना हॉस्टल जाकर पंखे से लटककर खुदकुशी कर ली .....” विश्वास ही नहीं हो रहा था। काफी बातें हो गईं ..... इस सबसे केवल निगेटिविटी बढ़ती है ..... चलो कैंटीन में चाय पीते हैं। बातों का क्रम टूट गया। निवेदिता के प्रश्न अधूरे रह गये। राहुल अब आगे कुछ भी बताने के मूड में नहीं था।

कैंटीन डिपार्टमेन्ट के पीछे वाले गेट के बाहर थी। कैंटीन तक जाने वाले गलियारे में ही प्रोफेसर्स के कमरे थे। एक नेम प्लेट पर निवेदिता की दृष्टि अंटक गयी ..... ‘ डॉ. एच. एस. शाह ‘

“ यहीं हैं ..... ?”

राहुल ने संक्षिप्त उत्तर दिया ..... “ हाँ ..... थर्ड ईयर में तुम्हें पढ़ाएंगे ..... अभी नहीं .....”

निवेदिता मौन रही।

शाम को निवेदिता कमरे पर लौटी तो ताला लगा था। ताले की दो चाभियाँ थीं। अंदर आने पर उसे आभास हुआ , विभा कमरा छोड़ चुकी है। विभा की अटैची , बैग और किताबें नहीं थीं। उसकी आलमारी खाली थी। निवेदिता अपराध बोध से भर उठी। उसकी नादानी से ही विभा नाराज हो गई। उसने विभा को बताया ही क्यों ? उसे रेखा को कमरे में लाने की क्या आवश्यकता थी ? इस मसले को वह विभा के साथ अकेले भी सुलझा सकती थी , विभा इंकार करती तब वह गवाही तलाशती। उसने जल्दबाजी कर दी। निवेदिता का अपराधी मन चहुं ओर से भर्त्सना में रमा था। कोने वाला कमरा , सीता पिल्लई और अब विभा ..... निवेदिता एक ऐसे किले में घिरी जा रही थी जिसके चारों ओर गहरी खाई थी केवल राहुल ही था उसका दोस्त ..... उसका प्रेमी ... जो उसे इस कारा से निकाल कर फूलों की घाटी में पहुँचा सकता था। राहुल का साथ निवेदिता को रोमांचित करता था। राहुल का चेहरा सामने आते ही वह ऊर्जास्वित हो उठती थी। अभी एक हफ्ते उसे और यहाँ काटने थे , अगले सप्ताह वह नये हॉस्टल में अपने नये कमरे में शिफ्ट हो जायेगी। ज्योति कुंज , नया हॉस्टल बना था और बहुत ही खूबसूरत था। कमरे न्यू हॉस्टल से छोटे थे लेकिन सभी के लिये अलग-अलग कमरा था।

विभा के बिना खाली कमरा निवेदिता को उदास कर रहा था। ‘ कोने वाले कमरे ‘ का सीलबंद झूलता ताला पूरे वातावरण को रहस्यमय और डरावना बना रहा था। वार्डन से अनुमति के बाद ही विभा गई होगी। शायद वार्डन उसे तलब करें ? विभा ने कुछ कहा होगा , निवेदिता परेशान थी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। निवेदिता थोड़ी आश्वस्त हुई। रात का खाना उसने जल्दी खा लिया और सोने का उपक्रम करने लगी। बहुत से नोट्स बनाने थे लेकिन उसने एक पत्रिका उठा ली और पन्ने पलटने लगी। पिछली कई रातों से उसकी नींद पूरी नहीं हुई थी। उसने लाइट बुझा दी। कमरे में नीला प्रकाश फैल गया। जल्दी ही वह निद्रामग्न हो गई।

भोर जगते ही चिड़ियों की चहचाहट से निवेदिता की नींद खुली। उसने स्वयं को तरोताजा महसूस किया। मुस्कुराहट उसके होठों पर तैर गई। डर के कोलाज लोग खुद ही गढ़ लेते हैं और उसी के वायवीय तन्तुओं में उलझे रहते हैं। लोगों की रुचि जीवन से अधिक मृत्यु में होती है। मृत्यु के किस्से कितने ही भयानक हों , लोगों को आकृष्ट करते हैं। लोग जीवन से जल्दी ही ऊबने लगते हैं ..... यह ऊब ही मृत्यु को आमंत्रित करती है क्या ? कुछ नया करने का उत्साह समाप्त होना ही मृत्यु है क्या ? निवेदिता ने सिर को हल्का सा झटका दिया। अभी बहुत काम बाकी है ..... वह इस जीवन- मृत्यु के चक्कर में क्यों उलझ गई। निवेदिता तौलिया उठाकर बाथरूम की ओर बढ़ी , याद आया दरवाजे में कुंडी लगानी होगी , विभा नहीं है। विभा भी उसे कैसे संत्रास में डाल गई ? निवेदिता पेड़ में खिले अमलतास के फूलों को निहारने लगी। पीले-झूमते अमलतास के फूल ..... याद आया दो दिन बाद उसका जन्मदिन है। राहुल ने निवेदिता के जन्मदिन का पूरा कार्यक्रम तय कर लिया था। यह दिन सारनाथ में मनाने के लिए वह निवेदिता से अधिक उत्साहित था। रविवार के कारण कोई व्यवधान भी नहीं था। जन्मदिन की सुबह किसी आत्मीय का साथ न होना निवेदिता को खल रहा था। किवाड़ पर हल्की सी खट की आवाज हुई और दरवाजा खुल गया। हाथ में पर्ची लिए दाई खड़ी थी “ निवेदिता बहन जी हैं ..... कोई मिले आवा है।” दाई ने पर्ची निवेदिता को थमा दी। उसके लोकल गार्जियन मेहता अंकल थे।

“ बहन जी ..... आप अकेली रहती हैं ..... डर तो नहीं लगता ..... आपके बगल वाले कमरे में ही सीता बहन जी रहती थीं .... बड़ी सीधी थीं ..... हमेशा मुसकुराती रहती थीं .... जब भी मिलें तो हाल-चाल पूछती थीं। कैसा है .... सब ठीक तो है ..... कुछ जरूरत

हो तो बताना ....." बड़ी दयालु थीं ..... मद्रासिन थीं ..... हम उनकी भाषा तो नहीं बूझ पाते थे , हमारी बोली वह बोलती थीं लेकिन अंटक जाती थीं फिर हँसने लगती थीं ..... का बतायें ..... पंखे से ऐसे लटकीं थीं कि जुबान बाहर तक आ गई थी .... शलवार खून से तर थी ....."

" खून से तर थी ..... क्यों ?" निवेदिता कौतूहल वश पूछ बैठी।

" महीने से थीं न ..... माहवारी का पैड तो हमीं ने हटाया था .... पुलिस आ गई थी ..... फिर पोस्टमार्टम के लिए लाश ले गई ..... आज भी याद आता है तो रोआं काँप जाता है ..... आप जाइये ..... बाबू जी राह देखते होंगे ...." कहती हुई दाई दूसरे बरामदे कि ओर बढ़ गई।

मेहता अंकल जन्मदिन का उपहार लेकर आए थे। आँटी ने खाने का भी कुछ सामान भी बना कर भेजा था। उपहार की पैकिंग बिना खोले ही सब सामान निवेदिता ने कमरे में रखा। कमरे में ताला लगाया और गेट पर आकार राहुल की प्रतीक्षा करने लगी। निवेदिता के मन के ताने-बाने सीता पिल्लई से जुड़ गए थे। गुत्थी उलझती ही जा रही थी। मन में कोई उमंग पल्लवित नहीं हो पा रही थी। मन के फीकेपन को छुपाने के लिए उसने चटक रंग के कपड़े पहने थे और हल्का शृंगार भी किया था। गेट पर निवेदिता को देखते ही राहुल बोल पड़ा " आज तो गजब ढा रही हो ....."

शर्मीली मुस्कान निवेदिता के चेहरे पर फैल गयी। वातावरण में रुई बिखर गई। निवेदिता के स्कूटर पर बैठते ही राहुल हवा से बातें करने लगा।

सारनाथ दोनों के लिए अपरिचित न था लेकिन आज राहुल को सब कुछ नया लग रहा था। वह निवेदिता की अंतरंगता के सतरंगी घेरे में स्वयं को विलीन करने के लिए आतुर था। निवेदिता दूरी बनाए हुई थी। मूल गंध कुटी विहार में दर्शन करने के बाद दोनों ने स्तूप की परिक्रमा की। होटल में लंच के समय निवेदिता बुद्ध के जीवन प्रसंगों की चर्चा करते रही। राहुल अधिकतर मौन बना रहा। ऊब उसके चेहरे पर झलक रही थी। लंच के बाद दोनों मृगदाव के कोने में बैठ गये। रुहुल के चेहरे पर रूमानियत झलकने लगी।

" दूर क्यों बैठी हो ..... पास आओ .... तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।"

समझते हुए भी निवेदिता ने न समझने का अभिनय किया और बात का रुख दूसरी ओर मोड़ दिया।

" क्या केस अभी चल रहा है ?"

" कौन सा केस ?" राहुल ने पूछा।

" सीता पिल्लई का ...."

" वह सब कुछ खत्म हो चुका है ..... शाह सर बेकसूर साबित हुए ..... हम कुछ लड़कों ने गवाही दी .... कि शाह सर को फंसाया जा रहा है , ऐसी कोई घटना नहीं घटी ..... सर ने थोड़ा डाँटकर समझाया था , कॉपी नहीं फेंकी थी ..... सीता पिल्लई प्रेग्नेंट थी , डिप्रेशन में भी थी , बदनामी के डर से उसने आत्महत्या कर ली ..... मेडिकल रिपोर्ट से भी यही साबित हुआ ....."

" लेकिन यह सच नहीं है ..... सीता पिल्लई का मेनस्ट्रुयल साइकिल चल रहा था जब उसने आत्महत्या की , वह गर्भवती नहीं थी ..... यह केस प्रो. शाह सर को निर्दोष साबित करने के लिए बनाया गया था। इसमें पूरा तंत्र , यूनिवर्सिटी , स्टूडेंट सहित सभी शामिल थे , क्या सीता पिल्लई विश्वविद्यालय की छात्रा नहीं थी ? वह भी किसी की बेटी थी ..... एक परिवार उजड़ गया ..... तुम लोगों ने झूठी गवाही भी दी और उस मासूम पर झूठा कलंक भी लगाया ..... इससे बढ़कर अपराध और क्या हो सकता है ? ....."

" मुझे अपना कैरियर खराब नहीं करना था ..... हमने तो हत्या की नहीं ..... मौत तो सीता पिल्लई ने अपने लिए खुद चुनी ..... शाह सर को बचा कर मुझे तो नहीं लगता हमने कोई अन्याय किया ... डोंट बी सिली ..... आज तुम्हारा बर्थडे है ..... लेट्स सेलिब्रेट ..... " राहुल के बढ़े हुए हाथ को झटक कर निवेदिता खड़ी हो गई" अब चलते हैं .... देर हो रही है ....."

दरवाजे पर दस्तक हुई। निवेदिता का ध्यान भंग हुआ। निवेदिता ने दरवाजा खोला। नर्स के साथ लेडी डॉक्टर ने प्रवेश किया। चेकअप करना है। नर्स ने इशारा किया , निवेदिता कमरे से बाहर हो गई। थोड़ी देर बाद नर्स सहित डॉक्टर के दूसरे कमरे की ओर बढ़ने की आवाज आई।

" डॉक्टर ने क्या कहा ....." निवेदिता ने उत्सुकता से पूछा।

" रात में दर्द शुरू हो सकता है , फीटस नीचे आ गया है।"

" ओह ..... सेब काट रही हूँ ..... खा लो ....."

" मैंने बिस्किट्स लिए हैं ..... आपकी आँखें बंद थीं ..... कुछ सोंच रही थीं आप ..... इसीलिए डिस्टर्ब नहीं किया।"

दरवाजे पर फिर दस्तक हुई।

" विभा दी ..... आप ?" निवेदिता के चेहरे पर आश्चर्यभरी मुस्कान थी।"

" रूम नंबर थर्टी वन … तुम्हीं ने बताया था ....."

" मेरी बेटी .... रोशनी ...."

" वाह ..... अपने नाम की तरह ही सुंदर है ..... गॉड ब्लेस यू बेटी ..... घबड़ाना मत .... रिलैक्स रहो ....."

" मेरी हॉस्टल की दोस्त ..... मुझसे सीनियर थीं विभा दी ..... आपकी बहू की डिलेवरी भी यहीं हुई है ...." निवेदिता ने विभा का परिचय दिया।

" चलो लॉबी में बैठकर बात करते हैं ..... बेटी को आराम करने दो .... कहते हुए विभा दी कमरे से बाहर आ गई।

" मैं अभी आती हूँ ...." कहकर निवेदिता विभा के साथ हो ली।

" कल सुबह बहू डिस्चार्ज हो रही है ..... तुमसे बहुत सी बातें करनी थीं ....."

" मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है विभा दी ..... आप मेरे साथ हैं ..... मैं तो हमेशा गिल्ट में रही .... आपके प्रति अपराध बोध से पीड़ित रही ....."

" मैं बहुत दिनों तक नाराज थी तुमसे ..... तुम्हारे चेहरे से भी मुझे घृणा थी ..... लेकिन ..... अब मैं आभारी हूँ ...."

" बहुत पुरानी बातें हैं ..... लेकिन मैं तुम्हारी थैंकफुल हूँ ……."

" किस बात के लिए ... ?" निवेदिता के चेहरे पर हैरानी थी।

" तुमने मुझे एक बीमारी से बचा लिया ..... एक ऐसी बीमारी , जो जीवन भर कष्ट देती ..."

" क्या कह रही हैं ..... विभा दी ....."

यह सब कुछ इतना सरल , सीधा न था ..... सीटी वाली बात मेरे मन में घर कर गई थी ..... मुझे खुद से नफरत होने लगी थी ..... तुम्हारे प्रति मैं हिंसा से भरी हुई थी .... मैंने हमेशा आत्महत्या को कायरता समझा था ... लेकिन मैं इतने डिप्रेशन में चली गयी थी कि बार-बार आत्महत्या करने का विचार आता था। हॉस्टल में लौटने का तो प्रश्न ही नहीं था। घर में भी मैं सबसे कटने लगी थी। अजीब-अजीब है ल्यूसिनेसन , डरावनी आवृत्तियों की आभासी दुनियाँ मुझे घेरे रहती। सोते ही सीटी बजेगी इस डर से मैं रात भर जागने लगी और इनसोमनिया की शिकार हो गई। मेरा विषय मनोविज्ञान था। मैं पढ़ाई लिखाई से कोसों दूर हो गई थी। मेरे एक प्रोफेसर जो पापा के मित्र थे परेशान होकर घर आये। मैं उनसे नहीं मिलना चाहती थी। पापा भी चिंतित थे। वे सर को मेरे कमरे में ले आये। सर ने मेरी काउंसिलिंग की। वह स्थिति की गंभीरता को भाँप चुके थे , फिर साइक्रियाटिस्ट से मेरा इलाज उन्हीं के परामर्श से शुरू हुआ। सीटी की समस्या के लिए उन्होने मुझे मेडिसिन के डॉक्टर को रिफर किया और तब पता चला यह दमा का प्रारम्भिक लक्षण हो सकता है। इलाज से मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गई। मैं सीमा पिल्लई को कायर समझती थी लेकिन वह कायर नहीं थी। यह स्थिति किसी की भी हो सकती है। अकेलापन इसे बढ़ा देता है। बस एक क्षण इधर या एक क्षण उधर। तराजू में लटके हुए काँटे की स्थिति है यह ....."

" विभा दी .... सीता पिल्लई पर झूठा केस बनाया गया था कि वह गर्भवती थी और बदनामी के डर से उसने आत्महत्या कर ली ....." निवेदिता ने विभा की बात को बीच में काटते हुए कहा।

" यही विडम्बना है ..... औरतों को मजबूत होना पड़ेगा ..... और वह तुम्हारा रोमियो ..... कहाँ है ... ? ..... तुम्हारे साथ ही होगा .... ?" विभा ने हँसते हुए पूछा।

" जब मुझे पता चला , सीता पिल्लई के मुकदमे में उसने झूठी गवाही देकर प्रोफेसर को बचा लिया ..... मैंने उससे अपने सभी रिश्ते खत्म कर दिये ....."

" गुड ..... तुमने ठीक किया ..... यू हैव सेव्ड़ योरसेल्फ ..... इस तरह तुमने खुद को भी बचा लिया ..... चलती हूँ , बहू इंतजार कर रही होगी ..... मेरा फोन नम्बर सेव कर लो ....."

निवेदिता विभा को जाते हुए देखती रही। कमरे में पहुंची तो रोशनी के चेहरे पर बेचैनी झलक रही थी। निवेदिता को देखते ही बोल पड़ी" माँ ..... लग रहा है लेबर पेन शुरू हो गया है ....."

निवेदिता के चेहरे पर मुस्कान तैर गयी।

❖

बी- 4/1, अन्नपूर्णा नगर कॉलोनी
विद्यापीठ रोड, वाराणसी। 221002

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सिंगापुर

हाथी के दाँत

– आराधना झा श्रीवास्तव

मेज़ पर जमी हुई धूल को तर्जनी ऊँगली से हटाते हुए और उसे शेष उंगलियों से रगड़कर झाड़ते हुए शर्मा जी झुंझलाए और फिर ऊँचे स्वर में कामिनी को पुकारते हुए कहा, "कामिनी..कामिनी...कहाँ हो... देखो तो मेज़ पर धूल की कितनी मोटी परत है। आज इस कमरे की सफ़ाई करना भूल गई क्या?काम ठीक से करे न करे मगर महारानी को पगार तो समय पर ही चाहिए"।

रसोई में बर्तन माँज रही कामिनी नल को बंद कर सफ़ाई का कपड़ा लिए लगभग हाँफते हुए आयी और जल्दी-जल्दी मेज़ को साफ़ करने लगी।

"यही काम पहले कर दिया होता तो मुझे चिल्लाना नहीं पड़ता। आँखें हैं या बटन? नज़र नहीं आता...कामचोर कहीं की.."

"मालिक मैंने सुबह मेज़ की अच्छी तरह से सफ़ाई की थी, लेकिन इस मौसम में धूल बहुत उड़ती है इसी..." आगे के शब्द उसके गले में ही अटक कर रह गए। कामिनी की कमज़ोर आवाज़ शर्मा जी की रोष में भरी रौबदार आवाज़ के नीचे दबकर रह गई,"तुम्हारी बकवास सुनने का मेरा पास समय नहीं है.. अब जल्दी निकलो यहाँ से मेरा कार्यक्रम बस शुरु ही होने वाला है"।

कामिनी ने सफ़ाई का कपड़ा उठाया और दरवाज़े की ओर अभी मुड़ी ही थी कि पीछे से शर्मा जी ने कड़क आवाज़ में टोका, "कहाँ चल दी...जाने के पहले कुर्सी तो साफ़ करती जाओ...अब क्या एक-एक सामान को साफ़ करने के लिए अलग से न्यौता देना पड़ेगा?"

जी साहब...कहकर कामिनी बिजली की गति से सफ़ाई करने लगी।

"हो गया ...बस... अब क्या देर कराओगी...निकलो यहाँ से... और हाँ जाने के पहले दरवाज़ा लगाती जाना..बाहर की कोई आवाज़ कमरे में नहीं आनी चाहिए"।

"मिल गयी फ़ुर्सत तुम्हें? क्या हुआ.. तुम बस अपनी ही दुनिया में मगन रहो। भगवान से फ़ुर्सत मिलेगी तब तो श्रीमान की याद आएगी न। कल तुम्हें बताया था न कि आज एक महत्वपूर्ण वैचारिक गोष्ठी की अध्यक्षता का आमंत्रण है। न तो ढंग से मेज़ की सफ़ाई हुई है और न ही कमरे में ढंग की लाइटिंग...कामिनी को पानी लाने के लिए कहा था तो एक भद्दे से स्टील के गिलास में पानी लेकर आ गई। अब कार्यक्रम का लिंक ही नहीं मिल रहा है। वाणी से कितनी बार कहा है कि मेरे कार्यक्रम के पहले लिंक ढूंढकर सारी सेटिंग ठीक कर दिया करे लेकिन उसे तो अपनी सारेगमपा से ही समय नहीं मिलता। आजकल के बच्चों को माता-पिता की कोई परवाह ही नहीं। सब एक से बढ़कर एक कामचोर और नालायक़ भरे हुए हैं घर में। तुम तो देवी बनी फिरती हो लेकिन अपने देवता की ज़रा-सी भी परवाह नहीं"।

इससे पहले की कामिनी हॉल में कदम रखती पीछे से धड़ाम की आवाज़ आयी। पीछे पलट कर देखा तो साहब ग़ुस्से में खड़े होकर चिल्ला रहे थे.. "कानों में रुई डाल दी है क्या? सुन नहीं रही कब से गला फाड़कर चिल्ला रहा हूँ..एक गिलास पानी लाकर मेज़ पर रखती जाओ"।

"जी वो दरवाज़ा बंद था तो सुन नहीं पायी। अभी लाई।

कामिनी जल्दी से एक गिलास पानी लेकर मेज़ पर रखने को आई ही थी कि साहब का ग़ुस्सा फिर से फूट पड़ा, "अरी ओ अक्ल से पैदल..तुम्हें पूरे रसोईघर में यही गिलास मिला था। कांच के गिलास क्या अलमारी की शोभा बढ़ाने के लिए ख़रीदा है मैंने?मालकिन कहाँ है? वाणी दीदी कहाँ है? ऐन मौके पर कोई रहता ही नहीं है। अब खड़ी होकर मेरा मुँह क्यों ताक रही हो। जल्दी से जाकर एक बढ़िया से कांच के गिलास में पानी लेकर आओ।

जी कहकर कामिनी वहाँ से जाने को मुड़ी ही थी कि फिर से शर्मा जी लगभग चीखते हुए बोले, ये स्टील वाला गिलास तो लेती जाओ। कैसे-कैसे बेवकूफ़ पाल रखे हैं..

अब तक शर्मा जी के वाचिक प्रहारों को झेल रहे कामिनी के कोमल हृदय ने जवाब दे दिया। होंठ थरथराए और स्टील के गिलास का पानी एक नमकीन बूँद से तरंगितहो उठा। अपनी साड़ी की कोर से आँखों के कोर से फूटने को आतुर गंगा-जमुना की धार पर संयम की बाँध लगाने का उपक्रम करती कामिनी के क़दम तेज़ी से दरवाज़े की ओर मुड़े।

दरवाज़े पर हाथ में पूजा की थाली लिए हड़बड़ी में आती हुई श्रीमती शर्मा दिखीं। जैसे दो अलग-अलग गंतव्य स्थलों की ओर तेज़ी से जाती हुई रेलगाड़ियाँ एक मोड़ पर आमने-सामने आ जाती हैं और फिर पलक झपकते ही बिना एक दूसरे का हाल-समाचार पूछे अपनी मंज़िल की ओर मुड़ जाती हैं ठीक इसी तरह कामिनी और श्रीमती सावित्री शर्मा जी भी अपने-अपने गंतव्य स्थल की ओर मुड़ गए। कामिनी की गीली पलकें देखकर श्रीमती शर्मा जी को अंदाज़ा हो चुका था कि आज एक बार फिर से उनके ओजस्वी पतिदेव श्रीमान सूर्यदेव शर्मा का दिमाग़ गर्म है। शर्मा जी के गर्म मिजाज़ की ताप को बरसों से सहती आ रही श्रीमती शर्मा जी ने संयत स्वर में पूछा,जी क्या हुआ? कामिनी को किस बात के लिए सुना रहे थे?

जैसे गर्म तवे का ताप ठंडे पानी के छींटों को भी उछाल देता है उसी तरह धर्मपत्नी का स्नेहिल स्वर सुनकर शर्मा जी की क्रोधाग्नि और भी तेज़ हो उठी।

"मिल गयी फ़ुर्सत तुम्हें? क्या हुआ.. तुम बस अपनी ही दुनिया में मगन रहो। भगवान से फ़ुर्सत मिलेगी तब तो श्रीमान की याद आएगी न। कल तुम्हें बताया था न कि आज एक महत्वपूर्ण वैचारिक गोष्ठी की अध्यक्षता का आमंत्रण है। न तो ढंग से मेज़ की सफ़ाई हुई है और न ही कमरे में ढंग की लाइटिंग...कामिनी को पानी लाने के लिए कहा था तो एक भद्दे से स्टील के गिलास में पानी लेकर आ गई। अब कार्यक्रम का लिंक ही नहीं मिल रहा है। वाणी से कितनी बार कहा है कि मेरे कार्यक्रम के पहले लिंक ढूंढकर सारी सेटिंग ठीक कर दिया करे लेकिन उसे तो अपनी सारेगमपा से ही समय नहीं मिलता। आजकल के बच्चों को माता-पिता की कोई परवाह ही नहीं। सब एक से बढ़कर एक कामचोर और नालायक़ भरे हुए हैं घर में। तुम तो देवी बनी फिरती हो लेकिन अपने देवता की ज़रा-सी भी परवाह नहीं"।

ऐसा मत कहिए जी। कल मैंने आपको बताया था न कि आज एकादशी का व्रत है इसीलिए पाठ... श्रीमती जी अपनी बात पूरी कर पाती इससे पहले ही उनके श्रीमान ने टोकते हुए कहा.. अच्छा अच्छा समझ गया पंडिताइन अब अपनी रामकथा मत सुनाने लगो मुझे। जल्दी से ये पूजा का तिलक लगा दो कार्यक्रम में दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। श्रीमान सूर्यदेव के दैदीप्यमान ललाट पर श्रीमती जी ने कुमकुम की लालिमा से भरी ओजस्वी रेखा खींच दी। आरती की लौ देते समय उनके हाथों से श्रीमान के करीने से संवरे हुए केश बिखर गए और शांत होते श्रीमान एक बार फिर बिफर गए। क्या कर रही हो...कितना समय लगाकर केश संवारे थे अब और काम बढ़ा दिया।

माफ़ कीजिए...मैं अभी ठीक कर देती हूँ।

रहने दो ठीक करने की जगह और बिगाड़ दोगी।

जाकर देखो कामिनी अब तक गिलास लेकर क्यों नहीं आई?

जी मैं अभी लेकर आती हूँ कहकर श्रीमती जी मुड़ी तो दरवाज़े पर कामिनी हाथ में गिलास लिए हुए खड़ी नज़र आई। श्रीमती जी ने उसके हाथ से गिलास लेते हुए उसे पूजा की थाल पकड़ाकर पूजा घर में रखने का संकेत किया। आँचल से गिलास की पेंदी को पोंछकर मेज़ के एक किनारे रखा और फिर कमरे में लाइटिंग ठीक करने लगी।

ठीक है ठीक है...अब तुम जाकर वाणी को यहाँ भेज दो। लिंक नहीं मिल रहा है। वह ढूँढ देगी।

वाणी की संगीत कक्षा चल रही है। बीच में कैसे टोकूँ?

बीच में कैसे टोकूँ? कौन सी मेडिकल की पढ़ाई है जिसमें इतना ध्यान लगाने की ज़रुरत है। उससे कहो कि क्लास छोड़कर एक मिनट

के लिए यहाँ आए। उसकी सारेगामा मेरे कार्यक्रम से अधिक महत्वपूर्ण नहीं।

उसकी सारेगामा...मेरी पूजा... आपके कार्यक्रम से अधिक महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। आप ठहरें साक्षात् सूर्यदेव और हम सब सौरमंडल के औने-पौने ग्रह जो अपनी-अपनी धुरी पर घूमते हुए आप ही के द्वारा निर्धारित पथ पर आपके इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहते हैं। किसमें इतना साहस जो अपने लिए अपनी पसंद की राह चुने, क्योंकि यदि किसी ने अपने लिए अलग पथ का चुनाव किया तो उसे आपके सौरमंडल से बहिष्कृत होने का दण्ड भोगना पड़ेगा। सावित्री के मन में भावनाओं का सैलाब उमड़ रहा था। जैसे खौलते पानी में कच्चे चावल को डालकर उसी क्षुधा को क्षणिक शांति मिलती है और फिर ढक्कन से ढँककर उसे अपने आवेग की सार्थकता का एहसास कराया जाता है उसी तरह सूर्य के ताप से अपने नन्हें ग्रह को बचाने के लिए सावित्री ने अपने खौलते मन में ममता का भाव डालकर उस पर संयम का ढक्कन डाल दिया। समय रेत की तरह हाथ से फिसलता जा रहा था। सावित्री तेज़ क़दमों से चलकर वाणी के कमरे तक पहुँची तो देखा दरवाज़ा बंद था। भीतर से आती संगीतमय स्वर-लहरियों ने मन मोह लिया। उसे आभास हो गया कि अभ्यास सत्र शीर्ष पर है, लेकिन पत्नीधर्म मातृत्व पर हावी हो गया और न चाहते हुए भी उसने द्वार पर दस्तक दिया। भीतर से वाणी ने मधुर स्वर में पूछा..कौन है? अभी क्लास चल रही है...बाद में आना।

मैं हूँ वाणी। बाहर निकलो। पिताजी तुम्हें कब से ढूँढ रहे हैं। उन्हें तुमसे एक ज़रुरी काम है।

माँ पाँच मिनट दे दो।

वाणी जल्दी करो पिताजी बहुत ग़ुस्से में हैं। पाँच मिनट में उनका कार्यक्रम शुरु होने वाला है।

वाणी ने पैर पटकते हुए दरवाज़ा खोला और बरस पड़ी...

क्या है...हर दूसरे दिन उनका कोई-न-कोई कार्यक्रम होता रहता है। ऑनलाइन मीटिंग ज्वाइन करना कौन-सा रॉकेट साइंस है। छोटा-सा बच्चा भी जानता है कि मीटिंग कैसे ज्वाइन करना है, लेकिन पिताजी को तो हर काम के लिए एक सेवक चाहिए जिसे वह आदेश देते रहें और वह दिन-रात उनकी चाकरी करता रहे। तुम ही बताओ माँ ऐसे बीच से उठकर जाऊँगी तो गुरुजी क्या सोचेंगे...

वाणी एक साँस में बोलती जा रही थी।

अभी गुरुजी की नहीं पिताजी की सोचो और चलो लिंक ढूँढकर मीटिंग सेट कर दो फिर चली जाना। कौन-सा तुम्हें वहाँ बैठकर सुनने को कह...

कहते-कहते सावित्री चुप हो गई, क्योंकि उसे पता है कि अगला आदेश वही मिलने वाला है। अब जब मिलेगा तब देखेंगे फिलहाल तो वाणी को किसी तरह मनाकर ले जाना उसकी प्राथमिकता है।

वाणी बातों में समय नष्ट करने से क्या लाभ..जल्दी चलो। गुरुजी को बाद में आकर बता देना।

एक मिनट रुको माँ। मैं चैटबॉक्स में गुरुजी को संदेश भेज देती हूँ।

जल्दी करो वाणी। पिताजी उबल रहे होंगे।

कब नहीं उबलते हैं ये कहो माँ। उबलना तो उनके स्वभाव में ही है।

वाणी...चुप रहो.. सावित्री ने खीजकर कहा।

अपनी वाणी पर विराम दो...ऐसा कहो माँ...कहते-कहते वाणी हंस पड़ी।

सावित्री के चेहरे पर भी फीकी-सी हंसी तैरने लगी। हंसी तैरकर अभी इस पार से उस पार भी नहीं पहुँची थी कि उनके कानों में श्रीमान सूर्यदेव का आग उगलता स्वर पहुँचा।

पैरों में मेंहदी लगा रखी है क्या तुम दोनों ने...कब से चिल्ला रहा हूँ सुनाई नहीं दे रहा है क्या। जल्दी करो कार्यक्रम शुरु होने वाला है। वाणी तुमसे कल रात को ही कहा था न कि आज की मीटिंग सेट कर देना फिर क्यों नहीं किया। हर बार आवाज़ देकर बुलाना पड़ता है। इतनी सी बात याद नहीं रख पाई।

पिताजी...मैंने भी तो आपसे कहा था न कि आज से मेरी संगीत की कक्षा का समय बदल दिया गया है, लेकिन आप तो मेरी बात सुनते ही नहीं।

अपनी ग़लती मानने की जगह मुझसे बहसबाज़ी कर रही हो।

सावित्री बेचारी सरहद पर खड़े निहत्थे सैनिक की तरह दोनों ओर से फेंके जा रहे वाक्-अस्त्रों के प्रहार को झेल रही थी। घर की शांति के लिए उसे बीच में बोलना ही पड़ा।

वाणी बातों में समय व्यर्थ गंवाए बिना पिताजी की मीटिंग सेट कर दो। कार्यक्रम शुरु होने ही वाला है।

लिंक कहाँ है? वाणी ने पूछा।

पिताजी आक्रामक मुद्रा से बचाव की मुद्रा में आते हुए बोले, लिंक ही तो नहीं मिल रहा है।

अब आक्रामक होने की बारी वाणी की थी, कमाल है! कार्यक्रम आपका और आपको लिंक ही नहीं मिल रहा है।

इस बार पिताजी थोड़े नरम पड़ते हुए बोले.. नहीं मिल रहा है तभी तो तुम्हें ढूँढ रहा था न...ये सब नई तकनीक कितना भी सीखने की कोशिश करता हूँ पल्ले ही नहीं पड़ता है। ज़रा देखो न कहाँ चला गया। पिछले दस मिनट से उलझा हुआ हूँ।

पिताजी को नरम पड़ता देख वाणी के तेवर भी ढीले पड़े और उसने पिताजी को हटने का संकेत देकर कंप्यूटर को अपने सामने रखकर संदेश वाला एप खोला।

किस समूह में भेजा गया था?

साहित्य और समाज...

अच्छा रुकिए मैं अभी सब सेट कर देती हूँ।आप तब तक अपने बाल ठीक कर लीजिए। माँ आप खिड़की के पर्दे को बायीं ओर खींच दीजिए ताकि पिताजी के चेहरे पर रोशनी आए।

लीजिए...मीटिंग में आपको ज्वाइन करवा दिया है। आप तैयार हो तों वीडियो ऑन कर दीजिएगा लेकिन जब तक आपकी बारी न आए अपना माइक म्यूट रखिएगा वरना यहाँ जो प्रेम की धारा फूट रही थी उसका आनंद दुनिया को भी मिलने लगेगा। कहकर वाणी हंस पड़ी।

सूर्यदेव के मुखमंडल पर राहत के बादल तैरने लगे। ताप कम हुआ और हंसी ने भी साहस बटोरकर उनके चेहरे पर दस्तक दी।

अच्छा पिताजी अब मैं जाती हूँ। गुरुजी से दो मिनट कहकर आई थी।

वाणी के साथ साथ सावित्री भी जाने को मुड़ी ही थी कि पिताजी ने एक बार फिर पीछे से टोका...

इस कार्यक्रम का लाइव प्रसारण हो रहा है। तुम दोनों जाकर वहाँ कुछ बढ़िया-बढ़िया टिप्पणी देते रहो। उन लोगों को भी तो मेरी लोकप्रियता के बारे में पता होना चाहिए।

वाणी तुम अपने सहेलियों के साथ भी इसका लाइव लिंक साझा कर सकती हो। तुम जल्दी से क्लास निपटाकर फ़ेसबुक पेज से जुड़ जाना।

सावित्री तुम भी अपने परिवार वालों को और सहेलियों को ये लिंक भेज दो। खाली नीला अंगूठा मत दबाती रहना। कुछ बढ़िया कॉमेंट लिखना जिससे उन्हें पता रहे कि मेरे परिवार वाले मुझसे कितना स्नेह करते हैं।

जाओ...जाओ...जल्दी जाओ...मुझे वीडियो ऑन करना है और हाँ जाने के पहले दरवाज़ा लगाती जाना।

कत्थई रंग के उस भारी दरवाज़े के किनारे पर लगी सुनहरे रंग की नक्काशीदार मूठ को खींचकर उसे बंद करते समय सावित्री ने सोचा कि खोलनेऔर बंद होने की इस प्रक्रिया से गुज़रते हुए ये बेचारा दरवाज़ा भी तो थक गया होगा। दरवाज़े पर चढ़ी चमकदार परत में उसे अपना धुँधला-सा अक्स नज़र आया। उसे लगा मानो वह लकड़ी का दरवाज़ा नहीं, बल्कि स्वयं उसका ही प्रतिरुप है जो श्रीमान के कक्ष के बाहर एक सजग प्रहरी और सेवाभावी सेवक बनकर कब से खड़ा है। कक्ष के बाहर और उसके भीतर के संसार की विभाजक रेखा बनकर, उस कक्ष की लज्जा का आवरण बनकर, चारदीवारी के भीतर हो रही बहसों का मूक गवाह बनकर, चौखट की परिधि में सिमटा हुआ, पल्ले की आड़ में अपने अंतर्मुखी मन में कितना कुछ समेटे सबके आतिथ्य में करबद्ध खड़ा। कभी स्वयं के बाहर की ओर न खुल पाने की कसक में छटपटाकर दीवारों से सिर फोड़ता हुआ और कभी कक्ष के स्वामी के क्रोध के आवेग से पत्ते सा डोलता हुआ। कभी दीवारों से लिपटकर अपनी पीड़ा को साझा करता हुआ और कभी नन्हें डोर स्टॉपर का आश्रय पाकर राहत की साँस लेता हुआ। संभवत: पहली बार उसने दरवाज़े को इतने ध्यान से देखा है। आज न जाने क्यों उस दरवाज़े के प्रति सावित्री के भीतर इतनी संवेदना जाग रही थी। वह सोच रही थी कि दरवाज़े की भी तो अपनी एक अलग दुनिया और उसे देखने की दृष्टि होती है। वह अपने काष्ठ नेत्रों से कमरे के दोनों ओर के संसार का सजीव प्रसारण देखता हुआ किसी धीर-गंभीर गृहस्थिन सा अपने होंठों पर चुप्पी धर लेता हैठीक वैसे ही जैसी चुप्पी सावित्री ने ओढ़ रखी थी। चुप्पी कितनी ख़तरनाक होती है... किसी तूफ़ान के आने के पहले वाली ख़ामोशी की तरह। संत की चुप्पी मौन साधना की उपमा पाती है और जन साधारण की चुप्पी उसकी लाचारी का प्रतीक। कहने को तो बहुत कुछ होता है लेकिन सब कहने लगे तो कलह का कोलाहल, काल बनकर सबको निगल जाएगा।

सावित्री और वाणी दोनों चुप थे क्योंकि उनके पास कहने को बहुत कुछ था, लेकिन उनके कहने-सुनने का कोई अर्थ न था। वाणी ने माँ को प्रश्नवाचक दृष्टि से निहारा। वाणी के नेत्र मूक होकर भी उसके पारदर्शी मन के भावों को अभिव्यक्त कर देते हैं। माँ वाणी के नेत्रों की भाषा पढ़ना जानती है इसीलिए उसे पता है कि वाणी उससे क्या कहने वाली है। देखा मैंने कहा था न..वाला भाव उसकी आँखों में तैर रहा था। सावित्री को भी तो पता था कि श्रीमान जी का अगला आदेश क्या मिलने वाला है और संभवत इसीलिए कमरे में आने से पहले वाणी को ये कहते हुए कि कौन-सा तुम्हें वहाँ बैठकर सुनने को कह रहे हैं वाला वाक्य वह पूरा नहीं कर पाई थी।

साल भर से जितने भी ऑनलाइन कार्यक्रम हुए हैं उनसे श्रीमान सूर्यदेव का प्रताप बढ़ता चला गया और सावित्री और वाणी के धैर्य का

बाँध थोड़ा-थोड़ा दरकता चला गया। ऑनलाइन कार्यक्रम के कारण पूरे घर में आपातकाल सा मौहाल बन जाता है। कमरे के हर कोने को करीने से सजाना। हर दो महीने पर उसकी सजावट में बदलाव। नए पर्दे, रोशनी के लिए अतिरिक्त व्यवस्था। श्रीमान के ओजस्वी व्यक्तित्व से मेल खाते परिधानों का चयन और उनकी देखभाल। मीटिंग सेट करना और फिर अपनी तशरीफ़ को तक़लीफ़ देते हुए दो घंटे बैठकर लाइव लिंक पर जाकर उन्हें सुनना और साथ में लाइक और कॉमेंट करते रहना। दोनों माँ-बेटी ने कोरोना को कितना कोसा, किंतु कंटीली और मोटी चमड़ी वाले इस कोरोना पर उनकी किसी भी बात का कोई असर नहीं हुआ । कोरोना की लहर वेब सीरिज की श्रृंखला की भाँति किस्तों में आती रही और ऑनलाइन कार्यक्रमों की बहार सोशल मीडिया पर छाई रही।

घर के कामधाम के साथ-साथ ये एक अतिरिक्त ड्यूटी सावित्री के हिस्से आ गई। सोशल मीडिया पर श्रीमान का गुणगान जिसमें सत्य की सतह पर झूठ की मोटी परत चढ़ाते-चढ़ाते सावित्री की ऊंगलियाँ और आत्मा दोनों ही थकती जा रही है। वाणी ने तो विद्रोह का बिगुल बजाकर अपने सारे सोशल मीडिया अकाउंट बंद कर दिए जिसकी सूचना उनके प्रतापी पिताजी को अभी नहीं मिली है, लेकिन सावित्री न चाहते हुए भी अपने श्रीमान का साथ निभाए जा रही है। अपने नाम को चरितार्थ करती सावित्री असली और आभासी दोनों ही संसार में अपना पत्नीधर्म निभाती जा रही है।

वाणी के पैरों में मानो पंख लग गए हों। उसे तो उड़कर अपने कमरे में जाने की जल्दी हो रही थी। गुरुजी उसकी प्रतीक्षा में थे।

माँ मैं जा रही हूँ आप देख लेना कहकर वह तेज़ी से कमरे की ओर लपकी और दरवाज़ा बंद कर लिया।

सावित्री दरवाज़े के बाहर खड़ी होकर सोचती रही। मैं देख ही तो रही हूँ। सबके रंग-ढंग, सबकी अपेक्षाएँ, सबका व्यवहार मगर मुझे कौन देख रहा है। मैं दिख भी रही हूँ किसी को या सबने मुझे अदृश्य मान लिया है। श्रीमान को कार्यक्रम में जाना है तुम्हें क्लास में और मुझे...मुझे कहाँ जाना है? क्या करना है?किसी ने पूछने की ज़रुरत ही नहीं समझी। सरकारी फ़रमान की तरह सबके आदेश मुझ तक पहुँचते हैं, लेकिन मेरी फ़रियाद किसी तक नहीं पहुँच पाती। ये संवाद दोतरफ़ा क्यों नहीं है?

क्यों मैं श्रीमान से नहीं कह पाती कि मुझे आपके झूठ को सुनने में कोई रुचि नहीं। आपको दुनिया के सामने अपनी लोकप्रियता का डंका पिटवाना है। दुनिया को दिखाना है कि देखो-देखो किस तरह मेरे प्रशंसक मेरे मुखारविंद से निकले वचनों का प्रसाद पाने को आतुर हैं। मेरी ओजस्वी वाणी को सुनने के लिए किस तरह उनके कान तरसते रहते हैं, लेकिन चाशनी में लिपटी हुई आपकी झूठी बातों को सुनना मेरे कानों के लिए पिघले शीशे-सा कष्टदायक है। आपको कई बारकार्यक्रमों के प्रति अपनी अरुचि के संकेत भी दिए, लेकिन आपने तो कानों के द्वार पर एक छन्नी लगा रखी है जिसमें से प्रशंसा के मीठे स्वर तो भीतर प्रवेश करते हैं। लेकिन आलोचनाओं के तीखे स्वर तो द्वार पर खड़े होकर चीखते चिल्लाते रह जाते हैं। उन्हें तो अंत:प्रदेश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं मिल पाती। विरोध के हर स्वर को बहिष्कृत कर दिया जाता है जिस तरह आपने हमारे सबसे छोटे बेटे कार्तिक को बहिष्कृत कर दिया गया था।

उसका दोष केवल इतना ही था न कि उसे आपके जैसे उच्चतम न्यायालय का अभिवक्ता नहीं बनना था। उसे पर्दे पर सबका मनोरंजन करने वाला अभिनेता बनना था जिसे आप अपनी प्रतिष्ठा के अनुरुप नहीं समझते हैं। मेरी सबसे प्रिय संतान कार्तिक जो मेरी हर भावना का ख़्याल रखता था लेकिन आपसे तो मेरी कोई ख़ुशी बर्दाश्त नहीं होती। आपको अपने सामने कोई नज़र ही नहीं आता और आएगा भी कैसे आपकी आँखें तो अपनी ही चमक से चौंधियाई रहती हैं, फिर भला सामने वाले पर आपकी नज़र कैसे पड़ेगी।

आज न जाने क्यों स्मृतियों के भंडारगृह से निकलकर एक-एक करके वे सारे पुराने दर्द सावित्री के मन के द्वार पर दस्तक दे रहे हैं जिसे उसने किसी उपेक्षित बक्से में बंद कर रखा था । खुला रखती तो नासूर बनकर जीने नहीं देता। अचानक उसे ये गीत याद आ गया,'मैं ज़िंदगी का साथ निभाता चला गया हर फ़िक्र को धुएँ में उड़ाता चला गया'।देवआनंद पर फ़िल्माया गया 'हम दोनों' का ये गीत उसे बहुत पसंद है। सीधी-साधी सावित्री क्या जाने कि चिंता को सिगरेट के धुएँ में कैसे उड़ाया जाता है उसे तो यही पता है कि चिंता चिता समान और उस चिता की अग्नि से उठने वाले धुएँ को उसने अपने सीने में कब से दबा रखा है। जब कभी उस धुएँ से पिघलकर उसका दर्द आँखों से बाहर आने को आतुर हो उठता है तो वह अपने गिरिधर गोपाल के सामने उन्हें बहाकर अपना मन हल्का कर लेती है। सावित्री के भीतर भावनाओं का ज्वार उठ रहा था। भूखे पेट वैसे ही क्रोध बहुत आता है और आज तो सावित्री पूजा के बाद अपने इष्टदेव से त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थना भी ढंग से नहीं कर सकी थी। ऐसा लग रहा था मानो देवस्थल से निकलकर सीधे युद्धस्थल पर पहुँच गई थी। मन ने विद्रोह का बिगुल बजाया लेकिन संयम ने उस पर कर्तव्य का आवरण डालकर उसके स्वर को दबा दिया और उनकी नज़रें अपने गुमशुदा मोबाइल की तलाश में जुट गई।

सावित्री को मानो मोबाइल से बैर हो। अक्सर इधर-उधर रुखकर भूल जाया करती हैऔर फिर सबसे पूछती रहती है कि किसी ने उनका

मोबाइल देखा है क्या? हथेली में समाने वाले इस संपर्क यंत्र के प्रति उनका तनिक भी आकर्षण नहीं है सिवाए एक के और वह है वीडियो कॉलिंग। इसी के सहारे तो बगीचे में सैर के बहाने हर दिन अपने लाडले कार्तिक को जी भर निहारते हुए पेटभरबतियाती है वरना श्रीमान का बस चले तो वे कार्तिक का नामोनिशान घर से मिटा दें। जब से उसकीनई फ़िल्म का वो वाला गाना रिलीज़ हुआ है जिसमें वह किसी बार गर्ल के साथ आइटम सॉंग पर थिरक रहा है तब से श्रीमान का क्रोध सातवें आसमान पर है। चुन-चुनकर पूरे घर से कार्तिक की सारी तस्वीरें हटाकर दराज़ में बंद कर दी है।

सावित्री ने जब कार्तिक से इस गाने के बारे में पूछा तो उसने सफ़ाई देते हुए कहा था ऐसे गानों पर थिरकना उसके अभिनय का हिस्सा है उसके वास्तविक जीवन का नहीं। हालांकि उसे अपनी परवरिश पर पूरा विश्वास है लेकिन फिर भी उसके बारे में जब लोग तरह-तरह की बातें करते हैं तो उसका भरोसा भी डगमगाने लगता है। कई बार कसम दिलाकर पूछने की कोशिश की और हर बार उसका जवाब यही था कि वास्तविक जीवन में वह सुरा और सुंदरी दोनों से दूर रहता है। कार्तिक की बातों पर विश्वास करने के अतिरिक्त सावित्री के पास कोई दूसरा विकल्प भी तो नहीं। ठीक वैसे ही जैसे शर्मा जी की आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त उसके पास कोई और विकल्प नहीं था। यदि होता भी तो क्या वह उस पर विचार करती?

प्रवेश कक्ष में रखे गोलाकार काँच की मेज़ पर उसके मोबाइल की सतह अचानक चमक उठी। लगता है अभी अभी कोई संदेश आया है। सावित्री ने ऊपर से झाँककर देखा तो प्रेषक में श्रीमान का नाम दिखा। बिना किसी विलंब के फ़ोन को अनलॉक करके संदेश पढ़ा। पतिदेव की ओर से कार्यक्रम का लिंक इस संदेश के साथ मिला कि बिना समय गँवाए तुरंत लिंक से जुड़ जाओ। लाइक के साथ-साथ बढ़िया कमेंट करती रहना।

'जी',अनायास ही सावित्री के मुँह से निकल गया जिसे सुनकर अगले ही पल वो अकचका गई। आज्ञापालन का भाव उसके भीतर इतनी गहरी पैठ कर चुका है कि एकांत में भी उसके मुँह से जी निकल पड़ता है जबकि वहाँ उसे सुनने वाला भी खड़ा नहीं है।

उसके विचारों की शृंखला को भंग करती हुई एक चिर-परिचित रौबदार आवाज़ मोबाइल पर गूँजी, "एक दिवसीय औपचारिकताओं से हमारे कर्तव्य का निर्वहन नहीं होगा। हमें इस भाव को अपने दैनिक आचरण में आत्मसात करना होगा। स्त्रियों का सम्मान करना होगा फिर वह स्त्री हमारी भार्या हो अथवा अपने श्रम से हमारे घर को चमकाने वाली कामवाली बाई हो।

मनुस्मृति में भी कहा गया है कि,

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है उनका सम्मान होता है वहाँ देवता वास करते हैं और जहाँ उनका सम्मान न हो वहाँ किए गये सभी अच्छे काम भी निष्फल हो जाते हैं"।

शर्मा जी महिला सशक्तिकरण के मुद्दे पर अपना प्रभावशाली वक्तव्य दिए जा रहे थे। गोष्ठी के प्रतिभागियों और फ़ेसबुक लाइव के दर्शकों की वाहवाही लिए जा रहे थे। न चाहते हुए भी अपने श्रीमान के मुखारविंद से प्रवाहित हो रही इस अमृतधारा का प्रसाद पाने के लिए सावित्री भी फ़ेसबुक लाइव से जुड़ गई और आज्ञानुसार पतिदेव की विद्वता और उदारता का बखान करने वाली सुंदर से सुंदरतम टिप्पणियाँ पोस्ट करने में जुट गई।

हाथ में हिंदी की अभ्यास-पुस्तिका लिए बड़ा पोता अभिनव उसके पास आया और पूछा, "दादी इस मुहावरे का मतलब क्या होता है - हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के कुछ और?"

दादी ने फ़ेसबुक लाइव की ओर इशारा करते हुए कहा - इसे कहते हैं हाथी के दाँत..खाने के और दिखाने के कुछ और...

किसे? पोते ने जिज्ञासा से दादी की ओर देखा और फिर मोबाइल की स्क्रीन की ओर झाँकते हुए कहा, "क्या दादी आप भी..लगता है आपके चश्मे का नंबर बढ़ गया है। ये तो दादाजी हैं"।

हाँ पता है..इस बार सावित्री के स्वर में पहले से भी अधिक दृढ़ता थी।

बेचारा अभिनव कभी मोबाइल की स्क्रीन को देखता तो कभी दादी के चेहरे की ओर जिस पर कितने ही तरह के भाव आ रहे थे और जा रहे थे।

अभिनव ने एक बार फिर से मुहावरा दोहराया – हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के कुछ और...?

❖

प्रवासी साहित्यकार सिंगापुर
Mob. +65 81218551

व्यंग्य-विथिका

जनतंत्र

नरेंद्र कोहली

मैं मानता आया हूँ कि यदि ईमानदारी से कोई काम करना हो तो उसके नियम विधान का कट्टरता से पालन करना चाहिए। ढुलमुल रह कर संसार में कोई काम ढंग से नहीं होता। यदि हम कट्टर न हुए होते और उनके समान उदार बने रहते तो न कभी मुगलों का राज्य समाप्त होता न अंग्रेज़ों का। किंतु मैं यह भी समझ रहा था कि उन्होंने अपने विषय में कुछ नहीं कहा था, जो कुछ कहा था, वह मेरे विषय में था। शब्द कुछ भी रहे हों, कहा उन्होंने यही था कि मैं कट्टरपंथी हूँ और कहीं कोष्ठकों में यह भी ध्वनित हो रहा था कि कट्टरपंथी होना अच्छी बात नहीं है।

"ईसवी संवत को ईसा का संवत कहना क्या कट्टरता है?"

"और क्या? नववर्ष नववर्ष होता है, ईसा का क्या और किसी और का क्या?" वे पूर्णत: निश्चित, निश्चिंत और आश्वस्त थे।

"विक्रम संवत को विक्रम संवत कहना, हिजरी संवत को हिजरी संवत कहना, पारसी नौरोज़ को पारसी नौरोज़ कहना कट्टरता है?"

भोलाराम बहुत जल्दी में था। वह हाथ में डंडा और झंडा लिए भागा जा रहा था।

"कहाँ जा रहे हो भोलाराम?" मैंने पूछा।

"स्टेशन।"

"गाड़ी पकड़नी है?"

"नहीं! रेलगाड़ी में आग लगाने जा रहा हूँ।"

"क्यों?" मैंने पूछा, बेचारी रेलगाड़ी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? वैसे भी वह देश की संपत्ति है।"

"तो देश ने बिहार में हमारे दल की सरकार क्यों नहीं बनाई?" वह बिगड़ कर बोला, "हमारी सरकार नहीं बनेगी तो हम देश में आग लगा देंगे।" "यह तो कोई जनतंत्र न हुआ।" मैंने कहा, "जो विधायक चुनाव में जीत कर आए हैं, वे सब विधानसभा में होंगे। वे वहाँ यह निर्णय कर सकते हैं कि बहुमत किसका है, उसी दल की सरकार बने।" "हम तो विधायक उन्हीं को मानते हैं, जो हमारे दल के हैं।" वह बोला, "हमारे दल के बाहर के लोग बेइमानी से आए हैं।"

"क्यों?" मैंने पूछा, "ऐसा कहने का कारण?"

"हमने सारे बूथों के चुनाव अधिकारियों को समझा दिया था कि भोट कैसे छापना है। जहाँ नहीं समझा पाए वहाँ अपने लोगों को समझा दिया था कि बूथ लूटना कैसे है।" वह बोला, "ऐसे में किसी और दल का कोई आदमी जीत ही कैसे सकता है?"

मैं उसकी ओर देखता ही रह गया, बोला कुछ भी नहीं। शायद वह समझ नहीं रहा था कि वह क्या कह रहा है।

"इसलिए हमारे दल के बाहर का जो आदमी जीत कर आया है,

वह बेईमानी से आया है। भोलाराम बोला, "वह विधायक है ये नहीं। उसे न विधान सभा में बैठने का अधिकार है और न सरकार बनाने का। सरकार तो हमरे ही दल की बनेगी।"

"यह तो कोई जनतंत्र न हुआ।" मेरे मुँह से निकला।

"हम जनतंत्र को वहीं तक मानते हैं, जहाँ तक वह हमारे पक्ष में है।" उसने कहा, "जहाँ वह हमारे विरुद्ध जाता है, वहाँ से हम जनतंत्र विरोधी हो जाते हैं।"

"इसका अर्थ हुआ कि तुम देश के संविधान को नहीं मानते।"

"मानते हैं, किंतु वहीं तक, जहाँ तक वह हमारे पक्ष में जाता है।" उसने कहा, "हमारा दल चुनाव जीते तो संविधान हमारे सिर माथे पर, किंतु यदि हमारा दल चुनाव नहीं जीतता तो हम किसी और को सरकार बनाने नहीं देंगे।"

"इसका क्या अर्थ हुआ?"

"अर्थ तुम्हारी समझ में नहीं आता तो हम क्या करें।" वह बोला, "यहाँ भोटर लोग हमारे पक्ष में हैं। सारे भोटर हमारे हैं। तो फिर दूसरा कोई दल सरकार बना कैसे सकता है।"

"जिन लोगों ने तुम्हारे दल के विरुद्ध मतदान किया है, मतदाता नहीं है?"

"होंगे मतदाता, पर वे भोटर नहीं है।" वह बोला, "उ सब बाहर से लाए गए हैं। हमारे प्रदेश का भोटर तो वही हैं, जो हमारे दल को भोट दे।"

"जो तुम्हारे पक्ष में मत नहीं देता, उसे बिहार से निकाल दोगे?"

"निकाल क्यों देंगे।" वह प्रखर स्वर में बोला, "अरे उसे हम गंगा जी में डुबो देंगे।"

"तुम्हें मालूम है कि चीन में किसी ने रेलगाड़ी में आग लगाई थी, तो उसे मृत्युदंड दिया गया था?"

"दिया होगा।" वह लापरवाही से बोला, "अपने देश में उ सब नहीं होता। इहाँ तो केवल हम ही दूसरों को मृत्युदंड देते रहते हैं।" "क्यों?"

"क्योंकि इहाँ एकतरफ़ा यातायात है। वन वे ट्रैफ़िक।"

"उन यात्रियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हैं।"

"बिगाड़ा? अभी कुछ बिगाड़ा ही नहीं है?" वह चिल्लाया, "इहाँ हमारे विरोधी दल की सरकार बन गई है और वह रेल में यात्रा कर रहा है। उसे इहाँ आ कर हमारे साथ मिलकर देश को आग लगाना चाहिए या नहीं?"

"तुमको राज्य करने का विशेषाधिकार प्राप्त है क्या?"

"विशेषाधिकार? अरे हमारा तो जन्मै हुआ है राज करने के लिए। उसने रुक कर मेरी ओर देखा, "हम राज करेंगे तो प्रदेश का ही नहीं, सारे देश का रक्त पिएँगे। और राज करने नहीं दोगे तो. . ." उसने आग्नेय नेत्रों से मेरी ओर देखा, "तो सारे देश में आग लगा देंगे। हमारा तो जनतंत्र यही है। और किसी जनतंत्र को न हम जानते हैं, न जानना चाहते हैं। उ सब फासीवाद है।"

–16 अगस्त 2006

कट्टरता

"नववर्ष की बहुत बहुत बधाई।"

उन्होंने चकित हो कर मुझे देखा, "कौन सा नववर्ष? नया साल तो पहली जनवरी को आरंभ होता है।"

"वह ईसा का नववर्ष होता है।"

वे भौंचक से मेरा चेहरा देखते रह गए जैसे मैंने कोई बहुत अशिष्ट बात कह दी हो। फिर बोले, "हम लोग इतने कट्टर नहीं हैं।"

मैं मानता आया हूँ कि यदि ईमानदारी से कोई काम करना हो तो उसके नियम विधान का कट्टरता से पालन करना चाहिए। ढुलमुल रह कर संसार में कोई काम ढंग से नहीं होता। यदि हम कट्टर न हुए होते और उनके समान उदार बने रहते तो न कभी मुगलों का राज्य समाप्त होता न अंग्रेज़ों का। किंतु मैं यह भी समझ रहा था कि उन्होंने अपने विषय में कुछ नहीं कहा था, जो कुछ कहा था, वह मेरे विषय में था। शब्द कुछ भी रहे हों, कहा उन्होंने यही था कि मैं कट्टरपंथी हूँ और कहीं कोष्ठकों में यह भी ध्वनित हो रहा था कि कट्टरपंथी होना अच्छी बात नहीं है।

"ईसवी संवत को ईसा का संवत कहना क्या कट्टरता है?"

"और क्या? नववर्ष नववर्ष होता है, ईसा का क्या और किसी और का क्या?" वे पूर्णत: निश्चित, निश्चिंत और आश्वस्त थे।

"विक्रम संवत को विक्रम संवत कहना, हिजरी संवत को हिजरी संवत कहना, पारसी नौरोज़ को पारसी नौरोज़ कहना कट्टरता है?"

"वह सब हम नहीं जानते। हम तो केवल इतना जानते हैं कि यह नववर्ष है। सारी दुनिया मनाती है।"

"ठीक कह रहे हैं आप।" मैंने कहा, "शायद आपको मालूम भी नहीं होगा कि यह पंचांग केवल पंचांग नहीं है, 'ईसवी पंचांग है।"

"पंचांग क्या?" वे बोले, "वह जो पंडितों के पास होता है।"

"पंचांग हम कैलेंडर को कहते हैं।" मैंने कहा, "पंडितों के पास भी होता है और साधारण जन के पास भी होता है।"

"मैं वह सब नहीं जानता।" वे बोले।

"आपके न जानने से न तथ्य बदलते हैं न सत्य।" मैं बोला, "कबूतर आँखें बंद कर ले तो बिल्ली का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता।"

"क्या बुराई है ईसा के नववर्ष में?" वे कुछ आक्रामक हो उठे।

"मैंने बुराई की बात कही ही नहीं है।" मैंने कहा, "मैंने तो इतना ही कहा है कि यह नववर्ष, ईसाइयों के पंचांग के अनुसार है।"

"पर काम तो हम इसी के अनुसार करते हैं।"

"मुगलों के राज्यकाल में हमें हिजरी संवत के अनुसार काम करना पड़ता था।" मैंने कहा, "वह हमारी मजबूरी थी।

हमने कभी उसे अपना उत्सव तो नहीं बनाया। वही बात ईसवी संवत के लिए भी सत्य है। अंग्रेज़ी साम्राज्य ने उसे हम पर थोपा। आज भी किन्हीं ग़लत नीतियों के अनुसार काम करने के कारण ईसा का वर्ष हमारी मजबूरी हो सकती है, हमारा उत्सव तो नहीं हो सकता। किसी की दासता, उसको बधाई देने का कारण नहीं हो सकती।"

"किसी को याद भी है, अपना देसी कैलेंडर?" वे चहक कर बोले।

"जिन्हें अपनी अस्मिता से प्रेम है, उन्हें याद है।" मैंने कहा, "सरकार से कहिए भारतीय पंचांग से वेतन देना आरंभ करे, हम सबको अपने आप भारतीय पंचांग याद आ जाएगा।"

"इस देश पर हिंदू कैलेंडर थोपना चाहते हो।" उन्होंने गर्जना की, "इस देश में मुसलमान और ईसाई भी रहते हैं।"

"मैं क्या करना चाहता हूँ उसे जाने दीजिए।" मैं बोला, "आप इस देश पर ईसाई पंचांग थोपते हुए भूल गए कि इस देश में हिंदू भी रहते हैं। ईसाई कितने प्रतिशत है इस देश में? और आपने उनका कैलेंडर सारे देश पर थोपा रखा है।

और उसपर आप न केवल यह चाहते हैं कि हम उसे उत्सव के समान मनाएँ यह भी भूल जाएँ कि हमारा अपना एक पंचांग है, जो इससे कहीं पुराना है। जो हमारी ऋतुओं, पर्व त्यौहारों तथा हमारे इतिहास से जुड़ा है।"

"वह हिंदू कैलेंडर है।" वे चिल्लाए।

"यदि संसार में आपका मान्य पंचांग, एक धर्म से जुड़ा है तो दूसरा पंचांग भी धार्मिक हो सकता है।"

मैंने कहा, "उसमें क्या बुराई है? किंतु हम जिस पंचांग की बात कर रहे हैं, वह भारतीय है। राष्ट्रीय है। आप बातों को धर्म से जोड़ते हैं, हम तो राष्ट्र की दृष्टि से सोचते हैं। ईसवीं और हिजरी संवत धार्मिक है क्यों कि वे एक धर्म- एक पंथ- के प्रणेता के जीवन पर आधारित हैं। विक्रम संवत अथवा युगब्ध का किसी पंथ अथवा पंथप्रणेता से कोई संबंध नहीं हैं। वह शुद्ध कालगणना है। इसलिए वह उस अर्थ में एकदम धार्मिक नहीं है, जिस अर्थ में आप उसे धार्मिक कह कर उसकी भर्त्सना करना चाह रहे हैं।"

"मुझे धार्मिक बातों में सांप्रदायिकता की बू आती हैं।"

"तो आपको अपने ही तर्क के आधार पर ईसवीं संवत को एकदम भूल जाना चाहिए। वह तो चलता ही एक पंथ विशेष के आधार पर है।"

"दुखी कर दिया यार तुमने।" वे बोले, "तुमसे तो बात करना ही पाप है। अब विक्रमी, ईसवीं, हिजरी और जाने कितने संवत होंगे। मैं किसको मनाऊँ?"

"इतना संभ्रम अच्छा नहीं है।" मैंने कहा, "संसार में इतने पुरुष देखकर उनमें से अपने पिता को ही न पहचान सको, तो कोई तुम्हें समझदार नहीं मानेगा।"

❖

विख्यात साहित्यकार एवं व्यंगकार

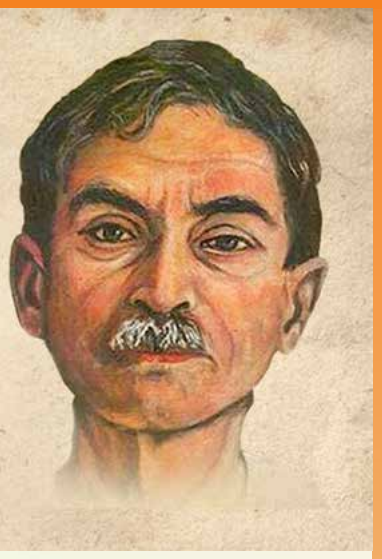

प्रेमचंद और समाजवाद

– वीरेन्द्र कुमार यादव

प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास 'असरारे मुआविद' बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'अवाजे खल्क' में 1903 से 1905 तक छपा। इसमें पंडों और महंतों के ढकोसलों और दुष्कर्मो का पर्दाफास किया गया था।

प्रेमचंद के उपन्यास 'किसना' की प्रति उपलब्ध नहीं है और शायद 'गबन' उसी की लीक पर चलकर लिखा गया था। उनकी पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' भी 1907 में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी 'अलिफ लैला' की किस्सों की तरह थी। जिसको नैतिकता का रंग दे दिया गया था। ''सोजे वतन'' यह देश भक्ति की भावना से पूर्ण पाँच कहानियों का संग्रह था। यही वह कहानी-संग्रह था जिस पर अँग्रेज सरकार की भृकुटियाँ तन गयी थी इस पर अँग्रेज जिलाधीश ने बुलाकर पूछा और बिगड़ कर बोले- तुम्हारी कहानियों में सिडीशन भरा हुआ है। अपने भाग्य को बखानों कि अँग्रेजी अलमदारी में हो मुगलों का राज्य होता तो दोनों हाथ काट लिए जाते। तुम्हारी कहानी एकांगी हैं। तुमने अँग्रेजी सरकार की तौहीन की है। सरकार की ताकिद थी कि बिना इजाजत के कुछ न लिखो। नवाब राय की नकाब उतर चुकी थी उसी दिन से घनपत राय, उर्फ नबाव राय, प्रेमचंद बन गये।

प्रेमचन्द अपना पहला बड़ा उपन्यास 'सेवासदन' या 'बजारे हुस्न' लिखने लगे। उसके बाद 'प्रेमाश्रय' का आधरभूत उपन्यास 'गोशए आफियत' लिखना शुरू किया जो 25 फरवरी 1920 को समाप्त हुआ तब प्रेमचंद पर बोल्शेविक क्रांति का नशा चढ़ने लगा था।

'प्रेमाश्रय' का 'बलराज' गाँव वालों को इस अचरज का ब्यौरा- ''तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है। उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों का राज है वह जो चाहते हैं वहीं करते हैं।''

"जब दरोगा इस बात के लिए होरी से रिश्वत ले रहा है कि गाय की हत्या के सिलसिले में हीरा के घर की तलाशी न ली जायेगी उस समय वह उसके इरादे को नाकाम कर देती है। यह चरित्र साहित्य मे प्रगतिवाद का अंकुर कहा जा सकता है। एक अवसर पर जब होरी किसान के बजाय दाता दीन का मजदूर बन कर रह जाता है और 'दातादीन' उसका शोषण कर-कर के 'होरी' का तेल निकालना चाहता है, तो 'धनिया' बीच में पड़ती है, पर वह निर्दयी उसके साथ भी बड़ी रूखाई और अनादर का व्यवहार करता है, उसे भीख मांगने का दुर्वचन बोलता है तो वह दातादीन पर बरस पड़ती है और बबकार कर कहती है - ''भीख मांगो तुम जो भिखमंगे की जात हो हम तो मजदूर ठहरे जहां काम करेंगे वहीं चार पैसा पायेंगे।"

उनके मन में व्यवस्था के प्रति गहन विक्षोभ का भाव समाया हुआ था जो बरबस फूट पड़ा था स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उनके मन में उत्ताल तरंगे उठा करती थीं। पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी को एक पत्र प्रेमचंद जी ने लिखा था कि मेरी आकांक्षा है कि हम स्वराज संग्राम में विजयी हो। धन या यश कमाने की मुझे लालसा नहीं खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बँगले की हवस नहीं। हाँ यह जरूर चाहता हूँ कि दो चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखूँ पर उसका उद्देश्य भी स्वराज ही है।''

शहरी क्षेत्रों के मध्यम वर्ग में जहाँ स्वतंत्रता और समानता के प्रति लालसा और उत्साह बढ़ता जा रहा था वहीं ग्रामीण किसानों पर जुल्मों सितम भी बढ़ रहे थे। किसान की दयनीय दशा ने प्रेमचंद के हृदय को छुआ वे स्वयं ग्रामीण संस्कृति के अंग थे। इसलिए गांवों की दुर्दशा का जितना सजीव वर्णन किया उससे ऐसा लगता है कि हम कोई कहानी या उपन्यास नहीं पढ़ रहे हैं वरन् स्वयं किसी गांव में बैठकर अपनी आँखों से एक-एक घटना देख रहे हैं।

जब होरी का बेटा विधवा झुनिया को घर ले आता है तो गाँव के चारों चौधरी उस पर जुर्माना लगाकर उसका घर ही रहन रख लेते हैं। जबकि उनमें से खुद का किसी का दामन साफ नहीं है। पंडित दातादीन का बेटा मातादीन स्वयं सिलिया चमारिन को रखैल बनाए हुए है।

नोखे राम खूसट भोला की छबीली पत्नी नोहरी को सरेआम घर में रख लेता है और यही हाल पटेश्वरी और झींगुरी सिंह का भी है। परंतु इन पर कोई कायदा, कोई कानून, कोई नैतिकता लागू नहीं होती।'' होती है तो केवल गरीब किसान पर, यहाँ ''समरथ को नहीं दोष गुसाई'' याद आता है।

होरी के खेत सूख रहे हैं उसका डौल इस साल बुवाई का नहीं। दातादीन सिर्फ बीज देकर फसल बुवाई करा देता है इसी से उसका आधा हिस्सा फसल में बन जायेगा। ऊपर से एहसान अलग। नीचता की पराकाष्ठा तो तब होती है जब निर्धनता के दुख से कातर होरी की फूल सी प्यारी मैना सी बातुनी बेटी लूथड़ी एक बुढ़े के हाथ बिकवा दी जाती है। इस दयनीय दशाा का वर्णन बहुत ही मार्मिक शब्दों में किया गया है:

''आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है। मानो चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा हो भाइयों, मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना पेट की लू कैसी होती है, माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है। कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधर्म।''

''कायाकल्प'' उपन्यास में धर्म-निरपेक्षता का आर्दश भी उभरा है उसकी पृष्ठ भूमि शायद कुछ समय पूर्व आगरा के साम्प्रदायकि दंगे थे:-

''ईश्वर ने सृष्टि की रचना ही क्यों की जहां इतना स्वार्थ द्वेष और अन्याय है? क्या ऐसी पृथ्वी बन सकती थी जहाँ सभी मनुष्य सभी जातियां प्रेम और आनंद के साथ संसार में रहती? यह कौन सा इंसाफ है कि कोई तो दुनियाा के मजे उड़ाये। कोई धक्के खाये, एक जाति दूसरी का रक्त चूसे और मूँछो पर ताव दे, दूसरी कुचली जाए और दाने-दाने को तरसे ऐसा अन्यायमय संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं हो सकती।''

नवम्बर 1925 से नवम्बर 1926 तक प्रेमचंद का 'निर्मला' उपन्यास धरावाहिक रूप से चांद में छपा। 'गबन' का प्रकाशन 1931 में हुआ यह प्रेमचंद के उपन्यासों का स्वर्ण युग बताया गया है। 1932 में 'कर्मभूमि' निकला और इसके बाद 'गोदान' में मशगूल हो गये परंतु इसका प्रकाशन 1936 में हुआ बीमारी के दिनों में उन्होंने 'मंगलसूत्र' लिखना आरंभ किया। दुर्भाग्य हिन्दी साहित्य का कि ये उपन्यास वे पूरा न कर पाये और इस अधूरा में छोड़कर अकाल कूच बोल दिया।

यर्थाथवाद के क्षेत्र में अनेक चरित्रों की उन्होंने रचना की उनमें से 'गोदान' की 'धनिया' एक तेज तर्रार दबंग स्पष्टवादिनी और न्याय के लिए संर्घष करने वाली नारी है।

जब दरोगा इस बात के लिए होरी से रिश्वत ले रहा है कि गाय की हत्या के सिलसिले में हीरा के घर की तलाशी न ली जायेगी उस समय वह उसके इरादे को नाकाम कर देती है। यह चरित्र साहित्य मे प्रगतिवाद का अंकुर कहा जा सकता है। एक अवसर पर जब होरी किसान के बजाय दाता दीन का मजदूर बन कर रह जाता है और 'दातादीन' उसका शोषण कर-कर के 'होरी' का तेल निकालना चाहता है, तो 'धनिया' बीच में पड़ती है पर वह निर्दयी उसके साथ भी बड़ी रूखाई और अनादर का व्यवहार करता है, उसे भीख मांगने का दुर्वचन बोलता है तो वह दातादीन पर बरस पड़ती है और बबकार कर कहती है - ''भीख मांगो तुम जो भिखमंगे की जात हो हम तो मजदूर ठहरे जहां काम करेंगे वहीं चार पैसा पायेंगे।

नयी पीढ़ी ढकोसलों और आडम्बरों के प्रति क्या धरणा मन में बना रही थी उसका प्रतिबिम्ब प्रेमचंद ने इस समय प्रस्तुत किया जब गोदान का होरी अपने जमींदार राय साहब अमरपाल सिंह के पास से लौटकर आता है और गोबर तथा धनिया के सामने 'रायसाहब' के

घड़ियाली आंसुओं की तारीफ के पुल बांधता है तो, 'गोबर' करारा व्यंग्य करते हुए जवाब देता है -''तो फिर अपना धन हमें क्यों नहीं दे देते हम अपना खेत, बैल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं करेगें बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी जिसे दुःख होता है वह दरजनों मोहरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा, पूरी नहीं खाता और न नाच रंग में लिप्त रहता है मजे से राज का सुख भोग रहे हैं उस पर दुखी हैं।''

प्रेमचंद इस पाखंड की ध्ज्जयां उड़ाते हुए आगे कहते हैंः- संवाद होरी और गोबर के बीचः-

गोबर - यह सब मन को समझाने की बातें हैं

भगवान सबको बनाते हैं यहां जिसके हाथ में लाठी है वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।''

होरी - 'यह तुम्हारा भरम है' मालिक आज भी चार घंटे रोज भगवान का भजन करते हैं।

गोबर- किसके बल पर यह भजन भाव और दान धर्म होता है?

होरी - अपने बल पर

गोबर - नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसलिए दान-

धर्म करना पड़ता है। भगवान का भजन इसलिए होता है। भूखे नंगे रहकर भगवान का भजन करें तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे तो हम आठो पहर भगवान की जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ईख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।

उनकी 'ठाकुर का कुआं' कहानी में 'गुंगी' का कथन 'हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं ? यहां तो जितने हैं एक से एक छँटे हैं। चोरी ये करे, जाल फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को मार कर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है। किस किस बात से हम से ऊँचे हैं? हां, मुंह से हमसे ऊँचे हैं हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे है। कभी गांव में आ जाती हूँ तो इस रस भरी आंखों से देखने लगते हैं जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड कि हम ऊँचे हैं।

राष्ट्रवाद का उत्कृष्ट प्रमाण उनकी कहानी 'माँ' में मिलता है। 'करूणा' का पति देश भक्ति के लिए जेल भुगतकर आता है और संसार की दासता से मुक्त हो जाता है। अब उनकी एक मात्र आशा उसका पुत्र है। 'करूणा' उसे सत्ता भोगी नहीं राष्ट्र प्रेमी बनाना चाहती है।

उसका कथन है- ''मेरी इतनी बात मानो सरकारी पदों पर न गिरो, मुझे यह मंजूर है कि तुम मोटा पहनकर देश की कुछ सेवा करो न कि इसके बदले तुम हाकिम बन जाओ और शान से जीवन बिताओ। और जब उसकी आशाएं पूरी नहीं होती, पुत्रा सरकारी अधिकारी बन जाता है तो उसकी शक्ल से भी नफरत हो जाता है और आत्मग्लानि से प्राण त्याग देती है।

'कानूनी कुमार' नामक कहानी में तो प्रेमचंद ने परिवार नियोजन का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया है वह आज की परिस्थितियों में भी अक्षरशः सत्य है। कानूनी कुमार एक गर्भवती महिला को देखकर चिंतातुर होता है- ''बेकारी का यह हाल कि आधी जनसंख्या मक्खियां मार रही है आमदनी का यह हाल कि भरपेट किसी को रोटियां नही मिलती बच्चों को दूध स्वप्न में भी नहीं मिलता और ये अंधे हैं कि बच्चे पर बच्चे पैदा करते जाते हैं।'' संतान निग्रह बिल को जितनी जरूरत इस देश को है उतनी और किसी कानून की नहीं। दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों उसे कम से कम पांच वर्ष की कैद उसमें पांच महीने से कम काल कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रूपये से कम हो उसे संतानोत्पति का अधिकार ही न हो .....हाँ एक दफा ये भी रहे कि एक संतान के बाद कम से कम सात वर्ष तक दूसरा न आ पाये। तब इस देश में सुख संतोष का साम्राज्य होगा तब स्त्रियों और बच्चों के मुख पर खून की सूर्खी नजर आयेगी तब मजबूत हाथ पांव और मजबूत दिल और जिगर के पुरूष उत्पन्न होंगे।

'दिल की रानी', 'बड़े घर की बेटी', 'अलग्योझा', 'नमक का दारोगा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'दो बैलों की कथा', 'पंच परमेश्वर', 'शंखनाद', 'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह' अन्य कहानी हैं।

उन्होंने इन पारिवारिक और सामाजिक कहानियों में मानव हृदय के जटिल गूढ़ रहस्यों को जिस सहजता, सरलता और रोचकता से चित्रित किया है वह विश्व साहित्य के इतिहास में सदा मणि माणिक के सामान देदीप्यमान रहेगा।

❖

153 एम.आई.जी, लोहियानगर
कंकड़बाग, पटना-800020

पुस्तक-समीक्षा

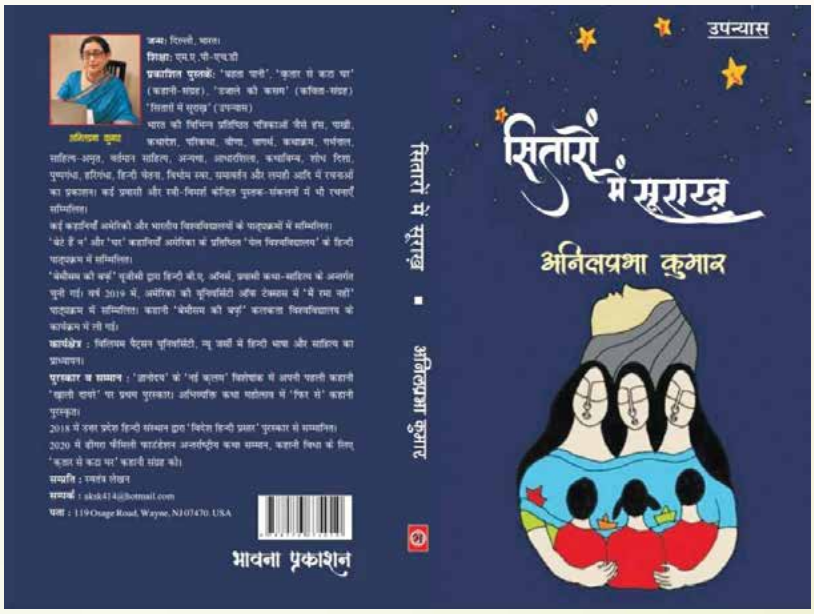

सितारों में सूराख़ करती बंदूक रखने का अधिकार

रेनू यादव

हमारा डर ही हमें आत्मरक्षा के लिए उकसाता है, उसके लिए या तो हम डर कर छुप जायें अथवा अपने बचाव हेतु अस्त्र-शस्त्र रखें। किंतु अस्त्र-शस्त्र दूसरों की हानि के बदले अपने बचाव का पक्षधर है तथा अपना बचाव दूसरों के डर का कारक हो सकता है। इसीलिए लाठी- डंडा, बन्दूक से लेकर मिसाइल तक डर के ही सूचक हैं जिसके विपरीत सशक्त होने का दंभ भरा जाता है और यही दंभ मानवता के लिए खतरा बन जाता है।

ऐसे ही अनछुए मुद्दे, अमेरिका में बन्दूक रखने का अधिकार होने के कारण खतरे में पड़ी मानवता पर प्रवासी लेखिका अनिल प्रभा कुमार ने अपने उपन्यास 'सितारों में सुराख़' के माध्यम से सवाल उठाया है। अत्यंत शोध एवं सतर्कता के साथ लिखा गया यह उपन्यास विश्व के फलक पर चमकते देश में उस 'ब्लैक होल' पर बात करता है जहाँ सुरक्षा के नाम पर नागरिकों की सुरक्षा एक सवाल है। 'गन सेव लाइव्स' गन समर्थकों का एक ऐसा नारा है जो व्यक्तिगत तौर पर वहाँ के नागरिकों के लिए मर्दानगी एवं शौर्य का प्रतीक है, तो राजनीतिज्ञों के लिए राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति की आड़ में वोट की राजनीति एवं आर्थिक मदद का बड़ा संसाधन है। 15 दिसंबर 1791 को अमेरिकी संविधान के दूसरे संशोधन में बंदूक रखने को एक बुनियादी अधिकार माना गया। ऋषि कुमार सिंह के अनुसार यहाँ 88.8 फीसदी लोगों के पास बंदूकें हैं जो दुनिया में प्रति व्यक्ति बंदूकों की संख्या के लिहाज से सबसे बड़ा आंकड़ा है और यहाँ प्रति 10 लाख आबादी पर सरेआम गोली चलाने (मास शूटिंग) की घटनाएं अमेरिका में सबसे ज्यादा हैं। लेखिका अनिल प्रभा कुमार के अनुसार ऐसी घटनाओं से आहत होकर ही उन्होंने यह उपन्यास लिखने का फैसला किया।

लेखिका कथानक को एक छोटी-सी घटना (सीधे-साधे जय की कनपटी पर बन्दूक रख कर उसके साथ लूटपाट होना) से आगे बढ़ाती हैं जिसके कारण जय के अंदर डर पैदा हो जाता है और उसे बन्दूक खरीदना पड़ता है। दूसरी वीभत्सकारी घटना चिन्मया के स्कूल में हुई गोलीबारी की घटना है, जो सन् 2018 में फ्लोरिडा के एक हाईस्कूल में हुई गोलाबारी की घटना की याद दिलाती है जिसमें शिक्षक एवं विद्यार्थियों समेत सत्रह लोगों को जान गवानी पड़ी थी। उस हादसे से वहाँ का पूरा समाज सदमें में आ जाता है। तीसरी

घटना एम.डी.ए. यानी 'मॉम्स डिमान्डस एक्शन फ़ॉर गन सेंस इन अमेरिका' अभियान के बीच लॉस-बेगास के कैसीनो में, अमेरीकी सीमा के पास टैक्सास में पुनः गोलीबारी के बाद डर उच्च स्तर तक पहुँच जाता है। इस उपन्यास की खास बात है कि लेखिका इस उपन्यास में सिर्फ एक ही मुद्दे पर केन्द्रित हैं तथा इसका कथानक एक भयावह पीड़ा एवं संत्रास की कथा कहते हुए बहुत ही शांत भाव से आगे बढ़ता है और मुद्दे से बिना भटके वैचारिक आंदोलन की ओर मुड़ता है न कि शारीरिक आक्रोश के साथ। मॉम्स की सूझ-बूझ से चलाए जा रहे अभियान में उनके भाषण में उत्तेजना तो दिखाई देती है, लेकिन कानून के दायरे में रहकर ही उसका विरोध करना उनका उद्देश्य होता है। साथ ही एम.डी.ए. यानी मॉम्स डिमान्ड एक्शन फ़ॉर गन सेंस इन अमेरिका के माध्यम से इनकी माँग है कि सरकार बन्दूक रखने के नियमों पर कड़ा नियंत्रण करे। उनका कहना है कि टैक्सास, ओहायो, शिकॉगो, फ़्लोरिडा, लॉस-वेगास, औरलैन्डो, कैलिफोर्निया आदि स्थानों पर मॉल, स्कूल, मनोरंजन स्थल, चर्च, खेल का मैदान, त्यौहार-उत्सव जनसंहार के गवाह हैं कि गन सेव लाइव्स जैसे छिछले उद्देश्य के पीछे लाखों लोग अपनी जान गवाँ चुके हैं। घरेलू हिंसा की शिकार स्त्रियाँ, चर्च में निर्दोष लोग, स्कूल के मासूम बच्चे, नस्लवाद आदि के कारण मासूमों की जिन्दगी के साथ खेलना मानवता के साथ खेलना ही तो है !

दूसरी विशेषता है कि लेखिका बाज़ारवाद में मीडिया की भूमिका और मीडिया में बाज़ारवाद की नग्नता पर भी सवाल उठाती हैं। तीसरी विशेषता, लेखिका ने चिन्मया के मन में उठते किशोर प्रेम में माँ जसलीन का दोस्ताना व्यवहार, जय के मन में चला रहे अंतर्द्वंद्व, हादसे के बाद चिन्मया के मन की पीड़ा तथा उसके प्रति जय का बदलता नज़रिया, चिन्मया एवं समर की माँ का साँझा दुःख, समर के पिता का दर्द 'क्या बाप के सीने में दिल नहीं होता' तथा प्रत्येक पात्र में समयानुसार आ रहे बदलाव को बिना लाग-लपेट के अत्यंत खूबसूरती से दर्शाया है।

इस उपन्यास को पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि कोई भी देश कितना ही सितारा बनकर चमक रहा हो किंतु हर देश की अपनी-अपनी खूबियाँ और खामियाँ होती हैं। अमेरिका में नस्लवाद, कार्पोरेट सेक्टर में स्त्री-उत्पीड़न, राजनेताओं का आत्मकेन्द्रण एवं नौकरी का अस्थायित्व आदि की भाँति आत्मरक्षा और राज्य को उत्पीड़न से बचाने के नाम पर बन्दूक रखने का अधिकार भी एक खामी है जिसके चलते हजारों लोग तबाह हो चुके हैं। लेखिका एक तरफ अमेरिका की समस्या बताते हुए दूसरी तरफ निष्पक्ष रूप से पढ़े लिखे प्रवासी भारतीयों की मानसिकता पर भी प्रकाश डालती हैं, जैसे कि धर्म-संप्रदाय को लेकर रूढ़िवादी होना, भारतीय संस्कारों के खिलाफ 'प्रॉम-नाइट' का माना जाना, बंदूक रखने के अधिकार के विरोध के प्रति प्रवासियों का एकपक्षीय नज़रिया कि यह हमारा मुद्दा नहीं बल्कि इस देश का मुद्दा है आदि।

अतः लेखिका ने इस उपन्यास में अमेरिका में बन्दूक रखने के अधिकार के कारण अमेरिकी राजनीति एवं इतिहास के ताने-बाने में समाज पर पड़ते आपराधिक एवं मानसिक प्रभाव तथा एम.डी.ए. अभियान से मानवता के बचाव एवं बदलाव की कड़ी के विशेष मुद्दा को उठाया है। मॉम्स का 'बच्चे बचाओ, बन्दूक नहीं' का नारा सिर्फ बच्चों के लिए नहीं बल्कि संपूर्ण मानव समाज के लिए है। यही कारण कि वहाँ की जनता डर का चोला उतार फेंक धीरे-धीरे इस अभियान में शामिल होने लगती है। यह उपन्यास इतिहास तो नहीं किंतु निःसंदेह वर्तमान समय का ऐतिहासिक दस्तावेज है। अमेरिका में प्रवास करते हुए अमेरिकी संस्कृति और कानून पर सवाल उठाना सचमुच साहसपूर्ण कार्य है, वह भी तब, जब अमेरिका विश्व के फलक पर खुद सितारा बन कर चमक रहा हो। इस उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता इसी बात से समझ आती है कि दुनियाँ में चमकता सितारा अमेरिका के 'प्रो-गन' लॉबी तथा बन्दूक रखने के अधिकार के कानून में मॉम्स डिमान्डस एक्शन चाहे पूरी तरह जीत हासिल न कर पाया हो, किंतु एक सूराख़ तो अवश्य है।

❖

एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर,
ग्रेटर नोएडा – 201 312 फोन - 9810703368
ई-मेल- renuyadav0584@gmail.com

वीरों का कैसा हो वसंत

सुभद्राकुमारी चौहान

वीरों का कैसा हो वसंत? / आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार / प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

फूली सरसों ने दिया रंग / मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग / हैं वीर वेश में किंतु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

भर रही कोकिला इधर तान / मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान / मिलने आये हैं आदि-अंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

गलबाँहें हों, या हो कृपाण / चल-चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण / अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

कह दे अतीत अब मौन त्याग / लंके, तुझमें क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग, जाग / बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत? / हल्दी-घाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग! सिंह-गढ़ के प्रचंड / राणा-ताना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

भूषण अथवा कवि चंद नहीं / बिजली भर दें वह छंद नहीं,
है क़लम बँधी, स्वच्छंद नहीं / फिर हमें बतावे कौन? हंत!
वीरों का कैसा हो वसंत?

❖

थाल सजाकर किसे पूजने

श्यामनारायण पाण्डेय

थाल सजाकर किसे पूजने चले प्रात ही मतवाले,
कहाँ चले तुम राम नाम का पीताम्बर तन पर डाले।

इधर प्रयाग न गंगा सागर इधर न रामेश्वर काशी,
इधर कहाँ है तीर्थ तुम्हारा कहाँ चले तुम सन्यासी।

चले झूमते मस्ती से क्या तुम अपना पथ आये भूल,
कहा तुम्हारा दीप जलेगा कहा चढ़ेगा माला फूल।

मुझे न जाना गंगा सागर मुझे न रामेश्वर काशी,
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को मेरी आँखे प्यासी।

अपने अटल स्वतंत्र दुर्ग पर सुनकर वैरी की बोली,
निकल पड़ी लेकर तलवारें जहाँ जवानों की टोली।

जहाँ आन पर माँ बहनों ने जला-जला पावन होली,
वीर मंडली गर्वित स्वर में जय माँ की जय-जय बोली।

सुन्दरियों ने जहाँ देश हित जौहर व्रत करना सीखा,
स्वतंत्रता के लिए जहाँ पर बच्चों ने भी मरना सीखा।

वहीं जा रहा पूजा करने लेने सतियों की पद धूल,
वहीं हमारा दीप जलेगा वही चढेगा माला फूल।

जहाँ पदमिनी जौहर व्रत करती चढ़ी चिता की ज्वाला पर,
क्षण भर वहीं समाधि लगेगी बैठ इसी मृग छाला पर।

❖

नींद और नकब

हम सोते रहे
वह नकब लगाते रहे!

नकब लगी देखी
तो अब हम चिल्ला रहें हैं --
"नकब लग गयी, नकब लग गयी!"

चंद पक्षों को हमारा यह
चिल्लाना भी
आया नहीँ पसंद--
"नकब लग गयी, तो लग गयी---
नकब लगाना हमारा
ख़ुदाई काम है!
और वही काम तो
हम कर रहे थे

नकब लगाना
आपका ही
आईन का दिया
हमारा मौलिक अधिकार
हमें क्यों रहे धिक्कार !

सहिष्णुता की ठंडी हवा में
सोने का सुख लेते लेते
तुम अचानक
कैसे जग गये ----!

जरूर कोई है
कोई है
जो तुम्हें जगा रहा है
अतीत की याद दिला रहा है"!

❖

थ्रू प्रॉपर चैनल

तुम नौकरी में हो
और थ्रू प्रॉपर चैनल का महत्व
अच्छी तरह समझते हो।

बच्चों और पिता के बीच
माँ थ्रू प्रॉपर चैनल है !

अपनी अनुकूल अनुशंसा के साथ
जब जब माँ
बच्चों के आवेदन - पत्र
अग्रेषित करती है
आवेदन - पत्र कभी
निरस्त नहीँ होते !

माँ के न रहने पर
पिता उन्हीं आवेदन-पत्रों
को बिना पढ़े
वापस लौटा देता ---है!

तुम नौकरी में हो
और थ्रू प्रॉपर चैनल का महत्व
अच्छी तरह समझते हो।

बच्चों और पिता के बीच
माँ थ्रू प्रॉपर चैनल है !

❖

वरिष्ठ साहित्यकार
Mob. 9425679044

पारदर्शी प्रेम की ऐसी चलन को क्या कहें
हाथ जल जाते हैं जिससे उस हवन को क्या कहें

पत्थरों की अब नुमाइश हर तरफ होने लगी
खून से लथपथ अकेला इस वतन को क्या कहें

देख कर खामोश होना और जल जाना है बस
दिल में लोगों की छुपी जो उस अगन को क्या कहें

टूट कर बिखरे नहीं हैं जिन्दगी की भीड़ में
अपने कांधे पर उठाए इस थकन को क्या कहें

'शिव' की आंखों में हजारों ख्वाब जिन्दा है अभी
ख्वाब की अंगड़ाइयों के अंजुमन को क्या कहें!

❖❖❖

अभी अच्छा नहीं कुछ बोल दें हम
तुम्हारे राज सारे खोल दें हम

अभी माहौल तो अच्छा बहुत है
जरूरी तो नहीं विष घोल दें हम

वो गहरी नींद में सोया हुआ है
कहो तो प्यार से ही झोल दें हम

कहां भाषा हमारी है कठिन कुछ
जुबां पर ला के बोलो तोल दें हम

भले ही 'शिव' हमारा नाम साहिब
मगर विष का कहां तक मोल दें हम !

❖❖❖

शह हो चाहे मात नहीं लाचारी है
मर्यादा की बात, नहीं लाचारी है

चुपके - चुपके घर में रोने वालों के
कुछ ऐसे हालात, नहीं लाचारी है

घर से निकले पांव नहीं ये मत सोचो
दिन हो चाहे रात, नहीं लाचारी है

कोई वजह नहीं हो लेकिन मर जाए
विष पी लें सुकरात, नहीं लाचारी है

'शिव' के बारे में यह कहकर चुप रहना
क्या इसकी औकात, नहीं लाचारी है!

❖❖❖

जिन्दगी के नाम पर अपनी कहानी और है
फूल है खुशबू है लेकिन रातरानी और है

मेरे हिस्से में तुम्हारे जख्म के ये सिलसिले
जिस्म पर उभरी हुई उनकी निशानी और है

सब तो अपने हक में शायद ले गए अपने सुकून
मेरे हक़ में जो बचे वो जिंदगानी और है

कल तलक जो दोस्ती का दंभ भरते थे यहां
आजकल उन दोस्तों की मेहरबानी और है

'शिव' तुम्हारे नाम जो लेकर चले बैसाखियां
आज उनकी क्या गजब की ये जवानी और है !

❖❖❖

वरिष्ठ संपादक एवं ग़ज़लकर
Mob. 9334333509

अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लें

उसने सीधा रास्ता देखा नहीं
बह गया पानी जिधर दरिया नहीं

मैंने देखी राह जिसकी उम्र भर
वो कभी इस राह से गुज़रा नहीं

लिजलिजाती सभ्यता की देह पर
हो कोई मरहम मगर चढ़ता नहीं

आप भी इस सत्य को स्वीकारिये
सूखे पेड़ों पर समर लगता नहीं

तू अगर बनकर दिया रौशन है तो
क्यों मशालों की तरह जलता नहीं1

❖❖❖

ज़िन्दगी से यही शिकायत है
दूर रहने की इसकी आदत है

सच के माथे पे झूठ का आँचल
ये दिखावा है या सियासत है

बिखरी किरणें भी राह देती हैं
चाँदनी की यही नज़ाकत है

दीप की जितनी लौ बढ़ा दे तू
धूप में इसकी क्या ज़रूरत है

नाव कागज़ की हम चलाएंगे
आनेवाली सदी की चाहत है

❖❖❖

ज़मीन क्यों आसमान ले लो
जो कम पड़े तो ये जान ले लो

बहुत लड़े हैं ये तीरगी से
दिये की लौ की थकान ले लो

कली-कली सुर्खरू मिले, वो
मुहब्बतों का जहान ले लो

घने अँधेरों में रोशनी हूँ
हवाओ तुम इम्तिहान ले लो

मुझे परिंदों से दोस्ती है
तुम अपना तीरों-कमान ले लो

❖❖❖

कहेंगे किसी दिन ये छाले कहानी
अभी है शराफत का आँखों में पानी

अचानक ही जलते दिये को बुझाना
हवा की तो आदत वही है पुरानी

तुम्हें धूप दूँ ,छाँव दूँ ,या कि जां दूँ
तुम्हें चाहिए क्या वफ़ा की निशानी

हमारे लहू से ही लिक्खा गया है
ये किस्सा नहीं है कोई आसमानी

अगर अश्क आँखों में रौशन हुए तो
चमक जाएगी पीर कोई पुरानी

❖❖❖

गुलज़ार पोखर, मुंगेर (बिहार 811201)
Mob. 7488542351 Email: anirudhsinhamunger@gmail. com

प्रातः में रवि के लालिमा में तुम
चंद्रमा के सभी कलाओं में तुम
आकाशगंगा के तारकों में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

भू-गर्भ के कठोर चट्टानों में तुम
ग्रह नक्षत्रों के कण कण में तुम
सृष्टि के सभी रचनाओं में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

ऊँचे गगन के नीले रंगो में तुम
दामिनी के श्वेत प्रकाशों में तुम
वारिद से गिरते हुए बूंदों में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

नगपति के उतुंग शिखर में तुम
सरिताओं के जलप्रवाहो में तुम
बसुंधरा के हरित तरुवर में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

हिमनदियों की शीतलता में तुम
ज्वालामुखी के तप्तलावा में तुम
उष्ण आर्द्र समशीतोष्ण में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

सागर के तरंगित लहरों में तुम
सरिताओं के बहते नीरों में तुम
झील के नील प्रतिच्छाया में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

कोकिल के मधुर गानों में तुम
भ्रमर के पुलकित गुंजन में तुम
अविरल झरनों के तानों में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

वीणा के सुकम्पित तारो में तुम
डमरू की गर्जित नादों में तुम
शंख से कम्पित सुघोषों में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

सावन के रिमझिम बूंदों में तुम
शीत ऋतू के निम्न तापों में तुम
वसंत के नूतन किशलय में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

पारिजात के भीनी गंधों में तुम
महुआ के मादकताओं में तुम
चंदन के बृक्ष के सुगंधो में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

राधा के प्रेम अश्रुनीरों में तुम
द्रोपदी के प्रतिशोधों में तुम
गान्धारी के श्रापशक्ति में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

कैकयी के लिप्साओं में तुम
सुपर्णरेखा के प्रस्तावों में तुम
सीता के विह्वल प्रेम में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

अहिल्या के दीर्घप्रतीक्षा में तुम
शबरी के जूठे बेर फल में तुम
मीरा के प्रेमभक्ति भावों में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

सुजाता अर्पित प्रसाद में तुम
यशोधरा के विरहपीड़ा में तुम
आम्रपाली के सुआग्रह में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

रावण के दम्भअहंकार में तुम
दुर्योधन के हठधर्मिता में तुम
कंश के मृत्यु आशंका में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

शकुनि के कुटिलकला में तुम
विदूर के नीतिनिदेशों में तुम
देवव्रत के सुप्रतिज्ञाओं में तुम
कैसे बताऊं कहाँ कहाँ हो तुम

भारतीय विदेश सेवा के अधिकारी एवं कवि
Mob. +91 9968885900

प्रतीक्षा

जीवन है क्या? अनवरत प्रतीक्षा
पूर्ण होकर भी, न पूर्ण हुई.
एक प्रतीक्षा पूरी होती है,
एक नया शुरू हो जाता है.
और चलता चला जाता है,
प्रतीक्षा का एक सिलसिला.
बच्चे थे, तो थाम कर बस्ता,
दौड़ पड़ते थे, तेज क़दम,
स्कूल पहुँच, धूम मचाने को.
दोस्तों के संग खेल कूद कर,
पढ़ाई में फिर, खो जाने को,
कब ख़त्म हो, ये कक्षा अवधि,
छुट्टी की घंटी पे, कान लगाए,
टन-टन बजे, और फुर्र हो जाएँ.

जीवन है क्या? अनवरत प्रतीक्षा
देख बड़ो को, एक नयी ललक
बस, छोटे से बड़े, हम हो जाएँ.
इतने बड़े, सबके भैया हो जाएँ.
हो गए बड़े, पीछे रह गया स्कूल.
अब कॉलेज में दाखिला हो जाये.
नए दोस्त मिलें, नया प्यार मिले,
खैर, दोस्त मिले, प्यार भी मिला.
और, देखते ही देखते, कॉलेज ख़त्म
मस्ती ख़त्म, दोस्त जुदा, यार जुदा.
अब फिर प्रतीक्षा, फ़िक्र नौकरी की.
तो गाँव से कोसों दूर, नए शहर में,
एकांत कमरे में, बसेरा इक बना बैठे.
सच्ची निष्ठा, लगन से, खुद को झोंका.
प्रतीक्षा, सरकारी नौकरी की पूर्ण हुई.
ख्वाब इक साकार हुआ, इक टूट गया.
नौकरी मिली मगर, प्यार रूठ गया.
कौन जाने? किस घर की शोभा बनी ?
खैर, शादी हुई, इक नई दुनिया बसी.

प्रतीक्षा का बंटवारा, हम करने लगे.
गुलशन में, नन्हा सा इक फूल खिला.
रोज़-रोज़, रंग अलग, अंदाज़ अलग
जब देखो, चेहरे के हर भाव अलग,
और हँसता-मुस्कुराता, वो पलता गया,
जाने किस प्रतीक्षा में? हम ढलते गए?
प्रतीक्षा का काल चक्र भी घूमता गया,
ख़त्म होगा, जिस्म से रूह विदा करके.
जीवन है, मौत की अनवरत प्रतीक्षा.

जीवन है क्या? अनवरत प्रतीक्षा
प्रतीक्षा फ़िज़ा के हर रंग में,
तपती धरती को बारिश का.
डूबती कश्ती को साहिल का.
उजड़े गुलशन को माली का.
सूने आँगन को किलकारी का.
बंजर भूमि को हरियाली का.
व्यापारी को हर दिवाली का.

थकते पथिक को मंजिल का.
बेचैन दिल को संगदिल का.
सुनसान सड़क को राही का.
कलम को नयी स्याही का.
सुर को संगीत और साज का,
गरीब को राशन, अनाज का.
चाँद को चकोर का,
रातों को भोर का.
और कवि को, अपनी नयी कल्पना
कल्पनाओं में तैरती कविताओं का.

❖

सीनियर इंस्पेक्टर दिल्ली पुलिस

आई.सी.सी.आर. द्वारा 18 दिसंबर, 2021 को होटल ताज पैलेस, नई दिल्ली में राष्ट्रमंडल स्वतंत्र राज्यों (सी.आई.एस.) के अतिथि प्रतिनिधिमंडल के सम्मान में माननीय डॉ. एस. जयशंकर, विदेश मंत्री द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में श्री संतोष नायर के नेतृत्व में साध्या समूह द्वारा बॉलीवुड शैली में नृत्य कार्यक्रम आयोजित किया गया।

माननीय केंद्रीय राज्य मंत्री शिक्षा एवं विदेश राज्य मंत्री श्री राज कुमार रंजन सिंह एवं डॉ. विनय सहस्रबद्धे, अध्य क्ष भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद द्वारा 08 दिसंबर 2021 को अंतर्राष्ट्रीय छात्र दिवस के अवसर पर दीप प्रज्ज्वलन कर कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक द्वारा 9 जनवरी, 2022 को प्रवासी भारतीय दिवस और विश्व हिंदी दिवस मनाया गया।

भारतीय सास्कृतिक संबंध परिषद द्वारा 08 दिसंबर 2021 को 'अंतर्राष्ट्रीय छात्र दिवस' के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम।

विवेकानन्द सांस्कृतिक केंद्र, टोक्यो के योग विद्यार्थियों द्वारा सत्रांत समारोह में योग प्रदर्शन।

प्रो. सिद्धार्थ सिंह, निदेशक, विवेकानन्द सांस्कृतिक केंद्र, टोक्यो विश्व हिंदी दिवस 10 जनवरी 2022 समारोह के दौरान आयोजित कार्यक्रम में व्याख्यान देते हुए।

दी टैगोर सेन्टगर, भारतीय राजदूतावास, बर्लिन द्वारा 11 नवंबर 2021 को कोस्टेज क्लब हैम्बर्ग में अग्रणी तालवादक श्री त्रिलोक गुरुतु के नेतृत्व में 'गॉडइड्रमर' संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

माननीय राजदूत, भारतीय राजदूतावास, बर्लिन द्वारा 26 जनवरी 2022 को भारत के 73वें गणतंत्र दिवस समारोह के दौरान भारतीय राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया एवं राष्ट्र के नाम राष्ट्रपति का अभिभाषण।

श्री सैफुल्लाह खान, कार्यवाहक उच्चायुक्तई, फिजी द्वारा हिंदी शिक्षा समारोह को संबोधित करते हुए।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय राजदूतावास, फिजी द्वारा आयोजित हिंदी शिक्षा समारोह के दौरान आमंत्रित वक्ताओं का वक्तव्य, प्रस्तुतीकरण।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, हनोई द्वारा भारत के 73वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर आजादी का अमृत महोत्सव कार्यक्रम का आयोजन।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, हनोई द्वारा भारत के 73वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर आजादी का अमृत महोत्सतव कार्यक्रम पर बाल नृत्य प्रस्तुति।

श्रीलंकाई सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल द्वारा 03 नवंबर 2021 को दिवाली समारोह पर दीपोत्सव का सजीवी प्रदर्शन अयोध्या में हुआ जिसे स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक, केंद्र, कोलंबो वेबकास्ट और फेसबुक पर लाइव दिखाया गया।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो द्वारा 19 नवंबर 2021 को गुरु नानक जयंती के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में भाई मुख्तियार सिंह और भाई जगतार सिंह द्वारा कीर्तन/अर्धास की प्रस्तुति।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय राजदूतावास, काठमांडू द्वारा दिनांक 21 नवंबर, 2021 को' आज़ादी का अमृत महोत्सव' के अंतर्गत 'संस्कृति भारत' के सहयोग से आयोजित डी.ए.वी. सुशील केडिया विश्व भारती स्कूल, काठमांडू के सभागार में नेपाल-भारत अंतर्राष्ट्रीय मैत्री संगीत समारोह का आयोजन हुआ जिसमें नेपाल और भारत के कलाकारों ने शास्त्रीय गीतों और नृत्यों की प्रस्तुति दी।

श्री अमित कुमार, महावाणिज्यदूत, स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र साओ पालो प्रवासी भारतीय दिवस 2022 के अवसर पर संबोधित करते हुए।

क्षेत्रीय कार्यालय, वाराणसी द्वारा 11 नवम्बर 2021 को "कला विश्व" क्षितिज श्रृंखला के तहत आयोजित 'शास्त्रीय संगीत' कार्यक्रम में श्री राहुल एवं रोहित मिश्रा द्वारा प्रस्तुति।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, काठमांडू ने दिनांक 12 दिसंबर, 2022 को सुप्रसिद्ध शेफ श्री संजय रैना द्वारा बनाए गये कश्मीर के व्यंजनों पर आधारित विशेष 'फूड फेस्टिवल' का आयोजन हुआ जिसका उद्घाटन माननीय राजदूत श्री विनय मोहन क्वात्रा, नेपाल द्वारा किया गया

भारतीय राजदूतावास, काठमांडू द्वारा दिनांक 11-16 नवंबर 2021 के दौरान "पशुपतिनाथ-काशी विश्वनाथ अमृत महोत्सव मोटरसाइकिल रैली" का आयोजन किया गया तथा नेपाल के माननीय संस्कृति, पर्यटन और नागरिक उड्डयन मंत्री श्री प्रेम बहादुर आले और भारत के राजदूत श्री विनय मोहन क्वात्रा द्वारा संयुक्त रूप से पवित्र पशुपतिनाथ मंदिर से हरी झंडी दिखाकर मोटरसाइकिल रैली को रवाना किया।

क्षेत्रीय कार्यालय, भोपाल द्वारा 26 नवंबर 2021 को "कला विश्व" क्षितिज श्रृंखला के तहत आयोजित कार्यक्रम 'कबीर भजन' में निर्गुणी ग्रुप ग्वालियर की प्रस्तुति।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने आज़ादी के अमृत महोत्सव (AKAM) के अंतर्गत सुश्री मौमिता घोष के नेतृत्व में 10 सदस्यीय ओडिसी नृत्य समूह "दिव्यानुभूति" को श्री लंका के विभिन्न शहरों में सांस्कृतिक प्रस्तुति देने के लिए 25 जनवरी से 5 फरवरी 2022 तक प्रायोजित किया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में श्रीलंका के माननीय प्रधान मंत्री की पत्नी आदरणीय श्रीमती शिरंथी राजपक्षे उपस्थित थी।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा प्रायोजित "ताका दीमी ता" नामक 12 सदस्यीय बॉलीवुड समूह सर्वेंटिनो फेस्टिवल, मेक्सिको व अन्य शहरों में 23 अक्टूबर से 3 नवंबर, 2021 के दौरान प्रदर्शन देते हुये।

"इंडिया कल्चर वीक" एवं फिलिस्तीन में भारत के राजनयिक मिशन की स्थापना / उद्घाटन के 24 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में 23-29 नवंबर, 2021 के दौरान भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा सुश्री संगीता शर्मा के नेतृत्व में 12 सदस्यीय समकालीन नृत्य समूह "अन्वेषणा" को प्रायोजित किया गया, जिसने 30 नवंबर से 8 दिसंबर, 2021 के दौरान मिस्र के विभिन्न शहरों में भी सांस्कृतिक प्रदर्शन दिये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002, भारत
फोन नं. 011–23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 43 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ–साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार–प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश–विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन–योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

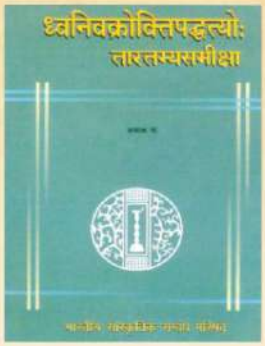

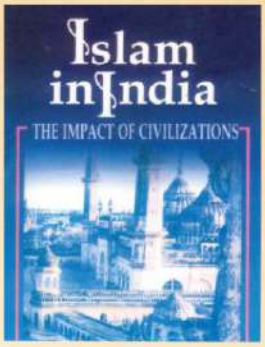

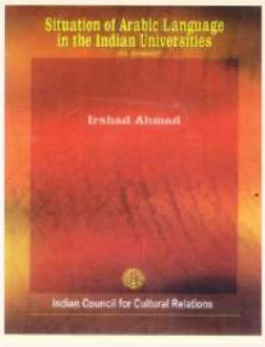

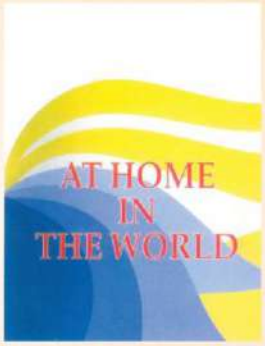

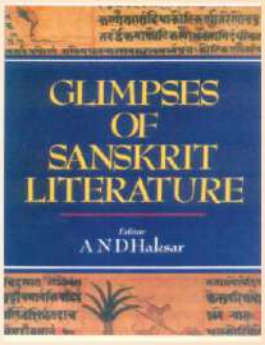

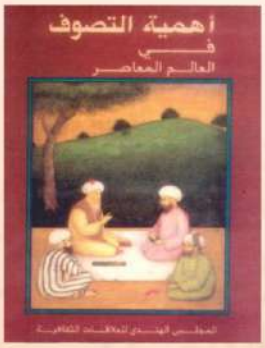

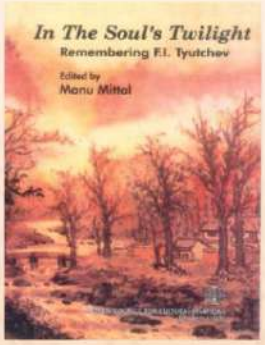

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका